

मातृ-भापानुरागी

श्रीमान्

राव कृष्णपालसिंह साहिब वहादुर

(अवागढ़)

के

कर-कमलोभे

उनके प्रोत्साहनका यह फल

सविनय और सानुराग

समर्पित

६५ ।

निवेदन ।

(दूसरा संस्करण)

कादम्बरी के अनुवाद का पहला संस्करण सन् १९२१ में गांधी-पुस्तक-भंडार, बंबई द्वारा मुद्रित हुआ था । इधर बीस वर्ष से यह अप्राप्य हो रहा था और इसकी माँग बराबर बढ़ रही थी । कई कारणों से कई वर्ष इसका प्रकाशन स्थगित रहा । अन्त में अब यह भारती-भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग द्वारा प्रकाशित हो रहा है ।

अनुवाद कई विश्व-विद्यालयों की उच्च परीक्षाओं के पाठ्य-क्रमों में स्वीकृत रह चुका है और संस्कृत के विद्यार्थियों को भी उपयोगी रहा है क्योंकि एम० ए० की परीक्षा में संस्कृत कादम्बरी प्रायः पाठ्य-पुस्तक रहती है ।

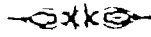
कई कठिन स्थलों का फिर से मूल संस्कृत पुस्तक से मिलाकर संशोधन कर दिया गया है और कई अन्य परिवर्तन कर दिए गए हैं जिनसे पाठकों को समझने में और भी आसानी होगी ।

आगरा

१०।१०।१९५०

ऋषीश्वर ।

प्रस्तावना



वाणभट्ट ।

संस्कृतके कवियोंकी श्रेणीमें वाणभट्टका आसन बहुत ऊँचा है । उनकी गणना गद्य काव्य-रचनाके जन्मदाताओंमें है । उनका गद्य यथार्थमें पद्यका ही रूग्न्तर है । उनकी विचित्र रचना कोमल तथा लालित्य-पूर्ण है । उसमें प्रसादकी कमी नहीं, श्रोजकी कमी नहीं, अलंकारोंकी कमी नहीं । उसमें काव्यके सब लक्षण पाए जाते हैं । वह रत्ननाकी विशालता, संविधानक चातुर्य और ललित अर्थ प्रकट करनेमें अनुपम है । उसके पढ़नेसे मालूम होता है कि वाणभट्ट असाधारण कवि थे—संस्कृत भाषा पर उनका पूरा आधिपत्य था ।

वाणभट्टका समय ।

चीनका प्रसिद्ध यात्री ह्यूनसांग सन् ६२६ से ६४५ ई० तक भारतवर्षमें था । उसने अपनी यात्राके वर्णनमें उत्तरीय भारतके सम्राट् हर्षका सविस्तर हाल लिखा है । महाराज हर्षकी राजधानी थानेश्वरमें थी । उन्होंने सन् ६०६ ई० से ६४८ ई० तक राज्य किया । जिसे हर्ष-संवत्का नेपालमें प्रचार है वह इन्हींके राज्यकालसे आरंभ हुआ है । यही हर्ष वाणभट्टके आश्रयदाता थे । इन्हींका वर्णन उन्होंने हर्ष-चरितमें किया है । इससे प्रमाणित होता है कि वाणभट्ट छठी शताब्दीके अन्त और सातवींके आरंभमें विद्यमान थे ।

वाणभट्टका वंश ।

संस्कृत-कवियोंके जीवन-चरितके विषयमें हमारा ज्ञान नितान्त अपूर्ण है । ऐसे कवि केवल मुठ्ठीभर हैं जो अपने ग्रंथों में अपना कुछ वृत्तांत लिख गए हैं । इन्हींमेंसे हमारे चरित्र-नायक हैं । कादंबरीमें तो उन्होंने अपने व सक्षित हाल दिया है, पर हर्ष-चरितमें उनका तथा उनके पूर्वजोंका वंश वर्णन मिलता है ।

हर्ष-चरित के अनुसार चाणभट्ट की वंशावली ।

वत्स

कुवेर

अच्युत

ईशान

हर

पाशुपत

अथपति

भृगु हंस शुचि कवि महीदत्त घर्म जातवेदसू चित्रभानु ऋक्ष अहिदत्त विश्वरूप

चाण

कादंबरीमें दिया गया वंश-वर्णन इससे भिन्न है । उसमें पाशुपतका नाम नहीं मिलता । इस विचित्रताका कुछ कारण समझमें नहीं आता । संभव है कि जिन हस्त लिखित प्रतियोंके आधार पर कादंबरी मुद्रित हुई हो उनमें पाशुपत सम्बन्धी श्लोक न हो ।

चाणभट्ट वात्स्यायन वंशमें पैदा हुए थे । उनके पूर्वज सोन नदीके किनारे प्रीतिकूट ग्राममें रहते थे । उनकी माताका नाम राज्यदेवी था । उनकी ल्यावस्थामें ही माताकी मृत्यु हो गई । पिताने ही उनका पालन किया । जब १४ वर्षके थे तब उनके पिता भी परलोककी यात्रा कर गए ।

चाणभट्टको देशाटनका बड़ा शौक था । इस कारण बहुधा लोग उनका उपहास भी किया करते थे । पर्यटनसे उनको बड़ा लाभ हुआ—बुद्धि-विकास और सांसारिक अनुभव हुआ । देशाटनके बाद वे घर पर रह कर अध्ययनमें समय व्यतीत करने लगे । वहाँसे उनको महाराज हर्षने बुलवाया । उसने पहले तो उनका विशेष सत्कार नहीं किया, पर बादमें उनको अपने आश्रयमें रख लिया ।

वाणभट्टके ग्रंथ ।

१—हर्ष-चरित ।

इसमें राजा हर्षका वर्णन है और कविने अपने वशका सविस्तर हाल लिखा है ।

२—चटिका-शतक ।

इसमें चटिकाकी स्तुतिके १०० श्लोक हैं ।

३—पार्वती-परिणय ।

यह नाटक कुमारमभवकी कथाके आधार पर लिखा गया है ।

४—मुकुट-ताडित नाटक ।

नल-चपूके टीकाकार चद्रपाल तथा गुणविजय गणिने वाणभट्टके इस नाटकके एक श्लोकका अवतरण दिया है । इससे अनुमान होता है कि यह नाटक भी वाणभट्टने बनाया था ।

५—कादवरी ।

कादवरीकी कथा ऋद्धाग-रस-प्रधान है । इसमें निर्दोष और पवित्र शृ गारका वर्णन है । इसकी रचनामें कविने अोजको अतिके दरजेको पहुँचा दिया है—जहाँ तक अवकाश मिला है श्लेष आदि अलकारोंको नहीं छोड़ा है । कहीं कहीं तो अर्थके स्पष्ट होने न होनेका भी विचार नहीं रक्खा है । लम्बे लम्बे वर्णनोंमें बहुतेसे पद ऐसे हैं कि अगर शब्दोंका साधारण अर्थ लिया जाय तो उनका कुछ अर्थ ही न हो । लम्बी लम्बी समासोका प्रयोग प्रायः प्रत्येक पृष्ठ पर पाया जाता है । कहीं कहीं क्रियाएँ ५।६ पृष्ठोंके बाद आई हैं । वीचमें बड़े बड़े कठिन वाक्य भर दिए गए हैं । इनमें लालित्य होने पर भी जटिलता अवश्य आ गई है । वाणभट्टने कादवरीमें उत्तम गद्यका यह लक्षण दिया है—
'उत्कृष्टकविगद्यमिव विविधवर्णश्रेणीप्रतिपाद्यमानानेकाभिनवार्थसचयम्' । अपनी रचनामें उन्होंने इसे खूब सार्थक किया है ।

कादवरीका कथानक बड़ा जटिल है । एक एकके भीतर दूसरी कहानियाँ घुसी हुई हैं पर कथानकके उद्घाटनके लिए प्रत्येक कहानी नितान्त आवश्यक है । कथानकका क्रम पूर्णक विकास करके कविने वस्तु-सकलनमें अपना अनुपम चातुर्य दिखाया है । कथाके अधवीचमें पहुँच जाने पर भी

यह थाह नहीं मिलती कि इमफा ग्रन्थ क्या है। कथाकी यह एक बहुत बड़ी त्वृती समझी जाती है। पूरी कहानी तोतेके द्वारा कहलाई गई है जा यथार्थमें पुढीक है और इस कथाका उपनायक है। शुरूमें शायद ही किसीको यह खयाल हो सके कि राजा शूद्रक और तोता, अपने दूसरे या तीसरे जन्ममें, इस कथाके नायक और उपनायक हैं। काटवरी और महाश्वेता नायिका उपनायिका हैं, पर आधी पुस्तक समाप्त होने तक तो नायिकाका नाम भी नहीं सुन पड़ता। इस कथामें पाठकोंको इम बातकी थाह नहीं मिलती कि आगे क्या क्या होगा और कैसे इसका अंत होगा। इमसे पाठकोंका कुतूहल बराबर जागृत रहता है और अत्यंत रमणीय तथा अलौकिक आनंददायक वर्णनोंके कारण उत्साह शिथिल नहीं होने पाता।

वाणभट्टका उद्देश्य कल्पित कथा लिखनेका था। उनकी काल्पनिक कथाको साधारण यथार्थताके दृष्टि-स्थलसे देखना अनुचित होगा। काटवरीके सब पात्र कल्पित हैं, पर कविने इस चातुर्यसे उनके चरित्रका विकास किया है कि पाठक उनके सुख दुःखमें तन्मय होकर अपनेको भूल जाते हैं और उनको पात्रोंकी काल्पनिकताका ध्यान नहीं रहता।

चरित्र-चित्रणमें वाणभट्टने अपनी बुद्धिका अद्भुत चमत्कार दिखाया है। काटवरीके सब चरित्र सजीव हैं और उनका कोई कर्म उनकी स्थितिके विरुद्ध नहीं है। नायिकाके चित्रणमें कविने कोई बात उठा नहीं रखी। इसमें उन्होंने अपनी सूक्ष्म-दर्शिता और मनःकल्पनाकी पूरी समर्पिका उपयोग किया है। वाणभट्टने मनुष्य-जीवनकी स्थितिके सब रूगोंका वर्णन बड़ी देखभालके साथ किया है। महाश्वेताके प्रेम और दुःखकी कहानी कह कर उन्होंने काटवरीकी दशा सुननेके लिए पाठकोंको तैयार किया है। हारीतकी महानुभावता, तारापीडकी परोपकारशीलता, विलासवतीकी प्रेमालुता, शुरुनासकी विश्वसनीयता, कपिजलकी मित्र-वत्सलता, महाश्वेताकी शारीरिक और मानसिक पवित्रता, पत्रलेखाकी स्वामिभक्ति—पाठकोंके हृदय पर अभित हो जाती है। शुरुनासने चद्रापीडको जो शिक्षा दी है उसकी रचनामें तो कविने अपनी कलम तोड़ दी है। वह इतनी रहस्य पूर्ण और मार्मिक है कि प्रत्येक देशके प्रत्येक राजाके लिए उपयोगिनी होगी।

वाणभट्ट प्रकृतिके भी बड़े प्रेमी थे। उनके ग्रन्थोंमें प्राकृतिक सौन्दर्यके बहुतसा सच वर्णन पाया जाता है। कहीं कहीं तो वर्णन इतने लम्बे हैं कि उनको पढ़ते पढ़ते पाठक मूल-कथाको भूल जाते हैं पर वे इतने सरस हैं कि मन उफ्ताने नहीं पाता। कादंबरी में वन, पर्वत, ऋतु तथा सरोवर आदिका वर्णन बड़ा हृदयग्राही है।

प्राचीनकालकी रीति भौति और रहन-सहनका भी पता कादंबरीसे लगता है। भारतवर्षमें लोग पुरानी चालको बहुत धीरे धीरे छोड़ते हैं इस कारण कादंबरीमें बहुतसी बातें ऐसी मिलती हैं जो अब तक ज्योंकी त्यों बनी हैं। वाणभट्ट सिर्फ राजाओं और राजसभाओंके ही नहीं, मनुष्य-जीवनके साधारण रूपोंके भी सूक्ष्म निरीक्षक थे। उन्होंने अपने समयके राज दरबारोंका तथा नागरिकोंकी रहन-सहनका बड़ा चित्ताकर्षक चित्र उतारा है। सब प्रजा सुख-दुःखके प्रवसरो पर अपने शासकके साथ पूरी सहानुभूति दिखाती है। वनमें तपस्वियोंका शान्ति पूर्वक रहना, चद्रापीड़की युवराज पद पर प्रतिष्ठा, विलास-वर्तीको पुत्रके लिए तपस्या, महानालका अभिवादन—ये वर्णन बड़े मनो मोहक हैं। चद्रापीड़ने जो महाश्वेताका समाश्वसन किया है उसके पढ़नेसे पता लगता है कि उस जमानेमें प्रजाकी चित्तवृत्ति सती प्रथाके विरुद्ध हो चली थी। इस प्रथाके विरुद्ध बड़ी मनोरञ्जक दलीलों दी गई हैं। भोजनमें छुआ-छूतका भी जिक्र आया है। चांडाल-कन्याने तोतेसे कहा है कि आपत्तिके समय प्राद्वान भी चाहे जिन प्रकारका भोजन कर सकता है। राजसभामें बहुतसे धर्मोंके अनुयायियों का नाम आया है। महाकाल नामक शिवकी पूजाका विशेष उल्लेख है। अग्नि और मातृसभ्योंका भी पूजन हुआ है। राजाओंकी सभामें सबका प्रवेश था और वे सबकी सुनते थे। उन दिनोंमें भी अमद्-विश्वासोंका प्रचार था—जैसे रात्रिके अन्तके स्वप्नोंका सच्चा होना, जादूके मडल, पुत्र-प्राप्तिके लिए नाग-कुलके सरोवरोंमें नहाना, सरसोंके दाने और वी बालकके मुँहमें रखना। इन वर्णनोंमें छोटीसे छोटी बात भी नहीं छोड़ी गई है।

कादंबरीकी सचिस कथा

राजा शूद्रकके पास एक दिन एक चांडाल-कन्या एक तोता लेकर आई। तोतेने अपना दक्षिण चरण उठा कर राजाकी प्रशामें एक श्लोक पढ़ा।

उसे सुन राजा अत्यन्त विस्मित हुआ। उसने तोतेमें उसका सब हाल पूछा। तोतेने अपना सब वृत्तान्त इस प्रकार सुनाया।

विंध्य नामके जगलमें एक सेमरके वृक्षके कोटरमें मेरे माता पिता रहते थे। मेरे पैदा होते ही मेरी माताकी मृत्यु हो गई। एक दिन वहाँ शिकारियोंका शब्द सुनाई पड़ा। उनमेंसे एक वृद्ध शिकारी वृक्ष पर चढ़ गया और तोतेके प्राण ले लेकर उन्हें भूमि पर पटकने लगा। उसने मेरे पिताको भी मार कर पृथ्वी पर फेंक दिया। मैं भयके कारण पिताके पंखोंमें चिपट गया था इससे उसने मुझे नहीं देखा। मैं जाकर एक तमाल वृक्षकी जड़में छिप गया। इतनेमें वह व्याध मरे हुए पक्षियोंको लेकर चला गया। मैं भी चलनेका उद्योग करने लगा। वहाँसे थोड़ी दूर पर जात्रालि मुनि रहते थे। उनके पुत्र हारीत उसी और होकर सरोवरमें नहानेके लिए जाते थे। उन्होंने मुझे रास्तेमेंसे उठा लिया। वे मुझे तीर पर ले गए और मेरा मुँह खोल कर अग्नी उँगलीसे पानी पिलाया। फिर वे मुझे लेकर तपोवनको गये। वहाँ सबने हारीतसे पूछा— इस तोतेके बच्चेको कहाँसे लाए? उन्होंने मेरे ले आनेका सब हाल सुनाया।

हारीतकी बात सुन जात्रालिने मेरी आर देख कर कहा कि यह अपने कियेका फल भोग रहा है। तब सबने पूछा कि महाराज, इमने क्या कर्म किया है जिसका फल भोग रहा है? महर्षिने कहा— इसकी कथा थोड़े समयमें पूरी नहीं हो सकती। अब सध्या होनेको है। जब रातको निश्चिन्त होकर बैठोगे तब मैं वर्णन करूँगा। फिर जब सब नित्य-कृत्यसे निवृत्त हो गये तब जात्रालिने इस प्रकार मेरी कथा सुनाई —

उज्जयिनीमें तारापीड नामका राजा था। उसकी रानीका नाम विलासवती था। उसका मन्त्री शुक्रनास था और शुक्रनासकी पत्नीका नाम मनोरमा था। अनपत्यताके कारण राजा अत्यन्त दुःखित रहता था। एक दिन रानीको रोने देख कर राजाने बहुत समझाया और देवनाओंके पूजा करनेकी सलाह दी। कुछ दिन पीछे एक रातको राजाने स्वप्नमें विलासवतीके मुखमें चंद्रमाको प्रवेश करते देखा। शुक्रनासने एक ब्राह्मणको मनोरमाके ऊपर एक खिला हुआ कमल फेंकते देखा। कुछ कालके अनन्तर रानीके पुत्र उत्पन्न हुआ। मनोरमाके भी एक पुत्र उत्पन्न हुआ। राजाने अपने कुमारका नाम चन्द्रापीड

श्रीर मुन्नासने वंशपावन गया । फिर राजाने उनकी शिक्षाके लिए आचार्याके मुपुर्द किया । कुछ समय बाद वे दोनों त्रिया पड कर वापिस आए । फिर चद्रापीड शिखर चलने गया । उनके अनंतर अपनी माताकी भेजी हुई— कुल्ल देशके राजाकी पुत्री—पवलेखाको उसने अपनी ताबूल-बाहिनीका पद दिया ।

कुछ कालके अनन्तर राजाने चद्रापीडका गज्याभियेक किया । फिर युवराजने दिग्विजयके लिए प्रस्थान किया । वैशपायन भी एक हाथी पर चढ कर युवराजके साथ गया । राजकुमारने क्रमशः सब देशोंको जीत कर वहाँके राजाओंसे कर वसूल किया । इसके बाद युवराज कैलास पर्वतके पास पहुँचा और अपनी यकी हुई सेनाको विभ्राम करनेकी आज्ञा दी ।

एक दिन वह वहाँसे शिखरके लिए गया तो उसने वनमे किन्नरोंके एक जोड़ेको भ्रमण करते देखा । उसे देख पकड़नेके लिए वह आगे बढा । परन्तु वे दोनों भाग कर पर्वतके ऊपर चढ गए और अदृश्य हो गए । तब युवराजने धोड़ेको दक्षिणकी ओर फेरा और पास ही उसे एक वृक्षसे बाँध दिया । फिर जलाशयकी खोजमे इधर उधर देखने लगा तो उसे अच्छोद नामका सरोवर देख पड़ा । उसमेंसे जल पीकर वह एक कु जमें शिला पर लेट गया । इतनेमें उसने गानकी ध्वनि सुनी । वह धोड़े पर चढ कर उसीकी ओर चला और उपवनके बीचमें एक मंदिरके पास पहुँचा । वहाँ उसने देखा तो महादेवकी मूर्तिके सामने एक कन्या वीणा बजा कर स्तुति कर रही है । भजन समाप्त होने पर कन्याने राजपुत्रका स्वागत किया और उसे वह अपने साथ लिवा ले गई ।

कुछ दूर जाकर दोनों एक गुहामें गये और शिलाओं पर बैठे । कन्याने राजकुमारका परिचय पूछा तब उसने अपनी कथा सुनाई । फिर कन्याने राजकुमारको फल खानेकी दिये । अक्सर देख कर राजकुमारने उस कन्यासे उसका जीवन वृत्तान्त पूछा । कन्याने कहा —

देवलोकमें अप्सराएँ रहती हैं । उनके चोदह कुल हैं । उनमेंसे दक्षराजकी कन्या मुनि और अरिष्टाके साथ गंधर्वाका समागम होनेसे दो कुल हुए । मुनि गर्भसे चित्ररथका और अरिष्टाके गर्भसे हसका जन्म हुआ । वे दोनों पर रहते हैं । मे अभागिन हसकी पुत्री हूँ और मेरा नाम महाश्वेता है ।

एक समय मैं माताके साथ ग्रच्छोद सरोवरमें नहानेको गई तब कहींसे एक अद्भुत सुगंध आई। उस गंधका अनुसरण करती करती मैं आगे बढ़ी तो मैंने शिष्य (कर्पिंजल) के साथ एक मुनिकुमारको आते हुए देखा। उनके कानमें एक कुसुम मजरी थी। मैंने जाना कि उसीकी सुगंधसे वन मद्धक रहा है। मैंने उनको प्रणाम किया और उनके शिष्यसे उनका तथा कुसुम-मजरीका हाल पूछा। उसने कहा—ये श्वेतकेतुके पुत्र पु डरीक हैं। यह पारिजात वृक्षकी मजरी है। इतनेमें मुनिकुमारने उसे मेरे कानमें पहना दिया। उमीक्षण उनकी रुद्राक्षकी माला गिर पड़ी। उसे मैंने अपने गलेमें पहन लिया। इसी समय छत्रधारिणी मुझे स्नानके लिए बुला ले गई। चलते समय उन्होंने अपनी माला मुझसे माँगी। मैंने अक्षमालाके भ्रमसे अपना हार उनको दे दिया। फिर मैं नहा कर घर गई।

बहुत देर पीछे तरलिकाने मुझसे कहा कि उन मुनिकुमारके शिष्यने मुझसे आपका हाल पूछा था और यह पत्रिका दी थी। पत्रिका पढ़ कर मैं विकल हो गई।

सायकाल छत्रधारिणीने कहा—उन दो मुनिकुमारोंमेंसे एक अपनी माला लेने आए हैं और द्वार पर खड़े हैं। मैंने उनको बुलवाया। देखा तो कर्पिंजल है। उसने कहा—जबसे तुमको देखा है तबसे मेरे मित्रकी दशा अत्यन्त शोचनीय है। जो उचित हो सो करो। इतनेमें ही प्रतिहारीने कहा कि महारानी आती हैं। यह सुनते ही कर्पिंजल उठ कर चला गया।

फिर माताके चले जानेके बाद में तरलिकासे सलाह करके प्रमद-वनकी ओरके द्वारसे पु डरीकसे मिलनेको चली। सरोवरके निकट पहुँचते ही मुझे विलाप सुन पड़ा। जाकर देखा तो पु डरीक शिला पर पड़े हैं और ल उनका गरदन हाथमें धाम रहा है। फिर मैंने क्या किया और मेरी दशा हुई—इस बातका मुझे होश नहीं है।

इस प्रकार अपना हाल कहते कहते महाश्वेताको मूर्च्छा आ गई। चन्द्रापीड़ने हाथ फैला कर उसे सहारा दिया और उसकी हवा करने लगा। जब महाश्वेता होशम आई तब फिर कहने लगी—उसकी मृत्युसे दहाश होकर मैं चिता बनानेके लिए तरलिकासे कह रही थी कि इतनेमें स्वर्गसे एक महापुरुषने

उत्तर कर पुडरीके शरीरको पत्त कर रहा—महाश्वेता, तुम प्राणत्याग मत करना। पुडरीके साथ तुम्हारी भेट फिर होगी। यों कह कर वह पुडरीके शरीरको प्राकाशमें ले गया और कपिजल उसके पीछे ढोंड़ गया। फिर प्रातः-काल उठ कर मने सरोवरमें स्नान किया और तबसे श्री शिवजीकी उपासनामें समय व्यतीत करती हूँ। तरलिकाके सिवाय और कोई बात करनेको भी नहीं है। इस प्रकार ऋद कर वह रौने लगी। तब चन्द्रापीडने उसे बहुत समझाया और पूछा कि तरलिका कहाँ है ?

महाश्वेताने कहा—महाभाग, अमरात्रोके—अमृतसे उत्पन्न हुए—कुलमें मदिरा नामकी कन्या थी। उसका विवाह चित्ररथके साथ हुआ। उसकी एक कन्या कादवरी है। मेरा उससे बड़ा प्रेम है। मेरी दशा सुन कर उसने प्रतिज्ञा की है जब तक मेरे इस दशामें रहूँगी वह भी विवाह न करेगी। उसके माँ आप यह सुन कर अत्यन्त दुःखित हुए हैं। उन्होंने आज प्रातःकाल मुझसे कादवरीको समझानेके लिए ऋदला भेजा था इसीलिए मैंने तरलिकाको उसके पास भेजा है।

प्रातःकाल महाश्वेता जप कर रही थी और चन्द्रापीड अपना प्रामाणिक कर्म कर रहे थे कि इतनेमें कैयूरके साथ तरलिका आई। कैयूरके कादवरीका भदेश सुनाया। तब महाश्वेताने उठे वापिस लौटा दिया और कहा कि मैं आती हूँ। फिर वह चन्द्रापीडको साथ लेकर कादवरीसे मिलने गई। कादवरी उससे मिल कर बहुत आनन्दित हुई। इतनेमें ही प्रतीहारीने महाश्वेतासे कहा कि तुमको राजा और रानी बुलाते हैं। तब वह चन्द्रापीडको प्रमद-वनके मणि-मङ्गलमें ठहरानेका प्रव करके आप चली गई। रात्रिको कादवरी चन्द्रापीडसे मिलने गई। प्रातःकाल चन्द्रापीड भी मन्दर-प्रासादके आँगनमें उससे मिलने गए। फिर कादवरीमें विदा होकर राजकुमारने प्रन्थान किया। वहाँसे चल कर वह अपनी सेनामें आ पहुँचा। दूसरे दिन कैयूरक उससे मिलने आया। उसके साथ वह फिर गधर्व नगरको गया और पत्रलेखाको अपने साथ लेता गया।

जब वह वहाँसे वापिस लौट कर अपनी सेनामें आया तब एक दूत राजा तारापीडका पत्र लेकर आया। तब राजपुत्रने मेघनादसे कहा कि पिनाने बुलाया है इस कारण मैं जाता हूँ। तुम यहाँ रहो। वैशामनके साथ मेना

चले आना । यों कह कर कुमार चल दिया और उजयिनीमें आ पहुँचा । वहाँ एक दिन केयूरक आया । उससे कादवरीकी विरह-दशाका हाल सुन कुमार अत्यन्त दुःखित हुआ । केयूरकसे यों कह कर कि—तुम चलो, मैं आता हूँ— उसे विदा किया ।

तब उसने सुना कि सेना दशपुर तक आ पहुँची है । इससे वह पिताकी आज्ञा लेकर वैशंपायनसे मिलने गया । सेनामें पहुँचने पर उसने सुना कि वैशंपायन अच्छोद सरोवर पर रह गया है । यह जान कर वह अत्यन्त चिन्तित हुआ । रात्रिको वह सेना लेकर चल दिया और प्रातःकाल उजयिनीमें पहुँच गया । वहाँसे पिताकी आज्ञा लेकर राजकुमार वैशंपायनकी तलाश में चला । कुछ दिन पीछे अच्छोद सरोवरके पास पहुँच गया पर वैशंपायनका पता कहीं न लगा । तब महाश्वेताके आश्रममें गया । देखा तो महाश्वेता रो रही है । उससे शोकका कारण पूछा ।

महाश्वेताने धीरेसे कहा—महाभाग, एक समय मैं अपने आश्रममें बैठी थी कि एक ब्राह्मण-युवक मेरे पास आया और मुझसे प्रेमकी बातें करने लगा । जब वह किसी प्रकार नहीं माना तब मैंने कहा—यदि मेरा अन्तःकरण पवित्र है तो यह तिर्यग्जातिमें पतित हो । इतना मेरा कहना था कि वह अचेत होकर गिर पड़ा । उसके साथी चिल्ला उठे । उनसे मैंने सुना कि वह आरक्त मित्र था । यों कह कर वह लज्जासे मुँह नीचा कर फिर रोने लगी ।

यह सुन चन्द्रापीड़ बोला—देवि, अब दूसरे जन्ममें कादवरीके साथ मेरा समागम कराना । इतनेमें ही उसका हृदय फट गया और वह छिन्न मूल पृथ्वी तरह पृथ्वी पर गिर पड़ा । यह देख महाश्वेता तथा राजकुमारके सब परिचारक विलाप करने लगे ।

उपर पत्रलेखाके मुँहसे चन्द्रापीड़के आनेका समाचार सुन कादवर महाश्वेताके आश्रममें आई । देखा तो प्राण हीन चन्द्रापीड़का शरीर पृथ्वी पर पड़ा है । वह अचेत होकर भूमि पर गिर पड़ी और सिर पीट कर रोने लगी । फिर उसने महाश्वेताका आलिगन करके कहा—जन्मान्तरमें फिर तुमसे भेंट होगी । इतनेमें ही चन्द्रापीड़के शरीरमें एक ज्योति उत्पन्न हुई और यह शब्द हुआ—महाश्वेता, तेरे प्रियतमसे तेरी भेंट अवश्य होगी । कादवरी,

चन्द्रापीड़के शरीरका अग्नि मस्कार मत करना । यह फिर जीवित होगा ।

आकाशवाणी सुन कर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ । होश आने पर पत्र-लेखाने इन्द्रायुधको अच्छोद सरोवरमें डकेल दिया । उस सरोवरमेंसे कर्पिजल निकला । उसने कहा—जब वह दिव्य पुरुष मेरे मित्रके शरीरको ले गया तब मे उसके पीछे पीछे दौड़ा चला गया । उसने चन्द्रलोकमें पहुँच कर कहा—मैं चद्रमा हूँ । मेरे ही श्रापके कारण इसे मृत्युचोक्ष्म दो बार जन्म लेना पड़ेगा । जब तक श्राप दूर न होगा इसका शरीर यहीं रहेगा । तुम जाकर श्वेतकेतुसे सब हाल कह दो ।

यह सुन मे आशय मार्गसे चला जाता था कि मैंने एक वैमानिककी राह काट दी । उसके श्रापसे मे घोटा हुआ । जो तुम्हारे श्रापसे विनष्ट हुए वे मेरे मित्र पुटरीक थे । यह सब श्रापका कारण था । यह कह कर कर्पिजल आकाशको चला गया । फिर महाश्वेताने कहा कि जब तक चन्द्रापीड़का शरीर पुनर्जावित न हो तब तक उसकी रक्षा करनी चाहिए ।

प्रातःकाल कादवरीने मदलेखाको घर भेजा । वह कादवरीके माता पितासे सब हाल कह कर वापिस आ गई । जब वर्षाऋतु वीत गई तब एक समय मेघनादने कादवरीसे कहा—महाराज तारापीड़ने राजकुमारका वृत्तान्त जाननेके लिए दूत भेजे हैं । तब कादवरीने सब हाल सुनानेके लिए त्वरितकको उनके साथ भेज दिया । उसने राजासे सब हाल कहा । तब सब अच्छोद सरोवर पर आए और राजकुमारका शरीर देखा ।

इतनी कथा कहनेके बाद जात्रालि बोले—महाश्वेताके श्रापसे जो तिर्यग्योनिमें पतित हुआ वही यह शुक है । यह बात सुन कर मुझे अपने पूर्वजन्मभी सब विद्या याद आ गई । मैंने पूछा—कृपा कर चन्द्रापीड़का जन्म स्थान बता दीजिए । उन्होंने कहा—पहले उड़नेभी शक्ति प्राप्त कर ले तब बतला दूँगा ।

इतनेमें ही प्रभात हो गया और सब मुनि नित्य-कृत्य करने लगे । हागीतने मुझसे कहा—कर्पिजल तुमको डूँडता हुआ यहाँ आया है । इतनेमें ही कर्पिजल मेरे सामने आया । उसने कहा—मिता कुशल-पूर्वक हैं । हम सबके उद्धारक लिए वे अनुष्ठान कर रहे हैं । जब तक उनका अनुष्ठान समाप्त न हो तब तक तुम यहीं रहो । यों कह कर वह देखते देखते आशयमें अन्वर्ध्यान हो गया ।

हारीत यत्न पूर्वक मेरा पालन करने लगे। एक दिन में महारथेताके आश्रमकी ओर चलनेके इरादेमें उड़ चला, पर थोड़ी ही दूर जाने पर थक गया और वहाँ सरोवरके तीर पर एक कुजमें सो गया। जब नींद उच्यी तब देखा कि सामने एक व्याध खड़ा है। उससे मने बहुत प्रार्थना की पर उसने एक न मानी। वह मुझे अपने चाडाल स्वामी के यहाँ ले पहुँचा और मुझे चाडाल-कन्याकी सुपुर्द कर दिया। उस कन्याने मुझे एक काठके पीजडेमें रक्खा। इस प्रकार कितने ही दिन बीत गए। एक समय सोकर उठा तो क्या देखा कि मैं सुर्णके पीजडेमें बैठा हूँ। फिर यह कन्या मुझे यहाँ ले आई।

इतनी कथा सुन कर राजाने चाडाल-कन्याको बुलवाया। कन्याने आकर कहा—हे चन्द्र, आपने अपना और शुक्का वृत्तान्त सुना। मैं इसकी माता हूँ। मैंने अब तक इसे दुष्कर्मसे रोका। अब आप दोनों अपने देहोंका त्याग करके वाञ्छित भोग करो। इतना कह कर कन्या अत्यर्थांन हो गई।

लक्ष्मीकी बातें सुन कर राजाको पूर्वजन्मका स्मरण हो आया। इधर वसत-काल आ पहुँचा। कादंबरीने चन्द्रापीड़के शरीरको भली भाँति अलंकृत किया। इतनेमें ही चन्द्रापीड़ जीवित हो उठा। वह कादंबरीसे अपना हाल कह रहा था कि इतनेमें पुडरीक चन्द्रलोकसे उतरा। राजा रानी सब अत्यंत प्रसन्न हुए। फिर चन्द्रापीड़ और पुडरीक दोनों अपनी अपनी प्रियाओंके साथ रहने लगे।

कादंबरीकी मूल-कथा।

कादंबरीकी मूल-कथा वाणभट्टकी कल्पनाकी उपज नहीं है। सोमदेवके धा-सरित्सागरमें नरवाहनदत्त राजाके मंत्रीने उससे एक कहानी कही है। उसका नाम कादंबरीका एक ही कथानक है। मालूम होता है वाणभट्टने उसी कहानीका संस्कार किया है।

कथासरित्सागरके लेखक सोमदेव ईसाके बाद चारहवीं शताब्दीके आरम्भमें हुए। उन्होंने लिखा है कि उनका ग्रंथ पेशाची भाषामें लिखी गई गुणाद्वयी वृत्तकथाका संक्षिप्त अनुवाद है। इस ग्रंथका अब पता नहीं चलता। डाक्टर वृचरके अनुमानसे गुणाद्वयी पहली या दूसरी शताब्दीमें हुआ। वाणभट्टकी

बृहत्कथा की पररथी, क्योंकि हर्ष-चरितमे उन्होंने लिखा है—

समुद्दीपितकदर्पा कृतगौरीप्रसाधना ।

हरलीलेव नो कस्य विस्मयाय बृहत्कथा ॥

इस कारण यह अनुमान किया जा सकता है कि वाणभट्टने गुणाढ्य भी बृहत्कथासे कथानक लिया ।

कथा-सरित्सागरमे दी हुई कहानी ।

काञ्चनपुरीमे एक बड़ा प्रतापी सुमना नामक राजा था । एक समय राजा सभा मंडपमे स्थित था कि निपादाधिपकी कन्या मुक्तालता अपने भाई वीरप्रभके साथ उसके दर्शनोक्तो आई और एक तोतेको पीं डेमे रख कर लाई । प्रत हारके द्वारा राजाकी आज्ञा मिलने पर मुक्तालताने सभामे आकर राजाको प्रणाम करके निवेदन किया --

पृथिवीनाथ, यह शान्त्वगज नामक तोता सब कलाओ और विद्याओमे प्रवीण है तथा वेदोक्त ज्ञाता है । आप इसे ग्रहण कीजिए । यह कह कर उमने तोता प्रतीहारको दे दिया । प्रतीहार तोतेको राजाके पास ले गया । वहाँ तोतेने यह श्लोक पढा—

राजन् युक्तमिदं सदैव यद्य देवस्य सधुक्तते,
धूमश्याममुखो द्विपद्विरहिणीनि श्वासवातोद्गमै ।
एतत्त्रद्भुतमेव यत्परिभवाद्वाष्पान्बुपूरप्लवै—

रासा प्रञ्चलतीह दिक्षु दशसु प्राज्य, प्रतापानल ।

फिर तोतेने कहा—महाराज, आज्ञा कीजिए किस शान्त्रसे कौनसा प्रमेय बहूँ ।

यह सुन राजा अत्यन्त विस्मित हुआ । तब मन्त्रीने कहा—महाराज, मालूम होता है कि पूर्वजन्मका कोई मुनि शापके कारण तोता हो गया है और अपने पुण्यके प्रभाव से इसे पूर्वजन्मके सब शात्रोका स्मरण है ।

मन्त्रीके वचन सुन कर राजाने तोतेसे पूछा—तुम्हारा जन्म कहाँ हुआ ? तिर्यग्योनिमें भी तुमको शास्त्र-ज्ञान कैसे हुआ ? तुम कौन हो ? अपना पूरा पूरा हाल मुझसे कहो ।

यह सुन तोतेने आँसू बहा कर कहा—राजन्, यद्यपि मेरा हाल करनेके

योग्य नहीं है तथापि मैं आपकी आज्ञाका पालन करता हूँ। मुनि—

हिमालयके पास एक बहुत बड़े वृक्ष पर एक तोता अपनी तोतीके साथ कोटर बना कर रहता था। मैं उसीका पुत्र हूँ। मेरे पैदा होते ही मेरी माताकी मृत्यु हो गई। इससे मेरे वृद्ध पिता अत्यंत दुःखी हुए। वह आस-पास रहनेवाले तोताके जूठे फलोंका आप खाते और मुझे भी खिलाते थे तथा अपने पंखोंकी ओटमें रख कर मेरा पालन करते थे।

एक बार वहाँ बहुतसे भील आखेटके लिए आए। वे दिनभर अनेक प्रकारके पशु-पक्षियोंको मारते रहे। सायंकाल एक वृद्ध भील कोई पशु-पक्षी न पाकर मेरे रहनेके वृक्षके पास आया। उसमें पक्षियोंका शब्द सुन कर वह उम पर चढ़ गया और तोताको तथा अन्य पक्षियोंको कोटरमेंसे निकाल कर मार मार कर जमीन पर पटकने लगा। उसे पास आता देख मैं भयभीत हो अपने पिताके पंखोंमें घुस गया। इतनेमें उसने मेरे कोटरमें भी अपना हाथ डाल कर मेरे पिताको निकाल लिया और मार कर जमीन पर पटक दिया। पिताके पंखोंमें लिपटा हुआ मैं भी पृथ्वी पर गिर पड़ा और उनमेंसे निकल कर सूखे पत्तोंमें घुस गया।

वह भील सब पक्षियोंका मार कर पृथ्वी पर उतरा। उसने कुछ पक्षियोंको तो अग्निमें भून कर खा लिया और जो बाकी बचे उनको लेकर वह अपने साथियोंके साथ चला गया।

उमके चले जाने पर मैं निर्भय तो हो गया पर रात्रि बड़े दुःखमें व्यतीत हुई। प्रातःकाल सूर्योदय होने पर तृषासे व्याकुल दानेके कारण अपने पंखोंको फैला कर मैं निःशब्दता पद्मर नामक तालाबके पास शीरे धीरे चला

। वहाँ मारीच मुनि नहानेके लिए आए थे। मुझे देख कर उन्होंने मुझमें पानीकी बूँदें डालीं और मुझे डबने में रख कर वे अपने आश्रमको गए। वहाँ मुझे देख कर महर्षि पुलस्त्यजी मुमकुराये। तत्र अन्य मुनियोंने उनसे पूछा—महाराज, इस तोतेको देख कर आप मुमकुराये क्यों ?

तुन कर महर्षिने कहा—यह शापके कारण ताँतेके रूपमें है। नित्य कृत्यके बाद इतनी तथा तुमको नुनाऊँगा। उसे सुनते ही इसे अपने पूर्वजन्मकी याद आ जायगी।

रतना कह कर वे नित्य-कृत्य करनेकी गए। उनके बाद सब मुनियोने उनसे मेरी कथाका वर्णन करनेके लिए प्रार्थना की। तब उन्होने इस प्रकार वर्णन किया—

रत्नाकर नामक नगरमे ज्योतिप्रभ नामक एक बड़ा प्रतापी चक्रवर्ती राजा था। उसके उग्र तपसे महादेवजी उम पर प्रसन्न हो गए। उनकी कृपासे उसकी रानी हर्षवतीके गर्भसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। गर्भके दिनमें रानीने स्वप्नमे चन्द्रमाको अपने मुखमें प्रावृष्ट होते हुए देखा था, इस कारण राजाने अपने पुत्रका नाम सोमप्रभ रक्खा।

सोमप्रभ क्रम से सब विद्याओं और कलाओंमें प्रवीण होकर युवावस्थाको प्राप्त हुआ। तब ज्योतिप्रभने उसे युवराजपदवी दे दी और अपने प्रभाकर नामक मंत्रीके पुत्र प्रियकरको उसका मंत्री बना दिया। उसी समय मातलि एक घोड़ा लेकर आकाशसे उतरा। उसने निकट आकर सोमप्रभसे कहा— आप पूर्वजन्ममें इन्द्रके मित्र विद्याधर थे। उसी स्नेहके कारण इन्द्रने उच्चैः शरणा पुत्र यह अश्वश्रवा नाम घोड़ा आपके लिए भेजा है। जब आप इस पर आरूढ होंगे तब आपको कोई शत्रु नहीं जीत सकेगा।

यह कह कर आर घाड़ा देकर मातलि चला गया। उसके चले जाने पर दूसरे दिन सोमप्रभन अग्न पितासे कहा—तात, क्षत्रियोका यह धम नहीं है कि विजयकी इच्छा न करें और स्वस्थ होकर घर पर बैठे रहें। इस कारण मुझे दिग्ब्रजिय करनेके लिए जानकी आज्ञा दीजिए।

यह सुन कर ज्योतिप्रभने प्रसन्न होकर दिग्विजयकी सब तैयारी करके अच्छे सुहृत्तमें उसे विदा किया।

सोमप्रभने उस दिव्य घोड़ेके प्रभावसे चारो दिशाओंके सपूर्ण राजाओंको जीत लिया और उनसे बहुतसे रत्न उपहारमें लिए। फिर दिग्विजयसे लौटते समय उसने हिमालयके पास सेना समेत डेरा डाला। वहाँसे वह उसी दिव्य घोड़े पर चढ कर वनमें शिकार खेलने गया। वहाँ एक मणि मय किन्नरको देख उसे पकड़नेके लिए सोमप्रभने अपना घोड़ा दौड़ाया। किन्नर तो पर्वतकी कंदरामें छिप गया पर सोमप्रभको वह घोड़ा वनमें बहुत दूर ले गया। इतनेमें ही सूर्य भगवान् भी अस्ताचलको प्राप्त हो गए।

सोमप्रभ उस समय बहुत थक गया था और लौटनेका इगदा कर रहा था कि इतनमें उसे एक बड़ा भारी सरोवर देख पड़ा। उमीके तट पर रात काटनेके विचारसे उसने बोड़े परसे उतर कर उसे घाम और जलसे मत्पुष्ट किया। फिर आप भी उमन मधुर फल खाकर और जल पीकर वहीं कोमल पत्ते चिन्ता कर उन पर विश्राप किया। उस समय उसे अरुन्मात् मधुर गीता की ध्वनि सुनाई पड़ी। उसे सुन कर वह उठा और जिम ओरसे वह शब्द आता था उमा और कुछ दूर जाकर एक मंदिरमें महादेवके लिंगके आगे गान करती हुई एक दिव्य कन्याको उमने देखा और आश्चर्यपूर्वक मनमें विचार किया कि यह रूपवती कौन है? उस कन्याने अतिथि स्तकार करने पूछा—तुम कौन हो? किस प्रकार तथा किस प्रयोजनसे इस दुर्गम स्थानमें आए हो?

यह सुन कर सोमप्रभने अपना सत्र वृत्तान्त कहा और उससे पूछा—तुम कौन हो? इस वनमें अकेली क्यों रहती हो?

यह सुन उस कन्याने आँसू बहा कर कहा—महाभाग, जो आपका कुतूहल है तो मेरा सत्र हाल सुनिए—

हिमालय पर काचनाभ नामक नगरमें विद्याधरोंका राजा पद्मकूट है। उसकी हेमप्रभा नामक रानीके गर्भसे मे उत्पन्न हुई हूँ। मेरा नाम मनोरथप्रभा है। मे अपने सखियोंके साथ आश्रमोंमें, द्वीपोंमें, पर्वतोंमें, वनोंमें तथा उपवनोंमें क्रीड़ा करके भोजनके समय अपने पिताके पास आ जाया करती थी।

एक समय जत्र में इस सरोवरके तट पर विहार करनेके लिए आई तत्र एक मुनिपुत्र अपने मित्र सहित मुझे यहाँ दिखाई पड़ा। उसके रूपकी शोभा देखनेसे उसके वशीभूत होकर मैं उसके पास गई। उसने भी मुझे प्रेममय दृष्टिसे देखा। तत्र मेरी सखीने हम दोनोंके अभिप्रायको जान कर मुनिपुत्रके मित्रसे पूछा—महाभाग तुम कौन हो?

उसने कहा—सखि, यहाँसे थोड़ी दूर पर तपोवनमें दीविति नामक मुनि रहते हैं। एक समय वे इसी तड़ागमें नहानेके लिए आए। उसी समय लक्ष्मी भी आई। लक्ष्मीने उनको देख कर अपने मनमें सभोगकी इच्छा की। इसीसे उसको मानस पुत्र प्राप्त हुआ। लक्ष्मीने मुनिसे बालकदेकर कहा कि यह आपकी

दर्शनसे उत्पन्न हुआ है। यों कह कर वह अन्तर्ध्यान हो गई। मुनिने भी अनायास मिले हुए उस पुत्रको लेकर उसका नाम रश्मिमान् रक्खा और यज्ञोपवीत आदि सस्कार करके उसे सब विद्याएँ सिखलाईं। यह वहीं मुनि-पुत्र रश्मिमान् है। मेरे साथ यहाँ मेरे करनेको आया है। यह कह कर उसने मेरी सखीसे मेरा नाम तथा वश पूछा।

जब मैं उस मुनि-पुत्रके पास बैठी थी तब मेरे घरसे मेरी एक सखीने आकर मुझसे कहा—जलदी चलो। तुम्हारे पिता भोजनके लिए तुम्हारी राह देख रहे हैं।

यह सुन उम मुनि पुत्रको वहीं छोड़ में भयभीत होकर अपने पिताके पास चली गई। वहाँ भोजन करके ज्यों ही मैं बाहर निकली त्यों ही मेरी पहली सखीने मुझसे कहा—उस मुनि-पुत्रका मित्र बाहर खड़ा है। वह कहता है कि मुझे रश्मिमान्ने अपने पिताकी बताई हुई आकाश-गामिनी विद्या देकर मनोरथ-प्रभाके पास भेजा है और यह कहलाया है कि कामदेवने मेरी ऐसी दारुण दशा कर दी है कि अब मैं आपके बिना क्षणभर भी नहीं जी सकता।

यह सुन कर मैं अपनी सखीको लेकर यहाँ आई। परन्तु मेरे आनेके पहले ही चन्द्रोदय होने पर मुनि-पुत्र मेरे वियोगके कारण इस ससारको त्याग कर परलोक चला गया। उसे मरा हुआ देख कर मैंने उसके शरीरके साथ अपनेको भस्म करना चाहा। उस समय एक अत्यन्त तेजस्वी पुरुष आकाशसे उतरा और उस शरीरको लेकर चला गया।

फिर मैं अकेली ही अग्निमें भस्म होनेको उद्यत हुई, तब यह आकाशवाणी हुई कि हे मनोरथप्रभे, ऐसा साहस मत कर। कुछ कालमें इस मुनि-पुत्रके साथ फिर तुम्हारा समागम होगा।

इस आकाशवाणीको सुन कर मैंने मरनेका इरादा छोड़ दिया और समागमकी प्रतीक्षा करती हुई मैं यहाँ रहने लगी। यहाँ महादेवके पूजनमें लगी रहती हूँ। मुनि-पुत्रका वह मित्र भी न जाने कहाँ गया।

उसके वृत्तान्तको सुन कर सोमप्रभने पूछा—तुम्हें अकेली छोड़ कर तुम्हारी वह सखी कहाँ चली गई ?

मनोरथप्रभाने कहा—विद्याधरोके स्वामी राजा सिंहविक्रमकी एक बड़ी

रूपवती कन्या है। उसका नाम मकरदिका है। वह मेरी प्राणोंसे भी अधिक प्यारी सखी है और मेरे ही दुःखसे दुःखित होकर उसने अब तक अपना विवाह नहीं किया है। उसने अपनी सखीको मेरे पास कुशल पूछनेको भेजा था। इस कारण मैंने भी उसीकी सखीके साथ उसे देखनेके लिए अपनी सखीको भेज दिया है। इसीसे मैं आज यहाँ अत्रे ली हूँ।

मनोरथप्रभा यों कह रही थी कि इतनेमें उसे आकाशके उतरती हुई अपनी सखी देख पड़ी। उससे मकरदिकाका सब हाल पूछ कर सोमप्रभके लिए कोमल पत्तोंका चिड़ोना चिड़वाया और उसके घोड़ेके पास घास डलवा दी। उन सबने उसी मंदिरमें रात्रिको शयन किया।

प्रातःकाल देवजय नामक विद्याधर आया। उसने प्रणाम करके मनोरथप्रभासे कहा— राजकुमारी, राजा सिंहविक्रमने आपसे कहलाया है कि जब तक तुम्हारा विवाह नहीं होगा तब तक तुम्हारी प्रियसखी मकरदिका भी अपना विवाह नहीं करना चाहती। इससे तुम यहाँ आकर इसे समझाओ कि यह अपना व्याह कर ले।

यह सुन मनोरथप्रभा वहाँ जानेको उद्यत हुई। तब सोमप्रभने कहा— सखि, मैं विद्याधरोंका लोक देखना चाहता हूँ इससे आप मुझे भी वहाँ ले चलिए। घोड़ा यहाँ बँधा रहेगा। इसके आगे मैं घास डाले देता हूँ।

यह सुन मनोरथप्रभाने सोमप्रभको देवजयकी गोदीमें बँठा कर अपने साथ ले लिया और वह विद्याधरोंके लोकको गई। वहाँ मकरदिकाने मनोरथप्रभाका करके सोमप्रभको देख उसका हाल पूछा। मनोरथप्रभाने उसका सब हाल सुनाया। उसे सुन मकरदिकाका मन उस पर आसक्त हो गया।

भी रूपवती लक्ष्मीके समान मकरदिकाको देख कर अपने मनमें उसके साथ विचार किया कि यह लावण्यवती किसके साथ विवाह करेगी।

इसके बाद एकान्तमें मनोरथप्रभाने मकरदिकासे विवाह न करनेका कारण पूछा। मकरदिकाने कहा— सखि, अभी तो तुमने भी अपने लिए वर स्वीकार नहीं किया है, फिर मैं कैसे अपना विवाह कर सकती हूँ? तुम मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्यारी हो।

मकरदिकाके प्रेम युक्त वचन सुन कर मनोरथप्रभाने कहा— मुझे, मैंने तो

वर स्वीकार कर लिया है। मे केवल उसकी प्रतीक्षा कर रही हूँ। तुमको विवाह अवश्य करना चाहिए।

मकरदिकाने कहा—अच्छा, जैसा तुम कहती हो वैसा ही करूँगी।

तब मनोरथप्रभाने उसके अभिप्रायको जान कर कहा—राज पुत्र सोमप्रभ पृथ्वीमें भ्रमण करके तुम्हारे यहाँ अनिधिकी हैसियतसे आए हैं। इनका उचित सत्कार करो। मकरादिका बोली—मैंने शरीर समेत अपनी सब वस्तुएँ उनके अर्पण कर दी हैं। वे जो चाहे लेले।

उसके ये वचन सुन कर मनोरथप्रभाने राजा सिंहविक्रमसे कह कर सोमप्रभके साथ उसके विवाहका निश्चय कर दिया। सोमप्रभ भी इस वृत्तान्तको जान कर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और मनोरथप्रभासे बोला—अब मैं तुम्हारे आश्रमको जाता हूँ। कहीं ऐसा न हो कि मेरा मंत्री सेना समेत वहाँ आकर और केवल घोड़ेहीको देख कर मेरे विषयमें कुछ अनिष्टकी चिन्ता करे और वापिस चला जाय। इस कारण मैं वहाँ जाकर और अपनी सेनाकी देख-भाल करके फिर वापिस आऊँगा और शुभ लग्नमें मकरदिकाके साथ विवाह करूँगा।

उसके वचन सुन कर मनोरथप्रभा उसे देवजयकी गोदीमें चढा कर अपने आश्रममें ले आई। इतनेमें ही उसका मंत्री प्रियकर भी उसकी सब सेनाके साथ वहीं आ पहुँचा। उससे मिलकर ज्यों ही सोमप्रभ उससे अपना वृत्तान्त कहने लगा त्योंही उसके पिताके एक दूतने आकर कहा—चलिए। महाराज ज्योतिष्रभने आपको बहुत शीघ्र बुलाया है। पिताके सदेशको सुन कर सोमप्रभ अपनी सेना सहित अपने नगरको गया और मनोरथप्रभा तथा देवजयसे यह कह गया कि मैं पिताके दर्शन करके शीघ्र ही वापिस आऊँगा।

जब देवजय लौट कर गया तब उससे यह वृत्तान्त सुन कर मकरदिका विरहसे इतनी व्याकुल हुई कि उपवनमें, सखियोंके साथ क्रीड़ामें, गानमें तथा तोते आदि पक्षियोंके मनोहर शब्दोंमें भी अपने चित्तको न बहला सकी। उस दिनसे उसने भोजन भी नहीं किया। वह कमलके पत्तोंके बिछोनेकी छोर कर उन्मत्तके समान इधर उधर घूमने लगी। उसकी यह दशा देख कर माता-पिताने उसे बहुत समझाया, पर जब उसने धैर्य धारण नहीं किया

कोष करके उसे यह श्राप दिया कि तू कुछ काल तक इसी शरीरसे अपनी जातिको भूल कर निषादोके यहाँ रहेगी ।

माता-पिताके इस श्रापसे मकरंदिका तो निषादके यहाँ चार निषाद-कन्या हो गई और उसके माता-पिता उसके शोकसे मर गए । उसका पिता मर कर पहले तो सब शास्त्रोंका ज्ञाता ऋषि हुआ और फिर किसी पापसे तोता हो गया । उसकी माता वनकी शूकरी हो गई । यह वही तोता है । पूर्वजन्मके तपोबलसे इसे अपनी सब विद्याएँ याद हैं । इसकी विचित्र कर्मगतिको देख कर मुझे हँसी आ गई थी । यह इस कथाको राजसभामें कह कर अपने पापोंसे छूट जायगा और सोमप्रभ इसकी कन्याको अवश्य पावेगा । मनोरथप्रभा राजा हुए रश्मिमान् नामक मुनि-पुत्रको प्राप्त होगी । इस समय सोमप्रभ भी अपने पिताके दर्शन करके लौट कर उसी आश्रममें मकरंदिकाकी प्रातिके लिए महादेवकी आराधना कर रहा है ।

इस कथाको कह कर जब पुलस्त्य मुनि चुप हो गए तब मैं अपने पूर्व-जन्मका स्मरण करके हर्ष तथा शोकसे व्यात हो गया । जो मरीचि मुझे आश्रममें ले आए थे वही मेरा पालन करते रहे । कुछ कालके अनन्तर जब मेरे पख निकल आए तब मे चञ्चलताके कारण वहाँसे उड़ कर इधर उधर भ्रमण करके अपनी विद्याका आश्चर्य दिखाता हुआ निषादोंके हाथ पड़ गया और आपके पास आ पहुँचा । इस समय मेरा सब पाप क्षीण हो गया है ।

जब वह तोता इस कथाको कह कर चुप हो गया तब राजा सुमना अत्यन्त आनंदित हुआ । इस वीचमें महादेवने प्रसन्न होकर सोमप्रभको आज्ञा दी—
 , उठो, राजा सुमनाके पास जाओ । वहाँ मकरंदिका तुमको मिल जायगी ।
 अपने पिताके श्रापसे मुक्तालता नामक निषाद-कन्या होकर तोतेके रूपमें उत्पन्न हुए अपने पिताको लेकर राजा सुमनाके पास गई है । तुम्हें देख कर उसे अपनी जातिकी याद आ जायगी और वह अपने श्रापसे छूट जायगी । तब श्रापमें एक दूसरेको पहचाननेसे तुम दोनोंका समागम होगा ।

इस प्रकार सोमप्रभसे कह कर महादेवने मनोरथप्रभासे कहा—तुम्हारा प्रिय रश्मिमान् नामक मुनि पुत्र सुगमना नाम राजा हुआ है । इस कारण तुम उसके पास जाओ । वह तुमको देख कर अपने पूर्व जन्मका स्मरण करके अपना

शरीर पावेगा । इस प्रकार स्वप्नमें महादेवसे आज्ञा पाकर सोमप्रभ तथा मनोरथप्रभा राजा सुमनाकी सभामें आए । वहाँ सोमप्रभको देख कर मकरंदिका अपनी जातिका स्मरण करके शीघ्र ही विद्याधरी होकर उमके गलेसे लिपट गई और सोमप्रभ भी महादेवकी कृपासे प्राप्त हुई मकरंदिकाका आलिंगन करके कृतार्थ हुआ । राजा सुमनाने भी मनोरथप्रभाको देख कर अपने पूर्व जन्मका स्मरण करके आकाशसे गिरे हुए अपने पूर्व शरीरमें प्रवेश किया । फिर मुनि-पुत्र रश्मिमान् अपनी प्रिया मनोरथप्रभाको साथ लेकर अपने आश्रमको गया । सोमप्रभ भी मकरंदिकाको लेकर अपने नगरको गया और वह तोता भी अपने शरीरको त्याग कर तपके प्रभावसे प्राप्त हुए उच्च स्थानको गया ।

दोनों का मिलान

इन दोनों कथाओंका मिलान करनेसे पता लगता है कि ब्राह्मणभट्टने कथा-सरित्सागरकी नीरस कहानीके ढाँचेमें जान डाल दी है । मुख्य भेद उन व्यक्तियों में पाया जाता है जिनको आप दिया गया है । यह ब्राह्मणभट्टकी विलक्षण बुद्धिके कल्पना-कौशलकी विशिष्टता है कि कादंबरी या उसके माता-पिताको फिर जन्म नहीं लेना पड़ा है ।

कथासरित्सागरकी कहानीमें नायकके एक साथ लौट जानेके पहले ही उसके विवाहका प्रबंध हो गया है इस कारण नायिकाको विरहका दुःख भोगना पड़ा है । उसे कादंबरीकी तरह चिन्ता-सागरमें नहीं डूबना पड़ा है ।

संभव है यह कथा और कादंबरी एक ही मौलिक ग्रंथसे ली गई हो जिसका अब पता नहीं चलता । कदाचित् यह गुणाढ्यकी बृहत्कथा हो ।

ब्राह्मण-तनय ।

यह कथा आधी समाप्त हो पाई थी—कविने पाठकोंको कथाकी नायिकाके पास तक पहुँचाया ही था—कि कराल कालने कविका ग्रास कर लिया । तब उसके पुत्रने केवल कथाको पूरा करनेके इरादेसे उसे हाथमें लिया, कुछ कवित्वके दर्पसे नहीं ।

१—याते दिव पितरि तद्वचसैव साधे, विच्छेदमाप भुवि यस्तु कथाप्रबंधः ।

दु खं सतां तदसमासिद्धत विद्वोक्य, प्रारब्ध पवस मया न कवित्वदर्पात् ।

डाक्टर बूलरने खोजसे पता लगाया था कि बाणभट्टके पुत्रका नाम भूषणबाण है। पर हालमें विशेष अनुसंधानसे पता लगा है कि बाणभट्टके पुत्र का नाम पुलिन^१ या पुलिदभट्ट^२ है।

पुलिन भी अपने पिताके समान ही विद्वान् था। उमका भी संस्कृत पर पूरा अधिकार था। यद्यपि उसने अपने पिताकी शैलीका ही अनुसरण किया है तथापि उसकी रचनामें, बाणभट्टकी रचनाके समान, कल्पनाके जोहर नजर नहीं आते। पढनेसे मालूम होता है कि उसने बहुत जलदीमें पुस्तकको पूरा किया है।

पुलिन बड़ा विनीत, पितृ-भक्त और निरभिमानी था। उसने अपने पिताके अंतिम निर्देशका पालन किया और पूरा ग्रंथ पिताके नामसे ही प्रसिद्ध होने देनेके उद्देश्यसे कहीं अपना नाम तक नहीं दिया। उमने पूर्वार्धके अनुमार ही उत्तरार्धकी रचना की है। यद्यपि उत्तरार्ध पूर्वार्धसे घटिया है तथापि पिताके सकेत मात्रसे इतना बनाना कुछ खेल नहीं है। एक कविके भी भिन्न भिन्न ग्रंथ बहुधा एकसे नहीं पाए जाते। कालिदासके मालविकाग्निमित्र और शकुन्तलामें भी बड़ा अन्तर पाया जाता है। इसमें सदेह नहीं कि यदि बाणभट्ट स्वयं इसे पूरा कर पाते तो इसका आकार भी बढ़ जाता और जितना रस उत्तरार्धमें पाया जाता है उससे कहीं अधिक पाया जाता।

कादम्बरीकी टीकाएँ।

कादम्बरीकी अधो लिखित टीकाएँ मेरे देखनेमें आई—

१—मानुचन्द्र सिद्धचन्द्र कृत टीका—इसमें मूलके सत्र शब्दके पर्याय शब्द दे दिए गए हैं। उनसे मूल समझनेमें बड़ी सहायता मिलती है, पर कहीं कहीं इसकी व्याख्या सतोष जनक नहीं है।

मयूरेश्वर रामचंद्र काले कृत टीका—इसमें मूलकी बड़ी विशद और

1—Dr Stein's Catalogue of Sanskrit

Ms at Jammu, P 299,

2—Professor S R. Bhandarkar's report on the search for Ms 1904—5, 1905—6, P 37

विस्तृत व्याख्या की गई है। अन्तमे अंगरेजी नोट दे देनेसे पुस्तकका महत्त्व और भी बढ गया है।

३—मिस रिडिङ्कृत अंगरेजी अनुवाद—इसमे कितने ही वर्णन छोड़ दिए गए हैं तथा कितने ही वर्णनोंको सन्निहित कर दिया गया है। तथापि यह अनुवाद बड़े परिश्रमसे किया गया है। इसमें कितने ही वाक्यों और शब्दोंके बहुत अच्छे अर्थ किए गए हैं। फिर भी कितने ही स्थल ऐसे रह गए हैं जिनकी विस्तृत व्याख्या होना जरूरी मालूम होता है।

४—डाक्टर पीटमनकी मशोधित आवृत्ति और नोट—ये नोट बड़े विस्तृत और गवेषणा पूर्ण हैं। इनमें पाठ भेद पर भी विशेष ध्यान दिया गया है। इस आवृत्तिके प्रकाशनके अनन्तर कादंबरीके जितने सस्करण निकले हैं सबके सपादकोंने इससे थोड़ा बहुत उत्तमर्णका काम लिया है।

अनुवाद ।

कादंबरीकी भाषा बड़ी क्लिष्ट और जटिल है। उसका अनुवाद करनेमे मुझे बड़ी बड़ी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा है। मेने लम्बे पदोंको वाक्योंमें विभक्त करके प्रत्येक वाक्यका अर्थ लिखा है। अनुवादमें मूलके शब्दों पर विशेष ध्यान रख्वा है। जहाँ तक हो सका है अनुवाद मूलार्थक और शाब्दिक ही किया है। जहाँ शाब्दिक अनुवाद अत्यन्त स्पष्ट होता नहीं देख पडा वहाँ भावानुवाद दिया है। कहीं कहीं प्रसंगके अनुसार वाक्य इधरके उधर ले जाने पड़े हैं। श्लेष आदि प्रलकारोंके अर्थको टिप्पणीमें स्पष्ट कर दिया है। पाठकोंकी सुविधाके लिये पैग्राफके नंबर भी दे दिए हैं। अनुवाद करनेम मुझे उपर्युक्त सब टीकाओंसे थोड़ी बहुत सहायता मिली है। अतः मे सबके लेखकोंका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

प्रस्तावना लिखनेमे मुझे उपर्युक्त टीकाओंके अतिरिक्त श्री विष्णु शान्ती चिपलूनकरके निबन्धसे अत्यन्त सहायता मिली है तथा ब्राह्मभट्टके पुत्रका नाम मुझे मेयो-कालिज अजमेरके प्रधान संस्कृताध्यापक श्री १०८ प० चन्द्रधर शमा गुलेरीसे मालूम हुआ है। अतः इन दोनों महानुभावोंका मैं अत्यन्त श्रेणी हूँ।

इस महा कठिन प्रथका अनुवाद, मैंने अपनी अल्प योग्यताके अनुसार, जहाँ तक हो सका ठीक ठीक करनेकी कोशिश की है। लेकिन फिर भी मुझे विश्वास है कि इसमें अनेक त्रुटियाँ रह गई होंगी। यदि विद्वजन उनकी सूचना देनेकी कृपा करेंगे तो मैं उनका हृदयसे कृतज्ञ हूँगा और अगले संस्करणमें संशोधन कर दूँगा। पुस्तक बचर्डमें छपी है और वहीं इसके प्रूफ देखे गए हैं। इसमें छापेकी भी बहुतसी अशुद्धियाँ रह गई हैं। अतः जो त्रुटियाँ खटकनेवाली और भ्रम पैदा करनेवाली थीं उनको पुस्तकके अन्तमें शुद्धिपत्रमें दे दिया है।

बेलविडियर }
 नैनीताल }
 ता० १।१०।२१ }

ऋषीश्वर ।

कादम्बरी चित्र

[ले०—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर]

इसमें सन्देह नहीं कि अनेक विषयोंमें प्राचीन भारतवर्षकी असाधारणता देख पड़ती है। अन्य देशोंमें नगरसे सभ्यताकी सृष्टि हुई है, मगर हमारे देशमें वन उसका जन्मस्थान है। वन-आभूषण और ऐश्वर्यका गौरव सर्वत्र ही नजर आता है, किन्तु वन-भूषण के आडम्बरसे रहित भिन्नाचार्याका गौरव भारतवर्षमें ही हुआ है। अन्यान्य देश धर्म विश्वासके बारेमें शास्त्रके अधीन और आहार-विहार-आचारमें स्वाधीन हैं, परन्तु भारतवर्ष धर्म-विश्वासके बारेमें बन्धन-हीन किन्तु आहार-विहार-विचारमें पूर्णरूपसे शास्त्रके अनुगत है। इस तरहके अनेक दृष्टान्तों द्वारा दिखाया जा सकता है कि साधारण मानव-प्रकृतिसे भारतवर्षकी प्रकृति अनेक विषयोंमें विभिन्न है। उस असामान्यताका और एक लक्षण यह देखा जाता है कि पृथ्वीकी प्रायः सभी जातियाँ किस्सा-कहानी सुनना पसन्द करती हैं, किन्तु केवल प्राचीन भारतवर्षको ही किस्सा-कहानी सुननेके बारेमें किसी तरहकी उत्सुकता नहीं थी। सभी सभ्य देश अपने साहित्यमें इतिहास, जीवनी, उपन्यास आदिका सचच आग्रहके साथ करते रहते हैं, किन्तु भारतवर्षके प्राचीन साहित्यमें उसका चिह्न भी नहीं देख पड़ता। यदि भारतके प्राचीन साहित्यमें कोई इतिहास या उपन्यास है भी, तो उसमें आग्रहका आभास नहीं पाया जाता। वर्णना, तत्त्वकी आलोचना और अत्रान्तर प्रसंगोंसे उसका कथा प्रवाह पग-पग पर खण्डित होने पर भी प्रशान्त भारतवर्षकी धैर्यच्युति होते नहीं देख पड़ती। वर्णना आदि मूल-भाव्यके अग्र हैं, या प्रक्षिप्त, इसकी आलोचना बेकार है। कारण, प्रक्षेप सहनेवाले मनुष्यके न होनेसे प्रक्षिप्त टिक ही नहीं सकता। नदी यद्यपि पर्वत शिखर परसे सेवारको लेकर नहीं आती, तथापि उसके प्रवाहका वेग क्षीण न हो तो उसमें सेवारको उत्पन्न होनेका—जमनेका—अवसर ही नहीं मिलता। भगवद्गीताके महात्म्यको

कोई अस्वीकार नहीं कर सकता, लेकिन जब कुरुक्षेत्रका घोर ममर निकट था, उम समय अठारह अध्याय ममम्र गीताको एकाग्र हो कर सुन सकनेवाला मनुष्य सिवा भारतवर्षके और देशमें नहीं मिल सकता। वाल्मीकि-रचित रामायणके किष्किन्धा और सुन्दरकाण्डमें सौन्दर्यका अभाव नहीं है, यह हम मानते हैं, तो भी जब राक्षसराज रावण सीताको हर कर ले गया, तब कथा भागके ऊपर इतना बड़ा वर्णनाका भारी पत्थर टबा देनेको केवल रुदनशील भारतवर्ष ही क्षमा कर सकता है। वह क्यों क्षमा करता है? उसका कारण यह है कि कथाका अन्तिम ग्रंथ या परिणाम सुननेके लिए उसे कुछ भी जल्दी नहीं है। सोचते सोचते, प्रश्न करते करते आसपासकी सैर करते करते भारतवर्ष सात प्रकाण्ड काण्डों और अठारह भारी पवोंमें अकातर चित्तसे, मृदु-मद गतिसे, परिभ्रमण करनेमें कुछ भी क्षान्तिका अनुभव नहीं करता।

फिर, कथा सुननेके आग्रहके अनुसार कहानीकी प्रकृतिका रूप भी भिन्न भिन्न प्रकारका होता है। छ काण्डोंमें जो कहानी वेदना और आनन्दसे परिपूर्ण हो उठी थी, उसे एक मात्र उत्तरकाण्डमें विना किसी सकोचके चूर्ण कर डालना क्या सहज बात है? हम लकाकाण्ड तक यही देखते आये कि अधर्माचारी निष्ठुर राक्षस रावण ही सीताका परम शत्रु था, असाधारण शौर्य और विपुल आयोजनके द्वारा उस भयंकर राक्षसके हाथसे छुटकारा मिला, तब हमारी सब चिन्ता दूर हुई, हम आनन्दके लिए प्रस्तुत हुए, इसी समय दमभरमे कविने दिया दिया कि सीताका चरम शत्रु अधार्मिक रावण नहीं है, वह शत्रु धर्मनिष्ठ गम है। सीताको पर गृहमें वैसा सकट नहीं घटा, जैसा कि अपने राजाधिराज स्वामीके घरमें। जो सुवर्ण तरणी बहुत समय तक प्राणपण युद्ध करके घोर तूफानसे उभरी, वह घाटहीके पत्थरसे टकरा कर दमभरमे दा डुकड़े हा गई। जिसके मनमें कथाके ऊपर कुछ भी ममता है, वह क्या ऐसा आकस्मिक उद्भव सहन कर सकता है? जिस वैराग्यके प्रभावसे हम लोगोंने कथाकी विविध प्रातंगिक और अप्रासंगिक वागाओंको सहन किया, उसी वैराग्यने कथाकी इस अकस्मात् अपघात मृत्युमें भी हमारे रैयकी रक्षा की।

महाभारतमें भी यही बात है। एक स्वर्गापेक्षण पर्वमें ही कुरुक्षेत्र युद्धका स्वर्गवास हो गया कथा प्रिय व्यक्तिके निकट कथाकी समाप्ति जरा पर है, पर

भारत वहाँ पर नहीं रुका—वह इतनी बड़ी कथाको बालूके बने धरकी तरह एक घड़ीमें तोड़ फोड़ कर चला गया, और कथाके प्रति जिन्हें वैराग्य है, उन्होंने उसके भीतरसे सत्यकी उपलब्धि की, उन्हें कुछ भी क्षोभ नहीं हुआ। जो मनुष्य महाभारतको किस्सेकी तरह पढनेकी चेष्टा करता है, वह समझता है कि अर्जुनका शौर्य अमोघ है, वह समझता है कि वैदव्यासने श्लोकके ऊपर श्लोक रख कर अर्जुनके जयस्तंभको अभ्रमेदी (बादलोंको फोड़ जानेवाला, अर्थात् अत्यन्त उच्च) बना दिया है, किन्तु समस्त कुरुक्षेत्र-युद्धके उपरान्त अर्चानक एक दिन एक जगह पर बहुत ही थोड़ी बातोंमें देख पड़ा कि कुछ साधारण डाकुओंके एक दलने कृष्णकी छिरियोंको अर्जुनके हाथसे छीन लिया। छिरियाँ कृष्णसखा पार्थको पुकार कर आर्तस्वरसे विलाप करने लगीं, मगर अर्जुन गाण्डीव धनुषको उठा नहीं सके। अर्जुनका ऐसा अचिन्तनीय अपमान महाभारतकी कल्पनामें स्थान पा सकता है, ऐसा सन्देह भी पूर्व पवोंको पढनेवालेके मनमें स्थान नहीं पा सकता था किन्तु कविको किसी पर ममता नहीं है। जहाँ श्रोता वैरागी है, लौकिक शौर्य-वीर्य महत्त्वके अवश्यभावी परिणाम—विनाश—का स्मरण करके उनके प्रति अनासक्त है, वहाँ कवि भी निर्मम है, और कहानी भी केवल कौतूहल चरितार्थ करनेके लिए सत्र प्रकारके भारको छुड़ा कर द्रुत वेगसे आगे नहीं बढ़ती।

उसके बाद, बीचमें सुदीर्घ विच्छेद पार होकर, काव्य साहित्यमें एकदम कालिदासके पास हम ठहरते हैं। इससे पहले भारतवर्ष मनोरजनके लिए किस उपायको काममें लाया था, यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता। उत्सवके दिन जिन मिट्टीके दीपोंसे सुन्दर दीपमालाकी रचना होती है, उन दीपकोंको दूसरे दिन कोई उठाकर नहीं रखता। भारतवर्ष में आनन्दोत्सवों पर निश्चय ही ऐसे अनेक मिट्टीके दीपक—अनेक क्षणिक साहित्य—अर्थरात्रिकी अरना काम पूरा करके सवेरे बुझ गये हैं—विस्मृति लोभमें लीन हो गये हैं। पहले पहल हमें जो स्वर्णदीपक देख पड़ता है, वह कालिदासकी रचना है। वह पेंतूक प्रदीप इस समय भी हमारे घरोंमें प्रकाश डाल रहा है। वह जो रत्नदीप हमारे उज्जयिनीवासी पितामहके प्रासाद शिखर पर जला था उसमें अभी तक कलकभी छाया नहीं पड़ी। हमारे कहनेका मतलब यह है कि सत्कृत साहित्यमें

केवल आनन्द दानके उद्देश्यसे काव्यकी रचना पहले पहल कालिदासने की है। (यहाँ हम खण्डकाव्यकी बात कह रहे हैं, नाटककी नहीं।) हमारे इस कथनका एक दृष्टान्त मेघदूत है। हम समझते हैं, संस्कृत साहित्यमें ऐसा दृष्टान्त और नहीं है। जो है, वह मेघदूतका ही आधुनिक अनुकरण है। जैसे पदाङ्कदूत आदि, और वह भी पौराणिक है। कुमारसंभव, रघुवंश पौराणिक अवश्य हैं, लेकिन वे पुराण नहीं, काव्य हैं। वे चित्त-विनोदनके लिए लिखे गये हैं, उनके पाठ फलमें स्वर्गलाभका प्रलोभन नहीं है। भारतवर्षके आर्य-साहित्यकी घर्म-प्राणताके सम्बन्धमें कोई कैसा ही मतवाद प्रचारित करे, पर हम आशा करते हैं, ऐसा उपदेश कोई भी न देगा कि ऋतुमहार काव्यके पाठसे मोक्ष लाभमें सहायता होगी।

किन्तु तो भी कालिदासके कुमारसंभवमें कहानी नहींके बराबर है—क्योंकि जो कुछ कहानीका सूत्र है, वह अति सूक्ष्म और प्रच्छन्न होनेके सिवा असंभव भी है। देवतोंने दैत्योंके हाथसे किसी तरह किसी उपायसे परित्राण पाया कि नहीं पाया, इस सत्रधमें कविनी कुछ भी उत्सुकता हम नहीं देख पाते—उनसे जल्दी आगे बढ़नेके लिए कहनेवाला कई आदमी भी नहीं है। अथवा विक्रमादित्यके समयमें शकहूण-रूपी शत्रुओंके साथ भारतवर्षका एक भारी द्वन्द्व चल रहा था, और स्वयं विक्रमादित्य उसके एक प्रधान नायक थे। अतएव ऐसी आशा करना असंगत नहीं था कि देव-दैत्योंके युद्ध और स्वर्गक पुनरुद्धारका प्रसंग उस समयके श्रोताओंके निकट विशेष आत्मसुख-जनक होगा। किन्तु कहाँ ? वह बात तो नहीं देख पड़ती। राजसभाके श्रोता लोग वर्तनी विरतिहा हाल सुन कर भी उस विषयमें उदासीन देख पड़ते हैं। 'दन दहन, रति विलाप, पार्वतीकी तपश्चर्या आदि किसी भी घटनामें तरान्वित होनेके लिए—जल्दी करनेके लिए—उनका कोई अनुरोध-उपरोध नश हम देखते। सभी जैसे कह रहे हैं कि कहानी बकी रहे, यही वर्णना चलने दो। रघुवंश भी इसी तरह विचित्र वर्णनका उपलक्षण मात्र है।

राज-श्रोता लाग अगर कहानीके प्रेमी होते तो कालिदासका लेखनीमें अवश्य ही कुछ तत्कालीन चित्र निकलते और हम देखनेको मिलते। साथ, अन्तीके राज्यमें नववर्षके दिन 'उदयन-कथा कौविद' ग्राम-वृद्ध लोग जिन

प्राचीन कहानियोंको कहते थे, वे सब गई कहाँ ? असल बात यह है कि उस समय ग्राम वृद्ध लोग कहानियाँ कहते थे ग्राम्य-भाषामें । उस भाषामें जो कवि रचना करते थे, वे यथेष्ट आनन्द दे गये हैं, किन्तु उसके बदलेमें वे श्रमर नहीं हुए । यह बात नहीं है कि उनमें कवित्व-शक्ति अल्प थी, और इसी लिए वे अपनी रचनाके साथ विनाशको प्राप्त हुए । कमसे कम हम तो ऐसा नहीं कहते । नि सन्देह उनमें अनेक महाकवि थे । किन्तु असल बात यह है कि ग्राम्य भाषा प्रदेश विशेषमें सीमा-बद्ध होती है, शिक्षित मण्डली उसकी अपेक्षा करती है, और समय समय पर उसमें परिवर्तन होते रहते हैं । उस भाषामें जिन्होंने रचनाकी है, उन्होंने कोई स्थायी भित्ति नहीं पाई । इसमें कोई सन्देह नहीं कि अनेक बड़ी बड़ी साहित्य पुरी चलनशीली पालीभाषाकी मृत्तिकाके भीतर दब कर एकदम अदृश्य हो गई हैं ।

संस्कृत भाषा बोल-चालकी भाषा नहीं थी, उस भाषामें भारतवर्षके समस्त हृदयकी बातें संपूर्ण रूपसे नहीं कही गईं या नहीं कही जा सकीं । अगरेजी अलंकारमें जिस श्रेणीकी कविताको लैरिक (Lyrics) कहते हैं, वह मृत-भाषामें नहीं की जा सकती । कालिदासके विक्रमोर्वशी नाटकमें जो संस्कृत-गान हैं, उनमें भी गानकी लघुता, सरलता और माधुर्य नहीं पाया जाता । बंगाली जयदेव कवि संस्कृत भाषामें गान-रचना कर सके हैं, किन्तु बंगाली वैष्णव कवियोंकी बंगला पदावलीके साथ उन गानोंकी तुलना नहीं हो सकती ।

मृत भाषामें, पराई भाषामें, कहानी भी नहीं कही जा सकती । कारण, कहानीकी भाषामें, लघुता और गति वेग आवश्यक है । भाषा जब अपने प्रवाहके साथ श्रोताओंको भी नहीं बहा ले जाती, उसे जब भावका मत लाद कर चलना होता है, तब उसमें गान और कहानीकी रचना समभव नहीं होती ।

कालिदासकी कविता ठीक प्रवाहकी तरह सर्वाङ्गसे नहीं चलती—उसका हर एक श्लोक अपनेमें आप ही समाप्त है—एक बार रुक कर खड़े होकर उस श्लोकको हृदयगम कर ले चुकने पर तब कहीं आगेके श्लोकमें हस्तक्षेप करना होता है । हर एक श्लोक जुड़े-जुड़े हीरकखण्डके समान उज्ज्वल है, और समग्र काव्य एक हीरक हारके समान सुन्दर है । किन्तु नदी प्रवाहकी तरह उसमें अखण्ड कलरव और अविच्छिन्न धारा नहीं है ।

केवल आनन्द दागके उद्देश्यसे काव्यकी रचना पहले पहल कालिदासने की है। (यहाँ हम खण्डकाव्यकी बात कह रहे हैं, नाटककी नहीं।) हमारे इस कथनका एक दृष्टान्त मेघदूत है। हम समझते हैं, संस्कृत साहित्यमें ऐसा दृष्टान्त और नहीं है। जो है, वह मेघदूतका ही आधुनिक अनुकरण है। जैसे पटाङ्कदूत आदि, और वह भी पौराणिक है। कुमारसंभव, रघुवंश पौराणिक अवश्य हैं, लेकिन वे पुराण नहीं, काव्य हैं। वे चित्त-विनोदनके लिए लिखे गये हैं, उनके पाठ फलमें स्वर्गलाभका प्रलोभन नहीं है। भारतवर्षके आर्य-साहित्यकी धर्म-प्राणताके सम्बन्धमें कोई कैसा ही मतवाद प्रचारित करे, पर हम आशा करते हैं, ऐसा उपदेश कोई भी न देगा कि ऋतुमहार काव्यके पाठसे मोक्ष लाभमें सहायता होगी।

किन्तु तो भी कालिदासके कुमारसंभवमें कहानी नहींके बराबर है—क्योंकि जो कुछ कहानीका मूल है, वह अति सूक्ष्म और प्रच्छन्न होनेके सिवा असंभव भी है। देवताोंने दैत्योंके हाथसे किसी तरह किसी उपायसे परित्राण पाया कि नहीं पाया, इस सबमें कविकी कुछ भी उत्सुकता हम नहीं देख पाते—उनसे जल्दी आगे बढ़नेके लिए वहनेवाला रुई आदमी भी नहीं है। अथच विक्रमादित्यके समयमें शकद्वेष-रूपी शत्रुओंके साथ भारतवर्षका एक भारी द्वन्द्व चल रहा था, और स्वयं विक्रमादित्य उनके एक प्रधान नायक थे। अतएव ऐसी आशा करना असंभव नहीं था कि देव-दैत्योंके युद्ध और स्वर्गक पुनरुद्धारका प्रसंग उस समयके श्रोताओंके निकट विशेष आत्सुक्य-जनक होगा। किन्तु यहाँ वह बात तो नहीं देख पड़ती। राजसभाके श्रोता लोग देवतांनी प्रशंसा हाल सुन कर भी उस विषयमें उदासीन देख पड़ते हैं। मदन दहन, रति-विलाप, पार्वतीकी तपश्चर्या आदि किसी भी पद्यनाम त्वरान्वित होनेके लिए—जल्दी करनेके लिए—उनका कोई अनुरोध-उपरोध नहीं हम देखते। सभी जैसे कह रहे हैं कि कहानी रुकी रहे, यही वर्णना चलने दो। रघुवंश भी इसी तरह विचित्र वर्णनका उपलक्षण मात्र है।

राज-श्रोता लोग अगर कहानीके प्रेमी होते तो कालिदासका लेखनीमें अवश्य ही कुछ तत्कालीन चित्र निरूपित और हमें देखनेको मिलते। शाय, अग्नीके रात्रमें नववर्षके दिन 'उदयन-कथा कोविद' ग्राम-वृद्ध लोग जिन

प्राचीन कहानियोंको कहते थे, वे सभ गई कहाँ ? अमल बात यह है कि उस समय ग्राम वृद्ध लोग कहानियाँ कहते थे ग्राम्य-भाषामें । उस भाषामें जो कवि रचना करते थे, वे यथेष्ट आनन्द दे गये हैं, किन्तु उसके बदलेमें वे अमर नहीं हुए । यह बात नहीं है कि उनमें कवित्व-शक्ति अल्प थी, और इन्हीं लिए वे अपनी रचनाके साथ विनाशको प्राप्त हुए । कमसे कम हम तो ऐसा नहीं कहते । नि सन्देह उनमें अनेक महाकवि थे । किन्तु असल बात यह है कि ग्राम्य भाषा प्रदेश विशेषमें सीमा-बद्ध होती है, शिक्षित मण्डली उसकी प्रशंसा करती है, और समय समय पर उसमें परिवर्तन होते रहते हैं । उस भाषा में जिन्होंने रचनाकी है, उन्होंने कोई स्थायी भित्ति नहीं पाई । समय आने पर वह नहीं कि अनेक बड़ी बड़ी साहित्य पुरी चलनशीली पालीभाषाओं में भीतर दब कर एकदम अदृश्य हो गई हैं ।

संस्कृत भाषा बोल-चालकी भाषा नहीं थी, उस भाषा में भाषा-समस्त हृदयकी बातें संपूर्ण रूपसे नहीं कही गईं या नहीं कही जा सकतीं । मराठी अलंकारमें जिस श्रेणीकी कविताको लैरिक (Lyric) कहते हैं, उस मृत-भाषामें नहीं की जा सकती । बालदासके विभक्तार्पणी नाटके में जो गान-गान हैं, उनमें भी गानकी लघुता, सरलता और माधुर्य नहीं पाया जाता । मंगली जयदेव कवि संस्कृत भाषामें गान-रचना कर सके हैं, किन्तु वे वैख्य कवियोंकी मंगला वदामलाके साथ उन गानोंकी तुलना नहीं कर सकते ।

मृत भाषामें, पराई भाषामें, रचना नहीं की जा सकती । संस्कृत वदामलाकी भाषामें, लघुता और गानके आवश्यक हैं । जोत जब प्रेमके प्रभावके साथ श्रोताश्रोता भी वहाँ प्रदा ले जाती, उसे जब नीचता नत के दृश्य-व्यवस्था होता है, तब उसमें गान और वदामलाकी रचना संभव नहीं होती ।

इसके सिवा संस्कृत भाषामें ऐसा स्वर-वैचित्र्य, ध्वनि गाभीर्य और स्वाभाविक आकर्षण है कि निपुणताके साथ उसका संचालन कर सकनेसे उममें अनेक वाजोंमें ऐसा कन्सर्ट बज उठता है, उसकी अन्तर्निहित गगिणीकी ऐसी एक अनिर्वचनीयता है कि कवि परिद्धत लोग वाणीकी निपुणताके द्वारा परिद्धत श्रोताओंको मुग्ध करनेका प्रलोभन रोक नहीं सकते थे। इस कारण जिस जगह वाक्यको मत्तित करके विषयको शीघ्र आगे बढ़ानेकी आवश्यकता है, वहाँ पर भी भाषाके प्रलोभनको रोकना दुःसाध्य होता है, और वाक्य समूह विषयको प्रकाशित न करके पग पग पर उसे ढक लेते हैं। मतलब यह कि विषयकी अपेक्षा वाक्य ही अधिक बहादुरी लेनेकी चेष्टा करता है, और वह उस काममें सफलभी होता है। ऐसे मयूरपुच्छ-निर्मित अनेक सुन्दर पंखे होते हैं, जिनसे अच्छी तरह हवा नहीं निकलती, किन्तु हवा करनेका उपलक्ष्य मात्र करके राजसभामें केवल शोभाके लिए ही वे डुलाये जाते हैं। राजसभामें संस्कृत-काव्य भी घटना विन्यासके लिए उतना अधिक व्याज नहीं होते। उनका आग्वन्तार, उन्मा-कोशल, वर्णना-नैपुण्य ही प्रत्येक पदक्षेपमें राजसभाको चमत्कृत करता रहता है।

संस्कृत-साहित्यमें गद्यमें जो दो-तीन उपन्यास हैं, उनमें कादम्बरीने ही सबसे अधिक ख्याति और प्रतिष्ठा प्राप्त की है। जैसे रमणीकी वैसे ही पत्रकी अल-की आर रुचि या आकर्षण अधिक होता है। गद्यकी साज-सज्या स्वभावसे कर्मक्षेत्रके उद्युक्त होती है। उसे तर्क करना होता है, अनुसन्धान करना होता है, इतिहास रचना होता है—उसे विचित्र व्यवहारके लिए प्रस्तुत रहना होता है। इसी कारण गद्यकी वेध भूया हल्की होती है, उसके हाथ पर अनावृत होते हैं। दुर्भाग्यवश संस्कृत गद्य सर्वदा व्यवहारके लिए नियुक्त नहीं था, इसी कारण उसकी बाहरी शोभाकी बहुतायत कम नहीं है। वादीसे—मेदेकी आवश्यकतासे—फूले हुए विलासी पुरुषके समान उसके समास बहुल विपुल आवतनको देख कर सहज ही जान पड़ता है कि वह सर्वदा चलने फिरनेके लिए नहीं बनाया गया। बड़े-बड़े टीकाकार, भाष्यकार, परिद्धत वादकगण जब तक उसे अपने कर्मों पर लाद कर न ले चलें, तब तक उसका फिरना असाध्य है। वह अचल भले ही हो, किन्तु किर्रीट, कुण्डल, ककण, कण्ठहार आदि अमन्य अलंकारोंसे सजाकी तरह विराजमान रहता है।

इसी कारण चाणक्य यद्यपि स्पष्ट रूपसे कहानी कहने बंटे हैं, तथापि भाषाके विपुल गौरवसे घटा कर उन्होंने कहानीको कहीं पर तेज चानमे डीढ़ाया नहीं। संस्कृत भाषाको अनुचर-परिवृत सम्राटकी तरह आगे करके कटानों उसके पीछे प्रच्युत प्राय भाषामें हूय उसके मस्तक पर लगाए चली है। भाषाकी राजमर्यादा बढ़ानेके लिए कहानीका कुछ प्रयोजन है, इर्नीतिय कहानीका अस्तित्व है, किन्तु उसके ऊपर किसीकी नजर नहीं है।

शुद्धक राजा कादम्बरी उपन्यासमें नायक नहीं हैं। वह उपन्यासके साथ मात्र हैं। इसलिए उनका परिचय अगर सक्षप्त होता तो कुछ र्जा न था। आख्यायिकाका बाहरी अंश अगर यथोपयुक्त कम न हो, तो मूल-प्रायः मात्र परिमाणका सामञ्जस्य नष्ट हो जाता है। हमारी दृष्टि-शक्ति की तरह कला कल्पना शक्ति भी सीमाबद्ध है। हम किसी वस्तुके समूह प्रशंसा करने के समान परिमाणमें नहीं देख पाते प्रयात् सामनेक दिग्नेको न हो सके, उसके पीछेके भागको छोटा देखते हैं, अगर कुछ भागको देख ही न पाएँ— उसका अनुमान मात्र कर लेते हैं। इसी कारण कवि-शिल्पी अनेक शिल्पका जो प्रथम प्रधान रूपसे दिखाना चाहते हैं उसका विशेष लक्ष्य ही गोचर कर सकी अशोभो आसपास पीछे और अनुभाव केवल अपने किन्तु कादम्बरीकारों मुख्य गौण, छोटी-बड़ी कितनी भी बातको निरन्तर चलाकरना न हो चाहा। उससे अगर कहानीकी क्षति हो, तब प्रत्यक्ष दुर्भाग्य ही नहीं, तो उससे वह या उनके जोता कुछ भी कुठल नहीं है। तथापि कदाचित् कुछ भी छोड़ देनेसे काम चला चलेगा। कारण, वह कदाही बहुत ही दुर्लभ है, बहुत ही सुभाव्य है, कौशल, भावुक, मानसिक, धार्मिक अथवा अन्य विधिपरिपूर्ण है।

हुए हैं, यह बहुत ही व्यस्तताका समय है। इस समयमें सब बातोंका सब कुछ कहनेका प्रलोभन पग-पग पर रोकना पड़ता है। कादम्बरी-रचना-कालमें कविने कथा-विस्तारके विचित्र कौशलका आश्रय लिया था, और इस समय हमें कथा सन्नेपके सभी कौशल सीखने पड़ते हैं। उन दिनोंमें मनोरंजनके लिए जिस विद्याका प्रयोजन था, इन दिनोंके मनोरंजनके लिए ठीक उससे उल्टी विद्याकी आवश्यकता है।

किन्तु एक कालका मधु लोभी यदि अन्य कालसे मधु-संग्रह करनेकी इच्छा करे, तो वह अपने कालके प्राणमें बैठे-बैठे उसे नहीं पा सकेगा—उसे अन्य कालमें प्रवेश करना होगा। जो लोग कादम्बरीके आनन्दका उपभोग करना चाहते हैं, उन्हें यह भूल जाना होगा कि दफ्तर जानेका समय हो गया, उन्हें खयाल करना होगा कि वह कोई वाक्य-रस-विलासी राज्येश्वर है, राजसभामें बैठे हैं, और “समानवयोविद्यालङ्कारैः अखिलकलाकलापालोचनकठोरमतिभिः प्रतिप्रगल्भैः ग्राम्यपरिहासकुशलैः काव्यनाटकाख्यानाख्यायिकालेख्यव्याख्यानादिक्रियानिपुणैः विनयव्यवहारिभिः आत्मनः प्रतिविम्बैरिव राजपुत्रैः सह रममाणः।”^१ है। इस तरह रमचर्चामें रसिक-परिवृत होकर रहनेसे मनुष्य प्रतिदिनके सुख दुःख-समाकुल, युद्ध-निरत, स्वेदसिक्त, कर्माकुल ससारसे निश्चिन्त हो पड़ता है। शरात्री जैसे खाना पीना भूल कर शराव पीता रहता है, वे भी वैसे ही जीवनके कठिन अशक्तो त्याग कर भावके तरल रसमें पीनेमें विह्वल हो रहते हैं। उस समय मत्स्यके यायातस्य और परिमाण पर दृष्टि नहीं रहती, केवल हुन्म होता है—ढालो, ढालो, और ढालो! आजकलके जमानेमें मनुष्यके प्रति हमारा आकर्षण श्रविक हो गया है। वह कौन है, और क्या करता है, इसके प्रति हमारा अत्यन्त कौतूहल है। इसी कारण घरमें और गहर चारों ओर मनुष्योंके कामोंकी और जीवन-वृत्तान्तको हम रची-रची जाँच कर भी तृप्त नहीं होते। किन्तु उस जमानेमें पठित

१—समान वय-विद्या-अलंकारवाले, संपूर्ण कला-कलापकी आलोचनासे परिपक्व बुद्धि, अतिप्रगल्भ, नागरिक परिहासमें कुशल, काव्य नाटक आख्याना-आख्यायिका आलेख्य आदिके व्याख्यान क्रममें निपुण, विनय-व्यवहारी, अपने प्रतिविम्ब सहस्र राजपुत्रोंके साथ विराजमान ।

हो, चाहे राजा हो, कोई भी मनुष्यको कुछ बहुत अधिक महत्त्व नहीं देता था। जान पड़ता है, स्मृति-विहित नित्य-नैमित्तिक कामोंमें और एकान्त एकान्तताके साथ शास्त्र-ग्रन्थोद्गी आलोचनामें लगे रहनेके कारण उस जमानेके लोग जगत्-संसारमें अधिकतर निलिप्त ही रहते थे। शायद विविध विद्यान निबन्धनमें शासनमें व्यक्तिगत स्वातन्त्र्यको अधिक प्रश्रय नहीं मिलता था। इन्हीं कारणोंसे रामायण और महाभारतके परवता संस्कृत साहित्यमें लोक-चरित्रकी वर्णना में प्राधान्य नहीं देखा जाता। भाव और रस उसमें प्रधान प्रयत्न हैं। रामायण दिग्विजयका वर्णन करनेमें अनेक उपमाओंका प्रयोग हुआ है, और रस का भी प्रयोग ही नहीं है, किन्तु रसके वीरत्वका विशेष एक चरित्रगत अन्तर्भाव प्रकट करनेमें चेष्टा नहीं देख पत्ती। प्रज इ दुमतीकी कथामें अज और इन्दुनी उल्लेख मात्र हैं—उनकी व्यक्तिगत विशेष मूर्ति अचञ्चीतरा मण्डना की गई है, किन्तु परिणय, प्रणय, वियोग, गान्धर्वादि का एक सा संरक्षण मात्र वर्णनाके साथ उभरता है। कुमार-लभनमें शिव-पार्ष्णीका प्रकृत प्रेम, सान्दर्भ, उपमा, वर्णना प्रादि जोर शरसे व्यक्त की गई हैं। रामायण और संसारके विशेषत्वके प्रति उस जमानेकी यह अपेक्षाकृत उदारता का कारण नाशकी वर्णनाने सर्वत्र मनुष्य और घटता तो एक कर देना ही पलाता है—रस दिखाता है। इन बातों का लक्षण रसक, प्रकृत विशेषताको भूल कर, कादम्बरीके स्वभावमें प्रकृत होने पर प्रकृत सीमा तक रहती।

सुन लो । कारण, तुम जिस जगह पर आ पड़े हो, वहाँ पर कौतूहल होनेसे कोई फल नहीं है, वह तो रसमें मस्त होनेका स्थान है । अतएव स्निग्ध जलद-निर्घोषसे इस समय शूद्रक राजाका वर्णन सुना जाय । उस वर्णनामे हम शूद्रक राजाके चरित्र-चित्रकी प्रत्याशा नहीं करेंगे । कारण, चरित्र चित्रमें एक सीमा रेखा अंकित करनी होती है । किन्तु इसमें सीमा नहीं है—भाषा कल्लोल-मुपर समुद्रकी बहियाकी तरह जहाँ तक उमड़ आई है, वहाँ पर उसे रोकने-वाला कोई नहीं है । यद्यपि सत्यके अनुरोधसे कहना पड़ता है कि शूद्रक नरेश केवल विदिशा नगरीके राजा हैं, तथापि अप्रतिहतगतिशालिनी भाषा और भावके अनुरोधसे कहना पड़ा कि वह “चतुरुदयिमालामेखलाया भुवो भर्ता ।” (चारो समुद्र पर्यन्त पृथ्वीके स्वामी) हैं । शूद्रककी महिमा कितनी सी थी, इस व्यक्तिगत तुच्छ तथ्यकी आलोचनाका प्रयोजन नहीं है । राजकीय महिमा कहाँ तक जा सकती है—यही बात यथोचित समारोहके साथ घोषित होने दो ।

सभी जानते हैं, भाव सत्यभी तरह कृपण नहीं है । सत्यके निकट जो बालक अघा है, भावके निकट उसका कमल-नयन होना कुछ भी विचित्र नहीं । भावकी उस राजकीय अजलता या उदारताके उपयोगी भाषा संस्कृत भाषा ही है । वही स्वभाव-विपुल भाषा कादम्बरीमें पूर्ण वर्णाङ्गी नदी की तरह आवर्त, तरंग, गर्जना और प्रकाशच्छटासे विचित्र हो उठी है ।

किन्तु कादम्बरीका विशेष महात्म्य यह है कि भाषा और भावके विशाल त्सारकी रत्ना करके भी उसके चित्र सजीव हो उठे हैं । सत्र प्लावित होकर जाकार नहीं हो गया । कादम्बरीके प्रथम आरम्भ चित्रको देखनेसे ही उसका प्रमाण मिल जायगा ।

उस समय भगवान् मरीचिमाली (सूर्य) आकाशमें अधिक दूर नहीं जाकर उठे हैं, नवीन पत्रोंके पत्र पुट मपुट सुल गये हैं और उनके भीतरकी पाटल आना कुछ उन्मुक्त हो चुकी है ।—

इतना कट कर वर्णनाका आरम्भ हुआ । इस वर्णनाका आरम्भ कोई उद्देश्य नहीं है, केवल श्रोताकी श्रान्तिके आगे एक कोमल रंग फैला देना और उसके सत्र आगोमें एक स्निग्ध सुगन्ध व्यक्तन डुला देना ही उद्देश्य है । “एकदा तु नाभिदूरोदिते नमनचिनदल म्पुटभिदि मिन्द्रिन्मुक्तपाटलिभि भगवति मरीचि-

मालिनि”—शब्दोंमें केमा मोद भरा पड़ा है। अनुवाद करनेमें केवल इतना ही व्यक्त होता है कि बाल सूर्यका वर्ण कुछ लाली लिए है, किन्तु भाषाके उन्मज्जालसे, केवल उक्त विशेष-विशेषणके विन्याससे, एक सुरम्य, सुगन्ध, सुपर्ण, सुशीतल, प्रभातकाल तत्काल हृदयके ऊपर अपनी दृष्टि डाल देता है, वह जैसे प्रभातका चित्र है, वैसे ही कुछ शब्दोंमें तपोवनमें सन्तान-सन्तानसंग वर्ण-चित्र अन्यत्रसे उद्धृत करते हैं। यथा—“दिव्यायमाने काशिमामना त - वनधेनुखि कपिला परिवर्तमाना सन् या ।” अथात् दिन समान होने पर वनेत्रोवाली तपोवनकी कपिला गऊ जैसे आश्रममें लाट आर, जैसे दा उ । लाल तारोंवाली कपिलवर्ण सन्ध्या भी तपोवनमें दिग्गर्ही है। कपिला साथ सन्ध्याके रगकी तुलना करनेमें स याकी सपूर्ण शान्ति, शांति, शांति, शांति । ललायाको कविने दमभरमें श्रोताके मनमें प्रतिपालन कर दिया है। तपोवन वर्णनमें जैसे केवल तुलनाके बलाने उन्मुक्त प्रायः तपोवनपुष्टके तुलनाके साथ साक्षात् प्रकाश करके भाषाकी शब्दाकारसे समस्त प्रकाशको तुलनाके अन्तिमधत्तमें परिपूर्ण कर दिया है—जैसे ही सर्गकी उन्नताके अन्तिम आश्रममें लाट पर आई हुई अरुणने ता वापला पैतृता परतम उ । तपोवन सत्र भावोंको सपूर्ण रूपसे व्यक्त कर दिया है।

रकुमृगके रंगकी-सी एक प्रकारकी पाण्डुता (पीलापन या भैलापन) हमेशः विस्तीर्ण हो रही थी, गज रुधिर रक्त सिंहकी गर्दनके बालोंके समान लाल और कुछ तपे हुए लान्तातनुके समान पाटलवर्ण सुदीर्घ सूर्यकी किरणें ठीक जैसे पद्मरागमणिकी शलाकाओंकी समार्जनीकी तरह आकाश रूप आँगनसे नक्षत्र-रूप फूलोंको बुहार कर हटा रही थीं ** ।

रङ्ग फैलानेमें कविको कैसा आनन्द मिलता है ! जैसे श्रान्ति नहीं है, तृप्ति नहीं है ! वह रङ्ग केवल चित्रपटका रङ्ग नहीं है, उसमें कवित्वका रङ्ग है, भावका रङ्ग है ! अर्थात् किमी चीजका क्या रङ्ग है, केवल यह वर्णन ही नहीं है, उसमें हृदयका आश भी है ! इसका एक दृष्टान्त यहाँ उद्धृत करनेसे हमारा कथन और भी स्पष्ट हो जायगा । बात यह है कि व्याघ्र वृद्धके ऊपर चढ़ कर घोंसलेसे पक्षियोंके बच्चोंको निकालता और पृथ्वी पर फेंकता है । उन उड़नेमें शक्तिसे रहित बच्चोंका रङ्ग कैसा है ? “काश्चिदल्पद्विवसजातान् गर्भञ्छविपाटलान् शाल्मलिकुसुमशंकास्रपजनयन , काश्चिदकौशलमदृशान्, काश्चिल्लोहितायमानचञ्चुकोटीन् ईपद्विघटितदलपुटपाटलमुखाना कमलमुकुलाना श्रियमुद्रहतः, काश्चिदनवरतशिरः कम्पव्याजेन निवारयत इव, प्रतिकारासमर्थान् एकैकश फलानीव तस्य वनस्पते शाखासन्विभ्यः कोटराभ्यन्तरेभ्यश्च शुफशावकानद्रहीत, अपगतासूश्च कृत्वा क्षितावमातयत् ।” व्याघ्र प्रतिकारमें असमर्थ शुफशावकों (तोतों के बच्चों) को वृद्धकी शाखासन्वि और कोटरों (छिद्रों) के भीतर से एक-एक करके वृद्धके फलोंकी तरह निकाल कर मार कर पृथ्वी पर फेंकने लगा । उनमें कोई कुछ ही दिनके जन्मे थे, उनकी नवप्रसूत कमनीय पाटल कान्ति जैसे सेमरके फूलों का भ्रम उत्पन्न कर रही थी, किसी किसीके पद्मके नवदलोंके समान कुछ कुछ पख निकल रहे थे, किमीका वर्ण पद्मरागमणिका ऐसा था, किसी-किसीमें लाल चोंचका अग्रभाग कश्चित् प्रकृषित कमल स्त्रीके समान था, कुछका सिर बारंबार हिलनेसे जान पड़ता था कि वे व्याघ्रको मना कर रहे हैं ।

इस वर्णनके भीतर केवल कोग वर्ण-विन्यास नहीं है—उसके साथ कल्पना मिली हुई है, अथवा कवि स्पष्ट रूपसे हाथ हाथ नश करता । उसके वर्णनमें केवल तुलनाओंकी सुन्दारतासे कल्पना प्राप्त ही प्रकृष्टि हो उठी है ।

किन्तु इस तरह दिग्गजनेसे यह लेख्य समाप्त न होगा। कारण, कादम्बरीने प्रलोभन ढेरों हैं, इस कुञ्जवनकी हर गलीमें नव नव वर्णके फले हुए लता-वितान भरे पड़े हैं। यहाँ समालोचक अगर मधुपान करने लगे, तो उनकी गुञ्जनध्वनि बंद हो जायगी। वास्तवमें समालोचना करनेका हमारा विचार नहीं था, केवल सान्दर्भ दिखानेके प्रलोभनमें पड़ कर हम उस मार्गमें चला तब भिन्न आये हैं। जिस उपलक्ष्यमें हम यह प्रबन्ध लिखने बैठे थे, उसके साथ ही उनी प्रसंगमें कादम्बरीके सान्दर्भकी आलोचना करके आनन्द लाभ कर लेंगे, हमने सोचा था। किन्तु कुछ दूर अग्रसर होत ही हमारी समझ का आनन्द यह मार्ग सक्षिप्त नहीं है, इस रस प्रवाहमें आत्म-समर्पण करनेसे ही इस मार्गमें शीघ्र नहीं लाट सकेंगे।

“प्रदीप” (मासिक पत्र) भी हम सन्ध्यामें जो चिन्तन करते, उसका पर कुछ लिखनेके लिए हमसे अनुग्रह किया गया था। इस पत्रकी वर्णमालामें प्रकृत है, प्रदीप कादम्बरीसे लिखा गया है, और इस पत्रकी स्नेहास्वद तबपुष्प आत्मीय ख्यातताका श्रीमान् आभिलषितप्रकाशना के

साथ उक्त चित्रकी प्रतिकृति अपने पत्रमें छापी है और हमसे उसकी भूमिका लिखनेका अनुरोध किया है।

कादम्बरीका जो प्रसङ्ग चित्रमें दिखलाया गया है, उसकी सस्कृतसे बँगलामें व्याख्या कर देना ही इस चित्रकी उपयुक्त भूमिका है। वह प्रसंग कादम्बरीके ठीक प्रवेश-द्वारमें ही है। आलोचना करते करते हम ठीक वहीं तक आये थे, किन्तु लोभमें पड़ कर अन्य ओर चले गये थे, अब फिर वहीं लौटते हैं।

नव-प्रभातमें राजा शूद्रक सभामें विराजमान हैं। इसी समय प्रतिहारीने आकर पृथ्वीतल पर घुटने टेक कर हाथ जोड़ कर निवेदन किया—“दक्षिणा पथसे चण्डाल कन्या एक भिन्नस्थित शुक लेकर आई है और कहती है कि महाराज समुद्रकी तरह पृथ्वी भरके सब रत्नोंके एक मात्र पान हैं। वह पत्नी भी एक अद्भुत आश्चर्यजनक अमूल्य रत्न-विशेष है। अतः देवके श्रीचरणोंमें इसे अर्पण करनेकों में आई हूँ, और देवके दर्शन सुलभा अनुभव करनेकी इच्छा करती हूँ।”

पाठकगण ऐसा न समझें कि प्रतिहारी इतने सक्षेपमें छुट्टी पा गई थी— अकृपणा कवि-प्रतिभाने उसके ऊपर भी अजस्र कल्पनाकी वर्षा की है। यथा— उसके वाम पार्श्वमें अगनाजन विरुद्ध किर्च लटकनेसे वह विपथर-जड़ित चन्दन-लता के समान भीषण रमणीय देख पड़ती थी। वह शरत्-लक्ष्मीकी तरह कल-हस शुभ्र-वसना थी, विन्द्य-वन-भूमिकी तरह वेत्र-लतावती थी। वह जैसे मूर्ति-मयी राजाज्ञा थी, जैसे शरीरधारिणी राज्यकी अधिष्ठात्री देवता थी—इत्यादि।

समीपवर्ती राजोंके मुखकी ओर देख कर सजात कुतूहल राजाने प्रतिहारीसे कहा—उसे आने दो। प्रतिहारीने तब चण्डाल कन्याको सभातलमें उपस्थित किया।

वहाँ वत्रभय पुञ्जित शैल श्रेणी मन्व्यगत कनकशिलरी मेघ-पर्णिके समान सदृशो नरपतियोंके मन्व्यमें राजा शूद्रक विराजमान है। प्रिविष रत्नाभरण निरुण-जालसे उनके अग प्रच्छन्न प्राय होनेके कारण जान पड़ता है जैसे सदृशो इन्द्र-धनुओंसे आठों दिशाओंमें आच्छादित करके वर्षासालका धनमयी दिग्म विराजमान है। लटकते हुए त्वूल मुक्ता-जलाप आर न्युण-गुह्ला में में चार मण्डिरणों पर अमल शुभ्र अनतिवृष्ट दुङ्गन पितान (चंदोरा) वाता गुह्रा

हैं। उसीके नीचे चंद्रमातमणिके पलंग पर राजा बैठे हैं। उनके आसपास सुवर्णदण्ड शोभित चंद्र डुलाये जा रहे हैं। पगभवने प्रणत चंद्रमाके समान विशद उज्वल स्फटिक-निर्मित पादपीठ पर उनका चापों पर रक्तम दृष्टा है। उनके अमृतफेन मरीखे लघुशुभ्र दृढ़ न-वसनके छोरमें गोगेचनाके द्वाग रत्निक प्रनेक जोड़े मिलानिलेवार अंकित हैं। अत्यन्त सुगंध चन्द्रमानुत्तमने उज्ज्वल वक्ष-न्यल धवल हो रहा है। वक्ष स्थल बीचबीचमें कुमुभ चञ्चित शक्ति का शूद्रक जान पड़ते हैं, जैसे जगह-जगह पड़ी हुई प्रभात रश्मि की शक्ति का प्रकाश केलास पर्वत हैं। इन्द्रनीलमणिके प्रगट उनके दाना तथा में अंकित हैं, जो पड़ता है, उन्होंने चचला राजलक्ष्मीको दोषो हाथोंमें बाँध रक्खा है। उनके कानका उत्पल (नीलकमल) कुछ लटका सा है। मस्तक पर सुगंध का माला है—जैसे उपाकालमें प्रस्ताचलके शिखर पर तारापु जा जा रहे। उपस्थित रमणियाँ दिग्गुञ्जके समान उन्द धरे हुए हैं।

तत्र प्रतीहारीने महाराजको अपापो पार सुगतिम करीते लाल दतकोमल हाथमें वेचलता लेकर एक मार समाने पत्र पर लिखा। तालपल पतनशब्दसे जगती राशिमेंते सु उजसे आत न र ही उस सुटकारसे तत्र राजपरउलीने पुन विग कर उतनी त्रेर दे ।

हमने अपने समालोच्य चित्रका विषय कुछ संक्षेपमें अनुवाद कर दिया । संस्कृत कवियोमें, चित्र अंकित करनेमें, बाणभट्टके समकक्ष और सिद्धहस्त अन्य कोई नहीं हुआ—यह बात हम साहस पूर्वक कह सकते हैं । संपूर्ण कादम्बरी काव्य एक चित्रशाला है । साधारणतः लोग घटनाका वर्णन करके कहानी कहते हैं, किन्तु बाणभट्टने एकके बाद एक चित्र सजा कर कहानी कही है । इसीलिए उनकी कहानी गतिशील नहीं है । वह वर्णच्छटासे अंकित है । चित्र भी घने सलग्न या धारावाहिक नहीं हैं । एकएक चित्रके चारों ओर प्रचुर कारु-कार्य-विशिष्ट बहु विस्तृत भाषाके स्वर्ण-निर्मित क्रोम हैं । क्रोम समेत उन चित्रोंके सौन्दर्यके आस्वादनसे जो वंचित है वह निःसन्देह दुर्भाग्य है ।

अनुवादक—रूपनारायण पाण्डेय ।



की वेदिकाके विटक^१ लुनी पीठका स्पर्श करनेके कारण जिनकी उँगलिया लाल हो जाती थी उन-भुवुके—दोनों चरण-कमलोंको नमस्कार करता हूँ ।

५—बिना कारण वैर प्रकट करनेसे भयकर मालूम होने दुष्ट प्राधर्मिसे जिसे भय नहीं होता ? महामर्षके सुखम दुःसह विपके समान, उमके सुखम सदा दुःसह दुर्वचन रहता है ।

६—कर्कश शब्द कर्ती हुई तथा कालिमा पैदा करनेवाली बाँधनेकी जंजीरोंके समान ऋदु शब्द बोलनेवाले तथा मिथ्या कलक लगानेवाले दुष्ट ऋदु ऋदु देते हैं । सज्जन मनोहर शब्दोंसे पद पद पर उसी तरह मन हर लेते हैं जैसे मणि नूपुर अपनी झनझनाहटसे पद पद पर चित्तका आकर्षण करते हैं ।

७—आल्हाद-जनक सुभाषित भी दुर्जनके गलेमें, राहुके^२ कंठमें अमृतके समान, नीचे नहीं उतरता । उसे ही सज्जन इस प्रकार हृदयमें वाग्गु करता है जैसे विष्णु अत्यन्त निर्मल कान्धुभ मणिफे ।

८—मधुर वातचीत और विलासमें कोमल तथा शृंगार प्रादि रसोंसे

१—विटक = सबसे ऊँचा सिरा । जब सब सामन्त भुवु को नमस्कार करते थे तब उनके मुकुटोंसे एक ऊँची वेदिका बन जाती थी जो पागदान का काम देती थी । जब भुवुके चरण इसके ऊपर रगते जाते थे तब रत्नोंकी चमकसे उँगलियाँ लाल हो जाती थी ।

२—एक बार देवताओं और दैत्यों ने समुद्र के तले में से अमृत रत्न चाहा । तब उन्होंने मदर पर्वत को रड़े तथा वासुकि नाग को रस्सी बनाकर समुद्र मथा । उन्ह बहुतसे रत्नोंके साथ अमृत भी मिला । अमृत भी उन सबमें बराबर बाँटा जाने को था तब एक सुन्दर स्त्री का रूप प्राग्न करके विष्णु वहाँ प्राये और यह काम उनके सुपुत्र किया गया । उन्होंने इस बात पर ध्यान रक्खा कि दैत्यों को अमृत नहीं मिले क्योंकि उससे वे अमर हो जायेंगे और फिर देवता उनको न जीत सकेंगे । किसी चाल से राहु देवताओं के साथ बँट गया और उसे भी अमृत दे दिया गया । सूर्य-चन्द्र ने उसे पहचानकर विष्णु से कहा । तब विष्णु ने ऋदु होकर समुद्रशन में उसका सिर काट लिया । उसने बोला सा अमृत पी लिया था, इस कारण उसका शिर अमर हो गया ।

धनयास ही उत्तम रचना का प्राप्त हुई अपूर्ण तथा, लोकार्क दृश्यम, इन तन्त्र
अत्यन्त मानुक पदा करती है जब मधुर आलाप आर विध्वंसने रमणीय लक्ष्य
पयू प्रेमने अपने प्राय पल्लव पर आकर अनाक दृश्यम अदुर्गम उत्तर
करती है ।

६—जने खिलने भी तन्त्र हुह त मा उज्ज्वल दीपकक मान चमक
चपाकी कलियास सूथी गद, निरन्तर रचामे घनी आर सुन्दर अत दृ
युक्त वड़ी वड़ी मालाए मन हर लती है उमी तन्द, जिनम अगा ० व
दीपक आर उममा अलकर स्पष्ट दीपक ह एव तप पशया ताना ० १ २
अन्वकारमे युक्त आर निरन्तर अलपाव व्याप्त कथा किय रगान ० १ २ ३ ४

१०—वास्वामिन पश समर, अकारम विर सात गुण ताना ० १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०
जिनक चरण कमलासा गुमने पशक प्रनेक राजाशान पू पा ० १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०
कुवर नामक प्रालाण, अलाप अशत अनाप हृण ।

११—पेशके अभ्यास ० असा पाप सा ० १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २०
अर सदा पवित्र रहता था, सा ० असा पाप अरुते नीत ० १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २०
गमा ० आर जो सत्र शान्ति आर मूलपासे सु र ० १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २०
अरुती निवास करती ० १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २०

१५—उन्होंने वेदोक्त^१ मार्गके अनुमार दानसे शोभित, जलती^२ हुई श्रौताभियोमे युक्त तथा पशुचवनस्तभ^३ रूपी करवाले, हाथियोके समान, असख्य यज्ञसि अनायास ही सुरलोको जीत लिया था ।

१६—उन्होंने काल क्रमसे महात्मा, वेदोको प्रकाशित करनेवाले तथा क्षमा युक्त उत्तम पुत्रोके व्रीचमे स्फटिकके समान निर्मल पुत्र चित्रभानु, पर्वताम स्फटिक मणियोमे निर्मल केलासके समान, प्राप्त किया ।

१७—उन महात्मा चित्रभानुके दिगंत-व्यापी, लाखन-रहित चद्रमाफी कलाके समान निर्मल कान्तिवाले गुण, रास्ता बना कर, शत्रुओके मनमे भी इम तरह प्रवेश कर गये जैसे नृसिंहके नखाङ्कुर हिरण्यकश्यपके हृदयमे घुसे थे ।

१८—दिशाओके ललाटमे अलकोके समान तथा त्रयीरूप^४ वधूके कानमे तमाल-पल्लवके समान, उनके यज्ञोके धूमकी पक्तिने मलिन होने पर भी उनका यशको अत्यन्त उज्ज्वल किया ।

१९—जिनके होममे श्रम करनेसे पैदा हुई पर्सिनीकी बूँदाओ सरस्वती अपने कर-कमलोसे पोंछती थी, तथा जिन्होंने अपने यशकी किरणोसे सातो भुजानोमे श्वेत कर दिया था उन चित्रभानुमे व्राण नामक पुत्र पैदा हुआ ।

२०—उस व्राण ब्राह्मणने-दृशार्थ प्रकट करनेमे अममर्य, चित्तके महामोह-रूपी अधकारसे अग्नी, तथा समुचित वर्णनकी चातुर्य लीला का लाभ न होनेसे मुग्ध हुई बुद्धिसे इस अद्भुत कथा की रचनाकी है ।

१—हाथी मद-जनक नदय से पैदा हुए मद-जल से अच्छे मालूम होते हैं ।

२—हाथियो पर बड़े-बड़े योद्धा बँडे रहते हैं ।

३—हाथियो की सूँड युषो के समान होती है ।

४—सूँड, यउ, साम ।

कथा ।

१—शूद्रक नामका राजा मानो दूसरा इन्द्र था। उसकी अरुण नाम की पत्नी गिर मुक्ताकर मादर स्वीकार करने लगे। वह चाणक्यमुद्रापी माता स्वामी के रूप में युक्त पृथ्वी स्वामी था। पराक्रमम अनुगगके कारण उसका नाम शूद्रक श्रुतीन हो गये थे। उसमें चक्रवर्तिक मंत्र लक्षण था। विष्णु के समान रूप पर कमल गंगचक्र^१ लाङ्घित था गिरके समान उमान नाम^२ की पत्नी स्वामिभक्ति के समान उमरी पत्नी^३ प्रकृति थी, प्रजापति का उमान राजहममडनका^४ विमान किया था, समुद्रक समान उमान नाम^५ का नाम था, गंगा प्रवाहके समान वह गंगीरवके माता^६ पर उमान का नाम था।

१—विष्णु के हाथोंसे शस्त्र चक्र हैं, शूद्रकके हाथोंसे चक्रवर्तिक नाम का चक्र है।

२—शिव ने कामदेव को जीता था, शूद्रक ने कामदेवको जीता था, कामदेव को जीता था।

३—स्वामिभक्तिक का शक्ति नामक जन्म प्रकृति का नाम शूद्रक प्रवार की शक्ति अर्थात् प्रभावशक्ति, उत्साह-शक्ति और नरक शक्ति प्रकृति का नाम था।

४—प्रजापति ने राजहंसों का विमान उमान नाम का नाम था, शूद्रकके श्रेष्ठ राजाओं का विमान किया था उमान इन्द्र नामक शक्ति का नाम था।

५—समुद्रक जन्मा का प्रसन्नताओं ही शूद्रक जन्म का प्रसन्नताओं का नाम था।

६—गंगा प्रवाह उमानके नाम से जाना था, शूद्रक गंगीरव के नाम था अनुत्तरण परती का उमान वह गंगीरव के नाम का नाम था, शूद्रक नामक और साहसी था।

वह प्रति दिन उदयको^१ प्राप्त होता था, सुमेरु पर्वत के समान उमकी पादच्छायामें^२ सब लोक आश्रय लेते थे, दिग्गजके समान उसका कर निरंतर दानसे^३ गीला रहता था । वह बड़े आश्चर्यजनक काम करता था, बड़े उड यम करता था, मम शास्त्रोंका पूरा पंडित था, सब फलाश्राका उत्पन्न करता था, सब गुणोंका परपरा का निवासस्थान था, काव्यामृतसभा आश्रयस्थान था, मित्र-मंडलका^४ उदय शैल था, शत्रुओंका उत्पातकेतु^५ था, वनुभारियोंका गव तोड़ने वाला था, बलवानोंमें दुरवर था, चतुराका शिरामणि था, गरुडके समान विनतानद^६-दायक था, और पृथुराज के समान उमने चाप-कोटिसे शत्रु-कुल^७-पर्वतोंका नाश कर दिया था ।

कि उसके पुत्र केवल गंगा-जल से शुद्ध हो सकने हैं । गंगा उस समय स्वर्ग में थी और उसे पृथ्वी पर लाना कठिन था । सगर, उसका पुत्र अममजम, उसका पौत्र अशुमान तथा उसका प्रपौत्र दिलीप—सब मर गये पर गंगा को न ला सके । तब अन्त में उस वंश के पाँचवें अपत्य भगीरथ ने तप करके देव तार्थों को प्रसन्न किया । उनकी कृपा से वह गंगा को पृथ्वी पर लाया और उसके जल से शुद्ध होकर भस्म हुए पूर्वज स्वर्ग को गये ।]

१—सूर्यका प्रतिदिन उदय होता है, शूद्रका अभ्युदय होता था ।

२—सुमेरुकी छोटी-छोटी पहाड़ियों के नीचे सब लोक न्यित हैं, शूद्रक के चरके का, रक्षा के लिये, सब समार आश्रय लेता था ।

३—दिग्गज की सूँड़ निरन्तर दान ग्रहण मद्र से गीली रहती है, शूद्रका हाथ दान के सकल्प के जल से गीला रहता था ।

४—उदय-शैल पर सूर्य मंडल का उदय होता है, शूद्रक के पास उमके मित्रों का अभ्युदय होता था ।

५—वृमकेतुका उदय होने से प्रजा को उत्पात की शका होती है, शूद्रक से उमके शत्रुओं को अनिष्ट की शका होती थी ।

६—गरुड-अपनी माता-विनता को आनन्द देने है, शूद्रक उनकी आनन्द देता था जो नन्न रहते थे ।

७—पृथुराजने अपने शत्रु कुल-पर्वतोंका नाश किया था, शूद्रक ने अपने

अनुकरण करता था । मद्रसे मतवाले हाथियोंके कुम्भस्थल विदीर्ण करनेके कारण उसकी तलवारमें बड़े बड़े मोतियोंके दाने चिपक रहे थे और मुट्टीमें मजबूत पकड़नेके कारण निकली हुई पसीनेकी बूँदोंसे वह मानो और भी पैनी हो गई थी । ऐसी तलवारसे खिच कर योधाओंके विशाल वक्र स्थलो पर धारण किये गये हजारों कवचोंमें रहनेवाली राज-लक्ष्मी—हाथियोंके गडमथलोंमेंसे मद्रकी वर्षा होनेके कारण गहन हुए युद्धमें—इस तरह बार बार उसके पास आती थी जैसे वर्षासे वनघोर हुई अवेरी रात्रियोंमें अभिसरिका अपने प्रेमीके पास जाती है । उसके प्रतापकी अग्नि—शत्रुओंकी प्रियोगिनी स्त्रियोंके हृदयोंमें रहे हुए पतियोंको भी मानो जलानेकी इच्छासे ही—अन्तर्दाह उत्पन्न करके दिन रात जला करती थी ।

३—संपूर्ण जगत्का जीतनेवाला राजा शूद्रक जब पृथ्वीका पालन करता था तब प्रजामें केवल चित्र कार्यमें ही वर्ण सफर^१ होते थे, कामकीडाम ही केश खींचे जाते थे, काव्योंमें ही दंड^२ था, शास्त्रमें ही चिन्ता रखी जाती थी, स्वप्नमें ही वियोग होता था, छत्रोंमें ही कनक दंड^३ था, केवल धजा ही संपत्ति थी, गीतमें ही राग विलास^४ था, हाथियोंमें ही मद विहार^५ था, वनुओंमें ही गुणच्छेद^६ होता था, खिडकियोंमें ही जाल मार्ग^७ थे, चन्द्र तट और कान में ही कलक^८ था, प्रेम फलहमें ही दूनका काम पड़ता था, गुणके रोचमें ही

१—चित्र-कार्यमें रंगोंका मेल होता था, ब्राह्मणादि वर्णों में सफर नहीं होता अर्थात् सब अपनी ही जातिमें विवाहादि करने थे ।

२—काव्योंमें अक्षर रचनाके खट्ट-वच आदि बनाए जाते थे, अपराधियों के दंड बाँधनेकी जरूरत नहीं होती थी ।

३—दण्डोंमें ही सुवर्णकी डटियाँ थीं, क्रिमी पर चुरमाना नहीं होता था ।

४—गीतमें ही-नैरव आदि रागोंका विलास था, प्रतापमें इन्द्रिय-विहार नहीं था ।

५—हाथियों में दानका विहार था, प्रतापमें गर्वका विहार नहीं था ।

६—वनुओंकी ही डोरिया टूटती थीं, प्रताप गुणहीन नहीं था ।

७—खिडकियोंमें चातियाँ लगी थीं, प्रतापमें छपटकी माने नहीं थीं ।

८—इनमें ही कात्तिना थी, क्रिमीके कुत्ते दोष नहीं था ।

वर^१ मूले होते ये, मय परलोकीका वा, भग^२ अन्न पुरयी द्वियये वा - न -
 या, सुवग्ता^३ नूपुगेमे ही मी, कर अण^४ विवाद्मे ही गता म, विदग्ता
 उठते होमाग्निने बुग्ने ही प्राय गिते ये चायुक्त वाटय र्गमेम वा रान
 आती मी, प्राय अनुप टकार^५ कवच सामदयका ही येता वा ।

हृदयमें प्रतापसे अनुराग करते थे । अत्यन्त प्रगल्भ तथा अमर जाननेवाले, सभ्यता पूर्वक परिहास करनेमें कुशल, मनके भाव और आकार समझनेवाले, काव्य नाटक कहानी कथा चित्रकर्म-व्याख्यानादि क्रियाओंमें निपुण, अत्यन्त कठिन और पुष्ट कवे, जंगल तथा भुजावाले—ये राजकुमार मानों राजा शूद्रके ही प्रतिविम्ब थे । इन्होंने, सिंहके बच्चांकी भाँति, अनेक बार शत्रुओंके मदमत्त हाथियोंके कुभस्थल विदीर्ण कर डाले थे और ये पराक्रम दिग्मानेके बड़े शोकीन होने पर भी विनीत भावमें रहते थे । परन्तु, जय प्राप्त करनेकी तीव्र इच्छा और बड़े भारी पराक्रमके कारण, राजा शूद्रके स्त्री-जातिको तिनकेके समान तुच्छ समझता था । अथि वह तरुण और मनोहर था तथा मनियाको उससे सतानेकी आशा थी तो भी उसे काम हीनसे कुछ द्वेष सा था । रूत और विलासमें गतिके भी गव भावका उपात्म करनेवाली, लालणमयी, गियवाती, कुलीन और मनोरञ्जिनी उमके रत्नसममे थी, परन्तु उनके होने पर भी वह कभी सगीतमें मृदंग प्रजाता, जिमसे बार बार उमके हाथका स्तन-जटित कंठग हिलने लगता था, कभी पूंगरु वजानेमें वह भूमने लगता, जिमसे उमके मणिमय कर्ण भूषणकी कृतकताहृद होती थी, कभी मृगयाम अनगिनती प्राणी वर्षाते पशुप्राणे मार कर बनोको खाली कर देता था, कभी पंडिता ही मभा करके काव्य पद्य-रचनामें, कभी शास्त्रकी बातचीतमें, कभी व्याख्यान, कथा, इतिहास और पुराणोंके सुननेमें, कभी चित्रकर्म, कभी गीता वजानमें, कभी दर्शनके लिये आए मुनिपोंकी चरणसेवाम, और कभी अत्रा च्युत^१, मात्रा^२ च्युतक, नती,^३ गृह-चतुर्थ-पाद^४ और पदेत्तिकोंके करने करनेमें लगा रहता था

१—जिस छन्दका एक अक्षर निकात देनेसे दूसरा अक्षर हा उले पर-च्युतक कहते हैं ।

२—जिस छन्दमें एक मात्रा बदल देनेसे दूसरा अक्षर हो उसे मात्रा च्युतक कहते हैं ।

३—जिसमें अक्षरोंके स्थानमें केवल सिन्दु रूप दिये गये उसे सिन्दुमती कहते हैं—जैसे डिठठ डिठी .. (विपत्तनवितीहृय)

४—जिसके चतुर्थ पादके अक्षर पदत तीन पादोंमें दिये हो उसे गृह-चतुर्थ-पाद कहते हैं ।

हृदयमें प्रतापसे अनुराग करते थे । अत्यन्त प्रगल्भ तथा अप्सर जाननेवाले, मभ्यता पूर्वक परिहास करनेमें कुशल, मनके भाव और आहार समझनेवाले, काव्य नाटक रुझानी कथा चित्रकर्म व्याख्यानादि क्रियाओंमें निपुण, अत्यंत कठिन और पुष्ट कथे, जंग तथा भुजावाले—ये राजकुमार मानो राजा शूद्रके ही प्रतिविम्ब थे । इन्होंने, सिंहके बच्ची भोजि, अनेक बार शत्रुओंके मदमत्त हाथियोंके कुभस्थल विदीर्ण कर डाले थे और ये पराक्रम दिगानेके बड़े शोभीन होने पर भी विनीत भावमें रहते थे । परन्तु, जब प्राप्त करनेकी तीव्र इच्छा और बड़े भारी पराक्रमके कारण, राजा शूद्रके स्त्री-जातिहो तिनकेके समान तुच्छ समझता था । यद्यपि वह तद्वर्ण और मनोहर था तथा मनिषाहो उमसे सतान जानेकी प्राणा थी तो भी उसे कामकीगसे कुछ द्वेष सा था । रूत और विनाममें गलिते भी वह भावका उपाय करनेवाली, लावण्यमयी, विषयवाती, दुर्लभ और मनोहर विवाह उपाके रजवासमें थी, परन्तु उनके होने पर भी वह कभी मगीतम मृदंग नवाता, जिससे बार बार उसके हाथका स्तन-तटित कंठ्य मिलने लगता था, कभी गूंगरू नवानेमें वह भूमने लगता, जिससे उसके मणिमय वर्ण नूपनकी क्लृप्तता बढ़ जाती थी, कभी मृगयामें अतगिनती बाणोंकी वपाने पशुओंको मार कर बनाते वाली कर देता था, कभी पंडितोंकी सभा करके काव्य-परम्परचर्चामें, कभी शास्त्रकी बातचीतमें, कभी शास्त्रज्ञान, कथा, इतिहास और पुस्तकोंके सुननेमें, कभी चित्रकर्ममें, कभी धीणा नवानेमें, कभी दर्शनके विषये आण्डे मनिषाका चरण-नेत्रामें, और कभी अन्तर्-च्युत^१, मात्रा^२ च्युतक, विन्दुमती,^३ गूढचतुर्थ-वाद^४ और पदेल्लिखने करने मगनेमें लगा रहता था ।

१—जिन छन्दका एक अक्षर निरन्तर देनेसे दूसरा अक्षर हो उसे अक्षर-च्युतक कहते हैं ।

२—जिन छन्दमें एक मात्रा बदल देनेसे दूसरा अक्षर हो उसे मात्रा-च्युतक कहते हैं ।

३—जिसमें अक्षरोंके स्थानमें अक्षर विन्दु रूप दिखे तब उसे विन्दुमती कहते हैं—जैसे डिब्ब डिब्बी . (विषयमणिनीहृय)

४—जिसके चतुर्ध पादके अक्षर पढ़ने तीन पादोंमें दिखे हो उसे गूढ-चतुर्थ-वाद कहते हैं ।

और न्नी-भोग सुचने मन नहीं लगाता था । इस प्रकार पूरा दिन वह मित्रोंके साथ व्यतीत करता था और इसी रीतिसे रात भी अनेक प्रकारकी व्रीडा और परिहाममे कुशल मित्रोंके साथ व्यतीत होती थी ।

६—एक दिन कमलोजी नई कलियोंके खिलानेवाले भगवान् भास्करके उदरके थोड़ी देर बाद—जब उनका गुलाबी रंग कुछ कुछ कम हो गया था उस समय—शरीर धारण करके आई हुई राज-कुल-देवीके समान प्रतीहारी सभा मण्डलमे स्थित महाराजके पास आई । त्वियोंके अयोग्य खड्ग वाई और धारण करनेसे उसका आकार, सर्प युक्त चटनलताके समान, भयकर और रमणीक लगता था । चदनके घने लेपसे स्तन-तट श्वेत होनेके कारण वह ऐसी दीवर्ती थी मानो ऊपर तैर आए ऐरावतके कुभस्थल सहित मन्दा कनी हो । वह परशुरामके परशुमी धारके समान सब राज मण्डलको वश^१ करनेवाली, शरद् ऋतुके समान कल हसश्वेत अम्बरवाली^२ और विंध्याचलकी वन भूमिके समान वेत्र-लतामे^३ युक्त थी । अम पास बैठे राजाओंके मुकुट मणियोंमे जब उसका प्रतिबिम्ब पडा तब ऐना मालूम हुआ मानो राजा शूद्रकी आज्ञाओं उन्होंने शिर पर धारण कर लिया हो । वह अपने घुटने तथा हाथ भूमि पर टेक कर विनय पूर्वक कहने लगी —

७—महाराज, एक चाटाल कन्या दक्षिण दिशासे आकर दरवाजे पर खडी है । वह कुपित हुए शूद्रकी हुकारने गिरीभर्गम जाने प्रिशकुमी^४ राज

१—परशुरामके परशुमी धारने सब राजाओंको अधीन कर लिया था, प्रतीहारीने सब राज मण्डलको मोहित कर लिया ।

२—शरद् ऋतुमे कल हसोंके उड़नेसे आकाश श्वेत हो जाता है, प्रतीहारीका कलहसोंके समान श्वेत वस्त्र था ।

३—विंध्याचलकी वन-भूमिमें बँतकी बेलें लगी रहती है, प्रतीहारीके हाथमे बँत की छडी थी ।

४—एक बार राजा प्रिशकुकी इच्छा हुई कि मैं यज्ञ करके सशरीर स्वर्ग जाऊँ । तब उसने वसिष्ठ से कहा । उन्होंने मना कर दिया तब उनके पुत्रोंसे कहा । पिताके अपमानसे क्रुद्ध होकर उन्होंने त्रिशुङ्गो शाप दिया कि तू चाटाल हो जा । तब विश्वामित्रने यज्ञ कराया पर नु य देवता यज्ञमे

लक्ष्मीके समान मालूम होती है । एक तोतेको पिजरेमें रख कर लाई है और महाराजसे प्रार्थना करती है कि पृथ्वीतल पर, महाराज, गमुद्रके समान सत्र खोजे आकर है और मेरा आश्चर्यजनक तोता भी सत्र भुनोता एक रत्न है । यह नमस्क महाराजके दर्शन सुगन्धी अभिलाषासे मे उमे लेकर महाराजके चरणोंमें आइ हूँ । महाराजकी क्या याजा है ?

८—प्रतीहारीके इतना कह चुकने पर राजाको भी उसके देखने ही लालसा हुई और ग्राम ग्राम घेठे सत्र राजा लोगोंके मुग्धकी और देख उसने प्राजा दी—कुछ तोत नही, भीतर आने दो ।

९—राजाका पचन सुने ही प्रतीहारी उठ कर चाटाल कन्याको भीतर ले आई । अपने ही सन्यासे हजारों नृत्योंके मध्यमें विराजमान राजा शूद्ररुको देता । वह ऐसा लगता था मानो त्रिकोण भयमें एकत्रित हुए कुलपतियोंके बीचमें सुमेव पड़ा हो । अपने ही स्ताभुषणोंके हिरण्य जालमें अथर्वोंके दक जानेने पर ऐसा गोनायमान लगता था माना हजारों इन्द्र वनुपसे व्याप्त आठ दिशावाला सर्पा ऋतुका दिन हो । वह चन्द्रकान्त मणिके सिंहासन पर विराजमान था । उसमें बड़बड़ मोतियोंकी झालर लटक रही थी और उसके चारों मण्डल पर मोतियोंकी लकीरमें बंधे थे । उसके ऊपर महार्कणिके भागके समान नकेद नरीय वस्त्रका चटोवा रंग रहा था । राजा शूद्ररु पर गीने ही उड़के चमक नन रहे थे और नकटिक मणिके पायदान पर उसका भारी

रत्न था । वह पायदान ऐसा लगता था माना उसका चारों ओर लगी हुई विष्णुपत्तले-सुवर्ण कान्तिम परानन पायन नम्र हुआ चन्द्रमा

नहीं आये । विदमानित्रने शोक करके उसे अपने बलसे धर्या में ला । इन्द्रने उसे स्वर्ग में न पुनने दिया । तब उसे नीचे गिरनेमें विष्णुमित्रने अन्तरालम स्थिर किया ।

१०—पहले पर्यंतोके पदु थे । इनसे वे चाहे जहा चले जाने थे तथा मनुष्योंको और अवित्रों को दष्ट तेले थे । तब मनुष्यों और अवित्रोंन इस नथवे पौड़ा छुड़ाने के लिए इन्द्रने श्रावना की । इन्द्रने अपने पत्रमें इनके पत्र काटकर उन्हें अपने स्वर्ग से हटने कायक नहीं रखा ।

हो। उसके चरण नन्दाकी किरणों नीलमके फर्शकी प्रभाके मपर्कसे कुछ श्याम हो गई थी। वे ऐसी लगती थी मानो वशीभूत शत्रुओंके निश्रामसे मलीन हो गई हो। मिहासनमसे फैलती हुई मानरुकी किरणोंसे उसकी दोनों जघाएँ लाल-लाल हो गई थी, जिनसे वह—कुछ समय पहले मारे गए मधुकैटभके वधिरसे लाल हुई जघाओंवाले—विष्णुके समान लगता था। वह अमृतके भागके समान सफेद दो वस्त्र पहन रहा था। उनकी कोर पर गोरोचनसे हसोंके जोड़े चित्रित थे और उनके पल्ले चमरकी हवासे उड़ रहे थे। अत्यन्त सुगन्धित चन्दन रसके लेपसे उसकी छाती गोरी हो गई थी और उन पर उसने केशर छिड़क ली थी जिससे—प्रातःकालकी धूप जिस पर कहीं कहीं पड़ी हो ऐसे—कैलास पर्वतके ममान वह शोभायमान लगता था। मोतियोंकी मालाने उसके मुखके इधर उधर परिवेश कर रक्खा था। वह ऐसी लगती थी मानो उसके मुखको दूमरा चन्द्र समझ कर नक्षत्र माला आई हो। दो इन्द्रनील मणि-जटित बाजूबद उसकी भुजाओंमें बंधे थे। वे चन्दन-रसकी सुगंधके लाभसे आए दो सपोंके ममान लगते थे और उन्हें देखकर अत्यन्त चञ्चल राज-लक्ष्मीसे आँधनेकी जर्झीरोमी शका होती थी। उसका कर्ण-कमल कुछ लटक रहा था, नाक ऊँची थी, खिले हुए सफेद कमलके समान नेत्रधे, चन्द्रमाके आधे टुकड़ेके आकारका ललाट था—वह निर्मल सुवर्ण-पट्टके समान विशाल था और सब भुवनोंके राज्याभिषेकके जलसे पवित्र हुआ था, भौओंके बीचमें रोमोका मँवर था। उसने सुगन्धित चमेती के फूलोंका मुकुट पहन रक्खा था, जिससे वह शिखर पर प्रातःकाल एकत्रित हुए तारा-सहित अस्ताचलके समान शोभायमान लगता था। गहनोंके प्रकाशसे उसके सभ्र अग पीले हो रहे थे, जिससे वह—महादेवके तीसरे नेत्रमेंने निम्ली हुई अग्निसे जलते हुए—कामदेव के समान देग पडता था। उसके आस पास, दिशा-रूप-त्रियोंके समान, वेश्यायें सेवाके लिए उपस्थित थी। निर्मल मणिमय फर्शमें उसका प्रतिबिम्ब पड़नेसे ऐसा मालूम होता था मानो पृथ्वीने अपने पतिको प्रेम पूर्वक छातीसे लगा लिया हो। उनका तेज अन्व राजाओंके समान साधारण नहीं था, इस कारण—अनेक जनोंकी भोगो हुई हाने पर नी—असाधारण राज-लक्ष्मीने उसके शरीरका आलिंगन किया था।

लक्ष्मीके समान मालूम होती है । एक तोतेको भिजरेमें रख कर लाई है और महाराजसे प्रार्थना करती है कि पृथ्वीतल पर, महाराज, ममुद्रके समान सप्त रत्नोंके आकर हैं और मेरा आश्चर्यजनक तोता भी सप्त भुवनोका एक रत्न है । यह समस्त महाराजके दर्शन सुनकी अभिलाषासे मैं उमे लेकर महाराजके चरणोंमें आई हूँ । महाराजकी क्या आज्ञा है ?

८—प्रतीहारीके इतना कह चुकने पर राजाको भी उसके देखनेकी लालसा हुई और प्रामाण्य बैठे सप्त राजा लोगोंके मुखकी ओर देख उमने आज्ञा दी—हुट्टु धार नहीं, भीतर आने दो ।

९—राजाका वचन सुनते ही प्रतीहारी उठ कर चाडाल हथ्याको भीतर ले आया । यत्ने ही स्नाने त्जारा नृपोंके सप्तम सिंहासमान राजा सूदृक्षको देता । सूदृक्षोका लगता था मानो त्रिके भयसे एकत्रित हुए कुलपतियोंके नीचे मुनेन्द्र प्रया हो । अनेक रत्नाभूषणोंके किरण जालमें अत्रयोंके ढक जलने लगेका शोभायमान लगता था मानो त्जारा इन्द्र मनुष्य व्याप्त आद्य दिशायाथा अपा ऋतुका दिन हो । वह चन्द्रमाला मणिके सिंहासन पर विराजमान था । उनमें प्रदग्ने मोतियाकी भालग लटक रही थी और उसके चारों मणिकण्डलेनेही त्तीरने बंधे थे । उसके ऊपर मर्दान्तीके भागके समान लक्ष्मी नान चन्द्रका चंद्रोका रंग रखा था । राजा अदृक्ष पर मोनेकी उदके चन्द्र ननु रहे थे और स्रष्टिमणिके पावदान पर उसका अर्थात् पावदान था । यह पावदान ऐसा लगता था मानो उसका चारों ओर सुंदरिणीके-सुंदरिणी सन्निभे परानव पाए नद्ये हुआ चन्द्रमा

प्राप्ति । विरमानिपत्रे श्लेष करके उन्ने अपने वचने स्वर्ग जाता । इन्द्रने स्वर्गमें न पुनने दिया । वह उमे नीचे गिरनेमें विधा मद्रो अन्तरात्तमें नर किया ।

१०—इन्द्रने पत्नीके पदु ये । इन्ने वे चाहे तदा चले जाने ये तथा मनुष्याको और अस्त्रियों को कष्ट देने ये । वह मनुष्यों और अस्त्रियोंके स्वप्नने पाया हुआने के लक्षण उन्ने प्रार्थना की । इन्द्रने अपने मंत्रोंके द्वारा उन्ने कादवरी उन्ने आता वे इन्द्रने कादवरी नहीं लाया ।

हो। उसके चरण नन्वोत्री किरणों नीलमके फर्शकी प्रभाके सपर्शसे कुछ श्याम हो गई थी। वे ऐसी लगती थी मानो वशीभूत शत्रुओंके निश्वाससे मलीन हो गई हो। मिहासनमेंसे फैलती हुई मानरुकी किरणोंसे उसकी दोनों जघाएँ लाल-लाल हो गई थी, जिनसे वह—कुछ समय पहले मारे गए मधुकैटभके रुधिरसे लाल हुई जघाओंवाले—विष्णुके समान लगता था। वह अमृतके भागके समान सफेद दो वस्त्र पहन रहा था। उनकी कंठ पर गोरोचनसे हमोंके जोड़े चित्रित थे और उनके पल्ले चमरकी हवासे उड़ रहे थे। अत्यन्त सुगन्धित चन्दन-रसके लेपसे उसकी छाती गोरी हो गई थी और उन पर उसने केशर छिड़क ली थी, जिससे—प्रातःकालकी धूप जिस पर कहीं-कहीं पड़ी हो ऐसे—कैलास पर्वतके समान वह शोभायमान लगता था। मोतियोंकी मालाने उसके मुखके इवर उपर परिवेश कर रक्खा था। वह ऐसी लगती थी मानो उसके मुखमें दूमरा चन्द्र समझ कर नक्षत्रमाला आई हो। दो इन्द्रनील मणि-जटिन बाजूबद उसकी मुजाग्रामें बँधे थे। वे चन्दन-रसकी सुगंधके लाभसे आए दो सपोंके समान लगते थे और उन्हें देखकर अत्यन्त चञ्चल राज-लक्ष्मीमें बँधनेकी जञ्जीरोमी शक्ता होती थी। उसका कर्ण-कमल कुछ लटक रहा था, नाक ऊँची थी, खिले हुए सफेद कमलके समान नेत्रधे, चन्द्रमाके आदे टुटड़ेके आकारका ललाट था—वह निर्मल सुवर्ण-पट्टके समान विशाल था और सब भुवनोंके राज्याभिषेकके जलसे पवित्र हुआ था, भौत्रोंके बीचमें रोमोका मँवर था। उसने सुगन्धित चमेती के फूलोंका मुकुट पहन रक्खा था, जिससे वह शिखर पर प्रातःकाल एकत्रित हुए तारा सहित अस्ताचलके समान शोभायमान लगता था। गहनोंके प्रकाशसे उसके मव अग पीले हो रहे थे, जिससे वह—महादेवके तीसरे नेत्रमेंसे निम्ली हुई अग्निसे जलते हुए—वामदेव के समान देख पड़ता था। उसके आस पास, दिशा-रूप-स्त्रियोंके समान, वेश्यायें सेवाके लिए उपस्थित थीं। निर्मल मणिमय फर्शमें उसका प्रतिबिम्ब पड़नेसे ऐसा मालूम होता था मानो पृथ्वीने अपने पतिको प्रेम पूर्वक छातीसे लगा लिया हो। उसका तेज अन्व राजाओंके समान साधारण नहीं था, इस कारण—अनेक जनोमी भोगो हुईं हाने पर नी—असाधारण राज-लक्ष्मीने उसके शरीरका आलिंगन किया था।

जाती थी, बरकल धोए जाते थे, समिधका सग्रह होता था, कृष्ण मृगचर्म साफ किये जाते थे, पशुओंके खानेकी घाम ली जाती थी, कमल-बीज सुखाए जाते थे, अक्षमाला गूँथी जाती थी, व्रतके दड रक्खे जाते थे, परिव्राजकोका सत्कार किया जाता था, कमडलुमें जल भरा जाता था । कलिकालने उस आश्रमको कभी देखा नहीं था । असत्यका उमसे परिचय नहीं था । कामदेवने उसका नाम भी नहीं सुना था । ब्रह्मार्की तरह वह त्रिभुवन-वदित था । विष्णुके समान उसने ^१नृसिंह-वारह रूपा प्रकट किया था । साख्यकी तरह वह ^२कपिलाविष्टित था । मथुराके उपवनकी तरह वह ^३त्रलावलीढ दर्पित धेनुक था । उदयनकी तरह वह वत्स-कुलको^४ आनद देता था । किम्पुरुष राज्यके समान वहाँ जल-कलश लेकर मुनि द्रुमाभिषेक^५ करते थे । ग्रीष्म ऋतुके अतकी तरह ^६जल-प्रपात पास ही था । वर्षाकालकी तरह वहाँ ^७वन-गहनके बीचमें हरि आरामसे सोते थे । हनूमान्के समान वहाँ पत्थरोके टुकड़ोंकी चोटीसे अक्षके^८ अस्थि-सचयका चूरा किया जाता था । खाडव-वन

१—विष्णुने नृसिंह तथा वारह अवतार किया था, आश्रममें मनुष्य, सिंह, शूकर तथा अन्य पशु थे ।

२—कपिल मुनिने साख्य शास्त्रका प्रवर्तन किया था, आश्रम कपिला गौसे युक्त था ।

३—मथुरामें बलरामने उद्धत धेनुकको मारा था, आश्रममें बल युक्त तथा दपित हथिनियाँ थीं ।

४—उदयनने अपने वत्स-कुलको आनद दिया था, आश्रममें बड़ोंको आनद होता था ।

५—राज्यमें द्रुम राजाका अभिषेक हुआ था, आश्रममें मुनि वृद्ध सींचते थे ।

६—ग्रीष्मके अतमें वर्षा होती है, आश्रमके पास ही पानीका भरना था ।

७—वर्षाऋतुमें समुद्रमें विष्णु सोते हैं, आश्रमके वनमें सिंह सोते थे ।

८—हनूमान्ने रावणके पुत्र अक्षयकुमारकी हड्डियाँ तोड़ी थी, आश्रममें बहेबेकी गुठलियाँ तोड़ी जाती थी ।

जलानेमे तत्पर हुए अजुनके समान वहाँ अग्नि-कार्यका^१ आरभ हुआ था । सुरभि बिलेपनके^२ होने पर भी वहाँ सदा धूमकी गंध निकलती थी । मातंग-^३ कुलका वास होने पर भी वह पवित्र था । सैकड़ो धूमेकतु^४ वहाँ दीजते थे तथापि उपद्रव कुछ भी नहीं होता था । द्विजपतिका^५ सब मडल वहाँ होने पर भी पासके वृत्तोंकी भाँजीमे सदा अघेरा ही रहता था ।

४६—वहाँ मलिनता^६ केवल यज्ञ-धूममे थी, चरित्रमे नहीं, मुख-राग^७ तोतोहीमे था, कोपमे नहीं, तीक्ष्णता^८ दर्भाग्रमे ही थी, स्वभावमे नहीं; चचलता^९ केलेके पत्तोंमे ही थी, मनमे नहीं, चक्षू-राग^{१०} कोकिलोंमे ही था, पर स्त्रियोंमे नहीं, कठग्रह^{११} कमडलहीमे था, रति-विलासमे नहीं, मेखला-बन्ध^{१२} व्रतहीमे था, ईर्ष्या-क्लहमे नहीं, होमकी गायोंके स्तनका ही स्पर्श होता था, स्त्रियोंके नहीं, सुगोंहीका पक्षपात^{१३} होता था, विद्या विवादमे नहीं, अग्निकी

१—वनमे अजुनने अग्निको जलानेमें मदद दी थी, आश्रममें होम आरभ हुआ था ।

२—सुरगंधित लेप, गोबर ।

३—चाडाल, हाथी ।

४—केतु, अग्नि ।

५—चंद्र, श्रेष्ठ ब्राह्मण ।

६—मलिनता = कालोच, दोष । वहाँ धूममे ही कालोच थी, किसीके चरित्रमें दोष नहीं था ।

७—तोतोके मुँह पर ललाई थी, क्रोधसे मुँह लाल नहीं होता था ।

८—दर्भाग्र ही तेज थे, किसीके स्वभावमे सरती नहीं थी ।

९—तरलता, अस्थिरता ।

१०—नेत्रोंमे ललाई, नयन-प्रीति ।

११—गर्दन पकड़ना, कठालिंगन ।

१२—भाँजी-बधन, जंजीर बाँधना ।

१३—पक्षोंका विवाद, बहस ।

प्रदक्षिणामें ही भ्रान्ति^१ होती थी, शास्त्रार्थमें नहीं, दिव्यकथाओंमें ही वसु^२-संकीर्तन होता था, धन-तृष्णामें नहीं, रुद्राक्षकी मालाकी गणना^३ होती थी, शरीरकी नहीं; मुनि-चालोंका^४ नाश यज्ञ-दीक्षामें ही होता था, मृत्युसे नहीं, रामानुराग^५ रामायणमें होता था, यौवनमें नहीं, मुख पर मङ्ग^६-विकार बुढापेमें ही होता था, धनाभिमानसे नहीं, इसी प्रकार शकुनि-वध^७ महाभारतहीमें था, वायु-प्रलाप^८ पुराणोंमें ही था, द्विज-पतन^९ बुढापेमें ही होता था, जाड्य^{१०} उपवनके चंदन-वृक्षोंमें ही था, भूति^{११} अग्निमें ही थी, गीत सुननेका शोक मृगोहीको था, नृत्य-पक्षपात^{१२} मोरोहीका था, भोग^{१३} सोंपही को था, श्रीफल^{१४} का प्रेम बदरोंही को था, और अधोगति^{१५} केवल वृक्षोंके मूलकी ही थी।

५०—ऐसे आश्रमके मध्य-भागको शोभित करता लाल ग्रशोक का एक वृक्ष था। उसके पत्ते लाखके समान लाल थे। मुनियोंने उसकी डालियों पर काले मृगचर्म और जल-पात्र लटका दिये थे। ऋषि-कुमारिकाओं ने उसके मूल-भाग पर हलदीके बहुससे थापे लगा दिये थे। उसके चारों

१—भ्रमण, भ्रम।

२—देव-विशेषोंका वर्णन, द्रव्यका गिनना।

३—गिनती, आदर।

४—मुनियोंके केश, मुनियोंके बालक।

५—राममें भक्ति, स्त्रीमें अनुराग।

६—सुरी पड़ना, विकृति।

७—दुर्योधनका मामा, पत्नी।

८—वायुदेवका भाषण, अनर्थक प्रलाप।

९—दाँत गिरना, ब्राह्मणोंकी श्रवणति।

१०—शीतलता, सूखता।

११—राख, धन।

१२—नृत्यमें परत गिरना, नृत्य में अमिर्चि।

१३—फन, स्त्री आदि का सुख।

१४—विल्वफल, धनके फल।

१५—नीचे जाना, नरक।

श्रोर क्यारी बनी थी । हिरन के बच्चे उसमें से पानी पीते थे । मुनि कुमारिकाओंने उसमें दर्म, वस्त्र श्रौर हार बाँध दिये थे । गाय के ताजे गोबर, से उत्तका तला लीप दिया था । उसी समय वहाँ फूलों का उपहार दिया गया था । उससे वह श्रौर भी रमणीक मालूम होता था । वह बहुत बडा नहॉ था तो भी चारों श्रौर फैलनेसे उसना श्रवकाश विस्तीर्ण लगता था । उसकी छायामें बैठे भगवान् जात्रालिमुनि ने मँने देखा । जैसे समुद्रोंसे मुवन, कुल-पर्वतोंसे मेरु, दजकी श्रमिपोंसे मरु, सूर्योंसे प्रलय दिवस श्रौर वल्होंसे काल घिरा रहता है उसी तरह महर्षियोंसे जात्रालि परिवृत थे । भयानक श्रापके डरसे मानो देह कँगती, प्रणयिनीके समान केशों^१ का शरण करती, कुद्धकी भाति भ्रू-भग^२ करती, उन्मत्तकी तरह गमनमें^३ खलन करती, अलमार-युक्त स्त्रीकी तरह तिलक^४ प्रकट करती, व्रतधारिणीकी भाति भस्म-धवल^५ देख पडती वृद्धावस्थाने उनका शरीर जेत कर दिया था । उनकी लम्बी श्रौर बुटापेके कारण सफेद जटा ऐसी मालूम होती थी मानो तपसे सत्र मुनियोंने जीत कर प्राप्त की हुई ऊँची धर्म-पताका हो, स्वर्गमें जानेके लिए इच्छा की हुई पुरयर्षी रत्सियों हों श्रौर बहूा दूर तक फैले हुए तप रूपी वृक्षके फूलोंकी मजरी हो । भस्मके त्रिपुडसे उनका माथा ऐसा मालूम होता था मानो गगाके तीन प्रवाहोंने युक्त शिमाचलका शिला-तल हो । श्रॉधी खसी हुई चद्रकलाके समान तथा सिलवटें पडनेसे शिथिल हुई दोनों भौंश्रोंसे उनकी दृष्टि रुक गई थी । मन्त्राज्ञागोंके निरतर अपनेके कारण खुले रहते श्रधर-पुटमेंसे

१—प्रणयिनी केश पकड़ लेती हैं, वृद्धावस्थाने केशोंको सफेद कर दिया था ।

१—वृद्धा स्त्री भौं चढ़ा लेती हैं, वृद्धावस्थाने भौश्रोंमें सिलवटें डाल दी थीं

२—उन्मत्तके पैर लींवे नहॉ पडते, वृद्धावस्थामें भी मनुष्यके पैर टिग-निगाने लगते हैं ।

३—अलकार युक्त स्त्री माथेमें तिलक लगाती हैं, वृद्धावस्थाने शरीरमें काले-काले चिन्ह प्रकट कर दिये थे ।

४—व्रतधारिणी शरीर पर भस्म लगानेसे श्वेत होती है, वृद्धावस्था शरीर को भस्मके समान श्वेत कर देती है ।

दत-किरणों बाहर निकल रही थीं जो सत्यके अक्षर, इन्द्रियोकी निर्मल वृत्ति तथा कर्ण-रसके प्रवाहके समान लगती थीं । उनसे आगेका हिस्सा श्वेत हो जानेके कारण वे निर्मल गंगा-प्रवाहको उगलते जन्तु के समान दीखते थे । निरन्तर सोम पीनेसे सुगन्धित हुए आससे आकर्षण किये गये—शरीरधारी शाश्वत के समान—सर्वदा मुखके पास ही घूमते चंचल भोरे जरा भी उनके पामसे नहीं हटते थे । अन्त कृशता से उनके गाल वैठ गये थे । ठोड़ी तथा नाक बड़ी ऊँची निकल आई थी । आँखोंकी पुतलियाँ कुछ ऊपर चढ गई थीं । पलकोंमे योड़े ही चाल रह गये थे । कान के छेद लम्बे गोमोंसे ढक गये थे । दाढ़ी नाभि तक लटक गई थी । अत्यन्त चंचल इन्द्रिय-रूपी घोड़ोंको भीतर ही रोकनेकी लगामके समान, लम्बी-लम्बी नाडियोंसे उनका कठ निरन्तर व्याप्त था । शरीरकी अत्यन्त विरल हड्डियाँ ऊपर निकल आई थीं । कंधे पर सफेद जनेऊ लटक रहा था । उनका शरीर पवनसे पैदा हुई छोटी-छोटी तरंगों वाले तथा तैरते हुए मृणालोंसे युक्त मदाकिनीके प्रवाहके समान निर्मल देख पड़ता था । स्वच्छ स्फटिक-मणिके टुकड़ोंकी बनाई हुई आर उज्वल तथा बड़े बड़े मोतियोंकी गुथी हुई, सरस्वतीके द्वारके समान दीखती, रुद्राक्षकी माला वे अपनी हिलती उँगलियोंके बीचमे फेरते थे । उससे दिन-रात घूमते तारामडलवाले दूसरे ब्रह्मके समान उनका प्रकाश था । ऊपर उठी हुई नभोंके जालके कारण वे ऐसे लगते थे मानो लंबी बड़ी हुई लताओंसे वेष्टित पुराना कल्पवृक्ष हो ।

ने मानसरोवरमे धुलनेसे सफेद हुआ, रेशमी कपड़ेके समान, निर्मल आँसू ग्योठ रक्खा था । वह चंद्रमाकी किरणोंका, अमृतके भागका, अथवा मत्तानके तनुओंका बनाया हो ऐसा, दूसरा बुढापेका जाल सा, लगता । उनके पास तिपाई पर एक स्फटिकमय कर्मडल रक्खा था, जिसमे मदानाँसा जल भरा था । उससे वे ऐसे लगते थे जैसे राजहंससे मिले हुए कमलों का समूह शोभायमान हो । स्थिरतामें पर्वतोंका, गभीरतामें सागरोंका, तेजमें सूर्यका, शान्तिमें चंद्रका, और निर्मलतामें आकाशका मानो वे पुकाबला करते थे ।

५१—गरुडकी तरह अपने प्रभावसे उन्हे सप्त द्विजो^१ पर प्राधिपत्य मिला था, ब्रह्माके समान वे आश्रम^२ गुरु थे, पुराने चन्दन-वृक्षकी तरह उनकी जटाएँ सर्प-कचुकु बबल थी, प्रशस्त गजके समान उनके कर्ण^४ बाल लटकते थे, बृहस्पतिके समान उन्होंने जन्मसे ही कचना^५ सवर्धन किया था, दिनके समान उनका मुख^६ अर्धविव-भास्कर या शरत्कालकी तरह वे क्षीणवर्ण^७ थे, भीष्म पिताके समान उनकी सत्यव्रत^८ पर प्रीति थी, पावतीके हाथकी तरह वे रुद्राक्ष^९ ग्रहण करनेमें निपुण थे, शिशिर समग्रके सूर्यकी तरह उन्होंने उत्तरासग^{१०} लिया था, बड़वाग्निके समान वे सदा पयपान^{११} करते थे, सूने

१—गरुड पक्षियों के अधिपति थे, जाबालि ब्राह्मणोंके ।

२—ब्रह्मा चारों आश्रमोंके प्रवर्तक है, जाबालि अपने आश्रमके गुरु थे ।

३—वृक्षकी जड़ साँपकी काँचलीसे श्वेत होती है, जाबालिकी जटा साँपकी काँचलीके समान श्वेत थी ।

४—हाथीके कान तथा पूँछके बाल लटकते हैं, जाबालिके कामके बाल लटकते थे ।

५—बृहस्पतिने अपने पुत्र कचका सवर्धन किया था, जाबालिने बालोंको बढ़ाया था ।

६—दिनका मुख अर्थात् प्रभात सूर्यसे प्रकाशित होता है, उनका मुख भी सूर्यविवके समान दीप्त था ।

७—शरत्कालमें वर्षा नहीं रहती, इनको बहुत वय बीत चुका था ।

८—भीष्मके पिताकी अपने पुत्र सत्यव्रत पर प्रीति थी, उनके उत्तम आचरण पर ।

९—क्रीडामें पारंगती हाथसे शिवजीकी आँखें बंद कर लेती है, उनके पास रुद्राक्षकी माला थी ।

१०—शिशिरमें सूर्य उत्तरायण होता है, उन्होंने दुपटा ओढ़ा था ।

११—बड़वाग्नि जल सोखती है, वे दूध पीते थे ।

नगरकी तरह वे दीन, अनाथ और विपन्न-शरण^१ थे और शिवकी तरह उनका शरीर भस्म-पांडुरोमारिजट^२ था ।

५२—उनको देखते ही मैंने विचार किया—अहो ! तनका कैसा प्रभाव है कि इनकी तपे हुए सुवर्णके समान स्वच्छ और त्रिजलीके समान चमकती शान्त मूर्ति भी नेत्रोंके तेजको दाव लेती है । सर्वदा उदासीन होने पर भी इनकी मूर्ति, अपने महा प्रभावसे, प्रथम आनेवालेको मानो कुछ डराती सी है । थोड़ा तप करनेवाले तपस्वियोंका भी, शुष्क घास और काश-कुसुममें पड़ी अग्निके समान, चंचल वृत्तिके तेज सदा स्वभावसे ही असह्य होता है, फिर ऐसे पाप-क्षयकारी भगवान्के तेजकी तो बात ही क्या है कि जिनके चरणोंकी वदना सब ससार करता है, जिनका मल निरंतर किये हुए तपसे धुल गया है और जो अपने दिव्य चक्षुसे सब ससारको हथेली पर रफके हुए आँवलेकी तरह देख सकते हैं । महामुनियोंके नाम लेने मात्रसे ही पुण्य होता है, फिर साक्षात् दर्शनका तो कहना ही क्या है । यह आश्रम धन्य है जिसे ऐसे अधिपति मिले हैं । अथवा सब भुवनतल ही धन्य है, क्योंकि इन पृथ्वीतलके ब्रह्माने इसे सेवित कर रखा है । सब मुनि दिन-रत अन्य काम छोड़ कर दूसरे ब्रह्माके समान इन महापुरुषके मुलको पवित्र कहानियाँ सुनने में टकटकी बाँध कर देखते-देखते इनकी सेवा करते हैं । वे सब धन्य हैं ।

ती भी सर्वदा अत्यन्त^३ प्रसन्न, कफणा-जल बरसाते, अगाध गभीरता वाले, सुन्दर द्विजकुल^४ परिवृत इनके मानस^५में मुल-कमलके स्पर्शका अनुभव हुई रहती है । वह भी धन्य है । ब्रह्माके चार मुलरूपी कमलोंमें रहने ले वेदोंको बहुत समय पीछे यह दूसरा उचित स्थान मिला है । जैसे वर्षा

१—शून्य नगरमें शोभाहीन, अनाथ और खाली घर होते हैं, वे दीन, अनाथ और विपन्नोके आश्रय थे ।

२—शिवका शरीर भस्मसे पांडुर और उमासे आरिजट है, उनका शरीर राखके समान सफेद रोमोंसे युक्त था ।

३—सरोवर—मल-रहित, मानस—ईर्ष्यादि-रहित ।

४—सरोवर—एतियों से परिवृत, मानस—दुर्भावोंसे परिवृत ।

५—मानसरोवर, ज्ञानाब्जिका मन ।

ऋतुमे मलीन हुई नदियाँ शरत्काल आने पर निर्मल हो जाती हैं उसी तरह जगत्में कलिकालसे मलीन हुई विद्या इनके ससर्गसे फिर स्वच्छ हुई है। कलियुगके विलासका अपमान करके सर्वात्मासे यहीं बसते भगवान धर्मको सचमुच सतयुगकी याद नहीं आती होगी। इन महाभुनिको पृथ्वी पर बैठे देख कर आकाशके अत्र सतपि मडलके रहनेसे अभिमानकी जगह नहीं रही है।

२३—अहो। वृद्धावस्था भी बड़ी जबरदस्त है। प्रलय कालके सूर्यकी किरणोंके समान दुर्निरीक्ष्य और चंद्र-किरणोंके समान सफेद इनके बालोंकी जयमें गिरती वह जरा भी नहीं डरी। इस तरह आसानीसे गिर पड़ी जैसे महादेवकी जय में गंगा और अग्निकी ज्वालामें दूधकी आहुति गिरती हो। इन महर्षि के होमे हुये बहुतसे धीमेसे निकलते धूम से आश्रम मलीन हो गया है, इस कारण इनके प्रभावसे मानो डर कर ही सूर्य की किरणें तपोवन दूरसे त्याग देती हैं। यहाँ हवासे चञ्चल और ऊपर उठती लपटोंको एक जगह समेट कर अग्नि, मन्त्रसे पवित्र किये हविको, मानो अजलि बौब कर स्नेह पूर्वक ग्रहण करता है। दुकूल-रूपी बल्बलों को फड़फड़ाती, आश्रम-लताओंके फूलों की सुगंध लाती, और मद भद बहती यह पवन मानो डरती डरती इनके पास आती है। महाभूत भी प्राय तेजका पराजय नहीं कर सकते। ये महा-पुरुष सब तेजस्वियोंमें धुरधर हैं। इन महात्माके होनेसे जगत् दो सूर्य-युक्त मालूम होता है। इनके आधारसे पृथ्वी मानो निष्कण हो गई है। ये कर्ण-रस के प्रवाह, ससार सागरसे पार होनेके लिए सेतु, क्षमा-रूपी जलके आधार, वृष्णा-रूप भाड़ीके कुठार, सतोपामृतके सागर, मोक्षमार्गके उपदेशक, अशुभ ग्रहोंके अस्ताचल, शान्ति-वृक्षके मूल, बुद्धि-चक्रके मुख्य आधार, धर्मध्वजाके स्थिति-वंश, सब विद्याओंके अवतरणके तीर्थ हैं। लोभ रूपी समुद्रके बडवानल शास्त्र रूपी रत्नों की कसौटी, प्रेम-रूपी पल्लवोंके दावानल, क्रोध-रूपी सर्पके महामन्त्र, अज्ञान-रूपी अंधकार के सूर्य, नरक-द्वारके अर्गला, सब आचारोंके कुल-भुवन, मंगल वस्तुओंके घर, मद-विकारोंके अस्थान, सन्मार्गके दर्शक, साधुताकी उत्पत्ति, उत्साह चक्रकी नेमि, सत्वके आश्रय, कलियुगके शत्रु, तप के भण्डार, सत्वके मित्र, सरलताके क्षेत्र, और पुरण-सचयके उत्पत्ति-स्थान हैं। मत्सरको इन्होंने अवकाश नहीं दिया है। विपत्तिके शत्रु हैं।

अस्थान हैं । अभिमानके प्रतिकूल हैं । दैत्यांके प्रिय नहीं हैं । रोषके अधीन नहीं हैं । विषयोके वश नहीं हैं । सुखके अभिमुख नहीं है । इन महामुनिके प्रभावसे ही सब तपोवनमें वैर शान्त हो गया है और मत्सरका कहीं नाम भी नहीं ।

५४—अहो ! महात्माओंका प्रभाव कितना बड़ा होता है ! यहीं पशु पक्षी भी अपना स्वाभाविक विरोध छोड़, शान्त आत्मासे, तपोवनमें रहनेके सुखका अनुभव करते हैं क्योंकि खिले हुए नीले कमलोजी रचनाका अनुकरण करते, ऊपर उठे सैकड़ों सुन्दर चंद्रकवाले, और हिरन के नेत्रोंकी कान्तिके समान विचित्र मयूरोंके समुदाय में धूपसे सतत हुआ यह सर्प इस प्रकार निश्चक घुसा जाता है मानो नई नई दूध के खेतमें जाता हो । इस हिरन के बच्चे का सिंहके केशर-रहित बच्चोंके साथ मेल हो गया है । यह अपनी माताको छोड़ सिंहनीके यनमेंसे निकलती दूधकी धार पीता है । ये हाथीके बच्चे सिंह की चन्द्र-किरणोंके समान श्वेत सटाको मृणाल समझ कर खेंचते हैं और वह अपनी आँखें आधी भीच कर प्रसन्न होता है । यहाँ चन्द्रोंके फुएटोने अपनी स्वाभाविक चपलता छोड़ दी है । वे नहाये हुए मुनि कुमारोंके लिए फल ला देते हैं । मदाध हाथियोंके गटस्थल पर बैठे भौरे भी निश्चल होकर मद-जल पीते हैं । हाथी इयाके कारण कान हिला कर उन्हें नहीं उड़ाते हैं ।
 " वॉ तक कहूँ ? निश्चेतन वृद्ध भी व्रत करते हैं ऐसे दीखते हैं । तपके अग्रि-
 .. धूम ऊपर चढ़ा जा रहा है । उसके निरन्तर ससर्गसे, वृद्ध ऐसे लगते मानो उन्होंने कृष्ण चर्मका दुपट्टा ओढ़ा हो, तथा वे फल-मूल और
 ... धारण करते हैं । जब वृद्धोंका यह हाल है, फिर सचेतन प्राणियों की बात ही क्या है ?

५५—इस प्रकार मैं विचार कर रहा था कि इतनेहीमें हारीतने मुझे उठी लाल अशोकके नीचे एक जगह छायामें रक्खा । वह अपने पिताके चरण छूकर तथा वदना करके उनसे जरा दूर पड़े कुशाके आसन पर बैठ गया । अन्य सब मुनि मुझे देख कर उससे पूछने लगे—यह तोता कहाँसे लाये ? उसने कहा—यहाँसे नहाने जाता था तब मैंने देखा कि पद्म सरावरके तीर पर वृद्धोंके किसी घांसलेमसे गिर कर यह गग्म गरम भभक्ती रेतीमें पड़ा है । तपसे हॉप रहा था । ऊँचेसे गिरनेके कारण इसका शरीर विडुल हो गया था

और इसमें थोड़ी ही जान बाकी थी। इसे देख कर मुझे दया तो आई, पर उस बड़े वृद्ध पर तपस्वियोंके लिये चढना बहुत कठिन समय में इसे घासलेमें न रख सका और अपने मग ले आया। इसलिये जब तक इसके पर न प्रायें और यह अतरिक्षमें उड़ न सके तब तक इसी आश्रमके किसी तब-कोटरमें यह विचारा भले ही रहे और हमारे तथा सब मुनि-कुमारोंके लाये हुए नीत्रारकी किनकी तथा फलोंके रससे अपना निर्वाह करे। हमारा धर्म है कि अनाथका पालन करें। जब इसके पर निकल आवें और यह आकाशमें उड़ने लायक हो जाय तब मनमें आवे जहाँ चला जाय अथवा हिल जानेसे भले ही यहाँ बना रहे। ऐसी ऐसी बातें मेरे सत्रयमें सुननेसे भगवान् जात्रालिको भी कुछ कुतूहल उत्पन्न हो गया। वे अपनी गर्दन जरा मोड़ कर, पवित्र जलसे मेरा प्रक्षालन करते हों इन तरह, अत्यन्त शान्त दृष्टिसे मुझे परिचितकी भाँति बहुत समय तक बार बार देखा किये। फिर कहने लगे—यह तो अपने ही अविनयका फल भोग रहा है। जात्रालि त्रिकाल दर्शी महात्मा थे। तपस्याके बलसे सब जगत्को दिव्य नेत्रोंसे करतल पदार्थकी भाँति देखते थे। पूर्व जन्मोंको जानते थे। होनहार बलुको भी बतलाते थे और आँसुओंके सामने आये हुए प्राणियोंकी अवस्थाका प्रमाण कह देते थे।। वहाँके सब तपस्वी तो इनका प्रभाव जानते ही थे। इसलिए यह वाक्य सुनते ही उनको कुतूहल हुआ कि इसने क्या अविनय किया होगा ? किस लिये किया होगा ? कहाँ किया होगा ? दूसरे जन्ममें यह कौन था ? इन बातोंको जानना चाहिए। वे महामुनिसे प्रार्थना करने लगे— भगवन्, कृपा-पूर्वक कहिये कि यह कैसे अविनयका फल भागता है ? जन्मान्तरमें यह कौन था ? पक्षियोंमें यह कैसे पैदा हुआ और इसका नाम क्या है ? हमारा कुतूहल आप दूर मीजिए, क्योंकि आपने ही हमारे मनमें आश्चर्यपैदा किया है।

५६—तपस्वियोंकी यह प्रार्थना सुन कर महामुनिने उत्तर दिया—इसकी आश्चर्यजनक कहानी बहुत लंबी है। दिन थोड़ा ही बाकी है। मुझे नहाना है और तुम लोगोंका भी पूजनका समय निम्नला जाता है। इसलिए तुम उठो और सब नित्य-कर्म कर लो। सायकालको जब तुम फल मूलोंका आहार करके निपट कर फिर बैठोगे तब मैं शुरूसे सब कथा कहूँगा कि यह कौन है, अथवा जन्ममें इसने क्या किया और इस लोकमें यह किस रीतिसे पैदा हुआ ? अभी

तो इसे आहार देकर आराम करने दो । मैं जैसे जैसे कहता जाऊँगा वैसे ही वैसे इसको भी अपने जन्मान्तरका ठीक ठीक हाल इस प्रकार याद आता जायगा मानों स्वप्नमें हुआ हो । यों कहते कहते जावालि सब मुनियोंके साथ उठे और फिर उन्होंने स्नानादिक विधि और उचित दिनकृत्य किया ।

५७—तब तब दिन फूल गया । नहानेके पीछे अर्घ्य देते समय मुनियोंने जो लाल चदन बरती पर डाला या उसीका मानो आकाशस्थित सूर्यने अग्रमें साक्षात् लेप किया । नीण तापवाला दिन इस प्रकार कुश हो गया मानो ऊँचा मुँह करके, सूर्य त्रिविके सामने दृष्टि रख कर, ऊभ पान करनेवाले ऋषि उसका तेज पी गये हों । सप्तर्षि मडलका स्पर्श त्याग करनेकी इच्छासे ही मानो पाद^१ समेट कर, कबूतरके चरणके समान, गुलाबी सूर्य आकाशमेंसे नीचे लटकने लगा । पश्चिम समुद्रमें कुछ कुछ लाल किरणोंवाले सूर्य मडलका प्रतिबिम्ब ऐसा दीवने लगा मानो जल-शय्या पर सोये हुए विष्णुके नाभिकमलमेंसे मधु-धार निकल रही हो । पृथ्वीतल छोड़ कर तथा कमल-चक्रका त्याग करके, सव्या-समय, सूर्यकी किरणोंने, पद्मीके समान, तमोमनके गुदों और पर्वतोंकी चोटियों पर वास किया । ऊपर कहीं कहीं लाल धूँ पडनेसे थोड़ी देर तक आश्रमके वृक्ष ऐसे दीजने लगे मानो मुनियोंने उन पर लाल लटकाए हों । सूर्य अन्त होनेके बाद पश्चिम समुद्रके तट निकलती लाल लाल सव्या प्रवाल-लताके समान दीवने लगी । समय आश्रममें व्याप्त होने लगा, एक ओर होमकी धेनु दुही जाने लगी, उसकी दूधकी धाराकी मनोहर ब्यनिते आश्रम अत्यन्त मनोहर होने लगा । अग्निहोत्र की वेदियों पर हरे कुश बिछाये जाने लगे । विष्णुमारिकाएँ इधर उधर दिव्यताओंको पके अन्नकी बाल देने लगीं । सूर्य अस्त होनेके बाद विहार करके आती, रक्त-तारुवाली^२, तोपवन वेनुके समान, कपिल सव्या कहीं कहीं मुनियोंसे दिखाई दी । थोड़ा ही समय बीता था कि सूर्यका वियोग होनेसे शोकप्रस्त कमलिनीने क्लीरुनी वमंडल, मृणाल रूपी जनेऊ, मधुकर-रुपी वद्राक्ष तथा हंसरूपी श्वेत वस्त्र इस प्रकार

१—किरण ।

२—धेनुके शरीरमें बाल बाल चिन्ह थे; सव्यामें तारे रक्त थे ।

धारण किया जैसे परदेश गये पतिकी प्रातिके लिए व्रत करने पर कोई स्त्री कमडल, जनेऊ, वद्राक्षी माला और सफेद धोती धारण करती है । इस तरह मानो कमलिनी सूर्यके समागमके लिये अनुष्ठान करने लगी । पश्चिम तमुद्रके जलमें सूर्यके गिरनेके वेगसे उछले हुए जलके ठंडे कणोंके समान तारे आकाशमें आये । उसी समय तारोंसे छाया हुआ आकाश ऐसा दीखने लगा मानो सध्या-पूजन करनेमें सिद्ध-मन्याओं द्वारा फेंके गये फूलोंसे चितकवरा हो गया हो । क्षणभरमें ही सध्याका सत्र रग इस तरह जाता रहा मानो ऊपर मुँह किये हुए मुनियोंके द्वारा, प्रणाम-समय, ऊपरको फेंके अञ्जलिके पानीसे धुल गया हो ।

५—आकाश क्षय होनेके बाद उसके विनाशसे दुःख पाकर रात्रिने काले मृग चर्मके समान नया अधकार धारण किया । मुनियोंके हृदयको छोड़ सत्र आश्रममें त्रिलकुल अधेरा छा गया । सूक्ष्म-तिमिर-तमाल^१-वन-लेला जिसके पर्यन्त भागमें है, सप्तर्षि मडलका^२ जिसमें वास है, अरुन्धतीके^३ चरण-दृशसे जो पावत्र है, आपाड^४ जिसमें उपस्थित है, मूल^५ जिसमें दृष्टि आता है और जिसके एक स्थानमें चार तारक^६ मृग हैं ऐसे अमर लोकके आश्रमके समान आकाशमें, चंद्रमाने रविका अस्त हुआ सुन, वैराग्य^७ ग्रहण कर, धौत दुकूल-दलकल-श्वेत अंबर^८-युक्त तारान्त पुर^९ सहित प्रवेश किया । चंद्रमासे

१—आश्रममें सूक्ष्म तिमिरके समान तमालके वृक्षोंकी कतारें थीं, आकाश में अधकार-रूपी तमाल वृक्ष थे ।

२—आश्रममें सात ऋषि, आकाशमें सात तारे ।

३—आश्रममें वसिष्ठ पत्नी, आकाशमें अरुन्धती नामका तारा ।

४—आश्रममें पलाश-दंड, आकाशमें पूर्वाषाढ नक्षत्र

५—आश्रममें जड़ें; आकाशमें मूल नक्षत्र ।

६—आश्रममें सुन्दर आँखोंवाले हिरन, आकाशमें सुन्दर मृगशिर नक्षत्र ।

७—ससारसे विरक्ति, विशेष राग (रक्तता) ।

८—धुले हुए दुकूल रूपी वस्त्रके श्वेत वस्त्र से युक्त, धुले हुए दुकूलके समान धवल आकाशसे युक्त ।

९—हृदय ब्रह्ममें लौन करके, अश्विनो आदि ताराओंके साथ वर्तमान अन्तःपुरसे युक्त ।

भूपित और तारा-रुही कपालके टुकड़ोंसे अलङ्कृत शिवके मस्तकके समान आकाशमेसे सागर भर डालती गंगाके समान हस धवल चाँदनी पृथ्वी पर छिटकी । चंद्रमाके विंशमे हिरन ऐमा दीखने लगा मानो फूले हुए सफेद कमलोंके तालाबमें पानी पीनेके लोभसे उतरा हुआ निश्चल हिरन मीचड़में फँस गया हो । अँधेरा दूर हो जानेके बाद तालाबमें चंद्रमाकी किरणें ऐसी शोभायमान हुईं मानो वर्षाऋतुके बाद, सिधुवारके ताजे फूलके समान सफेद, हस आकाशसे उतर कर कुमुद-सरोवरोंमें तैरते हो । चंद्रमाके विंशमेसे जब उदयकी सब ललाई जाती रही उस समय वह ऐसा दीखने लगा मानो मदाकिनी में नहानेसे बुले हुए मिदूरवाला ऐरावतका कुभस्थल हो ।

५६—धीरे धीरे जब चंद्रमाका उदय पूरा हो जानेसे अमृतकी रजके समान चाँदनीसे सब जगत् सफेद हो गया, खिले हुए कुमुद-वनकी सुगंध लाती, रातके पहले पहरकी पवन, ओसकी बूँदोंके कारण, धीरे धीरे चलने लगी, सुखसे बैठे, धीरे धीरे मुँह हिला कर जुगाली करते आश्रमके हिरन—जिनकी आँखें नींदसे भारी थीं और पलक बंद थे—पवनका अभिनदन करने लगे, और मंगल प्रायः पहर रात बीती तब हारीत, आहार कर चुम्बनेके पीछे, मुझे लेकर मुनियोंके साथ अपने पिताके पास जा पहुँचा । उसके पिता चाँदनीसे चमकते तपोवनके एक आगमने बैठके आसन पर बैठे थे । थोड़ी दूर खड़ा जाल-पाद शिष्य दर्भका पवित्र हाथमें लेकर धीरे धीरे उनकी हवा कर रहा था । हारीत उनसे कहने

पिताजी, सब तपस्वियोंका हृदय आश्चर्यजनक वृत्तान्त सुननेके फुलू-व्याकुल है और वे आपके पास मडल बाँध कर खड़े हैं । इस तोतेके चर्चा थकावट भी अब जाती रही है । इसलिए आप कहिये कि इमने जन्ममें क्या किया था ? यह कौन था और अब क्या होगा ? जब वह प्रकार कह चुका तब मुझे आगे खड़ा देख और सब मुनियों को एकत्र चित्तमें सुननेमें तत्पर हुआ जान वे धीरे धीरे बोले—जो फुलूहल है तो सुनो—

६०—अपन्ती^१ में उत्रविनी नामकी नगरी है । उमने अमरलोक की शोभा को भी जीत लिया है । वह सब भुवनाका तिलक है । मनयुगभी मानो लन्म-भूमि है । तीनों भुवनाकी उत्पत्ति, पालन और नाश करने वाले श्री

महाकालेश्वर महादेवने अपने रहनेके योग्य मानो दूसरी पृथ्वी बनाई है । उसके चारों ओर रसातल के समान गहरी पानीकी खाई ऐसी मानूम होती है मानो उजयिनीको दूसरी पृथिवी समझ कर समुद्र आया हो । चारों तरफ सफेद चूनेकी शहर पनाह ऐसी मालूम होती है मानो महादेवकी, वहाँ रहने पर प्रीति देख, आकाशने छूते हुए शिखरजाला कैलाश पर्वत आया हो । बाजारकी सड़के अगस्त्य ने पिए गए जलवाले समुद्र के समान चौड़ी हैं । उनमें सोनेके बुरादे की रेत बिछी है आर शक, सीप, मोती, मूँगे, तथा मरकत-मणियोंके ढेर बिछनेके लिए रखे हैं । वहाँ देव, दानव, सिद्ध, गधर्व, विद्याधर और नागों से अलङ्कृत चित्रशालाएँ ऐसी मालूम होती हैं मानो दिन-रात होते जलसामें शामिल होती द्रियोंको देखनेके शोभसे देवताओं के विमानोंकी न्तारें आकाशमेंसे उतर आई हो । चोराहों पर देव मंदिर हैं । उनकी शोभा, मयनेके समय दूध छलकनेसे सफेद हुए, मन्दराचलके समान है । उनके शिखरों पर सोनेके निर्मल कलश रखे हैं जिन पर सफेद ध्वजाएँ हवा से फहराती हैं । वे मदाकिनी सयुक्त हिमालयके शिखरके समान दीखते हैं ।

६१—उस नगरीकी सीमा के पास की भूमि केवड़ेकी रजसे धूसर हो गई है । वहाँ कृन्तने हैं और हरे हरे बगीचोंके कारण अंधेरा हो रहा है । कूपोंके चबूतरों पर चूने की सफेदी हो रही है और रहटोसे पानी खींच कर उपवनोमें सिंचाई की जाती है । मकानोंके साथ बने हुए बगीचोंमें मदसे गुजार करते भ्रमरोंने अंधेरा कर रखा है । चबल उपवन लताओंके फूलोंकी परिमलसे पवन सुगन्धित हो जाती है । घर घर मदन वृत्तके दंड पर मङ्गलीके निशानवाली ऊँची ध्वजाएँ सड़ी हैं, उनमें मूँगे लटक रहे हैं, सौभाग्य सूचक घटियाँ बज रही हैं, लाल रेशमी कपड़ेकी पताकाएँ फहरा रही हैं और लाल चमर पेंव रहे हैं । इससे मालूम होता है कि वहाँ कामदेव की पूजा होती है । मर्वदा वेदाभ्यास की बनि होनेसे उस नगरीमें सब पाप धुल गया है । वहाँ धार-गृहों में मृदंग का गभीर स्वर हो रहा है, पानीकी छोटी छोटी बूँदोंकी वर्षा हो रही है, सूर्यकी किरणों से भूमि पर इन्द्रवनुष बन रहे हैं और पंख फैला कर नाचते मत्त मयूरोंके शब्दसे काँजाटल हो रहा है । उस नगरीमें हजारों धरोहर हैं । वे खिले हुए कुल्लयोंके कारण मनोहर लगते हैं, प्रफुल्लित

कमलोंसे उनका बीचका हिस्सा सफेद हो गया है, और वे इन्द्रके नेत्रोंके समान अनिमिष^१-दर्शनसे सुहावने मालूम होते हैं। उसकी हर एक दिशामे हाथीदाँतकी चन्द्रशालाएँ बनी हैं। वे केलोंके घने वनसे प्रिरी हैं और ग्रमृतके भागके समान सफेद हैं। उनसे वह नगरी सफेद हो गई है। उसके चारों तरफ शिप्रा नदी बह रही है। उसका पानी यौवनमदसे मत्त हुई मालवेकी स्त्रियोंके कुच-कलशोंसे लुभित हुआ है और भगवान महाकालके मस्तरु पर गंगाको देख उसकी ईर्ष्यासे ही मानो वह हमेशा तरंग रूप भ्रुकुटी चढा कर उससे आकाशको स्पर्श करती है।

६२—वहाँके त्रिलासी जन हर-जया-चन्द्रके समान सत्र भुज्जनांमे विल्यात^२ यशवाले और^३कोटिसार हैं। मैनाक पर्वतके समान उनमे भी 'पत्नपान नहीं होता है। मंदाकिनीके प्रवाहके समान उनमे कनक-पद्म^४ राशि दिखाई देती है। स्मृति-शास्त्रके समान वे सभा, छात्रालय, कूप, 'याऊ, उपवन, मंदिर, पुल तथा यत्रोंके^५ प्रवर्तके हैं। मंदराचलकी तरह उन्होंने सत्र सागर-रत्न सार-उद्धृत^६ कर लिया है। गारुड पास^७ होने पर भी वहाँके लोग भुज्जग सगसे उरते हैं। खलोपजीवी^८ होने पर भी उनका धन सज्जन भोगते हैं। वीर होने

१—इंद्रकी दृष्टि निमेष रहित है, सरोवरमें मञ्जुतियाँ हैं।

२—चंद्रमाकी कीर्ति, मनुष्योंका सौंदर्य।

३—चंद्रमाके गोल किनारे सुहृद हैं; मनुष्य करोड़पती हैं।

४—मैनाकके पंख नहीं काटे गए थे, मनुष्योंमें तरफदारी नहीं होती।

५—मंदाकिनीमें सुनहरी पद्म हैं, मनुष्योंके पास पद्म सख्याकी सुखयंत्रों^६ हैं।

६—स्मृतिमें इनका उद्देश होता है, मनुष्य इनका स्थापन करते हैं।

७—मंदराचलने समुद्रसे सत्र रत्न निकाले थे, मनुष्य शरीर पर उच्चम रत्न धारण करते हैं।

८—गारुडका मंत्र होने पर भी सर्वमें उरते हैं, मणि होने पर शत्रुमें उरते हैं। यहाँ विरोधाभास है।

९—शठ अपने यहाँ पैदा हुए शत्रुके निर्वाह करनेवाले।

पर भी वे विनीत हैं । प्रियंवद होने पर भी मच्च बोलते हैं । अभिरूप^१ होने पर भी वे अपनी भार्याओंसे सनुष्ट हैं । पर-प्रार्थनासे अनभिज्ञ होने पर भी अतिथि जनोंसे अपने यहाँ आनेके लिये प्रार्थना करते हैं । कामार्थ^२ पर होने पर भी धर्मको प्रधान समझते हैं । अत्यंत बलवान् होने पर भी परलोकसे डरते हैं । अनेक प्रकारके दिशान और शिल्पशास्त्रका उन्हें ज्ञान है । वे उदार तथा चतुर हैं । मुमुराहटके साथ बातचीत करते हैं । परिहासमें कुशल हैं । साफ कपड़े पहनते हैं । सब देशोंकी भाषाओंमें प्रवीण हैं । बक्रोक्तिमें निपुण हैं । कथा और कहानी कहनेमें चतुर हैं । सब लिपियोंको पहचानते हैं । महाभारत, पुराण और रामायणमें उनका अनुराग है । बृहत्कथामें कुशल हैं । द्यूत आदि कलाओंमें परंगत हैं । वेदसे उन्हें प्रेम है । पढ़ने लिखनेका वसन है । स्वभावमें शान्त हैं । वसन्तकी पवनके समान वे सर्वश दक्षिण^४ हैं । हिमालयके वनके समान वे अन्तःसरल^५ हैं । लक्ष्मणके समान वे रामाराधन^६में निपुण हैं । शत्रुघ्नके समान वे भरतसे^७ परिचय रखते हैं । दिनकी भाँति वे मित्रोंका अनुवर्तन करते हैं । बौद्धकी भाँति वे सर्व अस्तिवादमें^९ शूर हैं । साख्यशास्त्रकी तरह वे प्रधान^{१०} पुरुष युक्त हैं और जैनधर्मके समान वे जीवों पर

१—सुन्दर, पंडित ।

२—अन्य प्रार्थना, शत्रुओंसे प्रार्थना ।

३—रति तथा द्रव्यमें आसक्त, वाञ्छित अर्थमें अनुरक्त ।

४—वसंत ऋतुमें दक्षिणकी हवा चलती है, मनुष्य त्यागी हैं ।

५—वनके बीचमें सरल वृक्ष होते हैं, मनुष्य हृदयमें साफ हैं ।

६—लक्ष्मण रामका आराधन करते थे, मनुष्य स्त्रियोंका समान करते हैं ।

७—शत्रुघ्नका भरतसे प्रेम था; मनुष्योंको भरत-प्रणीत नाट्यशास्त्रसे परिचय है ।

८—दिन सूर्यके पीछे पीछे चलता है, मनुष्य अपने मित्रोंके अनुगामी हैं ।

९—बौद्धोंके तीन भेद हैं उनमेंसे एक सर्वास्तिवादी होते हैं, मनुष्य याचकोंसे 'हाँ' कहनेमें शूर हैं ।

१०—सांख्यशास्त्रमें प्रकृति और पुत्र्य हैं, मनुष्य प्रधान

दया रखते हैं। उस नगरीमें पर्वतोंके समान महल हैं, मोहल्लोंके समान पर हैं और कलावृत्तके समान सत्पुरुष हैं। वह ग्रामनी चित्रित दीवारोंमें मानो विश्वरूप प्रकट करती है। सव्याके समान पद्मरागानुकारिणी^१ है। इन्द्र मूर्तिके समान शत यज्ञोक्ती^२ अग्निके धूमसे पवित्र है। महादेवकी मृत्युकीज्ञा के समान सुग-वचल^३ अद्भुत युक्त है। चूड़ी स्त्रीकी तरह जातरूपा^४ क्षय है। गरुड़-मूर्तिके समान ग्रन्थुन^५ स्थितिसे रमणीय लगती है। प्रभातके समान वहाँ सब लोग प्रबुद्ध^६ हैं। भीलोंकी वास-भूमिके समान वहाँ चमर^७ युक्त नाग-दन्तोंसे घर सफेद हो गए हैं। शेषनागकी मूर्तिकी भाँति वह आसन्न^८ वसुधा घर है। समुद्र-मथन वेलाके समान वहा बड़े बड़े घोषोंसे^९ दिगंतर भर गये हैं। प्रस्तुत अभिषेककी भूमिकी भाँति वहाँ हजारों सुवर्ण-कलश हैं। पार्वती की मूर्तिकी तरह वह महा विहासनोचित^{१०} मूर्ति है। अदितिके समान वह देव-कुलोसे^{११} सेव्य है। वाराहवतारकी लीलाके समान वहाँ हिरण्यनाभक^{१२} पात

१—सव्या पद्मरागीके समान लाल होती है, वह पद्मरागासे लाल है।

२—इन्द्रकी मूर्ति शत अश्वमेधोंसे पवित्र थी, वह सैकड़ों यज्ञोंसे।

३—महादेवका हास अमृतके समान सफेद होता है, सफेदी की हुई घटारियाँ ही उसका हास है।

४—बुडियाके रूपका नाश हो जाता है, उसमें सुवर्णके मकान हैं।

५—गरुड़की मूर्ति विष्णुके बैठनेसे अच्छी लगती है, वह अपनी पुरुषी ले।

६—प्रातःकाल लोग सोकर उठते हैं, वहाँके लोग चतुर हैं।

७—भीलोंके वहाँ चमर और हाथी दाँत लटकते रहते हैं, वहाँ चूड़ियों पर चमर लटकते हैं।

८—शेषनागकी मूर्ति शिर पर पृथ्वीको धारण करती है, उसके पास पर्वत है।

९—वेलाओं शब्द हुआ था, वहाँ घोषियोंके घर हैं।

१०—पार्वती बड़े सिंहा पर बैठी है, वहाँ सुवर्णामयके योग्य मूर्तियाँ हैं।

११—अदिति देवताओंसे, बड़ मंदिरोंसे।

१२—हिरण्यनाभ राक्षस, वहाँ सुवर्णके पाँडे फँके जाते हैं।

दीखता है । कद्रू की तरह वह भुजगोक्ती^१ आनन्द देती है । हरिवंशकी कथा की भाँति वह बाल-क्रीड़ासे^३ रमणीय लगती है । अगनोपभोग^२ प्रकट होने पर भी उसका चरित्र अरुण्डित है । वर्णरक्त^४ होने पर भी वह चूनेमे सफेद दोखती है । मोतीके हार लटक रहे हैं तथापि वह विहारभूषण^५ है और बहु-प्रकृति^६ होने पर भी वह स्थिर रहती है ।

६३—वहाँ ऊँचे ऊँचे महलोके शिखरों पर गान करती स्त्रियोंके अत्यन्त मधुर गीत स्वरसे आकृष्ट हुए सूर्यके घोड़े मुँह नीचा करके चलते हैं और रथकी ध्वजा सामने फहरानेसे प्रति दिन ऐसा मालूम पडता है मानो सूर्य, जाते जाते, महाकालेश्वरको प्रणाम करता हो । वहाँ सूर्यकी किरणें सिंदूर-मणिकी भूमियों पर मानो सव्या रागसे लाल हुईं हों, मरकतमणिके चवतूरों पर मानो नील कमलिनीका स्पर्श करती हों, वैडूर्यमणिकी भूमि पर मानो गगन-तलमें फैली हों, काले अगुरुके धूमके मडलमे मानो अँधेरेको दूर करनेमें तत्पर हों, मुक्ताहार पर मानो तारोंकी कतारको मात करती हों, स्त्रियोंके मुख पर मानो खिले हुए कमलका चुवन करती हों, स्फटिककी दीवागोकी प्रभामें मानो प्रातःकालकी चाँदनीके बीचमे पड़ी हों, सफेद ध्वजा पर मानो मदाकिनीकी तरंगरा स्पर्श करती हों, सूर्यमणि पर मानो पल्लवित हुईं हों, और इन्द्रनील मणिकी जालियोंके अन्तरालमे ऐसी शोभायमान मालूम होती हैं मानो राहुके मुँहमे पड़ी हों ।

६४—उस नगरीमें कामिनियोंके गहनोंकी कान्तिके कारण कभी अँधेरा न होनेसे चक्रवा चक्रीका नियोग नहीं होता, सुरतप्रदीप व्यर्थ होते हैं, और कामिनियोंके गहनोंकी कान्तिके कारण रात्रियाँ ऐसी मालूम होती हैं मानो कामाग्निका दिग्दाह हुआ हो और बाल-सूर्यका पिंगल प्रकाश फैल गया हो ।

१—कद्रू सपों को आनन्द देती है, वह कामुकों को ।

२—बाल राजाकी क्रीड़ा, बालकोंकी क्रीड़ा ।

३—स्त्रियोंका भोग, अँगनोका उपयोग ।

४—लाज रग, ब्राह्मणादि वर्ण अचरुकर ।

५—हार भूषण रहित, बहुत से विहारके स्थानोंसे अलकृत ।

६—चञ्चल-चित्त, अनेक प्रकारकी प्रज्ञासे युक्त ।

दया रखते हैं। उस नगरीमें पर्वतोंके समान महल हैं, मोहल्लोंके समान घर हैं और कलावृत्तके समान सत्पुरुष हैं। वह ग्रामी चित्रित दीवारोंसे मानो विश्वरूप प्रकट करती है। सध्याके समान पञ्चरागानुकारिणी^१ है। इन्द्र मूर्तिके समान शत यज्ञोंकी^२ अग्निके धूमसे पवित्र है। महादेवकी नृत्यकीञ्चके समान सुधा-धवल^३ अट्टहास-युक्त है। बूड़ी स्त्रीकी तरह जातरून^४ क्षय है। गरुड़-मूर्तिके समान अच्युत^५ दिव्यतिसे रमणीय लगती है। प्रभातके समान वहाँ सब लोग प्रबुद्ध^६ हैं। भीलोंकी वास-भूमिके समान वहाँ चमर^७ युक्त नाग-दन्तोंसे घर सफेद हो गए हैं। शेषनागकी मूर्तिकी भाँति वह आसन्न^८ वसुधा घर है। समुद्र-मथन वेलाके समान वहा बड़े बड़े घोषोंसे^९ दिगंतर भर गये हैं। प्रस्तुत अभिषेककी भूमिकी भाँति वहाँ हजारों सुवर्ण-कलश हैं। पार्वतीकी मूर्तिकी तरह वह महा अट्टहासनोचित^{१०} मूर्ति है। अदितिके समान वह देव-कुलोसे^{११} सेव्य है। वाराहावतारकी लीलाके समान वहाँ हिरण्यनाका^{१२} पात

१—सध्या पञ्चरागोंके समान लाल होती है; वह पञ्चरागोंसे लाल है।

२—इंद्रकी मूर्ति शत अश्वमेधोंसे पवित्र थी, वह सैकड़ों यज्ञोंसे।

३—महादेवका हास अमृतके समान सफेद होता है, सफेदी की हुई अटारियाँ ही उसका हास है।

४—बुढ़ियाके रूपका नाश हो जाता है, उसमें सुवर्णके मकान हैं।

५—गरुड़की मूर्ति विष्णुके बैठनेसे अच्छी लगती है, वह अपनी एकसी दशासे।

६—प्रातःकाल लोग सोकर उठते हैं, वहाँके लोग चतुर हैं।

७—भीलोंके यहाँ चमर और हाथी दाँत लटकते रहते हैं, वहाँ खूंटियों पर चमर लटकते हैं।

८—शेषकी मूर्ति शिर पर पृथ्वीको धारण करती है, उसके पास पर्वत है।

९—वेला में शब्द हुआ था, वहाँ घोसियोंके घर हैं।

१०—पार्वती बड़े सिंह पर बैठी है, वहाँ सुवर्णसनके योग्य मूर्तियाँ हैं।

११—अदिति देवताओंसे, बड़ मंदिरोंसे।

१२—हिरण्यनाक राक्षस, वहाँ सुवर्णके पाँसे फँके जाते हैं।

दीखता है । कद्रू की तरह वह भुजगोक्ते^१ आनंद देती है । हरिवंशकी कथा की भाँति वह बाल-क्रीडासे^२ रमणीय लगती है । अगनोपभोग^३ प्रकट होने पर भी उसका चरित्र अश्रद्धित है । वर्णरक्त^४ होने पर भी वह चूनेमें सफेद दीखती है । मोतीके हार लटक रहे हैं तथापि वह विहारभूषण^५ है और बहु-प्रकृति^६ होने पर भी वह स्थिर रहती है ।

६३—वहाँ ऊँचे ऊँचे महलोंके शिखरों पर गान करती स्त्रियोंके अत्यन्त मधुर गीत स्वरसे आकृष्ट हुए सूर्यके घोड़े मुँह नीचा करके चलते हैं और रथकी ध्वजा सामने फहरानेसे प्रति दिन ऐसा मालूम पड़ता है मानो सूर्य, जाते जाते, महाकालेश्वरको प्रणाम करता हो । वहाँ सूर्यकी किरणें सिंदूर-मणिकी भूमियों पर मानो संध्या रागसे लाल हुई हों, मरकतमणिके चबूतरों पर मानो नील कमलिनिका स्पर्श करती हों, वैडूर्यमणिकी भूमि पर मानो गगन-तलमें फैली हों, काले अगवके धूमके मडलमें मानो अँधेरेको दूर करनेमें तत्पर हों, मुक्ताहार पर मानो तारोंकी कतारको मात करती हों, स्त्रियोंके मुख पर मानो खिले हुए कमलका चुवन करती हो, स्फटिककी दीवारोंकी प्रभामें मानो प्रातःकालकी चँदनीके बीचमें पड़ी हों, सफेद ध्वजा पर मानो मदाकिनीकी तरंगना स्पर्श करती हों, सूर्यमणि पर मानो पल्लवित हुई हों, और इन्द्रनील मणिकी जालियोंके अन्तरालमें ऐसी शोभायमान मालूम होती हैं मानो राहुके मुँहमें पड़ी हों ।

६४—उस नगरीमें कामिनियोंके गहनोंकी कान्तिके कारण कभी अँधेरा न होनेसे चक्रमा चक्रवीणा प्रियोग नहीं होता, सुस्तप्रदीप व्यर्थ होते हैं, और कामिनियोंके गहनोंकी कान्तिके कारण रात्रियाँ ऐसी मालूम होती हैं मानो सामाजिका दिग्दाह हुआ हो और बाल-सूर्यका पिंगल प्रकाश फैल गया हो ।

१—कद्रू सपोंको आनंद देती है, वह कामुकोंको ।

२—बाल राजाकी क्रीडा, बालकोंकी क्रीडा ।

३—स्त्रियोंका भोग, श्राँगनोंका उपयोग ।

४—लाल रंग, ब्राह्मणादि वर्ण अनुरक्त ।

५—हार भूषण रहित, बहुत से विहारके स्थानोंसे अलंकृत ।

६—च चक्र-चित्त, अनेक प्रकारकी प्रज्ञासे युक्त ।

कामाग्रिको पैदा करनेवाला पालनू कलहमोका कोलाहल दिन-रात सुनाई देता है । वह ऐसा मालूम होता है मानो महादेवके पाम होनेसे कामके दाहके कारण रति प्रलाप कर रही हो । वहाँ दूर तक फैली हुई ऊँची ब्रजा-रूप भुजावाली हवेलियों ऐसी मालूम होती हैं मानो वे रात्रिको मालवेकी स्त्रियोंके मुख कमलकी कान्ति देखनेसे लज्जित हुए चंद्रके कलकको पवनसे चंचल होकर फहराती हुई बख्खकी कोरोंसे मिटाती हों । महलोंके शिखरोंमें सोती हुई वहाँकी सुदरियोंका मुँह देख कर मानो काम-वश हुआ चंद्रमा, अपनी प्रतिमाके ब्रह्मने, गाढा चंदन छिड़कनेसे शीतल हुई मणि भूमि पर गिर कर लोटता है । उस नगरीमें पिंजरेमें बैठे हुए तोते और मैना पिछली रात जाग जाग कर अत्यंत ऊँचे स्वरसे प्रभातके मंगल गीत गाते हैं, पर पालनू सारसोंके शब्दको पराजित करनेवाले-चारों ओर फैले-विलासिनी स्त्रियोंके गद्दोंके शब्दमें समा जानेसे वे व्यर्थसे होते हैं ।

६५—वहाँ अनिवृत्ति^१ मणि प्रदीपोंकी है । तरलता^२ हारमें है । अस्थिति^३ संगीत और मृदंगकी ध्वनिमें है । द्व द्व-त्रियोग चक्रमाकको है । वर्ण^४-परीक्षा सुवर्णकी है । अस्थिरता^५ ब्रजामें है । मित्र^६-द्वेष कुमुदोंमें है । कोप गुति^७ तलवारोंमें है । कहीं तक कहा जाय—अधकासुरके शत्रु भगवान् श्री महाकालेश्वर कैलाशवासकी प्रीति छोड़ स्वयं बहा आ रहे हैं । देव दानवोंके मुकट मणियोंकी किरणें उनके चरण-नख-किरणोंका चुवन करती हैं । तीक्ष्ण धारवाले त्रिशूलसे उन्होंने अधकासुरको चीर डाला था । पार्वतीके पायजेयके सिरेसे

१—मणि दीपकों को बुझनेका अभाव है, लोगोंको सुखका अभाव नहीं ।

२—हार मध्यके मणिसे युक्त है, किसीके मनमें चंचलता नहीं ।

३—ध्वनिमें विचित्रता है, लोग मर्यादा हीन नहीं हैं ।

४—सुवर्णके रंगकी परीक्षा देती है, ब्राह्मणादिकी नहीं, क्योंकि वहाँ सब वर्ण शुद्ध हैं ।

५—चंचलता ।

६—कुमुद ही सूर्यसे द्वेष करते हैं, कोई मित्रोंसे द्वेष नहीं करता ।

७—तलवारें म्यानमें रखी जाती हैं, लोगोंको खमाना उपानेकी जरूरत नहीं, क्योंकि वहाँ चोर नहीं ।

उनके माथेका चंद्रमाका टुकड़ा घिस गया है । उन्होंने शरीर पर त्रिपुगसुरकी राखका लेप किया है । कामदेवके नाशसे शोकातुर होकर आराधना करती रतिने फैले हुए दोनों हाथोंसे गिरे कर्णोंसे उनके चरणोंकी पूजा की, और प्रलयकालकी अग्नि-ज्वालाके समान उनकी कपिल जटामें गगा घूरा करती है ।

६६—इस प्रकारकी उस नगरीमें नल, नहुष, ययाति, बुधुमार, भरत, भगीरथ और दशरथके समान प्रजा की पीड़ा हरनेवाला तारापीड़ नामका राजा था । उसने अपनी भुजाओंके बलसे सब भूमंडलको जीत लिया था । उसकी तीनों शक्तियाँ फलीभूत हुई थीं । वह बुद्धिमान और उत्साही था । नीतिशास्त्रमें उसकी बुद्धि बहुत पैनी थी । उसने धर्मशास्त्र का अध्ययन किया था । वह तेज और कान्तिमें सूर्य-चन्द्रके समान एक तीसरा और था । अनेक यज्ञ करनेसे वह पवित्र हो गया था । सब सतारके सकुटोंको उसने दूर कर दिया था । शूरोंके पास रहनेकी शौकीन, तथा हाथमें पिला हुआ कमल धारण करनेवाली लक्ष्मी भी कमल-वन छोड़ और नागयणके वनस्थलमें रहने की परवा न करके निष्कपट होकर उससे आ लिपटी थी । जैसे विष्णुका चरण बड़े बड़े मुनियों द्वारा सेवन किए गए मदाविनीके प्रवाहका निर्गम-स्थान है उसी तरह वह सत्यका जन्म हेतु था । समुद्र जैसे चंद्रका उत्पत्ति स्थान है उसी भाँति वह यशका उत्पत्ति-स्थान था । उसका यश शिशिर होने पर भी शत्रुओंको सताप^१ देता था, स्थिर^२ रहने पर भी दिन-रात भ्रमण करता था, निर्मल होने पर भी शत्रुओंकी विरहिणी स्त्रियोंके मुख कमलकी कातिको मलिन कर देता था और अत्यन्त धवल होने पर भी सब जनोंको रक्त^३ करनेवाला था । पल्लच्छेद^४के भयसे क्षिति-वर-कुलोंने पातालके समान उसका आश्रय लिया था ।

१—दाह, चित्तमें चीन ।

२—अचंचल; नाश-रहित ।

३—लाल, अनुरक्त ।

४—पर्वतोंने पल कटनेके डरसे पातालका आश्रय लिया था, राजा जोगोंने अपने पंचके नाशके डरसे उसका सहारा लिया था ।

ग्रहगणकी तरह वह बुधानुगत^१ था । कामदेवकी तरह वह विग्रह^२-रहित था । दशरथके समान सुमित्रोपेन^३ था । महादेवके समान वह महासेनानुगत^४ था । शेषनागके समान वह जामा-भार^५ गुह था । नर्मदा प्रवाहके समान वह महा वश^६में उत्पन्न हुआ था । वह वर्मका मानो अतार और पुरुषोत्तमका मानो प्रतिनिधि था ।

६७—अज्ञानके प्रसारसे मलिन शरीरमाले और पापसे भरे कलिकालने घर्मको जड़से हिला दिया था । उसे राजा तारापीड़ने इम तरह फिर स्थापित किया जैसे रावणसे चलायमान किए गए कैलाशको महादेवने रोक कर स्थिर किया था । उसे लोग ऐसा समझते थे मानो रतिका प्रलाप सुन कर हृदयम दया उत्पन्न होनेसे महादेवने दूसरा कामदेव पैदा किया हो । अपनी भुजाके जोरसे जीते हुए तथा भयसे चकित और चंचल दृष्टिवाले राजा बड़ी-बड़ी दूरसे आकर उसके चरणोंकी आराधना करते थे, जिससे उनके मुकुटों पर वने हुए फूल-पत्रोंके सत्रिभाग उसके चरण-नखोंकी फिरणोंसे चित्रित हो जाते थे । समुद्रकी तरंगोंसे जिसकी मेखला धुल गई है, पत्तोंके बीच-बीचमें विचरते तारोंसे जिसके तटके वृक्षोंके फूल दूने हो गये हैं, उदय होते चंद्रध्रुव मेंसे रिमती हुई अमृतकी बूंदोंकी वर्षासे जहाँ चंदनवृक्ष गीले रहते हैं, सूर्यके रथके घोड़ोंके खुगोंकी रगड़से जहाँके लवण-पल्लव खडित हो गए हैं और ऐरावतकी सूँडसे जहाँ सल्लकीवृक्षके पत्ते तोड़े गए हैं ऐसे उदयाचल तरुसे, जहाँ चन्द्रोपे तोड़े जानेके कारण लवली-फल थोड़े ही बचे हैं, समुद्रमेंसे ही हुई जल देवियाँ जहाँ रामचन्द्रके चरणोंकी वन्दना करती हैं, पर्वतों मेंसे टूटे शखोंके टुकड़ोंसे जहाँ शिलातलों पर तारे से बिखर रहे हैं जो नलके हाथसे दकड़े भिये गए हजारों पर्वतोंमें बना है ऐसे सेतुग्रन्थ

१—युग ग्रह, पंडित ।

२—शरीर-रहित, युद्ध-रहित ।

३—सुमित्रासे युग, उत्तम मित्रोंसे युग ।

४—कार्तिभय, बड़ी सेना ।

५—पृथ्वी गण-ज्ञान, शान्ति के भारसे गौराभियत ।

६—गोलाकी भाँड़ी, महा कुब ।

तकसे, स्वच्छ भरनोके जलसे जहाँ तारे धुल जाते हैं, अमृत मथन करते समय नारायणके वाज्रचक्रके मकर-चिन्हके सिरे घिसनेमे जिसके पत्थर चिकने हो गये हैं, लिगटे हुए वासुकि नागको सहज बलसे खींचनेमे डिगमिगाते देव-दानवोंके चरणों के भारसे जिमका बीचका हिस्सा छिद गया है और अमृतके फव्वारोंसे जिसके शिखर सींचे गए हैं ऐसे मदराचल तकसे, नर-नारायण के चरणोंसे चिन्हित हुए वद्रीकाश्रमके कारण जो रमणीय लगता है, अलकापुरीकी सुन्दरियोंके गहनोंकी भनभनाहटसे जिसके शिखर गुँज रहे हैं, सतपियोने सव्योपासन करके जिसके भरनोंका पानी पवित्र किया है और भीमसेनके द्वारा तोडे गए सोगन्धिक फूलोंसे जिसकी मेखला सुगन्धित हुई है ऐसे गधमादन पर्वत तकसे आकर बड़े बड़े राजा सेवाञ्जलिरूप कमलकी कलीसे विपम हुए शिरोसे उसको प्रणाम करते थे । उसके सिंहासनमेंसे अनेक रत्नोंकी क्रिणें फैल री थीं और उनमें मोतियोंकी जालियाँ बंध रही थीं । उस पर बैठा हुआ वह ऐसा मालूम होता था जैसे कल्पतरु पर दिग्गज विराजमान हो । उसके सिंहासन पर बैठनेसे सब विल्लीयँ दिशाएँ भारसे इस प्रकार झुक गईं जैसे भौरोंके बैठनेसे लता झुक जाती है । मेरे खयालमें इन्द्र भी उसके साथ स्पृहा करता था । उसमेसे गुण इसी तरह फैलते थे जैसे कौंच पर्वतमेंसे हंस निकलते हैं । उन गुणोंसे सब भुवन तल बवल हो जाता था और सब लोकोंके हृदयको ग्रानद मिलता था । सुरासुर लोकको बवल करनेवाली उसकी कीर्ति मदराचलसे उछाले गये दूबवाले समुद्री फेन लेखाके समान थी और उसकी परिमल अमृतसुगन्धिके समान उत्तम थी । वह भुवनोंको मुखर करती हुई दशों दिशाओंमें भ्रमण करती थी । उसके प्रतापके दु सह सतापसे मानो खिन्न हुई राज लक्ष्मी जगभर भी उसके छत्रकी छायासे दूर नहीं दृष्टी थी । सब लोग भाग्यके अभ्युदयके समान उसके चरित्र सुनते थे, उद्देशकी तरह उनका ग्रहण करते थे, मंगल-मर्यादी भक्ति प्रशसा करते थे, मन्त्रके समान जप करते थे और शास्त्र-चर्चनके समान दिन रात स्मरण करते थे ।

६८—उम राजाके राज्यमे पृथ्वी पर विपत्तता^१ पर्वतोंहीको थी, परत्वर

१—पर्वतोंहीके पंख काटे गए थे, प्रजामे द्वेष-बुद्धि नहीं थी ।

२—प्रत्यय ही शब्दके पीछे आते थे प्रजामें शत्रुता नहीं थी ।

जगमं उनके समान सत्रि विग्रह^१ युक्त था, महादेवकी तरह प्रमाधित^२ दुर्ग था, और युत्रिष्टिरकी तरह धर्म प्रभव^३ था । सत्र वेद और वेदागांका जानता था । सत्र राज्यके मंगलका वही एक मार था और उमकी पत्नी बुद्धिका प्रवेश सत्र कामोमे था । नारायणका वन स्थल नरकासुरके शस्त्रोंकी चोटमे भयकर हो गया था और कवे भ्रमण करते हुए मद्राचलके निर्दम धर्मणसे कठिन हो गए थे, वहा रहती हुई लक्ष्मीको भी वह अपने बुद्धिचलने दुर्लभ नहीं समझता था । अनेक^४ राज्यरूपी फल दिखलाती लतारूप बुद्धि उम महावृद्ध रूमी प्रधानके समागमसे असख्य प्रतानोसे गहन होकर विस्तार पा गई थी । चारों समुद्रा तक सत्र पृथ्वी पर उसके हजारो जासूस फिरते थे, जिसमे वहाँके अनेक राजाओंके सौंस लेनेकी खबर भी उसे इस तरह मालूम हुए बिना नहीं रहता थी मानो सत्र भुवनचल अपना ही घर हो ।

१—जरासंधका शरीर जुड़ा हुआ था, शुकनास मेल और लड़ाई करता था । राजा बृहद्रथ के बहुत दिन तक कोड़े पुत्र नहीं हुआ । उसने कौशिकसे प्रार्थना की । उन्होंने उसे एक आम दिया । राजाने आमके दो भाग करके आधा आधा अपनी दोनों रानियों को दिया । उसे ग्राह्य रानियाँ गर्भवती हुईं और उन्होंने एक पुत्रके आवे आवे शरीरको जन्म दिया । इससे डरकर राजाने उसे श्मशान पर फेंकवा दिया । जरा नामकी राजसी भोजनकी तलाश में श्मशान पर घूम रही थी । उसने इन दोनों हिस्सोंको देखा और ले जानेके प्रयत्नसे साथ-साथ रख दिया । पर ज्यों ही दोनों हिस्से आपसमें मिले इनसे एक जीवित बालक हो गया जो रोने लगा । यह देव जराके हृदयमें करुणा उत्पन्न हो गई और उसने बालकको राजाकी भेंट किया । इस घटनाके कारण बालक का नाम जरासंध पड़ा ।

२—महादेवजी पार्वतीको प्रसन्न करते हैं, शुकनास कित्तोंको अपने अधि-कारमें रखता था ।

३—युत्रिष्टिर धर्मका पुत्र था, शुकनास नीति में आदिका उपति स्थान था ।

४—अर्थात् वह अपनी बुद्धिमें राज्यमें ऐसे ऐसे काम करता था जिनसे प्रजाको उत्तम शासनके अनेक लाभोका अनुभव होता था ।

७०—उस राजाका ऐरावतकी सूँडके समान स्थूल भुज-दड राज्यलक्ष्मीकी क्रीडाके तकियेके समान, समग्र जगत्को अभय-प्रदान-रूपी यज्ञ दीक्षा देनेमें लक्ष्मीके समान, चमकते हुए खड्गकी किरणोंके जालसे ढका हुआ और सब शत्रु-कुलके प्रलयकी सूचना देती धूमकेतुकी पूँछके समान मालूम होता था । उससे राजा तारापीडने सप्तद्वीप रूपी कंरुणवाली पृथ्वीको चाल्यावस्थामें ही जीत कर तथा शुक्नास नामक अपने मित्रके समान मन्त्रीसे सब राज्यका भार सौंप कर प्रजाको स्वस्थ किया । सब शत्रुओंके नाशसे चिन्ता दूर हो जानेके कारण उसे अन्य कुछ कर्तव्य बाकी नहीं दीखा, इसलिए पृथिवीके कामको शिथिल कर उसने प्रायः जवानीके सुखका अनुभव किया । कभी कभी वह काम-वश होकर सुरत-क्रीडा करता था, जो कि प्रियाओंका अधरदश होनेसे कौंपते हाथोंमें हिलते हुए मणिमय कंकणोंके कलकलसे रमणीय लगती थी, वेगमें दूटे हुए कर्णभूषणके टुकड़ोंसे शय्या ऊँची नीची हो जाती थी, ऊँचे किये हुए चरणोंमेंसे लगे अलकुरुसे सिर लाल लाल हो जाता था, वेगसे बाल पकड़नेसे मणि-कर्णपूर चूर चूर हो जाता था, स्तनोंका उभार होनेके कारण उन पर काले अंगरके लेपसे रची हुई पत्रलतासे ऊपरका बख अंकित हो जाता था, स्वच्छ पसीनेकी महीन महीन बूँदोंसे गोरोचनके तिलक और पत्र-भग विगड जाते थे, गालों पर रोमाच होनेसे जर्जरित हुए कर्णप्रान्तवाली प्रिय युवतियाँ चन्दन जलकी धाराके समान अपनी हास्यामृत कातिसे उसका अभिषेक करती थीं, कर्णोत्पलोंके समान नेत्र-किरणोंसे उस पर प्रहार करती थीं, केसर-रजके समान गहनोकी प्रभासे उसके नेत्र भर देती थीं, अपने हाथकी, श्वेत बन्धके समान, नख किरणोंसे उसका ताड़न करती थीं और चम्पाके फूल-पत्तोंकी मालाके समान, अपनी भुजलताओंसे उसे बाँध लेती थीं । कभी कभी वह सुमर्गकी विचकारियोंमें बहुत देर तक क्रीडा करता था । वहाँ कामिनिशे के करतु मटमेंसे निकलती हुई कामदेवके सुमर्गके गणोंकी कतार के समान केसरिया जलकी धाराओं से उसका सिर पीला-पीला हो जाता था । लाला-जलकी धाराके प्रहारसे उसका रेशमी वस्त्र लाल-लाल हो जाता था, और कलूरी-युक्त जलकी बूँदोंसे उसका चन्दन-लेप चितकरा हो जाता था । कभी कभी वह रत्नाक्षरी चित्रोंके साथ जल-क्रीडा करता था । तब गृह-सरोवरों

के जलमे न्तनोत्र चंदन धुल जानेसे उनकी तरंगे धवल हो जाती थीं, पायजेव हिलनेसे भनभनाहट करने चरणोमे लगा अलक्तकरस हंसमिथुन पर छिड़क जाता था, बालोंकी लटोमेसे त्रिखरे फूलोंसे जल विचित्र हो जाता था, कर्णपूरके कमल पत्र तैरने लगते थे, ऊंचे ऊंचे नितत्रोंके क्षोभसे तरंगे छिन्न-भिन्न हो जाती थीं, नालसे तोड़ कर फेंके हुए कमलोंकी रज फैव जाती थी और बार बार पानी को हाथसे हिलोडनेसे उड़ती हुई भागकी वूँदोंसे चद्राकार बन जाते थे । कभी-कभी सकेतसे ठगी गई प्रियाएँ उसके अपराध करने पर भ्रुकुटि टेडी करके, भनभनाते मणि-करुणोंसे शब्दायमान भुजलताओंके द्वारा मालसिरी के फूलोंकी मालासे उनके पैर बाँध कर नटा किरणोंसे मिश्रित पुष्पहारोंसे दिनमे ताड़ना करती थीं । कभी कभी स्त्रियोंके मुखम भरे मदिराके घूँटके त्यादसे ग्रानदित होकर वह वकुल वृक्षकी तरह विकास^१ पाता था । कभी कभी सुदरियोंके चरण-तलके प्रहारसे लगे हुए अलक्तकरससे अशोक वृक्षके समान उसे राग^२ उत्पन्न होता था । कभी कभी वह बलरामके समान चंदन^३ श्वेत कंठमे हिलती हुई कुसुम-माला पहनकर मद्यपान करता था । कभी कभी मद^४से लाल हुए गाल पर झून्ते कर्णपल्लवत्राला वह मदमत्त राजा, गधगजके समान, खिले हुए वन-जता कुसुमोंकी उत्तम सुगंधसे युक्त वनमे फिरता था । कभी कभी वह भनभनाते नूपुर-^५शब्दसे ग्रानदित होकर दसभी तरह कमल-वनमे क्रीड़ा करता था । कभी कभी मृगपतिके समान कंधे पर

१—वकुल खिलता है, राजा सुसकुराता था ।

२—अशोकमे लाल फूल निकलते हैं, राजा को अनुराग होता था ।

३—बलरामका कंठ चंदन लगानेसे बनत था, राजाका कंठ चंदनके समान बनत था ।

४—दानमे मत्त हुए हाथीके दानमे लाल हुए गाल पर उसके तपे कान झून्ते हैं, मदसे मत्त हुए राजाके मदसे लाल हुए गाल पर कानमें पड़ना हुआ पल्लव झून्ता था ।

५—इस नूपुरकी भनभनाहटके समान शब्दसे ग्रानदित होता है, राजा नूपुर-शब्दसे ।

केनरमाल लटका कर झोड़ा-पर्वतों पर विचरता था। कभी-कभी भौंरेकी तरह, खिजती हुई फूलोंकी कलियोंसे भरे लतामडगोंमें भ्रमण करता था। कभी कभी नीले वस्त्रसे मुँह ढक कर कृष्ण-पद्मकी रात्रिके प्रदीपके समयमें सकेत करनेवाली सुदरियोंसे मिलने जाता था। कभी कभी महलके भीतर सुवर्णके किवाड़ खोल कर खिड़कियाँ खोल लेता था, वहाँ दिन-रात जलते काले श्रगवके धूमसे मानो रंगे हुए कबूतर अपने दड्डोंमें रहते थे, वहाँसे कितने ही प्रिय निगाके साथ बीणा, वेणु, और मृदंगते मरोहर—ग्रन्-पुष्पा—सगीत देखता था। सागश यह है कि जो कुछ अत्यंत रमणीय, मनोरंजक और उस समयके तथा भविष्यकालके अनुकूल था उसका सब सुख राजाने भोगा, क्योंकि पृथ्वीके सब काम पूरे हो गए थे। पर उस सुखमें न तो राजाने अपने चित्तको लीन किया और न वह उसका व्यसनी हो गया। महीमडलके सब कार्य समाप्त कर, प्रजाका रजन करनेवाले ऐसे राजाकी विषयोपभोग-लीला उसका भूषण है, परंतु ग्रन्थ राजाओंकी तो विडंबना है। प्रजाके अनुरागके कारण बीच-बीचमें वह स्वयं दर्शन देता था और प्रयोजन होने पर सिंहासन पर विराजमान होता था।

७१—शुक्रनास भी बड़े भारी राज्यका भार अपने बुद्धि बलसे श्रनायास ही धारण करता था। जिस प्रकार राजा सब काम करता था उसी तरह वह भी प्रजाके साथ दुगना अनुराग करके करता था। उसे भी चलायमान हुए चूड़ामणियोंकी किरणोंसे भरे हुए मुकुटोंसे राजा लोग जब प्रणाम करते थे तब नीचे झुकाए हुए फूलोंके शेखरोंमेंसे टपकते मधुसे सभाका स्थान गीला हो जाता था और अत्यंत नीचे झुकनेके कारण लटकते मणि कुडलोंके किनारे उनके वाजूतदोंसे रगड़ने लगते थे। उसके प्रयाण करने पर दशों दिशाओंमें दौड़ने घोड़ोंकी टापोंकी आवाजसे भुवनोंके अन्तराल बहरे हो जाते थे, सेनाके बोझसे चलायमान हुए पृथ्वीतल पर पर्वत डिगमिगाने लगते थे, मद रिसनेसे अंधे हुए गध-गजकी दान-धारासे अंधेरा छा जाता था, उड़ती हुई धूलके ढेले समुद्रोंका रंग मटियाला हो जाता था, चलते हुए पैदलोंकी पंक्तियाँ जाने जाने परदे फट जाते थे, ग्रहन जोरसे बराबर उच्चारण किया गया

१—सिंह सदा खटकता है, राजा बहुत दुश्मनोंकी माला ।

जय शब्द सत्र और व्याप्त हो जाता था, हिलते हुए हजारों सफेद चमर पृथ्वीको ढक लेते थे और इकट्ठे हुए राजाओंकी सुवर्णकी उड़ियोंकी छत्रियोंके पाम पाम मिड़ जानेसे दिनकी कान्ति नष्ट हो जाती थी ।

७२—इस प्रकार मर्त्रीको राज्यका भार मोप कर वह राजा यौवन सुरजके अनुभवमें काल व्यतीत करता था । फिर बहुत समयमें वह ग्रन्थ सप्त साप्ताहिक सुखोंके प्रायः अतको पहुँच गया परन्तु पुत्रके देखनेका सुख उसको नहीं मिला । ऐसे ऐसे भोगोंके होने पर भी रनवास उसे निष्फल पुष्प-दर्शन-युक्त बाण उसके समान लगने लगा । जैसे जैसे यौवन वीतने लगा जैसे जैसे ही मनोरथ सफल न होनेसे अनपत्यताका सताप भी खून बढ़ता गया । विषय-भोगके सुखमें उसका मन हटने लगा । हजारों राजा लोगोंसे परिचुत होने पर भी मानो ग्रमहाय हो, नेत्र होने पर भी मानो ग्रन्धा हो और सत्र भुवनोमा आघार होने पर भी मानो निरावार हो—इस भाँति वह अपनेको मानने लगा ।

७३—महादेवके जटा कलापको जैसे चन्द्र-कला, विष्णुके वज्र स्थलको जैसे नास्तिक प्रभा, बलदेवको जैसे वनमाला, सागरको जैसे वेला, दिग्गजको जैसे मदनी लेखा, वृद्धको जैसे लता, वसन्तको जैसे कुसुमोद्गति, चन्द्रमाको जैसे चाँदनी, सरोवरको जैसे कमलिनी, आकाशको जैसे तारोकी पक्ति, मानसरो-वरको जैसे हम-माला, मलयान्चलको जैसे चदन वनकी कतार और शेषनागका जैसे फनकी मणिकी ज्योति होती है उसी भाँति सत्र अन्त पुरमें विलामवती नामकी तारापङ्क्ति मुख्य महिषी थी । वह तीनों भुवनमें विस्मय पैदा करती थी और छत्रियोंके विलासकी मानो पैदा करनेवाली थी ।

७४—एक दिन जब राजा रानीके महलमें गया तब क्या देखता है कि वह एक छोट्टेसे उज्ज्वल पलंग पर बैठ कर रा रही है । उसके आस-पास गड़ी हुई दासियोंकी दृष्टि चिन्तासे जड़ हो गई थी और शोकके कारण सत्र चुपचाप थी । ध्यानमें एकाग्र दृष्टि करके पास खड़े हुए कचुकी उसकी मेया धरते थे । अन्त-पुरकी जुड़ियाँ तब दूर खड़ी होकर उसका आश्वासन करती थी । परापर आँसू

१—बाण वासमें फूल तो बहुत निकलते हैं, पर फल नहीं लगते, छत्रियोंकी रीति-रिवाज तो होता, पर सतान नहीं होती थी ।

गिरनेसे उसका वस्त्र गीला हो गया था, उसने सब गहने उतार डाले थे, चाँई हथेली पर अपना मुख-कमल रख लिया था और उसके बालोंकी खुली लट्टें इधर-उधर फहरा रही थीं। राजाको देखते ही उसने उठ कर उनका सत्कार किया, पर राजाने उसे तुरंत उसी पलंग पर फिर बैठा दिया और आप भी वहीं बैठ गया। लेकिन रानेका कारण न जाननेसे वह जरा घबरा गया और अपने हाथसे ही उसके दोनों गालोंसे आँसू पोंछते पोंछते कहने लगा—
 देवि, हृदयमें प्रबल शोक दाव कर तुम चुपचाप क्यों रोती हो? देखो, ये तुम्हारे पलक मोतियोंके हारके समान, मानो, अश्रु विंदुओंका हार गूँथते हैं। कुशोदरि, तुमने आज गहने क्यों नहीं पहने? लाल कमलकी कलियोंके समान चरणों पर प्रातः कालीन सूर्यके प्रकाशके समान महावर क्यों नहीं लगाई? मदन-सरोवरके कलहसोंके समान मणि-नूपुरों पर आज चरण-स्पर्शका अनुग्रह क्यों नहीं किया? प्रिये, आज तागड़ी उतार कर कमरको चुप क्यों कर रक्खा है? आज तुमने पयोधरों पर, चंद्रमामें हिरनके समान, काले अगस्त्यकी पत्र-रचना क्यों नहीं की? सुन्दरि, महादेवके मुकुटकी चन्द्रकलाके समान अपनी गर्दनका गगा-प्रवाहके समान हारसे क्यों शृङ्गार नहीं किया? विलासिनि, आज तुमने आँसू डाल डाल कर गालों परसे कुकुम-पत्रलता क्यों धुँवा धो डाली है? आज तुमने कोमल उँगली रूप पखड़ीवाले लाल कमलके समान करतलका कर्णपूर क्यों बनाया है? माथे में गोरोचनका तिलक क्यों नहीं लगाया? आज तुमने लटकोंको क्यों नहीं गूँथा? देवि, चद्रलेखा-रहित कृष्णपद्मके प्रदोषके समान तुम्हारी अत्यंत काली पुष्पविहीन चोटी मेरे नेत्रोंको दुःख देती है। इसलिए, देवि, प्रसन्न होओ, दुःखका कारण कहो; तुम्हारे लबे लबे श्वासकी पवन छाती पर पड़े वस्त्रको हिलाती हिलाती मेरे हृदयको कंपाती हैं। शापद मुझसे या मेरे किसी परिजनसे कुछ अपराध हो गया है। खूब विचार करने पर भी मुझे तो सूझता नहीं कि सचमुच तुम्हारे सवधमें मुझसे कुछ दोष हुआ है। मेरा जीवन और राज्य तुम्हारे अधीन है। इसलिए, सुन्दरि, शोभा कारण मुझसे कहो। इतना कहने पर भी खूब विलासवतीने कुछ उत्तर न दिया तब राजा उसकी दाखियोंसे उसके अधिकाधिक आँसू गिरानेका कारण पूछने लगा।

७५—इतनेमें मकरिका नामकी तानूलवाहिनीने राजाको जवाब दिया— महाराज, आपका जरासा भी दोष कैसे हो सकता है ? और न आपके सामने कोई परिजन अपराध कर सकता है । परन्तु किसी महाग्रहसे पीड़ितकी भौंति मेरे साथ राजाका समागम निष्फल है—इस प्रकारकी चिंता ही देवीको हुआ करती है । यह बहुत समयसे सताप भोग रही हैं । असुरश्रीके समान निदित सुगता रानी पहले भी शयन, स्नान, भोजन, भूषण आदि दिनका उचित व्यापार करनेको परिजनोंके अत्यन्त प्रयत्न करने पर किसी तरह तैयार होती थीं और शोकसे व्याकुल सी रहती थीं, परन्तु आपके दृष्टिको दुःख न हो इस कारण जरासा भी विकार प्रकट नहीं होने देती थी । आज चौटस थी, इस कारण यह भगवान् महाकालेश्वरका पूजन करनेके लिए गई थी । वहाँ महाभारतकी कथा होनी थी । उसमें इन्होंने सुना कि पुत्र हीनको स्वर्ग नहीं मिलता, पु नामक नरकसे निकालनेवाला ही पुत्र कहाता है । यह सुन कर आने पर दासियोंके नम्रता-पूर्वक प्रार्थना करने पर भी यह न भोजन करती हैं, न शृङ्गार करती हैं और न कुछ उत्तर देती हैं । केवल अश्रु-दिग्गोत्री निरन्तर वर्षासे मुख पर अंधकार करके रो रही हैं । अब जैमी महाराजकी आज्ञा । इतना कह कर वह चुप हो गई ।

७६—उसके कह चुम्बनेके बाद थोड़ी देर चुप रह कर राजाने लकी लकी गरम साँस लेकर कहा—देवि, जो वस्तु दैवके अधीन है उसमें हम क्या कर सकते हैं ? बहुत रोना व्यर्थ है । हम इस योग्य नहीं हैं कि देवता हम पर अनुग्रह करें । सच्चमुच हमारा दृश्य पुद्गलिंगन-रूपी अमृतास्वादके सुगन्ध पात्र नहीं है । जन्मान्तरमें हमने पुण्य नहीं किए हैं । पूर्व जन्ममें प्राणी जो काम करते हैं उनका फल उनको इस जन्ममें मिलता है । चाहे कितना यत्न करो, दैव-नियोग नहीं बदला जा सकता, तो भी जो कुछ मनुष्योंसे हो सके वह सब करना चाहिए । देवि, गुहजनोंकी श्रमिक मक्ति करो, देवताओंकी दूनी पूजा करो, ऋषियोंकी सेवामें आदर दिखाओ—मर्कोंके वे बड़े भारी देवता हैं । यत्नमें उनकी आराधना की जाए तो वे अनाइ फलके अत्यन्त दुर्लभ पर भी देसते हैं । कहा जाता है कि पहले चंडमणिकके प्रमादसे मगधके दृष्टय राजाको

१—असुर श्री देवताओंकी निन्दा करती है, रातो सुखदा ।

जराबन्ध नामक पुत्र प्राप्त हुआ था। वह शौर्यमें अद्वितीय था, उसकी भुजाओंमें अतुल बल था और उसने विष्णुका पराजय किया था। राजा दशरथ बूढ़े हो गये थे तो भी विभाण्डक महामुनिके पुत्र ऋष्यशृङ्गके प्रसादसे उसको नारायणकी बाहुके समान अजेय और असुद्रके समान क्षोभरहित चार पुत्र मिले थे। इसी प्रकार अन्य राजर्षियोंने भी तपस्वियोंकी आराधना करके पुत्र दर्शनरूपी श्रमृत-स्वादका सुव भोगा है क्योंकि महामुनियोंकी सेवा कभी निष्फल नहीं होती। देवि, प्रफुल्ल गर्भके भासे मद हुई, फीके मुखवाली और, जिसमें पूर्ण चन्द्र उदय होनेको हो, ऐसी पत्नीकी रात्रिके समान तुमको मैं कब देखूँगा? पुत्र-जन्मके महोत्सवके आनन्दमें मग्न हुए मेरे परिजन कब मुझसे पूर्ण-पात्र ले जायेंगे? उदय हुए सूर्य मडलसे युक्त, बालातपसे प्रकाशित आकाशके समान, पीले वस्त्र पहन कर पुत्रको गोदमें लिये तुमको देख कर मैं कब आनन्दित हूँगा? सर्वोपधि लगानेके कारण जिसके बाल उलझ गये हो, जिसके तालु पर मन्त्रित किये हुए धीकी बूँदें डाल कर फिर उस पर सरसों मिली हुई थोड़ीसी विभूति डाली हो, जिसके कठ-सूत्रकी गाँठ गोरचनसे रँगी गई हो, जो चित्त सोता हो और बिना दाँतके मुँहसे मन्द मन्द मुसकुराता हो ऐसा पुत्र कब मेरे हृदयको प्रसन्न करेगा? गोरचनके समान पीली फान्तिवाला, रन-वासमें एकसे दूसरीके हाथमें बार बार जाता और सब जनोंसे वदित, मंगल-प्रदीपके समान, पुत्र कब मेरे नेत्रोंके शोभाधकारको मिटावेगा? धरतीकी धूलके लग जानेसे मटियाला होकर वह कब मेरे हृदय और दृष्टिके साथ ही घूमता घूमता महलके आँगनोंको शोभायमान करेगा? घुटनोंके बल चलनेके योग्य होने पर वह कब स्फटिक मणिनी दीवारोंसे दीखते पालतू हिरनोंके बज्रोंको पकड़नेकी इच्छासे सिंहके जच्चेके समान इधर उधर दौड़ेगा? रनवासकी लिरोंके पायजनोंको भ्रमभ्रमाहटका अनुसरण करते पालतू कल-हंसोंके गीछे एकसे दूसरी बगलमें दौड़ कर सोनेकी तागड़ीके चोरोंके शब्दके पीछे भागती अपनी धात्रीको बह कब कष्ट देगा? काले श्रगुनी रेखाओंसे

२—उत्सवके समय हर्षके कारण जो थलकार, वस्त्र आदि हठ-पूर्वक लिये जाते हैं इनको पूर्णपात्र कहते हैं।

७५—इतनेमें मकरिका नामकी ताबूलवाहिनीने राजाको जवाब दिया— महाराज, आपका जरासा भी दोष कैसे हो सकता है ? और न आपके सामने कोई परिजन अपराध कर सकता है । परंतु किसी महाग्रहसे पीड़ितकी भाँति मेरे साथ राजाका समागम निष्फल है—इस प्रकारकी चिंता ही देवीको हुआ करती है । यह बहुत समयसे सताप भोग रही हैं । असुरश्रीके समान निर्दित सुगता रानी पहले भी शयन, स्नान, भोजन, भूषण आदि दिनका उचित व्यापार करनेको परिजनोंके अत्यंत प्रयत्न करने पर किसी तरह तैयार होती थीं और शोकसे व्याकुल सी रहती थीं, परन्तु आपके दृष्टिको दुःख न हो इस कारण जरासा भी विकार प्रकट नहीं होने देती थी । आज चौदस थी, इस कारण यह भगवान् महाकालेश्वरका पूजन करनेके लिए गई थी । वहाँ महाभारतकी कथा होनी थी । उसमें इन्होंने सुना कि पुत्रहीनको स्वर्ग नहीं मिलता, पु नामक नरकसे निकालनेवाला ही पुत्र कहाता है । यह सुन घर आने पर दासियोंके मन्त्रा-पूर्वक प्रार्थना करने पर भी यह न भोजन करती हैं, न शृङ्गार करती हैं और न कुछ उत्तर देती हैं । केवल अश्रुदुग्धोंकी निरंतर वर्षासे मुख न अंधकार करके रो रही हैं । अब जैसी महाराजकी आज्ञा । इतना कह कर वह चुप हो गई ।

७६—उसके कह चुम्बनेके बाद थोड़ी देर चुप रह कर राजाने लंबी लंबी गरम साँस लेकर कहा—देवि, जो वस्तु दैवके अधीन है उसमें हम क्या कर सकते हैं ? बहुत रोना व्यर्थ है । हम इस योग्य नहीं हैं कि देवता हम पर अनुग्रह करें । सचमुच हमारा हृदय पुत्रालिंगनरूपी अमृतस्वादके सुखका पात्र नहीं है । जन्मान्तरमें हमने पुण्य नहीं किए हैं । पूर्व जन्ममें प्राणी जो काम करते हैं उनका फल उनको इस जन्ममें मिलता है । चाहे जितना यत्न करो, दैव-नियोग नहीं बदला जा सकता, तो भी जो कुछ मनुष्योंसे हो सके वह सब करना चाहिए । देवि, गुरुजनोंकी अधिक भक्ति करो; देवताओंकी दूनी पूजा करो; ऋषियोंकी सेवामें आदर दिखाओ—इसके वे बड़े भारी देवता हैं । यत्नसे उनकी आराधना की जाय तो वे अभीष्ट फलके अत्यंत दुर्लभ वर भी देदेते हैं । कहा जाता है कि पहले चंडकौशिकके प्रसादसे भगवत्के वृहद्रथ राजाको

१—असुर श्री देवताओंकी निन्दा करती है, रानी सुरतज्ञ ।

जरामन्ध नामक पुत्र प्राप्त हुआ था। वह शौर्यमें अद्वितीय था; उसकी भुजाओंमें अतुल बल था और उसने विष्णुका पराजय किया था। राजा दशरथ बूढ़े हो गये थे तो भी विभाण्डक महामुनिके पुत्र ऋष्यशृङ्गके प्रसादसे उनको नारायणकी बाहुके समान अजेय और समुद्रके समान लोभ-रहित चार पुत्र मिले थे। इसी प्रकार अन्य राजर्षियोंने भी तपस्वियोंकी आराधना करके पुत्र दर्शनरूपी श्रमृत-स्वादका सुव भोगा है क्योंकि महासुनियोंकी सेवा कभी निष्फल नहीं होती। देवि, प्रफुल्ल गर्भके भास्से मद हुई, फीके मुखवाली और, जिसमें पूर्ण चन्द्र उदय होनेको हो, ऐसी पूर्णकी रात्रिके समान तुमको मैं कब देखूँगा? पुत्र-जन्मके महोत्सवके आनन्दमें मग्न हुए मेरे परिजन कब मुझसे पूर्ण-पात्र ले जायेंगे? उदय हुए सूर्यमंडलसे युक्त, बालातपसे प्रकाशित आकाशके समान, पीले पत्र पहन कर पुत्रको गोदमें लिये तुमको देख कर मैं कब आनन्दित हूँगा? सर्वोपधि लगानेके कारण जिसके बाल उलझ गये हो, जिसके तालु पर मंत्रित किये हुए धीकी वूँदें डाल कर फिर उस पर सरसों मिली हुई थोड़ी सी विभूति डाली हो, जिसके कठ-सूत्रकी गाँठ गोरोचनसे रँगी गई हो, जो चित्त सोता हो और बिना दाँतके मुँहसे मन्द मन्द सुसकुराता हो ऐसा पुत्र कब मेरे हृदयको प्रसन्न करेगा? गोरोचनके समान पीली फान्तिवाला, रन-वासमें एकले दूसरीके हाथमें बार बार जाता और सत्र जनोसे वदित, मंगल-प्रदीपके समान, पुत्र कब मेरे नेत्रोंके शोभाधकारको मिटावेगा? धरतीकी धूलके लग जानेसे मटियाला होकर वह कब मेरे हृदय और इष्टिके साथ ही घूमता घूमता महलके आँगनोंमें शोभायमान करेगा? घुटनोंके बल चलनेके योग्य होने पर वह कब स्फटिक मणिनी दीवारोंसे दीखते पालतू हिरनोंके बच्चोंको पकड़नेकी इच्छासे सिंहके पच्चेके समान इधर उधर दौड़ेगा? रनवासकी छियोंके पायजेरोंको भ्रनभ्रनाहटका अनुसरण करते पालतू कल-हँसोंके गीछे एकने दूसरी बगलमें दौड़ कर सोनेकी तागड़ीके बोरोंके शब्दके पीछे भागती अपनी धात्रीमें वह कब कष्ट देगा? काले अगवनी रेखाश्रित

२—उत्सवके समय हर्षके कारण जो अलकार, वस्त्र आदि हठ-पूर्वक किये जाते हैं इनको पूर्णपात्र कहते हैं।

शोभित गडस्थलवाला, धात्रीके मुखसे निकली हुई उमरूकीसी आवाजसे प्रीति करता, हाथ ऊपर उठाकर उछाले गये चंदनके बुरादेसे धूसर हुआ, धात्रीके—अपनी उँगलियोंको मोड़ कर—आगे पीछे चलाने पर सिर हँपा कर वह कब लीला दिखावेगा ? माताके चरण रँगनेसे बची हुई महावरको वह कब बूढ़े कंचुकीके मुँहसे चुपड़ेगा ? कुनूहलसे चंचल नेत्रोंवाला वह मण्णि-भूमिकी ओर दृष्टि करके, ठोकर खाता खाता, अपनी परछाई के पीछे कब टौड़ेगा ? हजारों नरपति हाथ बढा बढा कर निसके आगमनका अभिनंदन करते हैं, और उनके गहनोंकी मणियोंकी किरणोंसे जिसकी चंचल दृष्टि आकुल हो गई हो ऐसा वह सभा-मंडपमे मेरे सामने कब घूमेगा ? ऐसे ऐसे सैकड़ों मनोरथोंकी चिन्तासे हृदयमें खिन्न होकर मे रात काटता—हूँ । यह अनपत्यताका शोक मुझे भी दिन-रात अग्निके समान जलाता है ।—सब जगत् मुझे सूना लगता है और यह सब राज्य निष्फल देख पड़ता है पर विधाताके सामने अपना कुछ बस नहीं । क्या करूँ । इसलिए, देवि, यह सब शोक मत करो । धैर्य और धर्ममें बुद्धि लगाओ, क्योंकि धार्मिक मनुष्योंके पास कल्याणकी संपत्ति सर्वदा रहती है । इतना कह कर वह पानी-लाया और रानीके आँसू टपकाते हुए तथा खिले हुए कमलके समान मुँहको उसने नये पल्लवके समान हाथसे स्वयं धोया । फिर उसने सैकड़ों प्रिय और मधुर वचनोंसे रानीका शोक निवारण कर बार बार उसे आश्वासन दिया और बहुत देर पीछे वह वहाँसे चला गया ।

७७—राजाके जानेके बाद विलामवतीने, शोक कम हो जानेसे, रीतिके अनुसार गहने आदि पहन कर दिनका सब उचित काम किया । तबसे वह सब देवताओंकी आराधना, ब्राह्मणोंकी पूजा और गुर्वजनोंकी सेवामें अधिक आदर दिखाने लगी । जो कुछ कहींसे सुननेमें आता उसे ही वह सतानकी इच्छासे करने लगती और अत्यंत श्रमको भी कुछ न गिनती । दिन रात जलती गूगलकी धूपसे जहाँ ग्रंथेरा हो जाता था ऐसे चडिकाके मंदिरमें सफेद कपड़े पहन कर, शरीरसे शुद्ध हो, उपवास करके, वह मूसलोंकी शैय्या पर, हरे कुशं बिछा कर, सोया करती थी । पवित्र जल तथा सब रत्नोंसे मुर्णके कलशोंमें, अनेक फल-फूल, और बड़ आदिके पत्ते डाल कर, उनसे

गायोंके बाड़ेमे बूड़ी गोपियोंके किए हुए कु कुमादिके चिन्हसे युक्त सुलक्षणी गायोंके नीचे बैठकर वह नहाती थी । प्रति दिन उठ उठ कर सब रत्नोंसहित सुवर्णके तिलपात्रोंका ब्राह्मणोंको दान करती थी । कृष्ण चतुर्दशीकी रात्रिको चौराहे पर बड़े बड़े स्थानोंके बनाये हुए जादूके घेरोके बीचमे अनेक प्रकारके बलिदानसे दिक्पालोंको प्रसन्न करके, मंगल स्नान करती थी । जहाँ कामना पूरी होने पर देवताओंको विचित्र वस्तु भेंट दी जाती थी ऐसे सिद्ध मदिरोमे जाया करती थी । जो अपने भक्तोंकी इच्छा पूर्ण करनेके बहुतसे सबूत दे चुके थे ऐसे, पामके, देवियोंके मदिरोमें जाती थी । नागकुलके प्रसिद्ध सरोवरोंमें नहाती थी । पीपल आदि महा वनस्पतियोंकी पूजा और प्रदक्षिणा करके उनकी वदना करती थी । स्नान करनेके बाद, हिलते हुए मणि-मय कंकणवाले दोनों हाथोंसे, चावलके त्रिना टूटे दानोंके बनाये गये दही-भातकी बलि, चाँदीके बरतनमे, स्वयं कौओंको देती थी । बहुतसे फूल, धूप, लेप, माल-पुण, तिलमुट, खीर तथा जौके धान लेकर प्रति-दिन अम्बादेवीकी पूजा करती थी । जिनके वचन सदा सच्चे होते थे ऐसे नगे बौद्ध सन्यासियोंको स्वयं भोजन भरे पात्र भेंट करके श्रद्धा-पूर्वक उनसे प्रश्न करती थी । भविष्य-वक्ताओंके वचन पर बहुत आस्था रखती थी । निमित्त जाननेवालोंका सत्कार करती थी । शकुन जाननेवालोंका आदर करती थी । अनेक वृद्धाके परंपरागत मंत्रशान्त्रके रहस्योंको अगीकार करती थी । दर्शनके लिए आए हुए ब्राह्मणोंके द्वारा पुन-दर्शनकी इच्छासे वेदकी कथा कहलाती थी । दिन रात जिनका प्रचार था ऐसी पवित्र कथाओंको सुनती थी । गोरोचनसे भोजपत्र पर लिखे मंत्रोंसे युक्त तावीज पहनती थी । श्रौपधियोंके गडे बाँधती थी । उसके परिजन भी देवताओंकी मशा जाननेके लिए बाहर जाकर सर्वदा शकुन हँटा करते थे । वे प्रति-दिन रातको गीदड़ीको मासके बलि पिंड डालते थे, स्वप्नमें देखे हुए आश्वर्यको आचार्योंसे कहते थे और चौराहों पर गीदड़ोंके लिए बलि रखते थे ।

७८—इस भाँति कुछ दिन पीछे एक बार, जब रात करीब करीब बीत गई थी, तारे थोड़े थोड़े और मंद मंद दीखते थे, और आकाश बूड़े कमूतरके पखके समान धूसर हो गया था तब, राजाने स्वप्नमें, दधिनीके मुखमें मृणालकी

भाँति, महलोंके शिखर पर सोती हुई विलासवतीके मुखमें सकल कलाओंसे परिपूर्ण चंद्रमंडलको प्रवेश करते देखा । वह शीघ्र जाग उठा । उसके नेत्र हर्षसे प्रफुल्लित होकर शयनागारमें धमल करने लगे । उसने शुक्रनासको तुरत बुलवा कर स्वप्नका हान कहा । शुक्रनासने अत्यंत प्रसन्न होकर उत्तर दिया—महाराज, बहुत काल पीछे आज हमारा और प्रजापति मनोरथ सिद्ध हुआ । अब शीघ्र आप पुत्रका मुख-कमल देव्य ग्रानदित होंगे । इसमें सदेह नहीं । मैंने भी आज रातको स्वप्नमें देखा है कि किसी शान्तमूर्ति ब्राह्मणने खिला हुआ सफेद कमल मनोरमाकी गोदमें रक्खा है । उस कमलमें चंद्र-फलाके समान सफेद सी पंखड़ियाँ थीं । उसमेंसे रस टपक रहा था और हजारों केसर हिल रहे थे । वह ब्राह्मण धुने हुए कपड़े पहन रहा था और उसका आकार दिव्य था । पहले दिखाई देनेवाले शुभ लक्षण पान आनेवाले आनंदकी सूचना करते हैं । इससे बटकर प्रिय तथा आनंदका विषय और क्या है ? रातके अंतमें जो स्वप्न दीख पड़ता है वह प्रायः सत्य होता है । इसलिए कुछ कालमें महारानीको मायाताके समान सब राजपियोंका अग्र-गण्य और लोकानंदकारक पुत्र उत्पन्न होगा । शब्द ऋतुनी कमलिनी कमल-के जन्मसे जैसे गंधगजको आनंद देती है उसी भाँति देगी कुमारके जन्मसे आपको आल्हादित करेगी । उस कुमारकी सतति भी पृथ्वीका भार वहन करनेके योग्य होगी और उससे आपका वंश चलेगा । इस तरह नहते कहते उसका हाथ पकड़ कर राजा भीतर गया और दोनों स्वप्नोंका हाल कह कर उसने विलासवतीको आनंदित किया ।

७६—थोड़े ही दिनके बाद देवताओंकी कृपासे विलासवतीमें गर्भने इस तरह प्रवेश किया जैसे सरोवरमें चंद्रमिव प्रवेश करता है । पारिजातसे जैसे नंदन-वन और कौन्तुभमणिसे जैसे विष्णुका वक्षस्थल शोभायमान होता है उसी तरह गर्भसे रानी अत्यंत शोभित हुई । उसने दर्पण-श्रीके समान गर्भके आकारमें राजाका प्रतिप्रिय धारण किया । जैसे जैसे प्रतिदिन गर्भ धीरे धीरे बढ़ने लगा वैसे वैसे ही समुद्रका बहुतसा पानी लेनेके भारसे मद हुई मेन-की भाँति वह धीरे धीरे चलन लगी और बार बार जन्म-इन्द्रके साम-रा मीच मीच कर मद मद साँस लेने लगी । उसके स्तनोंका अग्र-

भाग वर्षाऋतुके मेघके समान श्याम हो गया । गर्भके कारण उसका रंग केतकीके समान पीला हो गया और उसे अनेक प्रकारके रसोंके भोज्य और पानकी इच्छा होने लगी । इंगित जाननेमें निपुण दासियाँ उसकी इस अवस्थाको शीघ्र जान गई ।

८०—मत्र परिजनोंने प्रणम कुलवर्धना नामकी एक अत्यन्त बूढ़ी रनवास की दासी थी । वह सदा राजकुलमें रहनेसे चतुर और सदा राजाके पास रहनेसे प्रगल्भ हो गई थी तथा सब मंगल-काण्डोंको जानती थी । एक अच्छे दिन प्रदोष समय राजा भीतरके सभा मंडपमें बैठा था । उसके आग-पास सुगंधित तेलसे भरे हजारों दीपक जल रहे थे, जिनसे वह नक्षत्रोंके बीचमें विराजमान पूर्ण चन्द्रमाके समान तथा शेषनागके फनकी हजार मणियोंके बीचमें बैठे नारायणके समान मालूम होता था । क्षत्रिय-कुलके कितने ही मुख्य मुख्य नरपति उसके चारों ओर बैठे थे और परिजन जग दूर खड़े थे । राजाके नाम ही वैतरी कुर्सी पर, धुले हुए सफेद कपड़े पहने, सादे वेशसे, समुद्रके समान अगार गाभीरवाला शुक्रनास बैठा था । राजा उसके साथ पूर्ण विश्वाससे बातचीत कर रहा था । उस समय कुलवर्धनाने राजाके पास जाकर कानमें धीरे धीरे विलामकतीके गर्भका हाल कहा । यह अभ्रुतपूर्व और असभ्य वचन सुनते ही राजाके सब अंग मानो अमृत-रससे सिंच गये । उनके शरीर पर रोमान हो आए और वह आनंदसे विह्वल हो गया । मुसकुराहटने उसके गाल प्रफुल्लित हो गये और दृष्टिसे ऊपर तक भर जानेसे बाकी बचा हर्ष मानो दंत फिरणोंके बहाने बाहर निकलने लगा । इतनेमें ही उत्तके चंचल पुननीयले और आनंदके आँसुओंसे भीगे पलकोवाले नेत्र शुक्रनासके मुग पर पड़े ।

८१—राजाका ऐसा अदृश्य-पूर्व हर्षका उभार देख कर, मुसकुराती हुई कुलवर्धनाकी आती देख कर, यही बात सर्वदा मनमें रहनेसे और इस वृत्तांतके न जानने पर भी उस समय अन्य किसी अत्यंत हर्षके कारणसे न देख, शुक्रन स ने तत्काल ताड़ लिया और राजाके पास कुर्सी खींच कर धीरे-धीरे पुत्रा—महाराज, क्यों ? क्या वह त्वम सचा हुआ ? कुलवर्धनाके नेत्र अत्यन्त प्रफुल्लित दीपते हैं और प्रिय वचन सुननेके मानो कुतूहलसे, कानोंके पास पहुँच कर,

उनको नीलमलके वर्णपूरकी शोभा देते हैं । आपके भी ग्रानदाब्रुसे पूर्ण, चंचल पुतलीवाले प्रफुल्ल नेत्र किमी बड़े हर्षके कारणसे सूचित करते हैं । इस बड़े भारी महात्मवके सुननेके कुतूहलसे अत्यंत उत्सुक हुआ मेरा मन उद्विग्न हो रहा है । इसलिए कहिए कि यह क्या बात है ? इस प्रकार पृथुने पर राजाने हँस कर जवाब दिया—जो इसका कहना झूठ न हो तो स्वप्न सच्चा हुआ । पर मुझे विश्वास नहीं होता । मेरा भाग्य ऐसा कैसे हो सकता है ? हम लोग कैसे ऐसे प्रिय-वचन सुननेके पात्र हो सकते हैं ? कुलवर्धनाका कहना सच हो तो भी इस प्रकारके मंगलोंका पात्र ग्रानेको न ममक कर मुझे आज ऐसा लगता है कि यह उलटी बात है । इसलिए चलो, उठो । स्वयं देवीके पास जाकर निश्चय कर लें कि क्या यह सच है ? यों कह कर उमने सत्र नर-पतियोंको विदा कर दिया और अपने शरीरके सत्र गहने उतार कर कुलवर्धनाको दे दिये । उनका लाभ होते ही तुरन्त उमने पृथ्वीसे माया लगाया और शिर झुका कर वदना की ।

८२—फिर राजा शुकनासके साथ शीघ्र उठा । विशेष हर्षसे उसका मन भर गया, पवनसे हिलते नीले कमलके पत्तोंकी लीलाका तिरस्कार करता दक्षिण नेत्र फड़क फड़क कर उसका अभिनंदन करने लगा । इस भाँति उस समयकी सेवाके योग्य, पीछे चलते, कुछ परिजनोंके साथ-वह रनवासमें आ पहुँचा । हवासे लहराती हुई स्थूल ज्योतिवाली लालटेनें उसके आगे आगे जाती थी । उनके प्रकाशसे बहुनसे सहनोंका अँधेरा दूर होता जाता था ।

८३—वहाँ शयन-गृहमें हिमालयके शिलातलके समान विशाल और गर्भवती स्त्रीके योग्य पलंग पर सोती हुई विलासवतीको उसने देखा । वह अत्यन्त सफेद दो नए वस्त्र पहन रही थी, जिनके पल्ले गोरोचनसे चित्रित थे । शयन-गृहमें रत्नाका विधान भली भाँति किया गया था, नए चूनेसे सफेदी की गई थी, मंगलप्रदीप जलाए गए थे; पार्श्वद्वारके पास पूर्ण कलश रक्खे गए थे, और उसकी दीवारें तत्काल काटे गये मंगल-चित्रोंसे मनोहर लगती थीं । वहाँ सफेद चँदोवा बाँव कर उसकी कोरों पर मोतीकी झालरें लटकाई गई थीं । मणि-प्रदीपोंसे वहाँका अँधेरा दूर हो गया था । पलंगके चारों ओर रत्नाके त राग की आड़ बना दी गई थी, सिरहानेकी तरफ सुख-पूर्वक नींद ग्रानेके

प्रयोजनसे धवल मंगल-कलश रखे थे, गोरोचनसे भोजपत्र पर लिखे गए मंत्रोंसे युक्त यत्र बाँध कर उसको पवित्र किया था, कात्यायनी आदिसे रत्नाके निमित्त मोरपख उसमें उरस दिये थे, इधर उधर सफेद सरसों बखेर दी गई थी, पीपलके चंचल पत्ते, जाड़ूकी गोंठोंसे, बालोंकी लटोंमें गूँथ कर, उसमें लटका दिये थे, नीमके हरे पत्ते बाँधे थे, पैर रखनेके लिये एक ऊँची चौकी पास रखी थी और चाँदनीके समान सफेद चादर उस पर बिछी थी। वहाँ ऐसे पात्र थे जिनमें सुवर्णकी कटोरियोंमें रखे हुए दहीके पूरे पूरे टुकड़े जुदे जुदे दीखते थे, जल तरंगके समान शोभायमान सफेद चावलोंके दाने रखे थे; और बिना गूँथे फूल अजलि भर भर कर बिखेरे थे। ऐसे पात्रोंसे और जिनके ले जानेमें पानीकी धारा नहीं टूटती थी ऐसी—ताजे माससे मिश्रित—सावित मुखवाली बहुतसी मञ्जलियोंसे, लाल कपड़ेके घेरेके भीतर जलाए गए कपूर प्रदीपोंसे, गोरोचनमें मिली हुई सफेद सरसोंसे और जलकी अञ्जलियोंसे रनवासकी—ग्राचारमें कुशल-बुद्धियाँ रानी पर उतारेकी मंगल क्रिया करती थी। श्वेत-वस्त्रका स्वच्छ वेप धारण कर अच्छी अच्छी बातें करते परिजन आनदसे उसकी सेवा करने थे। गर्भ प्रफुल्ल होनेसे वह ऐसी शोभायमान मालूम होती थी मानो अन्तर्गत कुल-पर्वतवाली पृथिवी हो, जलमें डूबे ऐरावतवाली मदाकिनी हो, गुफामें घुसे सिंहवाली हिमालयकी मेखला हो, मेघसे ढके सूर्यवाली दिवस श्री हो, उदयाचलसे ढके चंद्रमंडलवाली रात्रि हो, ब्रह्म-कमलके उत्पत्ति-समयकी विष्णुकी नाभि हो, अगस्त्योदयके समयकी दक्षिण दिशा हो, और न्याससे ढके अमृत-कलशवाली क्षीर-सागरकी वेला हो। दासियोंसे शीघ्र लवे किए गए हाथके मन्त्रोंसे बाँधे हुए पर हाथ रख कर, हिलते हुए गहनोकी मणियोंकी कनकनाटके साथ उठती विलासवतीने—बहुत आदर हुआ, बस, देवि, मत उठो—यो कह कर राजा उसके साथ उसी पलंग पर बैठ गया। पास ही एक दूमरा पलंग पड़ा था। उससे सुंदर पाये स्वच्छ सुवर्णके बने थे तथा उस पर सफेद चादर गिछी थी। उस पर शुकनास भी बैठ गया।

८४—रानीको प्रफुल्लित गर्भ-सहित देख कर हर्षके भावसे मद हुए मनसे परिहास करते करते राजा बोला—देवि, शुकनास पूछते हैं कि कुलवर्धनाका मरना सच है क्या? इतनेमें विलासवतीके गाल, थोठ और आँगो पर मद

मंद मुग्धुराहट चमकी और दंत विरणोंके बढ़ाने मानो बख्खसे मुँह ढक कर लजासे उसने उसे नीचे झुका लिया । लेमिन जब राजाने बार बार आग्रहसे पृच्छा तत्र बोली कि क्यों मुझे अधिक शर्मिन्दा करते हो ? मे कुछ नहीं जानती । इतना कह कर, अरुकी पुत्रलिपोका जरा ति छी करके तथा नीचा मुँह कर, उसने राजाको मानो कुत्र क्रोधसे देवा । अरुट हात्यसे प्रकाशमान मुग्धसे राजा फिर बोला—मुग्ध शरीरवाली, यदि मेरे वचनसे तुम्हारी लजा बढ़ती है तो, लो, मैं चुप हूँ, परन्तु खिलती हुई पंखडीवाली कलियोंसे स्वच्छ दीपते चपाके समान कान्तिवाले इस अपने पीले शरीरको किस प्रकार गुन रक्खोगी ? इनका कुकुमलेप एकमा होनेके कारण केवल परिमलसे ही पहचाना जाता है । नीलमल-धारी चक्रवा-चक्रवीके समान इन स्तनोंको तुम कैसे छुगाओगी ? अग्रनाग श्याम होनेसे ये गर्भ-रूपी अमृतसे सींचे जानेके कारण शान्त होती हृदयकी शोक-रूपी अग्निके धूमको माना उगलते हैं, तमालके पत्तेसे ढके मुखवाले सुमरुके फलशके समान दीपते हैं और ऐसा मालूम होता है मानो इन पर सदाके लिए काले अगस्से फूल-पत्ते क ढे गए हैं । प्रति-दिन करवनीके अधिक तंग होनेसे पीडा पाते अपने मध्यभागका तुम क्या उगाय करोगी ? इसकी तीनों सिलवटें अहस्य होती जाती हैं और कृशता कम होती जाती है । इस प्रकार कहते हुए राजासे मुँहके भीतर हँसी छिपा कर शुरुनामने कहा—महाराज, रानोको क्या कष्ट देते हो ? वे ऐसी बातोंसे शर्मती हैं । इसलिए कुलवर्धनासे कहे गए वृत्तातकी बातचीत रहने दो । बहुत देर तक ऐसी ऐसी परिहासकी बातचीत करनेके बाद शुरुनाम अपने घर गया और राजाने उसी शयन गृहमें रानीके साथ रात बिताई ।

८५—इसके कुछ समय बाद इच्छानुसार गर्भ समयके मनोरथोंके पूर्ण होनेसे आल्हादित हुई विलासवतीने प्रसव-काल पूर्ण होने पर एक शुभ दिन शुभ समय पर, सब लोगोंके हृदयको आनंद देनेवाले पुत्रको इस प्रकार जन्म दिया जैसे मेघमाला मेघ-भोतिको जन्म देती है । उस समय ज्योतिषी बराबर टपटप पानीकी पडीमें समयकी कलाओंका निक्षेप कर रहे थे और बाहर अपनी गया नाप कर लगन निर्य कर रहे थे । उसके पैदा होते ही नगरमें द्रुम निगाला, उत्पत्ती वनाइयोंका बड़ा भारी कोलाहल राज-कुलमें मच गया ।

वेगसे इधर उधर दोड़ते परिजनोंके सैरुड़ों चरण पड़ने के क्षोभसे धरातल चलायमान हो गया । राजाके पास जाते हजारों कचुकी चलनेमें हारमे गिर कर विरुल हो गये, मनुष्योंकी भीड़मे कुचल कर कुचड़े, बौने और छोटे शरीरके आदमियोंके झुंड जमीन पर गिर पड़े, रनवासकी स्त्रियोंके गहनोंकी मनोहर झनझनाहट फैल गई और पूर्णगम लेनेमें राजासे उन्न तथा गहने जबरदस्ती छीन लिए गए । फिर मद्राचलसे मये गए समुद्रके घोपके समान गंभीर दुःखिके नादसे युक्त, कोमल स्वरके मृदग, शख, ढोल, नगाड़े आदि वाजोंके शब्दसे पूर्ण, मंगल पटङ्गी तेज आवाजमें मिले हजारों मनुष्योंके कलकलसे तीनों भुवन भर गए । सब सामत, रनवासकी सब स्त्रियाँ, सब राजा लोग, सब नौजवान बेरथाएँ तथा बाल वृद्धोंसे लेकर ग्यालबाल तक सब प्रजा हर्षमें मग्न होकर उन्मत्त की भाँति नाचने लगी । राजकुमारके जन्ममा उत्सव कलकलसे प्रति दिन उसी प्रकार बढ़ने लगा जैसे चन्द्रोदयसे समुद्र बढ़ता है ।

८६—राजाका हृदय पुत्रका मुँह देखनेके लिये तड़प रहा था तो भी अचञ्छा दिन आने पर ज्योतिषियोंके बताए हुए शुभ मुहूर्तमें उसने सब परिजनोंको हटा कर शुकनासके साथ सूतिका-गृह देखा । उस गृहके द्वार पर बहुतली पुतलियाँ कडी हुई थी और दो मणि-मय मंगल-कलश रक्खे थे । अनेक भौतिके नए नए पत्तोंके ढेर लगे थे । सुवर्णके दो हल मूमल रक्खे थे । दूबकी कौलके साथ दूर दूर गुँथे हुए सफेद फूलोंको मालाएँ शोभायमान थीं । अखडित व्याघ्रचर्म लटक रहे थे । बदनवारोंके बीच बीचमें घटियाँ बँध रही थीं । द्वारके दोनों ओर मार्गामें निपुण बूढी सौभाग्यमती स्त्रियाँ बैठी थीं । वे गोबरसे बहुतसे चौक बनाती थीं, उन पर चित्त कौड़ियाँ चिपकाती थीं, बीच बीचमें गेरू आदिके सुन्दर रंग भरती थीं, कमासके फूलोंके टुकड़े लगाती थीं, और टेपूके फूलोंकी केसरसे उनको लाल लाल करती थीं । घड़ीदेरीको काड कर उसे हलदीते रंगे पीले कपड़े पहनाती थीं । फैले हुए पखासे चाड़ी मोकी गीठ पर शक्ति और दड फिरानेसे प्रचंड दीपते त्नामेमार्तिककी मूर्ति काटती थीं और वहाँ लाल कपड़ेनी फहराती हुई धजा बनाती थीं । लापसे बीचका हिस्सा लाल करके सूर्य चन्द्र बनाती थीं । गाढा कुकुम लगा कर पीची भी हुई मट्टीनी गोलियोंकी माला बनाती थीं । सुवर्णके जो उन गोलियोंके ऊपर निकले रहते

ये थोर पास पास चिपकी सफेद सरसोके कारण वे सुवर्णके रससे भरी हुई भी मालूम होती थीं । चन्दनके जलसे धोई गई दीवारोके ऊपरकी तरफ हलदीकी पिट्टीमें चित्र काढ कर उन पर पंचमंगे कपडोंके टुकड़े चिपकाती थीं । ऐसे ही अन्य बहुतसे मंगल-चिन्ह प्रभव-गृहकी शोभाके लिये काढती थीं । दरवाजेके पास भौंति भौतिके सुगंधित फूलोंके हार पहना कर एक बूटे बकरेको बाँध रखा था । पलंगके सिरहानेके पास सब नाज रखे थे, उन पर एक बुडिया बैठी थी । माँकी कौचली और मेढेके सांगोका बुरादा वहाँ वीके साथ दिन रात जला करता था । अग्निमें जलते हुए नीमके पत्तोंमें रक्षा धूमकी गंध फैलती थी । पाठ करनेवाले ब्राह्मण शान्तिके लिये थोड़ा थोड़ा जल छिड़कते थे । घायें कपड़ों पर तत्काल बनाई देवियोंका पूजन करनेमें लग रही थीं । अनेक बुडियाँ प्रभव समयके योग्य मंगल गीत गा रही थीं । त्वस्ति-वाचन हो रहा था । बालककी रक्षाके लिए बलिदान हो रहा था । सफेद फूलोंके मैकड़ो हार बाँधे थे । विष्णुमहलनामका पाठ निरंतर हो रहा था । सुवर्णकी स्वच्छ दीपों पर रखे और निश्चल ज्योतिसे मानो हृदयमें सैकड़ों कल्याणोंका ध्यान करते मंगल-दीपनोंका प्रकाश हो रहा था । नगी तलवार हाथमें लेकर गारद उम गृहके चारों थोर घूम रही थी । जल और अग्नि छूकर राजा उस गृहके भीतर गया ।

८७—जाते ही राजाने प्रसवसे दुबली और फीकी विलासवतीकी गोदमें सोए हुए हर्ष-जनक पुत्रको देखा । उसकी कातिसे सूतिका गृहके दीपकोंकी प्रभा मद हो गई थी । गर्भकी ललाई कम न होनेसे वह उदयके समय लाल मडल-वाले सूर्यके, संध्या-समय लाल त्रिव-युक्त चंद्रमाके, कल्पवृक्षके कोमल पत्तोंके, खिले हुए लाल कनलोंके समूहके और पृथ्वीको देगनेके लिए नीचे उतरे मंगल ग्रहके समान मालूम होता था । उसके अवयव मानो मूँगेके अक्षरोंके टुकड़ोंसे, नई धूपके टुकड़ोंसे और मानककी फिरणोंसे बनाए गए थे । वह छिपे हुए पाँच मुखवाले दामिकार्तिकके तथा देवताओंकी त्रिपोंके हाथमेंसे गिरे हुए जगतके समान मालूम होता था और तपाए हुए स्वच्छ सुवर्णके समान चमकती शरीर-कातिसे शयन गृहको मानो भर देता है । चमकते हुए सहज नूपणोंके समान । पुद्गपके लक्षण उसमें दिखाई पड़ते थे और—भविष्यमें यह मेरा पालन

॥—यह जानकर हर्षित हुई लक्ष्मीने, मानो उसका आलिगन किया था ।

राजाके खूब खुले हुए निमेष-रहित नेत्रोंके पलक निश्चल हो गए थे और पुतलियाँ, बार बार पोंछने पर भी फिर निकलते, आनंद-जलमे डूब गई थीं । ऐसे प्रीति-मय नेत्रोंसे मानो पीता हो, आलाप करता हो और स्पर्श करता हो इस प्रकार कुमारके मुखको स्पृहासे देख देख कर राजा बड़ा आनंदित हुआ, क्योंकि हजारों मनोरथोंसे पुत्र देखनेको मिला था । वह अपनेको धन्य समझने लगा । शुकनासका मनोरथ भी सफल हो गया था । वह भी प्रीतिके कारण फैले हुए नेत्रोंसे कुमारके प्रत्येक अंगसे देखता राजासे धीरे धीरे कहने लगा—देखिए, देखिए, महाराज, गर्भमें सुरुड़नेके कारण अभी कुमारके अवयवोंकी शोभा स्फुट तो नहीं हुई है तथापि चक्रवर्ती राजाके लक्षण इसका माहात्म्य प्रकट करते हैं । देखिए, सध्याकी किरणोंसे लाल हुए बाल चंद्रमाकी कलाके समान ललाटमें मृणालमेसे टूटे तंतुके समान सूक्ष्म रोम शोभायमान हैं, खिले हुए पुटरीके समान, कानोंके छोर तक फैले, मुड़े हुए पलकोंवाले नेत्र बार बार खुल कर मानो शयन गृहको सफेद किए डालते हैं, कनकलेखाके समान लक्ष्मी नाक माना उसके मुखकी—गिलती हुई कमलकी कलीकी परिमल के समान मनोहर—सहज सुगंधको सूँघती है, उसका नीचेका थोठ लाल कमलकी कलीके आकारके समान है, हथेलियाँ लाल कमलकी कलीके समान लाल हैं, हाथ, विष्णुके समान, शय चक्र-चिह्नित और शुभ रेखाओंसे अंकित हैं, दोनों चरण कल्पवृक्षके नए पत्तोंके समान कोमल हैं, ध्वजा, रथ, अश्व, छत्र और कमलकी रेखाओंसे अलंकृत हैं और हजारों नृपोपी चूड़ामणियोंसे चुवन होनेके योग्य हैं । यह दु दुभीके समान अत्यन्त गभीर रोनेका स्वर सुनाई देता है ।

८८—इस प्रकार वह कह रहा था कि इतनेमें ही मंगल नामका पुरुष जलदी जल्दी प्राया । द्वारके पान खड़े राजा लोगोंने झटपट सरक कर उसको रास्ता दिया । हर्षसे उसके शरीर पर रोमांच हो आए थे और नेत्र फैल रहे थे । उसने हँसते हँसते राजासे प्रणाम करके कहा—महाराज, आपकी वृद्धि हो ! आपके शत्रुओंका नाश हो ! महाराज, आप दीर्घायु हों ! पृथ्वीकी विजय करें ! आपकी कृपाने प्रार्थ्य शुकनासकी ज्येष्ठ पत्नी मनोरमाके—रेणुनाके परशुरामके समान—एक पुत्र पैदा हुआ है । यह सुन कर महाराजकी जो इच्छा ।

८९—अनृत वृद्धिके समान वचन सुन कर राजाके नेत्र प्रीतिके प्रकृतित हो

गए और वह बोना—ब्रह्मो, कल्याण-नरंरा ! विभक्ति विभक्तिके और सपत्ति सपत्तिके भीछे जाती है—वह कहावत मची है । सुख दुःखमें समानता दिना कर विधाताने भी मर्यादा तुम्हारी ही भाँति हमारे साथ बर्ताव किया है । यों कह कर शुकनासमो हृषसे आलिंगन कर, प्रीतिसे प्रफुल्लित हुए मुखसे हँसते हँसते राजाने आप ही पूर्णमात्रकी जगह उमना दुःम्टा ले लिया । मनमें प्रसन्न होकर मंगलको भी शुभ-समाचारके योग्य ग्रन्थ पुरस्कार दिया । फिर उमी तरह उठ कर वह शुकनासके घरके लिए रवाना हुआ । उसके पीछे पीछे रनवामकी स्त्रियाँ चञ्चने लगी । नाचनेमें पैरोंको जोरसे पटकनेके कारण भ्रन-भ्रनाते हजारों पायजेभ्रसे दिगतर गुञ्ज उठे । वेगसे हाथ उठ्ठातनेके कारण हिलते मणि-कंकणोंके शब्दसे भुञ्जलताएँ शब्दाभ्रमान हो गई । ह्वेलियाँ ऊपरकी ओर कके ऊँचे किए कर समुद्रोंसे वे, मानो, पवनके जोरसे चलाभ्रमान हुई आकाश-कमलिनीमो दिखाने लगी । उनके कर्ण-पल्लव निकल कर कुचल गये । बाजूबदोंके सिरोंके आभ्रसमें रगड़नेसे ग्रीडनियाँ फट गई । पसीनेसे धुने अगरागसे कपड़े रँग गये । तमाल-पत्र कुछ कुछ बच गये । विलासिनी वेश्याओं के हात्यसे खिले हुए कमल-वनके समान रचना होने लगी । वेगसे मुड़नेके कारण खिसकनेसे हिलते हार स्तनो पर टकराने लगे । सिंदूरकी त्रिदीमे बालोपी लट्टें चिपक गई, और पटवासका बुरादा उड़ानेसे बाल पीले पीले हो गये । गूँगे बहरे, कुम्ड़े, क्रिगत, बौने, बहरे और मूर्ख उनके आगे आगे नाचते जाते थे । बूडे कर्चुर्कियोंकी गर्दनमें दुःम्टा डाल कर आर उसे खाँच कर वे उनकी विडम्बना करती थीं । वीणा, मृदंग, कौमा और मजीरोकी लयना अनुमरण करती थीं । धीमे स्वरसे मधुर गान करती थीं और हर्षमें मग्न होनेके कारण मद-मत्त, उन्नत्त और ग्रह प्रस्तकी तरह उनको योग्य अयोग्य भाषणका ज्ञान नहीं रहा था ।

६०—उनके पीछे पीछे राज-परिजन और चारण चल रहे थे । परिजनोंके कुडल हिल हिल कर सुन्दर गालों पर टकराते थे, कर्णांगल पैरोंमें टुकराते थे, शोअर खिमक खिसक कर नीचे गिर पड़े थे, जनेऊकी तरह छानी पर पढ़नी गई फूनोंकी मालाएँ दोनाथमान हो रही थी, जोरसे बजते भेगी, मृदंग, ढाल आर । के शब्दके साथ बड़े बड़े दोतों आर शखोंके स्वरसे उन्होंने बड़ी गडगड

मन्चा दी थी और वे चरण रख रख कर पृथ्वीको मानो फाड़ें डालते थे । चारण भी मुँहसे ब्रजानेके बहुतसे ब्राजोंसे कोलाहल करते नाचते जाते थे और कुछ पडते तथा गाते जाते थे । इस प्रकार शुकनासके महलमें जाकर राजाने दूना उत्सव कराया ।

६१—छुटीके रतजगेके बाद जब दशम हुश्रा तब अच्छे मूर्तमें करोड़ों गाय और सुवर्ण ब्राह्मणोंको दान देकर—स्वप्नमें इसकी माताके मुख कमलमें मैंने पूर्ण चन्द्र-मंडलको प्रवेश करते देखा था—यह विचार कर राजाने स्वप्नके अनुसार कुमारका नाम चंद्रापीड रक्खा । दूसरे दिन शुकनासने ब्राह्मणोचित सब क्रिया करके राजाकी अनुमतिसे अपने पुत्रका, ब्राह्मणके योग्य, वैशंपायन नाम रक्खा । फिर क्रम-पूर्वक चंद्रापीडकी मुडन आदि बाल क्रियाएँ हुई और बाल्यास्था नीत गई ।

६२—फिर तारापीडने कुमारका मन खेलमें लगनेसे रोकनेके लिये नगरीके बाहर, शिप्रा नदीके तट पर, आधकोस लंबा, देवमंदिरके समान एक विद्यालय बनवाया । उसके आस-पास एक बड़ा ऊँचा अहाता खिंचवाया । उस पर सफेदी हो रही थी और वह हिमालयके शिखरोंकी मालाके समान मालूम होता था । उसके पीछे एक बहुत चौड़ी गोल खाई खुदवाई । विद्यालयमें बड़े मजबूत किवाड़ लगवाए और सिर्फ एक ही दरवाजेमेंसे भीतर जानेका रास्ता रक्खा । एक तरफ अस्तबल बनवाई । नीचेकी ओर अखाड़ा बनवाया और सब विद्याओंके आचार्योंको बड़े प्रयत्नसे एकत्रित किया । वहाँ पित्ररेमें रखे गए सिंहके बच्चेकी भाँति चंद्रापीडको रक्खा और बाहर आनेका निषेध कर दिया । परिजनोंमें केवल आचार्योंके पुत्रोंको रक्खा और बालकोंके मनका आकर्षण करनेवाली खेलकी सब चीजें वहाँसे हटा दीं । ऐसी युक्ति की जिससे कुमारका मन अन्य वस्तुमें न लगे । फिर सब विद्या प्राप्त करनेके लिए एक अच्छे दित्त उसने चंद्रापीडको वैशंपायनके साथ आचार्योंके सुपुर्द किया । राजा विलासवतीके साथ, कुछ परिजनोंमें लेकर, रोज वहाँ कुमारको देखने जाया करता था ।

६३—इस प्रकार राजाके नियंत्रणमें रहते चंद्रापीडका हृदय अन्य विषयोंमें नहीं लगने पाया । हस्ते उसने अपनी अपनी निपुणता दिखानेवाले तथा

सुनात्र शिष्य मिलनेके कारण उत्साह पूर्वक शिक्षा देते हुए आचार्योंके पाम थोड़े ही समयमें सब विद्याओंका अभ्यास कर लिया । मणि-दर्पणके समान अत्यंत निर्मल राजकुमारमें सम्पूर्णा कला-कलापने प्रवेश किया । व्याकरणमें मीमांसामें, न्यायमें, धर्मशास्त्रमें, राजनीतिमें, मल्लवियामें, धनुष, चक्र, डाल, तलवार, शक्ति, भाला, परशु, गदा आदि अनेक प्रकारके आयुधोंमें, रथ हॉकनेमें, हाथी पर चढनेमें, अश्व-विद्यामें, वीणा, वेणु, मृदंग, कौसा, मजीरे, तूती, आदि वाजोंमें, भरत आदिके बनाए हुए नृत्य-शास्त्रमें, नारद आदिके संगीत शास्त्रमें, हस्ति शिक्षामें, घोड़ोंकी उम्र जाननेमें, पुरुषोंके लक्षणोंमें, चित्र-कर्ममें, वस्त्र या दीवार पर चित्र काटनेमें, ग्रन्थ-रचनामें, मूर्ति खोदनेमें, सब सूत कलाओंमें, गधर्व शास्त्रोंमें, पक्षियोंका उच्चारण समझनेमें, ज्योति शास्त्रमें, रत्न-परीक्षामें, बडईके काममें, हाथी दाँतके काममें, वास्तु-विद्यामें, वेद्यकमें, यत्र-प्रयोगमें, विष उतारनेमें; सुरग फोड़नेमें, तैरनेमें, उलावनेमें, कूदनेमें, चढनेमें, प्रेम करनेमें, जादूमें, कथाओंमें, नाटकोंमें, कहानियोंमें, काव्योंमें, महाभारतमें, पुराणोंमें, इतिहासमें, रामायणमें, सब लिपियोंमें, सब देशोंकी भाषाओंमें, सब पारिभाषिक सकेतोंमें, दस्तकारीमें, छंदोंमें और ऐसी ऐसी अन्य कितनी ही कलाओंमें वह अत्यन्त निपुण हो गया ।

६४—प्रति दिन कसरत करनेसे बाल्यावस्थामें ही उसमें सब लोगोंको विस्मय कराती, भीमसेनके समान, स्वाभाविक महावीरता देखनेमें आई । जब वह खेलमें हाथियोंके बच्चोंके कान हाथसे पकड़ कर आसानीसे उहे झुका देता था तब वे इस तरह जरा भी नहीं हिल सकते थे जैसे सिंहके बच्चेकी भ्रूपटमें आ गए हों, बाल्यावस्थामें तलवारकी एक-एक चोटसे तालवृत्तोंको, मृगाल दण्डके समान, काट डालता था, समस्त क्षत्रियरूपी ब्राह्मणोंके वनको अग्निरूप—परशुरामके^१ बाणोंके समान—उसके बाण पर्वतोंकी चट्टानोंको छेद

१—राजा कार्तवीर्य के एक हजार बाहुएँ थीं । एक बार वह जमदग्नि के आश्रम में गया । वहाँ जमदग्नि या उसके पुत्र नहीं थे इस कारण जमदग्नि की पत्नी ने उसका आतिथ्य किया । चलते समय राजा जमदग्नि की गौ ले गया और उसने आश्रमके वृत्त तोड़ ताड़ डाले । जब जमदग्नि के पुत्र आने वापिस आकर यह सब देखा तब उनको बड़ा क्रोध आया और

डालते थे । जिसे दस आदमी उठा सकें ऐसे लोहेके मुगदरसे वह कसरत करता था । अत्यंत बलके सिवा अन्य गुणोंमें वैशपायन उसके बराबर था । वह चद्रापीडका ऐसा पूरा विश्वास पात्र और परम-मित्र हो गया मानो दूसरा हृदय हो, क्योंकि दोनों धूलमें साथ साथ खेले थे और दोनोंकी साथ साथ परवरिश हुई थी । इसके अलावा सब कलाओंमें प्रवीण होनेसे चद्रापीड उसका बहुत मान करता था और शुक्रनासका बड़ा आदर करता था । वह एक क्षण भी वैशपायनके बिना अकेला नहीं रह सकता था । दिन जैसे सूर्यका अनुसरण करता है उसी प्रकार वैशपायन भी चद्रापीडके पीछे रहता था और एक क्षणके लिए भी उससे अलग नहीं होता था ।

६५—जब चद्रापीड इस प्रकार सब विद्याओंके अभ्यासमें लगा था तब उसमें यौवनारम्भ दिखाई देने लगा । वह समुद्रके अमृत-रसके समान त्रिभुवन-विलोभनीय, प्रदोषके चन्द्रोदयके समान सब लोगोंके हृदयको आनन्द देनेवाला, मेघकालके इन्द्र-धनुषके समान विविध राग^१-विकार-भगुर, कल्पवृत्तके कुसुम-प्रसवके समान कामदेवका शस्त्र, कमल-वनके सूर्योदयके समान अभिनव रागसे^२ रमणीय, मयूरके पंखोंके समान विविध नृत्य^३-क्रीडाके योग्य था । उससे उस रमणीय कुमारी रमणीयता भी दूनी हो गई । कामदेवको मौका मिलनेसे वह नए सेवकके समान उसके पास आने लगा । सौंदर्यके साथ साथ

उन्होंने कार्तवीर्य की राजधानी में जाकर उसे मार डाला । इसके बदले में कार्तवीर्य के पुत्रों ने, परशुराम नहीं थे तब, जमदग्नि के आश्रम पर हमला किया और जमदग्नि को मार डाला । जब परशुराम ने यह सुना तब उन्होंने प्रतिज्ञाकी कि वे कार्तवीर्यके पुत्रों के साथ सब चत्रिय जाति को निर्मूल कर देंगे । उन्होंने इक्कीस बार चत्रियों को नष्ट किया ।

१—इन्द्र-धनुष अनेक प्रकारके रंगोंके विकारसे अस्थिर होता है, यौवनारम्भ शृंगारके अनेक भावोंके विकारसे विनाश-शील होता है ।

२—उदयकालका सूर्य नई जल्लाईसे रमणीय होता है, यौवनारम्भ नये प्रेमसे रमणीय होता है ।

३—मयूरोंके पंख नृत्य क्रीडाके योग्य होते हैं, यौवनारम्भ नृत्य तथा अन्य शृंगार-रस सबधी क्रीडाके योग्य था ।

उसकी छाती बढने लगी । वज्रुजनोंके मनोरथोंके साथ साथ जवाएँ भग्ने लगी । शत्रुओंके साथ साथ मध्यभाग पतला होने लगा । दानके साथ साथ नितम्ब-भाग पृथु होने लगा । प्रतापके साथ साथ रोम-राजी बटने लगी । शत्रुओंकी स्थियोंके बालोंकी लटकोंके साथ साथ हाथ नीचेको लटकने लगे । चरित्रके साथ साथ नेत्र धवल होने लगे । आज्ञाके साथ साथ भुजाका ऊपरी भाग भारी होता गया और स्वरके साथ साथ हृदयमें गभीरता आ गई ।

६६—इस तरह चंद्रापीड जवान हो गया है, उसने सब कलाग्राम अभ्यास कर लिया है और सब विद्याएँ पढ ली हैं—यह जब राजाको मालूम हुआ तब आचार्योंकी अनुमतिसे उसे बुलानेके लिए, बलाहक नामक सेनापतिको बुला कर, बहुतसे सवार और पैदलोंके साथ, एक अच्छी घड़ीमें राजाने वहाँ भेजा । बलाहकने विद्यालयके पास पहुँच कर द्वारपालोंसे खबर भिजवाई । फिर वह विद्यालयके भीतर गया और जिसका चूड़ामणि भूतलमें लग गया था ऐसे मस्तकसे प्रणाम करके राजाके पास जिस तरह बैठ करता था उसी तरह विनय पूर्वक अपने पदके योग्य आसन पर राज-कुमारकी अनुमतिसे बैठ गया । फिर थोड़ी देर ठहर कर उमने चंद्रापीडके पास जाकर विनयपूर्वक कहा—कुमार, महाराजकी आज्ञा है कि हमारे मनोरथ सफल हुए, आपने शास्त्रोंको पढा, सब कलाएँ सीखीं और सब आयुर्विद्याओंमें बड़ी योग्यता प्राप्त की, इसलिए सब आचार्याने आपको विद्यालयसे घर जानेकी अनुमति दे दी है जिससे सब लोग शिक्षा ग्रहण करके बचन-स्थानमेंसे बाहर निकले गंध-गज-कुमारके तथा पूनोंके तत्क्षण निकले सकल-कला-परिपूर्ण चद्रमाके समान आपको देखें और बहुत कालसे दर्शनके लिये उत्कण्ठित हुए अपने नेत्र सफल करें । आपको देखनेके लिए सब रत्नवास अत्यंत उत्सुक है । विद्यालयमें रहते रहते आपको आज दसवाँ वर्ष लगा है । छठे वर्ष आपने इसमें प्रवेश किया था । इन दोनोंके जोड़नेसे आप अब सोलहवें वर्षमें हैं । इसलिए आज यहाँसे बाहर जाओ और दर्शानेत्सुक माताओंकी दर्शन देकर तथा बड़े बूढ़ोंको बदन करके राज्य सुख प्राप्त नई जवानीके

१—अपने पतियोंके चिनाशके डरसे शत्रुओंकी स्थियोंने अपनी चोटियाँ छोड़ दिया था; उनकी चोटियाँ नीचेकी तरफ लंबी लटक करती थीं ।

विलासका यथारुचि स्वतंत्रता पूर्वक अनुभव करो, राजा लोगोंका सम्मन करो, ब्राह्मणोंका पूजन करो, प्रजाका पालन करो और बंधुवर्गको आनंद दो। महाराजका भेजा हुआ यह अखिल त्रिभुवनका एक रत्न, इन्द्रायुध नामका घोड़ा दरवाजे पर खड़ा है। यह वेगमें पवन और गरुड़के समान है। इसे तीनों भुवनोंका आश्चर्य समझ कर पारसियोंके राजाने महाराजके पास भेजा था और यह सदेसा कहला दिया था कि समुद्र-जलमेसे उत्पन्न हुआ यह अयोनि-जन्मा अश्वरत्न मुझे मिला है। यह महाराजकी सवारीके योग्य है। इसे देख कर लक्ष्मण पहचाननेवालोंने कहा था कि जो लक्ष्मण इन्द्रके घोड़ेमें सुने जाते हैं वे ही इसमें हैं। इसके समान घोड़ा न तो कहीं हुआ और न होगा। इस-लिए आप इस पर सवार होनेकी कृपा करिए। महाराजने क्षत्रिय-राज-कुलोंमें पैदा हुए, विनीत, शूर, रूपवान्, चतुर और कुलीन एक हजार राज-पुत्रोंको आपकी सेवाके लिए भेजा है। वे घोड़ों पर बैठे बैठे आपको प्रणाम करनेकी लालसासे बाहर आपकी राह देख रहे हैं। इतना कह कर बलाहकके चुप हो जाने पर चद्रापीड़ने पिताकी आज्ञाको सादर स्वीकार किया और बाहर जानेकी इच्छामे, नवीन मेघकी गर्जनके समान गंभीर स्वरसे, इन्द्रायुधको भीतर लानेकी आज्ञा दी।

६७—आज्ञा होते ही एक बहुत बड़ा घोड़ा सामने आया। लगामके दोनों तरफ लगी हुई सुवर्णकी जंजीरोंको पकड़ पकड़ कर पद पद पर रोकनेकी कोशिश करते दो साईंस उसे खींचें लाते थे। उसका कद इतना ऊँचा था कि दाथ ऊँचे करनेमे ही पीठ छुई जा सकती थी। वह सामने आए आकाशका, मानो, पान करता था, उदरको केंपाते और पृथ्वीकी गुफाओंमें भरें डालते अतन्त कठोर शब्दको बार बार करके वह मिथ्या वेगका व्यर्थ घमड़ रखनेवाले गरुड़का मानो तिरस्कार करता था। क्षण क्षणमें कभी उसका मस्तक बहुत ऊँचा और कभी बहुत नीचा हो जाता था और वेग रोकनेसे पैदा हुए अत्यंत रोपसे उसकी घोर नासिका घुर घुर शब्द करती थी, जिससे ऐसा मालूम होता था मानो वह अपने वेगके गर्वने सपूर्ण त्रिभुवनका उल्लापन करनेका विचार कर रहा हो। इन्द्रधनुषके समान काली, पीली, हरी और लाल रेखा होते उसका सव शरीर चिप्रित था, जिससे वह अनेक रंगोंकी भूलसे दसा हाथीका

वचा मालूम होता था । वह कैलाश तटकी टक्करसे लगी धातुकी रजसे लाल हुए महादेवके बलके और दैत्य रुधिरकी रेखाओंसे लाल हुई सटावाले पार्वतीके सिंहके समान शोभायमान था । वह मानो शरीरधारी वेगका समूह था । बार बार फूलते नथनोमेंसे सूँ सूँ शब्द निकलनेके कारण वह ऐसा मालूम होता था मानो महावेगसे पी हुई हवा बाहर निकाल रहा हो । मुँहके भीतर लगनेसे खड़-खड़ करते लगामके पैने अग्रभागकी आकुलतासे पैदा हुई लारके भाग उसके मुँहमेंसे इस तरह निकलते थे मानो समुद्रमें निवामके समय पिए हुए अमृतकी घूँट हो । उसका मुँह बहुत लजा और निर्मास होनेसे उत्कीर्ण सा दिखाई देता था । मुँह पर लटकते पद्मपराग मणियोंकी फिरणों उसके दोनों कानोके निश्चल शिखरो पर पड़ती थी । उनसे वे ऐसे मालूम होते थे मानो उन पर लाल चमर लटकाए हों । सुवर्णकी उज्वल जंजीरोमेंसे निकलती हुई फिरणोंसे और लाखके समान लाल, लजी और फहराती हुई सटासे युक्त गर्दन ऐसी मालूम होती थी मानो समुद्रमें विचरनेसे उस पर प्रवालके पत्ते लग गये हों । जिनके रत्नोंके द्वार पद पद पर खनखनाते थे, जिनमें बड़े बड़े मोती लगे थे और जो सुवर्णकी पत्रलताकी अत्यंत टेढी और पतली रेखाओंसे मनोहर थे ऐसे लाल आभूषणोंसे वह तारागणसे सध्याकालके समान शोभायमान मालूम होता था । गहनोंमें जड़े मरकत मणियोंकी कतिसे उसका शरीर कुछ कुछ श्याम हो गया था, जिससे उसे देख कर आकाशमेंसे गिरे हुए सूर्यके रथके बोड़ेकी शका होती थी । अत्यंत तेजस्विताके कारण वह वेग रुकनेसे उत्पन्न हुए रोपके सन्न रोम-रोममेंसे निकलते पसीनेकी बूँदोंकी वर्षा करता था, जो समुद्रके परिचयमें लगे मोतियोंकी वर्षाके समान मालूम होती थी । इन्द्रमणिनी चौकीके समान, काले पत्थरसे मानो बनाए गए और बार बार ऊँचे नीचे उठनेके कारण अग्र-भागसे विषम स्वर करते पोले खुरांसे पृथ्वीको जर्जरित करके वह मानो मृदगका अभ्यास करता था । उसकी जंघाएँ मानो उत्कीर्ण थी, छाती बड़ी थी, मुँह पतला था, गर्दन मानो फैली हुई थी, दोनो पार्श्व मानो चित्रित थे और जवन-भाग मानो दूना किया हुआ था । वेगमें वह मानो गरुडका प्रतिस्पर्धा था, त्रिभुवनमें संचरण करनेमें वह पवनका मानो सहाय था, इन्द्रके पाड़ेका मानो

त था, वेगमें मनका साथी था ।

६८—गामन-रूप विष्णुके चरणके समान वह सपूर्ण पृथ्वीका उल्लघन करनेके योग्य था, वरुणके हसकी तरह उसका मानस-प्रचार^१ था, चैत्र मासके दिनकी तरह वह विकसित अशोक-पाटल^२ था, व्रतधारी पुरुषके समान उसके मुख पर राजका सफेद तिलक लगा था, कमल-वनकी तरह वह मधु-पिगल^३ केसर-युक्त था, ग्रीष्म ऋतुके दिनकी तरह वह महायाम^४ और प्रव्रल-तेज था; सर्पके समान वह सदा गतिके^५ अभिमुख रहता था, समुद्र-तटकी तरह वह शम्भुमाला-भूषित था। भयभीतकी तरह उसके कान सीधे खड़े थे, विद्याधरके राज्यके समान वह चक्रवर्ति नर^६-वाहन योग्य था और सूर्योदयकी तरह वह सत्र भुवनोंमें पूजाके^७ योग्य था।

६९—ऐसे अदृष्ट-पूर्व, तीनों भुवनोंके राज्यके योग्य, सर्व-लक्षण-संपन्न, देवलोकके योग्य आकारवाले महान् अश्वका रूप सौंदर्य देखकर अत्यंत धीर प्रकृतिवाले चंद्रापीडको बड़ा आश्चर्य हुआ और वह मनमें विचार करने लगा—वेगसे मुड़ मुड़ कर सिमटते वासुकि नागके द्वारा जब देव-दानवोंने मदराचलसे समुद्र-जल मथा तब उन्होंने यह अश्व-रत्न निकाला तो क्या निकाला ? इसकी मेरुके चट्टानके समान विशाल पीठ पर जो इन्द्र नहीं चढ़े तो उनको त्रिलोकीके राज्यसे क्या फल मिला ? उच्चैःश्रवासे विस्मित हृदयवाले इन्द्रको समुद्रने जरूर टगा है। मेरी रायमें तो अभी तक यह भगवान् नारायण के दृष्टि-गोचर नहीं हुआ, क्योंकि अब तक वे गरुड़ पर सवार होना नहीं छोड़ते।

१—इस मानसरोवरमें विचरते हैं, घोड़ेकी मनके समान तेज गति थी।

२—चैत्रमें अशोक और पाटल में पुष्प खिलते हैं, घोड़ा खिले हुए अशोक के समान पाटल था।

३—कमलके केसर-तन्तु मकरदसे पिगल होते हैं, घोड़ेकी सदा मधु युक्त पंक्तसे पिगल थी।

४—बड़े बड़े प्रहरवाला, बड़े विस्तारवाला।

५—बड़ी गरमीवाला; बड़े उत्साहवाला।

६—पवन, सदा जानेको तैयार रहता था।

७—नरवाहन नामक चक्रवर्ति राजा, चक्रवर्ति नरकी सवारीके योग्य।

८—अर्घ्य, धर्मा।

वचा मालूम होता था। वह नैलाग-तटनी टकरसे लगी वातुनी रजमे लाल हुए महादेवके ब्रैलके और दैत्य रक्षिणी रेखाओंसे लाल हुई सदावाले पार्वतीके सिहके समान शोभायमान था। वह मानो शरीरवारी वेगका समूह था। बार बार फूलते नयनोंमेंसे सूँ सूँ गन्ध निम्नलनेके कारण वह ऐसा मालूम होता था मानो महावेगने पी हुई हवा बाहर निम्नल रहा हो। मुँहके भीतर लगनेने खड-खड करते लगामके पीने अत्रभागकी आकुलताने पैदा हुई लारके भाग उसके मुँहमेंसे इस तरह निम्नलते थे मानो समुद्रमें निवासके समय पिए हुए अमृतकी घूँट हो। उसका मुँह बहुत लम्बा और निर्मास होनेने उत्कीर्ण-भा दिखाई देता था। मुँह पर लटकते पद्मराग मणिगोली फिरणें उसके दोनों कानोंके निश्चल शिखरों पर पड़ती थी। उनसे वे ऐसे मालूम होते थे मानो उन पर लाल चमर लटकाए हों। सुवर्णकी उज्वल जंजीरोंमेंने निकलती हुई फिरणोंसे आर लाखके समान लाल, लक्ष्मी और पहराती हुई सदासे युक्त गर्दन ऐसी मालूम होती थी मानो समुद्रमें विचरनेसे उस पर प्रवालके पत्ते लग गये हों। जिनके रत्नोंके द्वार पद पद पर खनखनाते थे, जिनमें बड़े बड़े मोती लगे थे आर जो सुवर्णकी पत्रलताकी अत्यन्त टेटी और पतली रेखाओंने मनोहर वे ऐसे लाल आभूषणोंसे वह तारागणसे सधामालके समान शोभायमान मालूम होता था। गहनोंमें जड़े मरुत मणिगोली कतिसे उसका शरीर कुछ कुछ श्याम हो गया था, जिससे उसे देव्य रर आनाशमेंसे गिरे हुए सूर्यके स्थके बोंड़ेनी शक्त होती थी। अत्यन्त तेजस्विताके कारण वह वेग रन्नेसे उत्पन्न हुए रोपके समान रोम-रोममेंसे निम्नलते पत्तीनेकी बूँदोंकी वर्षा करता था, जो समुद्रके परिचममें लगे मोतियोंकी वर्षाके समान मालूम होती थी। इन्द्र मणिनी चोनीके समान, काले पत्थरसे मानो बनाए गए आर बार बार ऊँचे नीचे उठनेके कारण अत्र-भागसे विषम त्वर करते पोले खुरोंसे पृथ्वीको जर्जरित-करके वह मानो मृदगका अभ्यास करता था। उसनी जवाएँ मानो उत्कीर्ण थी, छाती बड़ी थी, मुँह पतला था, गर्दन मानो फैली हुई थी, दोनों पार्श्व मानो चित्रित थे आर जयन्-भाग मानो दूना मित्रा हुआ था। वेगमें वह मानो गदड़का प्रतित्वधा था, त्रिभुवनमें सचरण करनेमें वह पवनना मानो सहाय था, इन्द्रके बाड़ेका मानो वार था, वेगमें मनना षापी था।

६८—जामन-रूप विष्णुके चरणके समान वह सपूर्ण पृथ्वीका उल्लघन करनेके योग्य था, वरुणके हसकी तरह उसका मानस-प्रचार^१ था, चैत्र मासके दिनकी तरह वह विकसित अशोक पाटल^२ था, व्रतधारी पुरुषके समान उसके मुख पर राखका सफेद तिलक लगा था, कमल-वनकी तरह वह मधु-पिगल^३ केसर-युक्त था, ग्रीष्म ऋतुके दिनकी तरह वह महायाम^४ और प्रव्रल-^५तेज था; सर्पके समान वह सदा गतिके^६ अभिमुख रहता था, समुद्र तटकी तरह वह शङ्खमाला-भूषित था। भयभीतकी तरह उसके कान सीधे खड़े थे, विद्याधरके राज्यके समान वह चक्रवर्ति नर^७-वाहन योग्य था और सूर्योदयकी तरह वह सत्र भुवनोंमें पूजाके^८ योग्य था।

६९—ऐसे अदृष्ट-पूव, तीनों भुवनोंके राज्यके योग्य, सर्व-ज्ञक्षण-सपन्न, देवलोकके योग्य आकारवाले महान् अश्वका रूप सौंदर्य देखकर अत्यंत धीर प्रकृतिवाले चंद्रापीड़की बड़ा आश्चर्य हुआ और वह मनमें विचार करने लगा—वेगसे मुड़ मुड़ कर सिमटते वासुकि नागके द्वारा जब देव-दानवोंने मदराचलसे समुद्र-जल मथा तब उन्होंने यह अश्वरत्न न निकाला तो क्या निकाला ? इसकी मेरुके चट्टानके समान विशाल पीठ पर जो इन्द्र नहीं चढे तो उनमें त्रिलोकीके राज्यसे क्या फल मिला ? उच्चैःश्रवासे विस्मित हृदयवाले इन्द्रको समुद्रने जरूर टगा है। मेरी रायमें तो अभी तक यह भगवान् नारायण के दृष्टि गोचर नहीं हुआ, क्योंकि अब तक वे गरुड़ पर सवार होना नहीं छोड़ते।

१—इस मानसरोवरमें विचरते हैं, घोड़ेकी मनके समान तेज गति थी।

२—चैत्रमें अशोक और पाटल में पुष्प खिलते हैं, घोड़ा खिले हुए अशोक के समान पाटल था।

३—कमलके केसर-तन्तु मकरदसे पिगल होते हैं, घोड़ेकी सटा मधु-युक्त फरसे पिगल थी।

४—बड़े बड़े प्रहरवाला, बड़े विस्तारवाला।

५—बड़ी गरमीवाला, बड़े उत्साहवाला।

६—पवन, सदा जानेको तैयार रहता था।

७—नरवाहन नामक चक्रवर्ति राजा, चक्रवर्ति नरकी सवारीके योग्य।

८—अर्घ्य, अर्घा।

अहा ! मेरे पिताकी राज्यलक्ष्मी तो इन्द्रसे भी बढकर है, क्योंकि वे ऐसे-ऐसे—संपूर्ण त्रिभुवनके दुर्लभ—रत्नोंका भी उपभोग करते हैं । अत्यन्त तेजस्विता और बड़े बलमे इस घोड़ेका आकार देवताके समान मालूम होता है इस कारण इस पर चढनेमें मुझे कुछ शंकासी होती है, क्योंकि सुरलोकके योग्य, संपूर्ण त्रिभुवन में विस्मय पैदा करनेवाला ऐसा आकार साधारण घोड़ेका नहीं हो सकता । देवता भी मुनियोंके आपसे अपने पहले शरीरको छोड़ आपके बलसे अन्य शरीर धारण कर लेते हैं । सुना जाता है कि पहले स्थूलशिरा नामक महातपस्वीने संपूर्ण भुवनोंमें अलंकाररूपिणी रंभा आसराको प्राप्त किया था, जिससे वह देवलोक छोड़ कर, अर्धहृदयमें आत्माका प्रवेश करके, अश्वहृदया नामकी घोड़ी हुई थी और मृत्युलोकमें मृत्तिकावती नगरीमें शतधन्वा नामके राजाकी सेवामें बहून् काल तक रही थी । अन्य महात्मा भी मुनियोंके आपसे अपना प्रभाव क्षीण हो जानेके कारण अनेक प्रकारके आकारमें इस लोकमें रह गए हैं । इसी भाँति यह भी कोई निःसदेह पापका फल भोग रहा होगा, क्योंकि मेरा अन्तःकरण इसके देवत्वकी सूचना करता है ।

१००—इस प्रकार सोचते सोचते वह सवार होनेकी इच्छामें आसन परसे उठ खड़ा हुआ । फिर इन्द्रायुधके पास जाकर अपने मनमें कहने लगा—महात्मन् अश्व, तुम चाहे जो हो, तुमको मैं नमस्कार करना हूँ । मेरे सवार होनेकी अवज्ञा सर्वथा क्षमा करना, क्योंकि पहचाने बिना देवता भी अनुचित तिरस्कारके पात्र हो जाते हैं । मायेकी चंचल सटाके लगनेसे जरा भिचे और तिरछा देखते नेत्रोंकी पुतलियाँ फेर कर इन्द्रायुध इस तरह उसे देखने लगा मानो उसका अभिप्राय समझ गया हो और, जमीन पर बार बार पड़ते दाढ़िने खुसे खुदी धूलसे अपनी छातीके बर्तनों मटियाला करके उसे मानो सवार होनेके लिये बुलाता हो इस तरह, फूले हुए नथनोंके फुफ्फुारकी ध्वानसे मिली, मधुर, तथा बार बार हुँकार करनेसे अत्यन्त मनोहर दिनहिनाहट करने लगा । तब चंद्रापीड़ इन्द्रायुध पर इस तरह सवार हुआ मानो मधुर स्वरसे आज्ञा मिल गई हो और सब त्रिभुवनको अगुलकी बराबर समभता बाहर आया । वहाँ उसने बृहत्सारासी एक फोन दे नी जमना अन्त तो देख भी नहीं पड़ता था । वह—

भेते बरसते ओले और मेदके समान कठिन—रसातलको मानो जंत्ररित

करता हो ऐसे अत्यंत निष्ठुर खुरोंके शब्दसे और खुरोंसे उड़ती रजसे रुकी नासिकाके घोर घोष-सहित निकलते शब्दसे पृथ्वीकी सब गुफाओंको बहरा करती थी। वह सूर्य-किरणोंके स्पर्शसे चमकते फलकवाले, ऊँचे किए हुए भाले रूपी लता वनसे ऊँचे दडवाले, नील-कमलकी कलियोंके समूहसे भरे सरोवरके समान आकाशको शोभायमान करती थी। सैनिकोंके ऊँची डडीवाले मोर पक्षोंके बने हजारों छत्रोंके कारण आठों दिशाओंके मुँह अधकारसे व्याप्त हो गए थे जिससे वह फौज चमकते इन्द्र धनुषसे विचित्र मेघ-वृन्दके समान मालूम होती थी। भागका डेर निम्नलनेसे सफेद मुँहवाले और पलपलमें विचरनेसे अस्थिर हुए घोड़ोंसे ऐसा मालूम होता था मानो प्रलयके समय समुद्रमें जलकी तरंगें उठी हों। चंद्रापीड़को देखते ही सब फौजमें इस तरह खलपली मच गई जैसे चंद्रमाको देख समुद्र उमड़ने लगता है। फिर प्रणाम करनेकी जलदीमें छत्र एकदम खिसक जानेसे राजपुत्रोंके सिर खुले रह गये और वे आसमें भिच जानेसे क्रुद्ध घोड़ोंके मोड़नेका यत्न करने लगे। वे सब चंद्रापीड़के आसपास इभट्टे हो गए और बलाहक जैसे-जैसे एक-एकका नाम बतला कर परिचय कराता गया वैसे-वैसे ही वे खिसके हुए मुकुटोंमेंसे निकलती पद्मराग मणियोंकी किरणोंके आकारमें अनुरागको मानो बाहर दिखाते, तेजस्वलि मुकुलके रचनेसे यौवराज्याभिषेकके कलशमेंसे जलके साथ गिरते कपल माना जिनसे चिरक गए हों ऐसे अपने मस्तकोंको दूरसे झुका-झुका कर उसको प्रणाम करते गए।

१०१—उन सबका सन्मान करके पास ही यथोचित घोड़े पर बैठे वैशम्पायनके साथ चंद्रापीड़ नगरीकी ओर चला। धूप रोकनेके लिए उस पर छत्र लगाया गया था। छत्रका आकार राज्य लक्ष्मीके रहनेके पुंडरीकके समान था। सब क्षत्रिय उसे देख कर इस तरह प्रसन्न होते थे जैसे चंद्रमण्डलको देख कुमुद प्रकृतित हों। वह अश्म-सेना रूप नदीका पुलिन था और क्षीरसमुद्रके भागसे सफेद हुई वासुके सर्पकी सुन्दर पनके समान मालूम होता था। उनकी सुर्यानी उठी पर बड़े-बड़े मोतियोंका जाल लग रहा था आर सिंहाकी मूर्तियाँ चिन्तित थीं। दोनों ओर झलते चमरोंकी हवासे चंद्रापीड़के कर्ण-पक्षय दिल रहे थे प्रार पैदल चलते परिजनोमेंसे आगे दौड़ते हजारों जवान

वीर पुरुष—जय हो, चिरञ्जीव हो—ऐसे मधुर शब्दोंसे ग्रौर वदीजन मंगल वचनोंसे बार-बार उच्च स्वरसे उसकी प्रशंसा करते जाते थे ।

१०२—फिर शरीर-धारी कामदेवके समान चद्रापीड़को शहरकी सड़क पर आया देख कर सब लोग अपना-अपना काम छोड़, चद्रोदयके समय खिलते कुमुद वनके समान, हर्षसे प्रफुल्लित हो गए । चद्रापीड़के पृथ्वी पर होनेसे तो मुख-समूहोंके कारण विकृत आभारवाले कार्तिकेय कुमार^१ शब्दको लजित करते हैं । अहो ! हमने कैसे पूरय किये हैं जो हम इसके दिव्य आकारको हृदयमें उभरते प्रीति-रसके सागके कारण विस्तार पाते और कुनूहलसे प्रफुल्लित हुए नेत्रोंसे वेष्टके देखते हैं । आज ही हमारा जन्म सफल हुआ । चद्रापीड़के आकारमें रूपान्तर धारण करके आए हुए भगवान् नारायणको सर्वथा नमस्कार है । यो कहते कहते शहरके सब लोग हाथ जोड़ कर उसको नमस्कार करने लगे । सब जगह किवाड़ खोल लेनेसे हजारों खिडकियाँ प्रकट हो जानेके कारण ऐसा मालूम होता था मानो उस शहरने भी चद्रापीड़के दर्शन करनेके चासे अपने सब नेत्र खोल लिये हों । सब विद्या समाप्त करके चद्रापीड़ विद्यालयमेंसे अभी यहाँ आते हैं—यह सुनते ही उनको देखनेके लिये उत्कण्ठित हुईं शहर भरकी सब स्त्रियाँ शृङ्गार करती करती, थोड़े बहुत गहने पहन कर, जैसीकी तैसी, उतावलीमें उठ, महलोंकी चोटियों पर चढ़ गईं । उनमेंसे कितनी ही स्त्रियोंके बाएँ हाथमें दर्पण थे । उनसे वे ऐसी मान्म होती थीं मानो प्रकाशित पूर्ण चद्र मडल-सहित पुनोंकी रात्रियाँ हों । कितनी ही स्त्रियोंके पैर महावरसे लाल लाल रंगे थे । उनसे वे ऐसी मालूम होती थीं मानो नई धूपसे व्याप्त कमल-वाली कमलिनियाँ हों । कितनी ही स्त्रियोंके चरण धवराहटमें चलनेसे उतरी हुई तागड़ीसे रूँध गये थे । उनसे वे ऐसी मालूम होती थीं मानो बाँधनेकी जंजीर लेकर मद मद चलती हथिनियाँ हों । कितनी ही स्त्रियाँ वर्षाके दिन इन्द्र श्रींती भोंति इन्द्रायुध^२ राग-रुचिर रंग-सुन्दर अपर-युक्त थीं । कितनी ही स्त्रियोंके चरणोंमेंसे नखोंकी सफेद किरणें फैल रही थीं, जिनसे उनके पैर पायजनोंकी भ्रनभ्रनाहट सुन कर आकृष्ट हुए पालतू हसोंके समान

१—पृथ्वी पर कामदेव ।

• इन्द्र वनुषके रंगोंसे सुन्दर आकाश, इन्द्र-वनुषके समान सुन्दर मय ।

मालूम होते थे । कितनी ही स्त्रियोंके हाथोंमें बड़े बड़े हार रह गये थे । उनसे वे कामदेवकी मृत्युसे शोकातुर हुई, स्फटिक मणिकी माला लेकर खड़ी, रतिकी विडम्बना करती थीं । कितनी ही स्त्रियोंके स्तनोंके बीचमें मोतियोंकी मालाएँ लटक रही थीं । उनसे वे ऐसी मालूम होती थीं मानो सकड़े और निर्मल जल-प्रवाहसे जुड़े किए गए चकवा-चकवीवाली प्रदोपश्रियाँ हों । कितनी ही स्त्रियोंके पायजेत्रोंकी मणियोंमेंसे इन्द्र-धनुष निकल रहे थे । उनसे वे ऐसी मालूम होती थीं मानो पालतू मोरनियाँ परच कर उनके पीछे आ रही हों । कितनी ही स्त्रियोंने मणिमय प्यालोंको आधा पीकर रख दिया था । वे ऐसी मालूम होती थीं मानो फड़कते हुए रगीन अधर-पल्लवोंमेंसे मधुर-रसकी बूँदें टपकाती हों । अन्य कितनी ही स्त्रियाँ मरकत मणिकी खिडकियोंमेंसे मुख-मंडल बाहर निकाल निकाल कर इस भाँति चंद्रापीड़को देखने लगीं मानो प्रफुल्लित कमल-युक्त कमलिनियाँ आकाशमें फिरती हों ।

१०३—उस समय जल्दी-जल्दी चलनेके कारण आपसमें टकरानेसे बहुत तेजीसे भ्रनभ्रनाती हार मणियोंवाली रमणियोंके गहनोंका श्रोत्रहारी शब्द एक साथ उठा । वह मधुर उँगलियोंसे बजती वीणाके शब्दके समान मेखलाओंके शब्दसे प्राकृतित हुए पालतू सारसोंकी आवाजसे मिल गया । सीढ़ियों परसे पैर फिसलनेके कारण उत्पन्न होती गभीर ध्वानसे आनंदित हुए रनवासके मयूर उसे सुन कर केम-व्रनि करने लगते थे । वह नवीन मेषकी गर्जनासे डर कर चौंक उठते, कलहसोंके कोलाहलके समान कोमल था, कामदेवके विजय-घोषका अनुसरण करता था और महलोंके भीतर प्रति शब्दसे गभीर हो गया था ।

१०४—फिर एक क्षणमें ही स्त्रियोंकी भीड़के कारण महल मानो नारी-मय हो गया, महावर लगे चरण कमलोंसे सत्र भूतल मानो पल्लव-मय हो गया, स्त्रियोंकी देह पान्तिके प्रवाहसे सत्र नगर मानो लावण्य मय हो गया, मुख मंडल के समूहने आकाश मानो चंद्राभय मय हो गया, धूप रोक्नेके लिए ऊँचे उठा कर धाड़े किए बहुतते हावने सत्र दिशाएँ मानो कमल-वन मय हो गईं; गहनों की निरखोते नूरका प्रकाश मानो इन्द्र-धनुष मय हो गया और नेत्रोंमेंसे निरलती निरखोने दिन मानो नील कमल-वन मय हो गया । चावने नेत्र फेला कर

एकाग्र दृष्टिसे देखती हुई स्त्रियोंके हृदयोंमें चंद्रापीडनी आकृतिने इस प्रकार प्रवेश किया मानां वे दर्पण-मय हों, सलिल-मय हों अथवा स्फटिक-मय हों ।

१०५—फिर तो काम-रस प्रकट होनेसे उस क्षण उनमें आपममें परिहास-युक्त, विवास-युक्त, भय-युक्त, ईर्ष्या-युक्त, हास्य-युक्त, क्रोध-युक्त, विलास-युक्त, काम-युक्त, स्पृहा-युक्त रमणीय आलाप होने लगे, जैसे—अरी दौड़नेवाली, मुझे भी सग लेती जा, अरी तू देखनेके लिए पागल हो गई है, अपना डुपट्टा सँभाल, अरी मूढ, तेरी लट्टें मुँह पर पड़ी हैं उन्हें तो सुवार, यह अपना चाँद तो लेती जा, अरी कामसे अवी, देख, तू पूजाके फूलों पर ठोकर खाकर गिर पड़ेगी, अरी मद्मत्त, अपनी चोटी तो बाँध, अरी तू तो चंद्रापीडके देखनेके लिए तड़प रही है, अपनी तागड़ी तो ऊँची चढा, अरी पापिन, गाल पर हिलते उस कर्ण-पल्लवको तो एक तरफ कर, अरी अज्ञान, तेरी हाथीदाँतकी कंगी गिर पड़ी है उसे तो उठा ले, अरी तू तो जोवनसे उन्मत्त हो गई है, अपनी छाती तो ढक ले, देख, लोग तेरी तरफ देखते हैं, वेशरम, तेरा दुकूल ढीला हो गया है उसे तो ठीक कर ले, अरी तू तो ऊपरी मुग्धता दिखाती है, जलदी आ, तू तो देखनेकी बड़ी शौकीन है, मुझे भी तो देखने दे, अरी तेरा मन नहीं भरा, तू कब तक देखा करेगी, तेरा हृदय बड़ा चचल है, जरा अपने नौकर-चाकरोंका तो खयाल कर, मिशाचिनी, तेरा डुपट्टा खिसक गया है, लोग तुझ पर हँसते हैं, तू तो प्रेमसे अधी हो गई है, क्या तू अपनी सखियोंको भी नहीं देखती, अरी तू तो कुटिलतासे भरी है, तू हृदयको क्यों बुरा परिताप देकर जीती है; अरी भूठा विनय दिखानेवाली, तू लुभा कर क्यों देखती है, देख न, बेखटके, अरी युवति, क्यों तू अपने स्तनोंके भारसे मुझे दबाती है, अरी गुस्तेन, ले तू ग्रागे जा, अरी मत्सरिणी, क्या तू अकेली ही सब लिङ्गीके घेर लेगी, तू तो कामसे पराधीन हो गई, मेरा डुपट्टा क्यों खींचती है, अरी तू तो प्रेमसे मद्मत्त हो गई है, जरा तो अपनेको रोक, अरी अधीर, क्यों बड़े-बूढ़ोंके सामने दौड़ी जाती है, ओ उतावली, क्यों इतनी व्याकुल हुई जाती है, अरी मुग्धा, कामन्त्रसे उलबन हुए रोमावको लुभा, अरी चारिणी, क्यों ऐसी घबराती है, अरी बहुन भिकारवाली, अनेक आरसे ग्रंग टेडा करके बुरा तू अपनी कमरको कट देती है, अरी शून्य

हृदयवाली क्या तुम्हें अपने घरमेंसे निकलनेकी भी खबर नहीं है; अरी उत्कंठित हुई, तू तो सॉस लेना भी भूल गई, तूने तो सकलित सुरत समागमके सुत्रसे आँखें मीचली हैं, उन्हें खोज, देख यह तो जाता है, तू तो काम-बाणके प्रहारसे मूर्छित हो गई है, धूम रोक्नेके लिये अपने सिंग पर कपड़ेका पल्ला डाल, अरी तू तो सतीव्रत-रूपी ग्रहसे पीड़ित है, देखने लायक वस्तु न देख कर तू अपने नेत्रोंको ठगती है, तू बड़ी भाग्य हीन है, पर-पुरुषका मुँह न देखनेकी प्रतिज्ञा करके तूने यह सब सुख खो दिया है, सखि, कृपा कर उठ और इस रति विहीन, मकर-ध्वज-रहित साक्षात् कामदेवके समान कुमारको देख । यह मफेद छत्रके नीचे भौरोके झुंडसे काले दीखते सिर पर अंधेरा जान कर बुझे हुए चंद्रमाकी किरणोंके कलापके समान चमेनीके फूलोंका मार दीखता है । उसके गालोंपर कर्ण-भूषणके मरकत मणिकी जरा श्याम चमक पड़ती है । उमसे ऐसा मालूम होता है मानो उसने खिले हुए शिरीषके फूलका कनफूल पहना हो । हारमें जड़े हुए पद्मराग-मणियोंकी किरणोंके वहाने मानो नई जवानी का रंग उसके हृदयमें घुसनेकी इच्छासे बाहर फिरता है । यह उसने चमरोके बीचमें होकर इयर ही देखा । वैशपायनके साथ वातचीत करनेमें यह दंत किरणोंकी रेखासे दिशाओंको सफेद करके हँसता है । उधर ब्लाहक प्रोढ़के खुर्चोंमेंसे उड़-उड़ कर आगेके वाला पर पड़ी हुई धूलको तोतेके परके समान हरे कपड़ेकी कोरसे पोछता है । यह उसने लक्ष्मीके करमलके समान कोमल तलवाला चरण ऊँचा उठा कर घोड़ेके कंधे पर आड़ा डाला । गैबलका ग्रास लेनेकी इच्छासे जैसे हाथी अपनी सूँड़ लची करता है उसी तरह इसने अपने लगी उँगलीवाले, कुछकुछ लाल कमल-कोशके समान, हाथको तावून लेनेके लिये लीला-महित फैलाया । धन्य है उस पृथ्वीकी सपत्नीको जो कमलसे भी अधिक कोमल हाथका, लक्ष्मीके समान, ग्रहण करेगी । धन्य है विलासवती देवीको, जिसने सब पृथ्वी मंडलका भार वहन करने योग्य—दिग्गजके समान—रत्न कुमारको दिशाकी तरह अपने गर्भमें रक्खा ।

१०६—ऐने तथा इसी तरहके वचन कहती हुई युवतियाँ नेत्रासे मानो उसका पान करने लगीं, गहनोत्ते शब्दसे मानो उसे पुलाने लगीं, हृदयसे मानो उसका पीछा करने लगीं, आनूषण-रत्नोंकी किरण-रूपी रत्नीसे मानो उसे

बोंबने लगी, नव यौवन रूपी बलिदानसे मानो उसे पूजने लगी, और विवाहाभि के लिए फूल मिली हुई लाजाञ्जलिके समान शिथिल भुज-लताओंसे गिरे सफेद कंकण मानो पद पद पर उसके लिए बिखरने लगी । फिर धीरे धीरे राजकुमार राज-घर के पास आ पहुँचा । वहाँ गडस्थलमेसे बराबर रिसते मदसे काली कीचड़ करनेवाले, काले पर्वतोंकी कतारके समान मलीन, खत्रोंसे ढँचे हुए हाथियोंके कारण दिशाओंके मुख पर अंधेरा हो रहा था, जिससे वह वर्षाऋतुके दिनके समान दिखलाई देता था । ऊँचे उठे हजारों छत्रोंसे वह भर गया था और अनेक देशोंसे आए सैकड़ों दूत वहाँ खड़े थे । वहाँ पहुँच कर चद्रापीड़ घोड़े परसे उतरा ।

१०७—उतर कर वैशम्पायनका हाथ पकड़ उसने राज-गृहमे प्रवेश किया । बलाहक आगे आगे जाकर विनीत-भावसे मार्ग बतलाता जाता था । राज-गृह इतना बड़ा था कि वहाँ तीनों भुवन एकत्र हुए दीखते थे । उसके दरवाजेके पास सोनेकी छड़ीं लिए, सतयुगके पुरुषोंके समान बड़े शरीरवाले और चित्रित वा उत्कीर्ण हो ऐसे निश्चल द्वारपाल उपस्थित थे । वे सफेद कवच, सफेद अगलेप, सफेद फूलोंका शेलर, सफेद पगडीवाले, सफेद वेप करनेके कारण सफेद द्वीपमे ही मानो पैदा हुए हो ऐसे दीखते थे । वे दिन-रात तोरणस्तम्भके पास ही बैठे रहते थे । बड़े बड़े महलोंसे वह राजगृह ऐसा मालूम होता था मानो हिमालयसे युक्त हो । महलों की चोटियों पर चौकोन कमरे, चन्द्रशाला, कवूतरोके दड़वे और बैठनेके ऊँचे चबूतरे बने थे । वे ऊँचाईमे आकाश तक पहुँचते थे, शोभामे कैलास पर भी हँसते थे और निर्मल चूनेसे उन पर सफेदी की गई थी । खिड़कियोंमेसे युवतियोंके गहनोंकी हजारा किरणें फैलती थी, जिनसे ऐसा मालूम होता था माना वहाँ सुवर्णके तारोंका जाल बिछा दिया गया हो ।

१०८—उसके भीतर, सर्प-कुलसे भरी हुई पातालकी गुफाके समान, अत्यंत गभीर आयुवशालाएँ बनी हुई थी । उनमे बहुतेसे शस्त्र रखे थे । वहाँ बहुतसे कीड़ा-पर्वत शोभायमान थे । उनमे अत्रलाओंके चरणों पर लगी हुई महावरके न लाल पद्मराग-भाणिके टुकड़े चमकते थे, और उनके शिपरोंमे भरे हुए केना खसे कल कल किया करते थे । दरवाजेके पास सर्जी हुई हथिनियाँ

पड़ी थीं जिनके सोनेके जीन पर उज्ज्वल वर्णकी भूलें पड़ी थीं, लटकते हुए चमर जिनके चचल कर्ण-पल्लवको चूमते थे और कुलीन स्त्रियोंके समान जो शिक्षा^१ तथा विनय^२के कारण निश्चल थीं । एक तरफ, गध मादन नामका एक गध-गज सूँटेके पास चैठा था । वह नवीन चादलकी गर्जनाके समान गम्भीर, वीणा-वेणुके स्वरसे रमणाय और घुँघरियोंके शब्दसे घर्घर करती, सगीत और मृदंगकी बराबर होती ध्वनिको जरा आँख मीच कर और सूँडको बाँध दौतकी नोक पर रख कर, कर्ण-जाल निश्चल रख, लीला-सहित, सुनता था । उसके दोनों तरफ अनेक रंगोंकी झुन लटकती थी, जिससे वह धातुग्रोसे विचित्र पखौंजाले विंध्यावलके समान मालूम होता था । महावतके गीतसे खुश होकर वह गम्भीर कण्ठसे गर्जना करता था । मदजलसे रँगे हुए शंखसे उसके कान शोभित थे, जिनसे वह चन्द्रबिम्बसे चुम्बन किए गए प्रलय-मेघका तिरस्कार करता था । कानके पास लटकते सुवर्णमय अक्रुशसे ऐसा मालूम होता था मानो उसने मुख पर कर्णभूल पहना हो । उसके गडस्थलके आसपास घूमता भौरोगा झुण्ड ऐसा मालूम होता था मानो मदजलसे मलीन हुआ दूसरा कर्ण-चमर हो । उसकी पूर्वक्राया बहुत ऊँची थी और जघन-भाग बहुत ही छोटा था, जिससे वह ऐसा मालूम होता था मानो पातालमेंसे निकलता हो ।

१०६—निशा-समयके^३ समान वह अर्ध-चन्द्र-सहित नक्षत्र मालासे भूषित था । शरद^४ ऋतुके प्रारम्भकी तरह वह प्रकटित अरुण चारु पुंकर था । वामन^५ अयतारके समान वह त्रिपदी विलास करता था । पर्वतकी

१—संज्ञादि ज्ञान, अध्यापन ।

२—अधीनता, नम्रता ।

३—रात्रि अर्धचंद्र तथा तारोंके समूहसे युक्त होती है, हाथी हार पहन रहा था जिसमें चाँद लगा हुआ था ।

४—शरदमें सु दर लाल कमल प्रकट होते हैं, हाथीकी सूँड सुन्दर और लाल थी ।

५—मानने तीन पैरोसे त्रिभुवनको नापा था, हाथी पैरो हुई जजीरो से खेलता था ।

स्फटिक^१ मणिमय तलहटीकी तरह वह लग्न सिंह-मुख प्रतिम या ग्रोर अलङ्कृत^२ भौति चचल कर्ण-पल्लव उसके मुख पर टफराते थे । वहाँ अस्तत्रलसे आए हुए राज-प्रिय घोड़े सुशोभित थे । उनकी पीठ उज्ज्वल कमलोसे ढकी थी, मधुर घटियोंके बजनेसे उनके कंठ सुगर हो रहे थे, सटाग्रोंके बाल मजीठसे रंगे हुए थे, जिनसे वे ऐसे मालूम होते थे मानो जंगली हाथीके लहूमे लाल हुई सटावाले सिंह हों । उनके पास डाली गई चासकी गठरियों पर अन्तत्रलके जमादार बैठे थे । पाससे आती मगल गीतकी धनिको बोड़े कान लगा कर सुनते थे । हाथसे मधुरसमें साने गये दानेके ग्रास उनके मुखमें भरे थे ।

११०—कचहरीमें, अच्छी-ग्रच्छी पोशाक पहन कर, अत्यन्त ऊँची वैतकी कुरसियों पर बैठे, मानो धर्ममय ही हो ऐसे मालूम होते, बड़े बड़े जज उदरियत थे । सब गोंवो ग्रार नगरोंके नाम कठस्थ होनेसे सब जगतको मानो एक ही घरकी भौति देखते ग्रौर सब भुवनोके व्यापार लिखनेसे मानो धर्मराजके नगरके व्यवहारको दिखाते कचहरीके नाजिर वहाँ हजारो परवाने लिखा करते थे । भीतर बैठे राजाके बाहर ग्रानेकी राह देखते, खास करके तिलग, द्राविड़, ग्रौर सिंहल द्वीपके, अनेक सहस्र सेमक वहाँ स्थानस्थान पर फुट बाँधे खड़े थे । वे सोनेके अर्द्धचन्द्र ग्रौर सैरुङ्गों तारोसे विचित्र दीपती हुई चमड़ेकी ढालोसे मानो निशा समय प्रकट करते थे । चमकती हुई पैनी तलवारोमेंसे निकलती फिरणाको धूममें मिला देते थे । एक एक कानमें उन्होंने मफेद दंतमत्र पहन रक्खा था । साफा ऊँचा बाँध रक्खा था । खवे पर सफेद चन्दनमा लेम कर लिया था ग्रौर लुरे बाँध रक्खे थे । सभा-मण्डपमें योग्य ग्रासनों पर हजारों नत्रिय सामन्त बैठे थे । उन्होंने ग्रपने बड़े बड़े मणिमय मुक्तों पर सफेद पगड़ीकी तरह लपेट ली थी जिससे वे निर्भर सहित शिखर पर पड़े हुए चालातप मण्डलवाले कुल पर्वतोके समान शोभायमान मालूम होते थे । उनमेंसे कोई जुग्रा खेल रहे थे, कोई शतरंज खेल रहे थे, कोई तीन बजाते

१—स्फटिकमें सिंहका मुँह दीपता है, क्योंकि सिंह वहाँ फिरते हैं, हाथीकी सूँड़ पर सिंह चित्रित था ।

२—अलङ्कृत पुरुषके मुख पर कर्णपल्लव लटकता है, हाथीके कान-रूपी मुख पर लटकते थे ।

ये, कोई चित्र-फलक पर राजाका चित्र खींचते थे, कोई काव्यालाप करते थे, कोई परिहास करते थे, कोई विन्दुमती रचते थे, कोई पहेलियाँ हल करते थे, कोई राजाके बनाए हुए काव्य सुभाषित पढ़ते थे, कोई द्विपदी नामक प्राकृत छन्दकी प्रशंसा करते थे, कोई कवियोंके गुणोंका प्रसार करते थे, कोई चित्र बनानेके लिए रेखा खींचते थे, कोई वेश्याओंके साथ बातचीत करते थे और कोई त्रैतालिकोंके गीत सुनते थे ।

१११—नभा-मंडरके पर्यन्त भागमें, राजाओंके राजसभामेंसे उठ जानेके कारण, तड़ किये हुए बहुतसे गलीचे और जड़ाऊ कुरसियाँ रक्खी थी, वे विविध रंगके इन्द्र धनुषके सनूहके समान मालूम होती थी । निर्मल मणिभूमिमें पड़े मुंगोंके प्रतिबिम्बसे खिले हुए कमल-सनूहमें मानो उत्पन्न करती, चलतेमें भ्रम-भ्रम करते पायजेव, कंमण्य और तागड़ीम शब्द करतीं, और कंधे पर सोनेकी टटीके चमर रख कर बारंबार जातीं जातीं वेश्याओंसे वह भर गया था । उसके एत भागमें सोनेकी जंजीरसे बंधे कुत्ते बैठे थे । हजारों पालतू कस्तूरी-मृग हजर उधर फिरते थे । उनकी सुगंधसे सब दिशाएँ सुगंध मय हो गई थीं । वहाँ अनेक कुन्ज, किरात, नपुसक, बधिर वामन और मूकजन थे । चित्रोंके जोड़े और मन मानुष लाकर रक्खे गए थे । नेट, मुर्गे, कुरर, चातर, लवा और घतसभी लड़ाई हो रही थी । चमोर, कलहस, हारीत, और कोकिल गान कर रहे थे । तोता मैनाका आलाप हो रहा था । हाथीके मदरी सुगंधसे क्रोध उत्पन्न हो जानेके कारण लुब्ध हुए, बड़ी गर्जना करते—मानो पर्यंतोनी गुहाओंमें रहते पर्यंतोंके जीवन हो ऐसे—पकड़ कर पिजगोमें बंद किए गए सिंहोंसे वह शोभायमान था । सुराणकी दीवारोंकी चमकमें दावानल ममभ डरते चंचल दृष्टिवाले पालतू हिरनोंके नेत्रोंकी प्रभासे वहाँकी सब दिशाएँ विचित्र दिखाई देती थीं । वहाँ मरकतमय धरती पर मयूर खड़े थे । वे अपनी कंकासे ही पहिचाने जाते थे । चंद्रा वृत्तोंकी छायामें बैठे पालतू नारत ऊँचने लगते थे । राजशूहके भीतर प्रायः पुष्पे लङ्कितों गेंद और गुट्टियाँ खेलती थीं । दिन-रात दिलते मुंगोंके शिकार पर राजा प्रतिभोका टकार दिशाओंमें व्याप्त हो जाता था । हारनों पर्यंत मानुषी जात पर मयूर खींच ले जाते थे । मरुतोंके शिकारोंसे उतर कर नीचे चढ़ते वनूगोले नीतरक्य रिस्ता ऐना मालूम होता था मानो स्थल-

कमलिनीका वन हो । वहाँकी स्त्रियाँ राजाके चारित्रका अनुकरण करनेके खेलम
 लगी रहती थीं । बदरंके झुंड अन्तवलमेसे वहाँ आकर सबको व्याकुल करते
 थे । अनारके फल कुतर डालते थे, आँगनमे लगे आमके पत्ते तोड़ डालते
 थे और आमन और किरात लोगोंको उरा कर उनके हाथोंसे गहने छीन कर
 बिखेर डालते थे । वहाँके मैना तोतांकी रति क्रीड़ाना रहस्य प्रकाशित करते सुन
 कर अंत.पुरकी स्त्रियाँ लज्जित होती थीं । महलकी सीङ्गियों पर चढती हुई मल्लि-
 लाओंके पैरोंमें पहने हुए—पद-पद पर शब्द करते—मणिमय पायजेत्रो और
 कंक्रणोंसे जिनका स्वर दूना हो गया था ऐसे पालतू कलईमोकी पंक्तियोंसे वहाँका
 आँगन सफेद मालूम होता था । धुले हुए सफेद कपड़े और झुपड़ा वारण कर,
 पगड़ी बाँध कर, सोनेकी छड़ी हाथमें लेकर, पलितसे सफेद सिरवाले,—मानो
 आधार-मय, मर्याद मय और मंगल मय हों ऐसे—गभीर आकृतवाले, वीर
 स्वभावके और उम्र पूरी होने पर भी बूढ़े सिहके समान सत्वका^१ अवलम्बन
 न छोडनेवाले, कचुकी वहाँ फिरने थे । काले अगस्के धूमसे वह माना मेम
 युक्त था, तैवार खड़े हाथियोंकी सूँडमेसे निजलती पानी की बूँदोंसे मानो वहाँ
 कुहरा बरस रहा था, तमाल-वृक्षोंकी कुर्जोंसे अधकारसे मानो वहाँ रात्रि थी,
 लान अशोक वृक्षसे मानो बाल सूर्य का उदय हुआ था, मुक्तामलापसे मानो
 तरागण आ गए थे, वाराहसे मानो वर्षा-समय आ गया था, मोरोंके बैठनेसे
 सुवर्ण मय उँडोंसे मानो वह तड़ित् लता युक्त था और पुतलियोंने ऐसा मालूम
 होता था मानो वहाँ गृह देवता ही उपस्थित हो ।

११२—महादेवके भवन की तरह वहाँ दरवाजेके पास हाथोंमे छड़ी लिये
 प्रतीहार^२-गण खड़े थे, उत्कृष्ट कविके बनाए हुए गद्यकी तरह वह विविध
 वर्ण^३ श्रेणि प्रतिपाद्यमान अभिनव अर्थ-सचय था, ग्रामराओंके मडलकी तरह

१—लिह पशुओंका अवलम्बन नहीं छोडता, कचुकियोंने साहस नहीं
 छोडा था ।

२—शिवके गण, द्वारपाल ।

३—गद्यमे विविध अक्षरोंकी श्रेणीसे नया नया आशय प्रकट होता है;
 वहाँ ब्राह्मणादि वर्णोंको बार बार द्रव्य दिया जाता था ।

वह प्रफट मनोरमारभ^१ था, सूर्योदयकी भाँति वहाँ पद्माकरमेंसे^२ कमलकी सुगंधि
निकलती थी; सूर्यकी तरह वहाँ कमलोपकार^३ लक्ष्मीकृत था, नाटककी तरह वह
पताकाफले^४ शोभित था; शोणितपुरके समान वहाँ वाणके^५ योग्य आवास था,
पुराणकी तरह वहाँ सकल भुवन-कोशनी^६ योग्य व्यवस्था होती थी; पूर्ण-
चन्द्रोदयके समान हजारों मृदुकरोसे^७ रत्नालयका सवर्धन होता था, दिग्गजकी
तरह वहाँ दानपा^८ प्रवाह बराबर जारी रहता था; महादेवके बाहु-वनकी
सब जीवलोक^९-व्यवहार-कारणोत्पन्न-हिरण्यगर्भ^{१०} था, महाभारत-
तरह उसके प्रकोष्ठोंमें^{१०} महाभोगियोंके सहस्र मडलका वास था, महाभारत-
की तरह वहाँ श्रान्त गीत^{११} सुन कर नर श्रान्तित होते थे, यदुवशके समान

१—मधोरमा और रमासे युक्त वहाँ मनका रंजन करनेवाले खेल होते थे ।

२—पद्म-सरोवरोंमेंसे कमलकी सुगंधि निकलती थी ।

३—सूर्य अपनी कान्तिसे कमलका उपकार अर्थात् विकाश करता था;
राजगृहका यही सिंहा था कि वहाँ धनसे प्रजाका उपकार हो ।

४—नाटकमें पताका (नाटकका अंग) और अक होते हैं, वहाँ पदुवसी
पताकाएँ लगी हुई थी ।

५—राणानुरके योग्य महल, वाण आदि अस्त्रोंके रखनेके योग्य स्थान ।

६—भूमडल व्यापार, खजाना ।

७—किरणोंसे समुद्र बढ़ता था, छोटे-छोटे महसूलोंसे खजानेकी वृद्धि
होती थी ।

८—मद, त्याग ।

९—प्रदांडमें प्राणिमात्रकी स्थितिका कारण हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुआ था;
वहाँ लोगोंके सुकदनाका फैसला होनेसे फीसका बहुवसा धन इकट्ठा हो
गया था ।

१०—महादेवकी कलाई पर चड़े बड़े साँप लिपटे रहते हैं, उसके अहातेने
चड़े-पड़े धनी रहते थे ।

११—अप्ययी प्रशंसा सुन कर अर्जुनकी आनंद होता था, वहाँ बहुवसे
गीत सुनकर अनुप्य स्थानदित होते थे ।

कुल क्रमागत^१ शूर, भीम, पुरुषोत्तम बलमे उमका पालन होता था; व्याकरणके समान वह प्रथम मध्यम-उत्तम पुरुष विभक्ति स्थित अनेक आदेश कारकोंसे आख्यात सप्रदान-क्रिया व्यय प्रपञ्चमे सुस्थित था, समुद्रकी तरह उमके भीतर डरसे हजारों सपत्न^३ भू-रोंने प्रवेश किया था, उपा और अनिरुद्धके समागमके समान वहाँ चित्ररेखामे^४ सब त्रिभुवनका विचित्र आकार दिखाया गया था, राजा बलिके यज्ञकी तरह उसके भीतर पुराणपुरुष^५ वामन बैठे थे, शुक्लपत्तके ढोप समयके समान वहाँ प्रफुल्ल चद्रिका^६ धवल अंबर वितान थे, नरवाहनदत्त राजाके चरितकी तरह वह ग्रंत. संवर्धित^७ प्रियदर्शन राजकुमारिका गंधर्वदत्तोत्कठ था, महातीर्थके समान वहाँ अनेक पुरुषोंको

१—वसुदेव तथा बड़े वीर कृष्ण बलरामने कुलरुमके अनुमार यदुवशका पालन किया था, वहाँ शूर, भयानक तथा उत्तम पुरुषोंको सेनासे रखा होती थी ।

२—ठपाकरण प्रथम-मध्यम-उत्तम पुरुष, विभक्ति स्थित अनेक आदेश, कारक, भाव-प्रदान, सप्रदान, क्रिया, अठाय इनके प्रपञ्चसे युक्त है, वहाँ प्रथम, मध्यम तथा उत्तम श्रेणीके पुरुषोंको पहचाननेवाले बहुतसे नाजिर दानके लिये खर्चकी व्यवस्था करते थे ।

३—पंस समेत पर्वत, मित्रभाव-युक्त राजा ।

४—उपाकी सखी चित्ररेखाने सब त्रिभुवनका चित्र खींच कर दिखाया था, वहाँ दीवार पर नकशा खींच कर सब त्रिभुवनका विचित्र आकार दिखाया गया था ।

५—वामन रूपसे विष्णु, बड़े और बौने ।

६—खिली हुई चाँदनीसे धवल आकाश रूपी वितान, वहाँ खिली हुई चाँदनीके समान सफेद शामियाने तन रहे थे ।

७—अन्त पुरमे संवर्धित हुई प्रियदर्शनवाली राजा सागरदत्तकी पुत्री गन्धर्वदत्ताको नरवाहनदत्तके वियोगके कारण उससे निकलेकी उत्कठा हुई वहाँ नवासकी सुन्दर रानियोंको देख कर गन्धर्वोंका भी मन बल्ल-था ।

अभिप्रेरका^१ फल तत्काल मिलता था, यज्ञगृहकी तरह वह विविध आसव^२-पात्रोंसे ऋत था, निशा समयकी तरह वह अनेक नक्षत्रमालाओंसे^३ अलंकृत था, प्रभात-समयके समान उसमें मित्रोदयका^४ अनुमान पूर्वमें दीख पड़ते रागसे होता था, गवीके घरके समान वह स्नानके समय उपयोगमें आते धूप, अंग-लेप और चदनसे उज्ज्वल दीखता था; तमोलीके घरकी तरह वहाँ लवली, लोंग, इलायची और कंकोलके पत्ते इकट्ठे थे, वेश्याके प्रथम समागमके समान वहाँ चेष्टा-विकारसे हृदयका अभिप्राय समझमें नहीं आता था, कामी जननी तरह वहाँ मधुर आलाप और सुभाषित रसके स्वादसे ताल^५ दिये जाते थे, जुआरियोंके मडलके समान वहाँ मणिके अगणित अलंकार देनेमें लेख-पत्र^६ होते थे, धर्मारभके समान वहाँ सब लोगोंका मन प्रसन्न रहता था, महावनकी तरह वहाँ व्याघ्रादि पशुओं और द्विजों^७का घोष सुनाई देता था, रामायणकी तरह वहाँ वानर-कथा^८ होती थी, माद्रीकुलकी तरह वह नकुलसे^९ अलंकृत था, संगीत शालाकी तरह वहाँ स्थान स्थान पर मृदंग^{१०} रक्खे थे, रघुकुलके समान वहाँ भरत-गुणसे^{११} आनंद प्राप्त होता था, ज्योतिष शास्त्रकी

१—देवतार्थोंकी पूजाकी दक्षिणा, स्नानका फल ।

२—सोमरसके पात्र, शराबके प्याले ।

३—तारे, हार ।

४—सूर्योदयका अनुमान पूर्व दिशामें दीखते हुए रंगसे होता था, वहाँ मित्रताके आरभमें ही मित्रोका अभ्युदय होने लगता था ।

५—कामी हाथ पीटते हैं, वहाँ आपसकी बातचीतमें अभिमत बात सुनने पर तालियाँ बजाई जाती थीं ।

६—जुआरियोंमें जो हारता है वह कागज लिख देता है, वहाँ रानियों-सो पहननेके लिए दिए गए मणिके अलंकार कागज पर लिखे जाते थे ।

७—पक्षी, प्राण्य ।

८—पद्मोष्ठी कहानी, हनुमानकी कथा ।

९—(२) नौले ।

१०—(२) महीके खिलौने

११—(२) नाटक ।

तरह वह ग्रहण-^१मोक्ष-कलाभागमें निपुण था, नारद पुराणकी तरह वहाँ राज-धर्मका वर्णन होता था । वाजों की तरह वह विविध शब्दरमसे मधुर मालूप होता था । मृदु काव्यके समान वह अनन्य^२ चिंतितस्वभावाभिप्राय दरसाता था, महान-रीके प्रवाहकी तरह वह दुरितका^३ हरण करता था, द्रव्यकी तरह किमीको उसकी अनिच्छा नहीं होती थी, सध्या-समयके समान वहाँ चन्द्रापीड^४का उदय दीखता था । नारायणके वन्द-स्थलकी तरह वह श्रीरत्न^५-प्रभासे दिशाग्रो को प्रकाशित करता था, बलभद्रकी तरह वहाँ कादम्बरीके^६ विशेष रसका वर्णन अत्यंत प्रिय था, ब्राह्मणके समान पद्मासनके^७ उरदेशसे वहाँ भूमडल दिखाया गया था, स्वामिकार्तिकके समान वह मयूर-क्रीड़ाके आरभसे चलता था; कुलीन स्त्रीके आचरणके समान वहाँ सर्वदा शका^८ रहती थी; वेश्याकी तरह वह उपचारमें^९ चतुर था, दुर्जनकी तरह उसे परलोकवा^{१०} भय नहीं था, चांडाल आदिके समान वह अगम्य^{११} विध्याभिलाषी था, अगम्य^{१२} विषयमें

१—ग्रहण, मोक्ष और १६ कलाओंके भागमें निपुण, शत्रुओंको गिरफ्तार करने और दंड देकर छोड़नेके कानूनमें प्रवीण मंत्री ।

२—निका साधारण मनुष्य चिंतन न कर सकें ऐसे भावों और प्रकृतियोंका वर्णन, असाधारण प्रकृति और भाव ।

३—पाप, दुराचार ।

४—सध्याके शिरोभूषणके समान चंद्रका उदर, राजकुमार चन्द्रापीड ।

५—लक्ष्मी, कौस्तुभ, शोभायुक्त रत्न ।

६—मदिरा, कादम्बरी ।

७—ब्राह्मण वेदके अनुसार सब भूमडलका प्रतिपादन करता है, वहाँ पद्मासनके अग्रासके द्विपृष्ठीका एक भाग निश्चित था ।

८—सदेह, सावधानता ।

९—प्रसन्न करना, अभ्यागतका सत्कार ।

१०—दूमरे लोक, शत्रु ।

११—भोगके लिये अगम्य, उसकी दुर्लभ देशकी अभिलाषा कोई जान नहीं सकता था ।

१२—अगम्य उपभोग, दुर्लभ देश ।

ग्रामक्त होनेपर भी वह प्रशसनीय था; यमदूतकी भाँति वह किए हुए दुष्कृत सुकृत विचारनेमें प्रवीण था; सत्कार्यके समान वह आदि, मध्य और अतमे कल्याण-कारक था, दिनके आरंभके समान वह प्रकाशित पद्मरागसे^१ निशान्तको रक्त करता था, दिव्य मुनिगणकी तरह वह कलापि सहित^२ श्वेत-केतुसे शोभित था, भारतके रण-क्षेत्रके समान वह कृतवर्म^३ त्राण-चक्रके समूहसे भयकर लगता था, पातालके समान वहाँ हजारों महाकचुकियोंका^४ वास था; वर्ष-पर्वतनी तरह उसके भीतर शृगी^५ हेमकूट थे, बड़े बड़े द्वार होने पर भी उसमें प्रवेश करना कठिन था; अवनति देशमें होने पर भी वहाँ^६ मागध-जन रहते थे और समृद्ध होने पर भी वहाँ नग^७ लोग घूमते फिरते थे ।

११३—सब स्थानोंमें एकत्रित होकर पहिलेसे उचित स्थान पर खड़े और सुकृतोंको बहुत नीचा करनेसे ढीले चूडामणिकी किरणोंसे धरतीना चुम्बन करते राजा लोग, जैसे जैसे प्रतिहार निवेदन करता गया उसी उसी प्रकार, एक एक करके आदर-सहित उसको प्रणाम करने लगे और पद पद पर, आचार में निपुण अन्तःपुरकी बूढ़ी स्त्रियों भीतरसे बाहर आ आ कर उसका मागलिक उतारा करने लगीं । इस रीतिसे एक साथ आकर प्रणाम करते प्रतिहारोंके बताए मार्गसे आगे जाकर और भुवनान्तरके समान अनेक जातिके हजारों मनुष्योंसे भरी सात बड़ी डेवढियों पार कर उसने अभ्यन्तरमें स्थित—निमल पुलिनसे शोभित मदाफिनीके जलमें देव-गजकी भाँति—हसके समान सफेद पलंग पर बैठे पिताको देखा । उनके चारों ओर वशपरंपरागत, कुलीन तथा उनसे प्रेम करनेवाले शरीर रक्षाके अधिकारी पुरुष खड़े थे । वे हाथ, पैर

१—कमलोंके चमकते रंगसे प्रातःकाल लाल लाल हो जाता है; वहाँ पद्मराग नणियोंने घर लाल लाल थे ।

२—कजावि और श्वेतकेतु मुनि, सफेद ध्वजाएँ, जिन पर मोर चित्रित थे ।

३—कृतवर्मके पाण्डोंके समूहसे, कच, धाण और चक्र ।

४—साँप, सवास ।

५—रुतसे शिखरवाला हेमकूट, थलकारोंके लिए सुवर्णके डेर ।

६—मगधके, जाट ।

७—नग, देवी ।

और नेत्रोंके सिवा सब शरीरको श्याम कम्बुसे ढँक लेनेके कारण ऐसे दीखते थे मानो हाथीके मदकी सुगंधके लोभसे निरन्तर चिपटे हुए भौरोंसे युक्त हाथी बाँधनेके स्तंभ हों । दिन रात शस्त्र धारण करनेसे उनकी हथेलियाँ काली पड़ गई थीं और महावीरता तथा अति कर्कशताके कारण दानवोंके समान पराक्रम उनके मनके अभिप्राय और आकारसे ही जान लिया जाता था । वेश्या दोना औरसे राजा के ऊपर बराबर सफेद चमर डुलाती थी ।

११४—प्रतिहारके—देखिए—कहने पर उसी क्षण चन्द्रापीडने माथा बहुत नीचा कर प्रणाम किया जिससे उसका चूड़ामणि चलायमान हो गया । इतनेमें—आओ आओ—यों कहते कहते राजाने दूरसे ही बाहु पसार, पलंग परसे कुछ ऊँचा उठ कर, आनन्दके आँसुओंसे भरी आँखोंसे—रोम सड़े हो जानेके कारण—मानो वह विनयसे नम्र हुए चन्द्रापीडको अपने साथ सी लेता हो या एक फर लेता हो वा पीता हो इस प्रकार आलिंगन किया । मिल कर अलग होनेके बाद ताम्बूल वाहिनीके द्वारा शीघ्र आसनके लिये तै करके रक्खे गए चादरेको ले जानेके लिए धीरेसे रुह कर और उसे पैरके अंगूठेसे एक तरफ सरका कर चन्द्रापीड, पिताके चरणोंके पास, धरती पर ही बैठे और पाम रक्खे अपने आसन पर राजासे पुत्रके समान आलिंगन किया गया वैशम्पायन बैठे । चमर झलना भूल कर निश्चल हुईं वेश्यायें वहाँ पवनसे हिलते कमल पत्रके हारोंके समान दीर्घ और टेढी फिरती पुतलियोंसे विचित्र मालूम होते अभिलाषा युक्त क्यात्त चन्द्रापीड पर फँकने लगीं । थोड़ी देर बैठनेके बाद जब राजाने—आओ, वरुण, अपनी पुत्र-वत्सला माताकी उदना कर, सब दर्शनों स्फुर माताओंको यथाक्रम दर्शन देकर आनन्द दो—यों कह कर उसे प्रिया क्रिया तब वह विनय सहित उठ, सेनक-जन छोड़ कर, केवल वैशम्पायनका लेकर, रनवासमें प्रवेश करने योग्य राज परिवर्तनके बताए मार्गसे अन्त-पुरमें गया ।

११५—वहाँ माताके पास जाकर कुमारने प्रणाम किया । वह सफेद चोली धारण करनेवाली अन्त-पुरकी हजारों शुद्ध टहलनियोंके बीचमें होनेसे क्षीरसागर की तरंगोंसे परिवृत लक्ष्मीके समान दीप्ति थी, अत्यंत शांत आकृतियाली, गीये वदन धारण करनेवाली, सभाके समान सब लोगोंके नमस्कार करनेके लिये, लक्ष्मी कानवाली, अनेक कथा-वृत्तांत जानती, प्राचीन समयकी पवित्र कथा

कहती, इतिहास बॉचती, पुस्तकें धारण करती, धर्मका उपदेश करती, वृद्ध परिव्राजिकाएँ उसका मन बहला रही थीं, स्त्रियोंके बेपमें त्रियोंकी ही भाषा बोलते नपुंसक, विकट आभूषण पहन कर, उसकी सेवा करते थे, छोटे छोटे पखे उस पर बराबर हो रहे थे, कपड़े, गहने, फूल, पटवास, पान, पखे, अङ्गलेप और झारियाँ लेकर, मडल बना कर, बैठी हुई स्त्रियाँ उसकी सेवा करती थीं। स्तनों पर लटकते मोतियोंके हारसे वह दो पर्वतोंके बीचमें बहते गंगा प्रवाहसे युक्त पृथिवीके समान शोभायमान थी, और निरुद्वर्ती दर्पणमें अपने मुखका प्रतिबिम्ब पडनेसे, सूर्य मडलमें घुसे चन्द्र-विम्बवाले आकाशके समान प्रकाशित थी।

११६—रानीने ऋतु चन्द्रापीडको उठा कर, आज्ञा पालनेमें चतुर परिजनोंके पास होने पर भी, आप ही उतारा किन्ना, और स्तनोंमेंसे रिसती दूधकी बूंदोंके आकारमें, स्नेहाकुल होनेके कारण वह कर मानो बाहर निकलते हुए हृदयसे, वह मनमें सैफ़ों मगलोक चिन्तन करती उसके माथेको सूँव कर बहुत समय तक उमका आलिंगन करती करती खड़ी रही, फिर वैशम्पायन का भी उमी तरह योग्य उपचार करके भेंट कर स्वयं वैत्री। विनयसे जमीन पर बैठते चन्द्रापीडको खेंच कर उमभी इच्छा न होने पर भी हटते उसने अपनी गोदमें बैठा लिया और दासियोंसे शीघ्र लाई गई वैतकी कुर्सी पर बैराभ्यापनके भी बैठने पर चन्द्रापीडको बार बार छ्वातीते लगा, ललाट, छाती और कमर पर बारम्बार हाथ फेरती फेरती विलासवती कहने लगी—पत्न, तुम्हारे पिताका हृदय कैसा कठोर है कि उन्होंने ऐसी त्रिभुवन-लालीन प्राकृतिको इतने समय तक ऐसा मजा क्लेश सहन कराया। तुम इतने प्रतिक्रमण तक गुह्यग्राह्य नियन्त्रण किस प्रकार सहन कर सके होगे ? अहो, ज्ञातक होने पर भी तुमारा प्रौढके समान महा धैर्य्य है। अहो, तुम्हारे हृदयमें मलनामस्थामें ही माल-नीझामी उत्कंठामो छोड़ दिना ? अहो, गुह्यग्राह्य पर तुम्हारी जलामानस भक्ति है। जेते तुम्हारे पिताके प्रमादसे सर्वथा प्राय न तुमको माल विनासे पूर्ण देव सभी हूँ उनी तरह मे दोड़े ही मालमें प्रमुखा ननु प्रोमरित देरूनी। इनना कद कर लजा और नुमनुगहटके

कारण नीचे झुके—ग्रामने मुखको परछाईं पड़नेके कारण जो मानो खिले कमलके कर्ण-पल्लवमहित मालूम होता था ऐसे—चन्द्रापीड़के गाल पर चुम्बन किया। इस तरह वहाँ थोड़ी देर रहनेके पीछे यथाक्रम सत्र अन्त पुरमें दर्शन देकर चन्द्रापीड़ने सत्रको ग्रानन्दित किया। फिर वहाँसे बाहर ग्रामर राज गृहके दरवाजेके पास खड़े इन्द्रायुग पर बैठ, पत्तेके अनुसार ही, वह राजा लोगोको साथ लेकर शुकनासस मिलने गया।

११७—वह शकुनामके घरके दरवाजेके पास आ पहुँचा जहाँ अनेक प्रकारके हाथी तैयार खड़े थे, अनेक सहस्र घोड़े थे और असंख्य मनुष्योंके झुण्डकी निरन्तर भीड़ हो रही थी। उसके एक भागमें, ग्रामने-ग्रामने कामोंके लिये आए हुए, दर्शन करनेके उत्सुक, विविध शास्त्रोंके अध्ययनसे षुद्ध बुद्धिवाले, जोगिये कपडोंके वहाने विनयसे अनुगम प्रकट करते, धर्मपटसे मानो आच्छादित हुए, बौद्धमतके मुख्य अनुयायी रत्नाम्बर और शोवी तथा ब्राह्मण चारों ओर हजारों मडल बना कर दिन रात बैठे रहते थे। भीतर गए हुए सामन्तोंकी लाखों हथिनियोंसे वह भरा हुआ था। उनके जगन पर दोहरी लपेटी झून गोदमें लेकर पुरुष बैठे थे, बहुत देर राह देपनेसे थक कर उनके महावत निद्रा-वश हो गये थे, जिन उन पर पड़ी हुई थी और निश्चल स्थितिमें भी वे ऊँची नीची घूमा करती थीं। वहाँ ग्रामर वह दरवाजेके पास खड़े प्रतिहारोंके मने किए बिना भी ग्रामने ग्राम, राजकुन ही भाँति, ग्राह के आगमनमें ही बाड़े तरसे उतर पडा। फिर बोड़को दरवाजेके पास खड़ा कर वैशभायनका हाथ पकड़ कर—ग्रामने गैर कर परिजनोंको हटाते, सेवार्थ इन्हें दे दिए, चनायमान मुकुटवाले राजाओंके झुण्डोंसे, पहले ही का भाँति, उठ उठ प्रणाम किया गया—चन्द्रापीड़ प्रतिहारोंको प्रचंड हुंकारके भयसे चुा हुए परिजनवाले और छड़ीदारोंके चलनेसे चकित हुए सामन्तोंके सैह्यों चरण पड़नेसे कपित हुए झूलवाले कमरे पत्तेको तरह देपता देपता, प्रथमही भाँति ही नई संकेत किए जानेके माग्य श्वेत महलोंमें युक्त, दूसरे राज गृहके समान, शुकनासके भवनमें घुसा। प्रवेश करके ग्रामने सहस्र नरन्द्रोंके बीचमें विराजते, अतीव विनाके नमान, शुकनासको उमने विनय पूर्वक दूरमें मन्तक बना कर किया।

११८—तत्र सत्र राजा लोग यथाक्रम खड़े हो गए और शुकनासने जल्दी उठ कर आदरसे कितने ही कदम आगे आकर हर्षसे प्रफुल्लित लोचनोंमें भरे आनन्दाश्रु-सहित चन्द्रापीडका और वैशम्पायनका प्रेम-युक्त गाढ आलिगन किया । मिलकर अलग होने पर राजपुत्र मान-पूर्वक लाए हुए रत्नासनको छोड़कर भूमि पर ही बैठा और फिर वैशम्पायन भी वैसे ही बैठा । चन्द्रापीडके बैठने पर शुकनासके सिवाय अन्य सब नरेन्द्र भी अपने अपने आसन छोड़ जमीन पर ही बैठे । फिर थोड़ी देर चुप रह कर प्रीतिसे रोमांचित हुए गात्रसे अत्यन्त हर्ष प्रकट कर शुकनास राजकुमारसे इस भाँति कहने लगा ।

११९—वत्स चन्द्रापीड, आपको सब विद्या-सम्पन्न और तपण हुआ देख बहुत कालके अनन्तर आज महाराज तारापीडको भुवन-राज्यका फल मिला है । आज सब गुरुजनोक्त आशीर्वाद सफल हुआ, अनेक जन्मान्तरमें किए अच्छे कर्मोंका फल मिला और कुलदेवता प्रसन्न हुए । जो पुण्य-आत्मा नहीं है उसके आरके समान त्रिभुवन विस्मय-जनक पुत्र कैसे हो सकता है ? कहाँ यह अमानुषी शक्ति ? कहाँ यह समस्त विद्या ग्रहण करनेका सामर्थ्य ? अहो ! धन्य है उन प्रजाओंसे जिनके आग भरत, भगीरथके समान शासक पैदा हुए हैं । भूमिने ऐसा क्या पवित्र कर्म किया जिससे उसे आपके समान पति मिला ? नारायणके धनस्थलमें रहनेका हठ करनेवाली लक्ष्मीका भी यह दुर्भाग्य है कि वह शरीर-सहित आपके निकट नहीं आती । वाराहने जिस प्रकार दत्त प्रलयसे पृथ्वीसे उठाया था उसी भाँति आप भी स्वप्नानुने, पितृके साथ, पृथ्वीका भार कोटिकल्प तक बहन करो । इतना सह कर सहने, करड़े, फूल, अमराग आदिसे स्वयं ही सत्कार करके उने निश क्रिया । वहाँसे उठ कर प्रतःपुमें जा, वैशम्पायन की माता मनोरमासे मिल, नहर प्रान्त इन्द्रायुध पर सवार होकर, वह पितृके पदलेसे ही निश्चित किए गए, राज-रश्मि के प्रतिनिधके समान, मरुतमें गया । वहाँ दरगजेके पास जलपूर्ण सकेद कतल रखे थे । हरी मन्दनचारें बैठी थीं । हजारों सकेद पराई पदम स्त्री थीं । नागलिन तु ईने शब्दसे दिग्गन्तर व्याप्त हो गए थे । पतंगने मिले हुए कुत्तोंके टेर लगा रहे थे । छोड़े ही नमा पदले शान नमात्त हुए थे । उजले प्रोर राक नरेनन किते थे । रश्मिप्रवेशके दो व सब नारा

क्रियाएँ की गई थी। वहाँ जाकर श्रीमडपमें स्थित पलंग पर कुछ देर बैठ कर उन्हीं राजपुत्रों सहित उसने स्नान भोजन आदि नित्य क्रिया की और इन्द्रायुक्त आवास भीतर, अपने शयनगृहमें ही, गूँखा।

१२०—यों करते करते दिन समाप्त हुआ। आकाशमेंसे उतरती दिवसश्रीके पैरमेंसे गिरते—अपनी ही प्रभासे भरे छेदवाले—पद्म-रागके नूपुरके समान रवि-मडल किरणों फैला कर नीचे गिर पड़ा। सूर्यके रथके पहियेके रास्तेमें होकर, जल-प्रवाहके समान, धूप भी पश्चिम दिशामें गई। दिवसने नये पलंग सदृश लाल हथेलीवाले हाथके समान नीचे लटकते सूर्य-चिम्बसे मानो सर कमल राग पोंछ दिया। कमलिनीकी महकसे आकृष्ट हुए भ्रमरोंसे पिरे कठवाले चक्रवाक मिथुन, कालपाशसे खींचे गएकी भाँति, एक दूसरेसे अलग हो गए और सूर्य-चिम्बने कर मम्पुटसे साथ-माल तक धिए हुए कमल-मधुसक्तों, मानो लाल धूपके आकारमें, आकाशके बीचमें चलनेकी थकावटके कारण उगल दिया।

१२१—फिर यथाक्रम जब पश्चिम दिशाका लाल कर्ण कमल सूर्यमडल अन्य लोकेमें गया, गगन-मगोवरकी विकसित कमलिनीके समान सध्या दीपने लगी, माले ग्रगरुकी पत्र-लताके समान तिमिर रेखाएँ दिशाओंके मुखमें फेलने लगीं, कुवलय-धनके समान अवकार—रक्त कमलाकरके समान—सध्यारागको दूर करने लगा, कमलिनियोंके धिए हुए आतपके निमालनेके लिए, मानो ग्रधकारके पलंगके समान, भ्रमरोंके झुंड लाल कमलके उदरमें घुसने लगे, धीरे धीरे निशा रूप विलासिनीके मुखका कर्ण-पलंग लुपी सध्याराग गिर पड़ा, मध्या समय देवपूजामें बलिभिंड प्रत्येक दिशामें रख दिए गए, मोरोंके बैठनेके उंटोंकी चोटियों पर अकार व्याप्त हो जानेसे मयूरोंके नहीं बैठने पर भी मानो वे उन पर बैठे हों ऐसा मालूम होने लगा, प्रसाद जदमी के कर्ण कमलके समान कक्षतर घातलोंमें चले गये, न्त्रियोंके नहीं बैठे होनेसे अतः पुरके झूनोंकी सोनेकी पटलियाँ निश्चल और घटियोंकी आवाज बंद हो गई, परम लगे आमके पेड़की आदिना पर लटकते पिंजरोमें तोता नैनाओंके झुंडका चीनना बंद हो गया, संगीतके अथके स्वर बंद कर बीणाएँ खप दी गईं, महिलाओंके पायजमोंकी कनकनाट बंद हो जानेके कारण मानव राजहम निश्चल हो गये, मत्त हाथियोंके कर्ण-राग, पर, मन्त्रमना आदि गूँने उतार लिए गए वर उनके मंडल्यल मोरोंके

उड़ जानेसे खाली हो गए, राज प्रिय अस्तबलोमें लप जला दिए गए; पहले प्रहरकी कुजर-घटा प्रवेश करने लगी, स्वस्तिवाचन करके पुरोहित बाहर निकलने लगे, राजा लोगोंके विदा होनेके कारण थोड़े भरिजन रह जानेसे राज गृहके बड़े बड़े कमरे अधिक विन्तृत हुए-से दीखने लगे; हजारों प्रज्वलित दीमकोंके प्रतिविंबसे चुम्बित हुई मणिनय भूमि पर प्रफुल्ल चमकके मानो उपहार रखे हो ऐसा मालूम होने लगा, गृह-सरोवरमें दीमकोंका प्रकाश पड़नेसे सूर्यके वियोगसे पीड़ित नलिनीका मन बहलानेके लिए मानो बाल सूर्य आया हो ऐसा मालूम हुआ, मिजरेम बट सिंह निद्रा बश हो गए, धनुष चढा कर बाण ले चांकीदारके समान कामदेवने अतःपुरमें प्रवेश किया, कर्ण-पल्लवके समान सराग सुगत दूतीके वचन सुनाई देने लगे, सूर्यमान्त मणियोसे अग्नि समान्त हो जानेके कारण मानिनियोंके शोभाते हृदय मानो जलने लगे और प्रदोष समय हो गया तब चन्द्रापीड़, जलते हुए दीमकोंमें युक्त परिवार-सहित, टहलता ही राज गृहमें गया और पिताके पान जोड़ी देर बैठ कर, विलासवतीसे मिल, अपने महलमें आया और वहाँ अनेक ग्नीमी प्रभासे विचित्र हुए पलग पर, शेषनागके कण-मडल पर विष्णुके सम्मान, सो गया ।

१२२—सवेरा होने पर उठ कर पितामी आज्ञा लेकर, अभिनव मृगयाके आत्मभ्रष्टे आर्भषित हृदयवाला कुमार, सूर्योदयसे पहले ही, इन्द्रायुध पर सवार हो, पहनसे हाथी घोड़े और पैदल सहित बन्की तरफ चला । गधाके समान बड़े बड़े कुत्तोंको सोनेकी जजीरे बाँध कर खँच लाते रक्त, निरंतर कोलाहल करते करते, चन्द्रानीउचे आगे दोउ दौड़ कर गमनके उत्साहमें डूना करने लगे । उन्होंने बृद्ध व्याघ्रके चमरुपी विचित्र बल्बके मचुक पटने पे, माथे पर विषिध बणके साफ बाँधे थे, टाटी बट जानेसे उनके मुँह भर गये थे, एक एक वानमें उन्होंने सोनेके गहने पहने थे, कमर मजबूत बाँध ली थी, दिन रात निदरत करनेसे उनी जी जाँचे मोड़ी हो गई थी और उन्होंने हाथोंमें पशु ले रखे थे । जहाँ जान तब खँच कर छुड़े गए, तबले हुए तीत वस्तुओं पर उनीके समान लगते नालीन और मदनत बालाजनी कुमानसिंघोंका उँट चलते लाहमय जणोंसे उनसे हजारों जगना सूँवर,

सिंह, शरभ, चमर और हरिण मार डाले । उसके धनुषकी टंकारसे भयभीत वन देवियाँ कटाक्षसे उसे देखने लगीं । अन्य कितने ही प्राणियोंको तो उलने बड़े बलसे बिना मारे ही जाते-जाते पकड़ लिया ।

१२३—फिर दुःख होने पर मानो नहा कर उठा हो इस भाँति पसीनेकी बूँदोंका जो बराबर मेह बरसाता था, बारम्बार दौत किड़किड़ाकर जो तीक्ष्ण लगामकी खडखडाहट करता था, जिसके यकावटमें शिथिल हुए मुगमसे भागके साथ रुधिरकी बूँदें टपकती थीं, पर्याण-पटके किनारे पर भागकी रेखा बँधा थी और—खिले हुए फूलोंसे विचित्र और गुजारते भाँरोके फुएडते व्यात—पल्लव-स्तवकको जो, कर्णभरणके स्थानमें, वन गमन चिन्हकी तरह वारण करता था, ऐसे इन्द्रायुध पर बैठा भीतर पसीनेसे तर हुआ, और मृग रुधिरकी सैकड़ों बूँदोंमें विचित्र हुए कवचसे दूनी शोभाभाला, यनेक मृगोके पीछे दौड़नेकी गड़बड़में छत्रवारीके अलग हो जानेसे, छत्रके आकारमें रखे नव पल्लवसे धूम रोकता, विविध वनलताओंके फूलोंकी रजसे धूमर हुआ—शरीरवारी साक्षात् वसतके समान—घोड़ोंके खुगसे उड़ी रजसे मलीन हुए ललाटमें माफ दीवती स्वच्छ पसीनेकी रेखाभाला और पैदल दूर रह जानेसे शून्य पुरोभागभाला चन्द्रापीड, तेज बाडों पर बैठे, घोड़े बाको रेंद हुए, राजपुत्रोंके साथ—यो सिंह, या सुग्रर, यो जंगली महिष, यो शरभ, यो हरिण मारा—ऐसी ऐसी शिकारहीका बातें करना करता अपने महलमें आया ।

१२४—यहाँ घोड़े परसे उतर जल्दी दौड़ते परिजनोंके लिए हुए आसन पर बैठ, कवच उतार, बुडसवारीके मग बन्ध उसने उतार डाले । इस उतर पद्मा हिला कर नौकर उसकी हवा करने लगे जिमसे यकावट दूर हो गई और उमने क्षण भर आराम किया । विश्रानके बाद वह मणि, सोने या चाँदीके मैकड़ों मलशोसे भरी हुई स्नान भूमिमें गया । वहाँ सुवर्णकी एक चानी रखी थी । स्नान करनेके बाद माफ बन्धसे शरीर पीछे, निर्मल पत्रव साक्षात्, अन्य बन्ध पहन, ठाकुरनीकी पूजा कर जब वह अंगरामशालामे जा बैठा था तब, वहाँ प्रतिदारने आगे कर, राजाके भेजे हुए राजपुत्रोंके साथ, कुन बर्बना उदित विलासवती रानीकी दासियाँ और अतःपुरीमें

हुड़े सब टहलनियाँ सदूमोमे रखले हुए अनेक गहने, हार, अंगलेप और वस्त्र लेकर उसके आगे आई और उन्हें उमकी भेंट किया। एक एक वस्तु उनसे लेकर, प्रथम स्वयं वैशम्पायनका लेव कर, फिर अपना अंगराग कर, पास बैठे राजपुत्रोंको यथोचित गहने, कपड़े, अंगलेप और फून देकर राजकुमार, अनेक मणियोंके हजारों बर्तनोंसे विचित्र और, चमकते तारागणवाले शम्द ऋतुके आभाशके समान शोभित, आहार-मउपमे गया। वहाँ दुहरे गलीचे पर बैठे, पास बैठे हुए, उसके गुणोका वर्णन करते, वैशम्पायनसे यथोचित स्थान पर बैठाए गए और उसके विशेष प्रसन्नता दिखानेसे सेवा करनेमें प्रीतिवाले, राजपुत्रोंके साथ—यह इनको दो, यह उनको दो—इस तरह कह कह कर उनसे भोजन किया। भोजनके पीछे आचमन कर, ताम्बूल ले, वहाँ जरा देर बैठ इन्द्रायुधके पास गया। वहाँ जाकर खड़े खड़े ही रातचीतमें उसके गुणोका वर्णन करता, आज्ञाकी राह देखते परिजन निकट होने पर भी आप ही, उसके गुणों पर मोहित होकर, उसके आगे जाकर घास डाल, बाहर आकर रात-गहकी ओर चला। वहाँ पहलेके अनुसार ही पितासे मिल, पीछे वापिस आकर रात बिताई।

१२५—दूसरे दिन प्रातः काल ही उसने मंत्र अन्तःपुरके अधिकारी और राजा तारागिहके परम सम्मत कैनाश नामक कञ्चुकी को आते देखा। उसके पीछे पीछे एक अत्यन्त गम्भीर आकृतिकी नौ जयान कन्या चली आती थी। राजकुलमें रहनेसे प्रगल्भ होने पर भी उसने बिनपकी कमी नहीं थी। योग्यता उसमें कुछ-कुछ विकास हो गया था। वीर-ब्रह्मटीके समान लाल कपड़ा उसने दुमट्टा गोट रक्या था जिससे वह, बाल मूर्ध-सहित मानो पूर्वदिशा हो, ऐसी दीपती थी। हालके दूटे मैनासिलके चूरेके समान रंगमाली शरीरकी लावण्य-प्रधाने, मानो वह अमृत-रसकी नदीके प्रसारसे, तप महलको भरे देती थी। वह ऐसी मालूम होता थी मानो गह-प्रातके भस्ते चन्द्र मरउल छोड़ कर धरती पर आई हुई चाँदनी हो, या राजगर्जनी उत्तार देती हो। मन-मन करते मणिपुर चरनामे पहननेके नागण, गुजर करते रत्नरत्नमे अकुशाए हुए कमलमाली कमलिनाके समान वह देन पड़ती थी। बनी बामती मुनरणी तागड़ी उनकी जमरने पड़ी थी। उनके स्वन कुछ

सिंह, शरभ, चमर और हरिण मार डाले । उसके धनुषकी टंकारसे भयभीत वन-देवियाँ कटाक्षसे उसे देखने लगीं । अन्य कितने ही प्राणियोंको तो उजने बड़े बलसे मिन मारे ही जाते-जाते पकड़ लिया ।

१२३—फिर दुःख होने पर मानो नहा कर उठा हो इस भाँति पसीनेकी बूँदोंका जो बराबर मेह बरसाता था, बारम्बार दाँत किड़किड़ाकर जो तीव्र लगामकी खडखड़ाहट करता था, जिसके थकावटम शायिल हुए मुखमें भागके साथ रुधिरकी बूँदें टपकती थीं, पर्याण-पटके किनारे पर भागकी रेखा बँधी थी और—खिले हुए फूलोंसे विचित्र और गुजारते भीरोके फुएडोंसे व्यात—पल्लव-स्तवकको जो, कर्णभरणके स्थानमें, वन गमन चिन्हकी तरह वारण करता था, ऐसे इन्द्रायुव पर बैठे भीतर पसीनेसे तर हुआ, और मृग रुधिरकी सैकड़ों बूँदोंसे विचित्र हुए कवचसे दूनी शोभावाला, यनेके मृगोंके पीछे दौड़नेकी गडबडमें छत्रधारीके अलग हो जानेसे, छत्रके ग्रानाम रक्खे नव पल्लवसे धूम रोकता, विविध वनलताओंके फूलोंकी रजसे धूम हुआ—शरीरधारी साक्षात् वसतके समान—बोडोंके खुरोसे उड़ी रजसे मलिन हुए ललाटमें साफ दीखती स्वच्छ पसीनेकी रेखावाला और पैदल दूर रह जानेसे शून्य पुरोभागवाला चन्द्रापीड, तेज बोडों पर बैठे, थोड़े वाने रहे हुए, राजपुत्रोंके साथ—यों सिंह, यों सुअर, यों जगली महिष, यों शरभ, यों हरिण मारा—ऐसी-ऐसी शिकारहीकी बातें करता करता अपने महलकी आया ।

१२४—वहाँ बोड़े परसे उतर जल्दी दौड़ते परिजनोंके लिए हुए आसन पर बैठे, कवच उतार, घुडसगरीके सत्र बन्न उसने उतार डाले । इतर उतर पङ्खा हिला कर नौकर उसकी हवा करने लगे जिससे थकावट दूर हो गई और उमने क्षण भर आराम किया । विश्रामके बाद वह मणि, सोने और चाँदीके नैकड़ों कलशोंसे भरी हुई स्नान भूमिमें गया । वहाँ सुवर्णकी एक चोकी रखी थी । स्नान करनेके बाद साफ बन्नसे शरीर पोंछे, निर्मल बन्नका साफा चों, अन्य बन्न पहन, टाकुरजीकी पूजा कर जब वह अंगरागशालामें जा बैठे था तब, वहाँ प्रतिहारको आगे कर, राजाके भेजे हुए राजमुलके क, कुल-वर्धना सहित विलासवती रानीकी दासियाँ और अतःपुरकी मेरी

हुई सब टहलनियों सदूभोमे रखले हुए अनेक गहने, हार, अगलेप और वस्त्र लेकर उसके आगे आई और उन्हें उमकी भेंट किया। एक एक वस्तु उनसे लेकर, प्रथम स्वयं वैशम्पायनका लेव कर, फिर अम्ना अंगराम कर, पास बैठे राजपुत्रोंको यथोचित गहने, कपड़े, अगलेप और फून देकर राजकुमार, अनेक नणियोंके हजारों वर्तनोमे विचित्र और, चमकते तारागणवाले शङ्ख, श्रुतुके आकाशके समान शोभित, आहार-मटपमे गया। वहाँ दुहरे गलीचे पर बैठे, पास बैठे हुए, उसके गुणोभा वर्णन करते, वैशम्पायनसे यथोचित स्थान पर बैठाए गए और उसके विशेष प्रसन्नता दिखानेसे सेवा करनेमे प्रीतिवाले, राजपुत्रोंके साथ—यह इनको दो, यह उनको दो—इस तरह कह कह कर उमने भाजन किया। भोजनके पीछे आचमन कर, ताम्बूल ले, वहाँ जरा देर बैठ इन्द्रायुधके पास गया। वहाँ जाकर खड़े खड़े ही यातचीतमे उसके गुणोभा वर्णन करता, आज्ञाभी राह देखते परिजन निरुत् होने पर भी आप ही, उमके गुणों पर मोहित होकर, उसके आगे जाकर पास डाल, बाहर आकर राज-गृहकी ओर चला। वहाँ पहलेके अनुमार ही पितासे मिल, पीछे वापिस आकर रात मिताई।

१२५—दूमरे दिन प्रात माल ही उसने मय अन्त पुरके अधिकारी और राजा तारापीडके परम सम्मत कैनाश नामक कंचुही को अ ले देखा। उमके पीछे पीछे एक अत्यन्त गम्भीर आकृतिमी नौ जवान कन्या चली आती थी। राजकुलमे रहनेसे प्रगल्भ होने पर भी उमने पिनपभी कमी नहीं थी। योगावा उममे कुछ-कुछ विकास हो गया था। श्रीरङ्गहूटीके समान लाल कम्बल उमने दुग्ध प्रोट रखया था जिससे वह, बाल वर्ण-सन्धि मानो पूर्णदिशा हो, ऐसी दीपती थी। हालके डूटे मेनसिलके चूरेके समान रंगमाली शरीरकी लाक्षणप्रदाने, मानो गड अमृत रसनी नदीके प्रवाहसे, सप मटपभो नरे देती थी। वह ऐसी मालूम होना थी मानो राहु-प्रातके नभसे चन्द्र नरअन लड़ा कर धरती पर आई हुई चाँदनी हो, या राज गृहकी गलाव देती हो। कत कत करते मणिवृष चरामें रहनेके मा-ए, गुजार करते मारसेमे प्रजुताए हुए कमलवाली कमलिनीके समान वह देव पद्मी थी। नदी नानजी सुवर्णकी तारापी उमकी कमरमे पड़ी थी। उमके मदन टुट्ट

कुल्ल घने आर प्रफुल्ल थे । भुजलताके मद मद हिलनेमें निकलती नव क्रिणोंकि आकारमें दिन-रात वह अपने जाग्रत-रसकी मानो धारा बरसाती थी । दिशाआके मुखमें फैलती हुई हारकी क्रिणोंमें शरीर डूब जानेसे वह क्षीर-सागरमेंसे ऊँचा बदन करके निकलती लक्ष्मीके समान मालूम होती थी । उसके होठ पर ताम्बूलकी एक श्याम रेखा पड़ गई थी । उसकी नाक सम, गोल और ऊँची थी । सिले हुए पुण्डरीकके समान रूफेड उसके नेत्र थे । गाल पर मणि कुडलोंकी मञ्जुलीके क्रिणोंका प्रकाश पड़नेसे उमका मुख मानो कर्ण-पल्लव सहित हो ऐसा मालूम होता था । उसके ललाट पर मूग्य हुआ चदन-रसका धूमर तिलक शोभायमान था । उसने प्रायः मोतीक ही गहने पहने थे । कर्णकी राज्य लक्ष्मीकी तरह वह अगाराग^१ युक्त थी, अभिनव वन रेखाके समान उसकी तनु लता^२ कोमल थी, त्रयीकी तरह उसके चरण^३ सुप्रतिष्ठित थे, यज्ञशालाके समान वह वेदिमध्या^४ थी और मेरु पर्वतकी वनलताकी तरह वह कनक^५ पत्रसे अलंकृत थी ।

१२६—बच्चुमीने प्रणाम कर, आगे आ, अम्ना दाहिना हाथ भूमि पर टेक कर कहा—कुमार, महारानी विलासवतीकी आज्ञा है कि महाराजने पहले कुल्लेश्वरकी राजधानीमें जीता था तब पत्रलेखा नामकी उसकी लड़कीको, बाल्यावस्थामें ही, बन्दीजनोंके साथ लानर अत.पुरभी टहलनियामें रक्खा था । इसे अनाथ राजपुत्री जान स्नेह उत्पन्न होनेसे अब तऊ पुत्रीकी तरह लाइसे पाला है । अब यह तुम्हारी ताम्बूलवादिनी होनेके योग्य हुई है । वह जान कर मैं इसे भेजती हूँ । इसलिए तुम इसे और परिजनोंके समान न समझ कर, बालाके समान लालन पर अपनी चित्र वृत्तिके समान चपलता करनेसे रोचना । इसे शिष्यके समान जानना और मित्रके समान इन पर पूरा पूरा पिबास रखना । बहुत कालसे मेरा प्रेम इस पर बट गया है, इससे मेरा हृदय इसमें

१—कर्णकी राज्य-लक्ष्मीको अब देशसे प्रेम ना, वह अगाराग युक्त थी ।

२—छोटी लता, शरीर-रूपी लता ।

३—वेदीकी शाखाएँ भली भाँति स्थापित हैं, उसकी चाल सुन्दर थी ।

४—बीचमें वेदीसे युक्त, वेदीके समान बीचमें पतली ।

५—चपा, कर्णाभूषण ।

पुत्रीके समान मानता है और मेरा इस पर बड़ा पक्षपात है। बड़े कुलके राजधरानेने यह उत्पन्न हुई है इसलिए यह ऐसे सब कामोंके योग्य है। थोड़े ही दिनमें यह अपने अत्यन्त विनीत आचरणसे तुमको खूब सतुष्ट करेगी। सदेशा भेजनेका मतलब केवल इतना ही है कि इस पर मेरा प्रेम बहुत कालसे बढ़ता बढ़ता दृढ़ हो गया है और तुमको इसका शील विदित नहीं है। इसलिए नर्वय तुम ऐसी कोशिश करना कि जिससे यह बहुत काल तक तुम्हारी योग्य दृष्टिनी रहे। इनका कह कर कैलाश चुन हुआ, तब सम्मान-पूर्वक प्रणाम करती पत्रलेखाको एकाग्र दृष्टिसे बहुत देर तक देख कर चन्द्रापीठने—जैसी माताभी आज्ञा—यों कह, कचुभीसे लाया दिया।

१२७—पत्रलेखाको तो उस दिनसे उसके दर्शनसे ही सेवा करनेमें प्रीति उत्पन्न हो गई। इससे, दिन-रात, सोते अथवा बैठते, चलते अथवा राजगृहमें गए हुए चन्द्रापीठके पाससे उसकी छायाके समान वह जरा भी अलग नहीं होती थी। चन्द्रापीठको भी उसे देखते ही प्रीति उत्पन्न हुई और वह प्रत्येक क्षण प्रसन्न होती गई। दिन दिन वह अधिक कृपा करता था और अपने हृदयसे अभिनयी भाँति उस पर पूरा विश्वास रखने लगा।

१२८—इस प्रकार कुछ दिन प्रीति जानेके बाद राजाको चन्द्रापीठका यौवराज्याभिषेक करनेकी इच्छा हुई। इसलिए उसने सब साधन और सामग्री एकट्ठी करनेके लिए प्रतिहारोंको हुक्म दिया। अभिषेकका समय पास आया तब एक दिन दर्शनार्थ आए हुए चन्द्रापीठको, विनीत होने पर भी अधिक विनीत करनेके आदेशसे, शुक्रनासने विस्तार पूर्वक कहा—

१२९—वत्स चन्द्रापीठ, जो कुछ जानना चाहिए वह सब तुम जानते हो और सब शास्त्राको तुमने पढ़ा है, इसलिए तुमको जरा भी उददेशकी आवश्यकता नहीं है। केवल यह कहता है कि वादना अथवा स्वभावना ही ऐसा बात होता है कि वह अपने भगवान् नहीं जा सकता, रख-प्रणति करना नहीं जा सकता और अन्तर्गत प्रणयने नष्ट नहीं किया जा सकता। अन्तर्गत नष्ट ऐसा महत्त्व होता है कि वह प्रणयना ही न होने पर भी शान्त नहीं होता। देवकी लीला में तुम्हारे प्रणयन ऐसा हुआ—मान्य होता है कि

वह अजनकी सलाइसे भी नहीं मिटता, गर्व-रूपी दाहज्वरकी गरमी ऐसी तीव्र होती है कि वह शीतलोन्चारसे भी दूर नहीं हो सकती, विषय-रूपी विषके स्वादसे उत्पन्न हुआ मोह ऐसा विषम होता है कि वह जड़ी बूटी और मंत्रोंसे भी नहीं उतरता, अनुराग-रूपी मलम लेन ऐसा प्रबल होता है कि वह नित्य स्नान और शुद्धतासे भी नहीं हटता, राज्य-सुख रूप सनिपात-निद्रा ऐसी घोर होती है कि रात्रिका अन्त होने पर भी उससे कभी प्रबोध नहीं होता, इसलिए तुमसे जरा विस्तार पूर्वक कहता हूँ ।

१३०—गर्भसे ही ऐश्वर्य, नव यौवन, असामान्य रूप और अमानुषी शक्ति—यह सब बड़ी अनर्थ-परपरा है । इसमें एक एक अलग अलग भी सब अविनयोंका स्थान है, फिर सबके समुदायका तो कहना ही क्या है ? शास्त्र-रूपी जलसे धुलनेके कारण निर्मल होने पर भी यौवनके आरम्भमें बुद्धि प्रायः मलीन हो जाती है । युगकोभी दृष्टि धवल होने पर भी मरग^१ होनी है । रजोभ्रॉत^२ उत्पन्न करनेवाली आँधी जैसे सूखे पत्तोंमें बहुत दूर उड़ा ले जाती है उसी भौंति यौवनमें प्रकृति मनुष्यको अपने आप ही बहुत दूर खींच ले जाती है । इन्द्रिय-रूपी हरिणोंका आकर्षण करनेवाली उपभोग रूप तृष्णाका अन्त सर्वदा दुःखदायी होता है । जब नवयौवनसे कपाव^३ हुई आत्मावाले मनुष्य के मनको विषय-स्वरूपोंका स्वाद आने लगता है तब वे जलकी तरह अधिक मधुर मालूम होते हैं । विषयोंकी अत्यासक्ति, टिट्मोहकी तरह, मनुष्य को कुपथ में गेर कर नष्ट करदेती है । केवल तुम्हारे समान ही उपदेशोंके पात्र होते हैं क्योंकि, निर्मल स्फटिकमणिमें चन्द्र-किरणोंके समान, निर्मल मनमें ही उपदेश-गुण सुब-पूर्वक प्रवेश कर सकते हैं । गुरुवचन, निर्मल होने पर भी, अयोग्य पुरुषके कानमें, जलके समान,

१—रंगीन, अनुराग-सहित ।

✓ २—आँधी धूल उड़ा उड़ा कर पत्तोंको दूर ले जाती है, जवानीमें रजोगुणके प्रबल होनेसे मनुष्यकी प्रकृतिमें भ्रम हो जाता है ।

३—जैसे हड़ आदि खा लेनेसे मुँह कसैला हो जाने पर जब अधिक मीठा मालूम होता है उसी प्रकार जवानीसे आत्मासे विकार पैदा हो जाने अधिक मधुर लगते हैं ।

बड़ा शूल उत्पन्न करते हैं परन्तु, हाथीके शखाभरणकी भाँति, योग्य पुरुषके मुखको अधिक शोभायमान करते हैं। जैसे प्रदोषकालका चंद्रमा सध्या समयके अंधेरेको दूर कर देता है उसी प्रकार गुरुका शान्ति-जनक उपदेश अत्यंत मलीन दोषोंको भी हर लेता है। जैसे वृद्धावस्था मस्तिष्कके केशोंको पलित-रूपसे निर्मल कर देती है उसी तरह वह सब दोषोंको गुणोंके रूपमें बदल देता है। अभी तुमने विषय-रसका स्वाद नहीं चाखा है इस लिए उपदेश ग्रहण करनेका तुमको यही उचित समय है। कामदेवके शर-प्रहारसे हृदय चलनी हो जाने पर उसमेंसे उपदेश, जलके समान, बाहर निकल जाता है। जिसकी प्रकृति दुष्ट है उसे कुल या ज्ञान विनयका कारण नहीं होता। क्या चन्दनकी अग्नि जलाती नहीं है ? शान्ति-भारक जलसे भी क्या बड़बुद्धि अधिक प्रचंड नहीं होती है ? जैसे जलसे नहाने पर मन मैन धुन जाता है उसी प्रकार गुरुके उपदेशसे सब दोष दूर हो जाते हैं, बाल सफेद हुए बिना—बुढ़ापा आए बिना—ही वृद्धोंमें गिनती हो जाती है, मेदो-दोष बिना ही गुरुत्व आ जाता है। गुरुका उपदेश बिना सुखका पर्याभरण है, उसका उड़ा प्रकाश होता है, उससे मनुष्यकी आँखें खुन जाती हैं। राजाओंको उसकी विशेष आवश्यकता है, क्योंकि उनको उपदेश देनेवाले कम होते हैं। सब मनुष्य, प्रति-शब्दके समान, भयसे राजाके वचनके अनुसार चलते हैं। जैसे सृजनसे कानके छेद बंद हो जाते हैं उसी तरह उत्कट दर्पसे राजाओंके कान बंद हो जाते हैं और वे किसीकी बात नहीं सुनते, और जो कदाचित् सुने भी तो, हाथीके समान, आँखें बंद कर लेते हैं और उसकी कुछ परवा नहीं करते। दित्तकी सलाह देनेवाले गुरुओंको दुःख देते हैं। जैसे दाहण्यकी मूर्च्छासे मनुष्य मत्ता हीन हो जाते हैं उसी प्रकार अहंकारसे राजाओंकी प्रकृतिमें भ्रम हा जाता है, धन भूँडे प्रभिषागसे उन्मत्त कर देता है, जैसे विषके विभारसे तत्रा उत्पन्न होती है उसी प्रकार राज-लक्ष्मी, राज्यके विभारसे, सुन्नी पैदा कर देती है।

१३१—प्रज्ञानी मन्त्राणुभी कामना हैं पहले लक्ष्मीको ही देखिए। जैसे

१—नेरने विकार हो जातेसे मनुष्य स्वच्छ हो जाता है, पर गुरुके उपदेशसे राजा बिना दोषसे मनुष्य गौरवान्वित हो जाता है।

भ्रमरी कमल-चनमें विहार करती है उमी प्रकार यह योधाग्रोंके खडग-मडल में विलास करती है । यह पारिजातके पत्तोंसे राग^१, चन्द्रमानी कलासे अत्यन्त बक्रता^२, उच्चैःश्रवासे चंचलता, विपमे मोहनशक्ति^३, मदिरासे मद^४ और कोस्तुभ मणिसे अत्यन्त कठिनता, साथ रहनेमें मेव होनेके कारण, वियोगके समय विरोद करनेके चिन्हकी भाँति लेकर ही मानो क्षीर-सागरमेंसे बाहर आई है । इन अर्थके समान अन्व कोई जगत्में ऐसा नहीं है जो अपने परिचयकी कुछ परवा न करे । मिलने पर भी यह महा कष्टसे ठहरी है, गुण-रूपी फदेसे मजबूत बाँध कर निश्चल की जाने पर भी रिमक जाती है, उत्कट दर्पवाले हजारों योद्धाग्रोंसे घुमाई गई खड्गलताओंके पिजरेमें रक्ती जाने पर भी चली जाती है, मदजलकी वषासे अंधेरा करनेवाले हाथियोंमें घटासे घेरी जाने पर भी भाग जाती है । न यह परिचयकी परवा करती है, न अच्छे कुलको देखती है, न कुल-परंपराका खयाल करती है, न शील देखती है, न चातुर्यको गिनती है, न शास्त्रके ज्ञानको सुनती है, न धर्ममें मानती है; न औदार्यका आदर करती है, न विशेष ज्ञानका विचार करती है, न आचारका पालन करती है, न सत्यको जानती है, न सामुद्रिकके लक्षणोंका प्रमाण मानती है और, दृष्टिके भ्रमसे आकाशमें दीखते गर्भव-नगरकी तरह, देखते देखते नष्ट हो जाती है । यह इस प्रकार घूमा करती है मानो मदराचलके भ्रमणसे पैदा हुए भँवरकी श्रातिका सत्कार इसमें अन्त तक बना हो । यह इस प्रकार किसी जगह जमा कर पैर नहीं रखती मानो कमलिनीमें फिरनेसे कमल दडके काँटे लग गये हों । बड़े बड़े राजाओंके महलों में बड़े बड़े यत्न करके रक्खी जाती है तो भी वह इस प्रकार स्तन कर जाती है मानो अनेक गध गजोंके गड स्थलका मधु पीनेसे मत्त हो गई हो । कठिनता सीखनेके लिए ही मानो यह खड्ग धाराओंमें निवास करती है ।

१—पत्तोंका रंग अस्थिर होता है, लक्ष्मीका अनुराग स्थायी नहीं होता ।

२—कूटिलता, प्रतिभूलता ।

३—चंचलता, अस्थिरता ।

४—मूर्च्छित करनेकी शक्ति, वशीकरण करनेकी शक्ति ।

—उन्मादकपना, गर्व ।

विष्णु^१ ग्रहण करने के लिए ही मानो इसने नारायणका आश्रय लिया है । मन्मथकालके कमलकी तरह समुपचित मूलदण्ड^२ तथा कोशमडलवाले राजाका भी अविश्वाससे त्याग कर देती है । लताको तरह विटगोसे^३ लिपट जाती है । वसु^४ जननी होने पर भी गगाके समान तरंग-बुद्बुद^५ चंचल है । सूर्यकी गतिकी तरह विविध मरान्ति^६ प्रकट करती है । पातालकी गुफाके समान तमसे^७ व्यात है । हेडम्भाकी तरह इसका हृदय केवल भीम^८ साहससे ही हरा जा सकता है । वर्षाचक्रकी तरह ज्ञान-भगुर ज्योतिकी^९ उत्पन्न करनेवाली है । पिशाचिनीकी तरह अनेक पुत्रोंकी उत्पत्ति^{१०} दिखाती है । निर्बल मनुष्योंको उन्मत्त कर देती है । सरस्वती जिन पर कृपा करती है उनका मानो ईर्ष्यासे प्रालिङ्गन नहीं करती । गुणवान्का मानो अपवित्र समझ कर स्वर्ण नहीं परती । उदारका मानो अमंगल गिन कर बहुत सन्मान नहीं करती । सुनको मानो कुचक्षण समझ कर नहीं देखती । कुलीनका सर्पके समान उल्लापन करती है । शूरको कंटकके समान छोड़ देती है । दाताको दुस्वप्नके सन्मान

—१—अनेक प्रकारके रूप ।

२—जिसका कद, नाज और कलियाँ बड़ गई हैं, जिसने मूलधन, दण्ड (उपाय भेद) खजाना और देशकी वृद्धि की है ।

३—वृत्त, नीच मनुष्य ।

४—वसु नामके धाठ पुत्र, द्रव्य ।

५—तरंगोंसे चंचल, तरंगोंके समान चंचल ।

६—सूर्य एकसे दूसरी राशि पर जाता है जइसी एकसे दूसरेके पास जाती है ।

७—प्रकार, तमोगुण ।

८—नीलसी छा—घड़ो, चवरी भात ।

९—हेडम्भा नीलसेतल साहसको देव उस पर मोहित हो गई थी, प्रत्यन्त पठिन साहस ।

१०—पिशुओं, सोना ।

११—उगाई, अशुद्ध ।

याद नहीं करती । विनीतको पातकी समझ उसके पास नहीं फटकती । मनस्वी को उन्मत्त समझ उसका उन्हास करती है । यह इन्द्रजालके समान परस्पर विरोध दिखा कर जगत्में अपना चरित्र प्रकट करती है, सर्वदा उष्णता^१ करती हुई भी जाड्य^२ उत्पन्न करती है, उन्नति^३ करती हुई भी नीच^४ स्वभाव दरसाती है, जल-राशिमें उत्पन्न हुई भी तृष्णा^५ बढाती है, ईश्वरता^६ देती हुई भी प्रकृतिको अशिव^७ कर देती है, बल^८ बढाती हुई भी लघुता^९ देती है, अमृतकी सहोदरा होने पर भी परिणाममें कड़वी^{१०} है, विग्रहवती^{११} होने पर भी प्रत्यक्ष दर्शन नहीं देती, पुरुषोत्तममें^{१२} अनुरक्त होने पर भी खल पुद्गलिते प्रीत करती है और स्वच्छको^{१३} इस प्रकार मलीन कर देती है मानो रेणुमय^{१४} हो । जैसे जैसे यह चमला प्रकाश करती है वैसे वैसे ही हमसे दीमकी लाने समान वेचल कजल मलीन कर्म ही निकलते हैं, क्योंकि जैसे जल धारासे विषलताओंका पोषण होता है उसी प्रकार यह तृष्णाका पोषण करती है, जैसे व्यावसायी गीन हिरनोंका आकर्षण करता है उसी तरह यह इन्द्रियोंका आकर्षण करती है, जैसे धुँएँसे चित्र मिट जाते हैं उसी प्रकार यह सच्चरित्रों

१—गरमी, धनकी गरमी ।

२—शीतलता, मूर्खता ।

३—उँच, ई, उन्नत पद ।

४—ठिगना पन, बुरा स्वभाव ।

५—पिलास, इच्छा ।

६—शिवत्व, धनिकत्व ।

७—अ+शिव (शिव नहीं), अमंगल, दु खहेतु ।

८—शक्ति, सेना ।

९—निचलता; चित्तकी लघुता ।

१०—कटु रस वाली, अतमें दु खद विनी

११—शरीर-युक्त, कलह युक्त ।

१२—अच्छे लोग, विष्णु ।

१३—साफ, अच्छे मनवाला ।

१४—धूलि, रजोगुण ।

प्रियाङ्गु देती है, जैसे पलंग पर देखटके खूब नींद आती है उसी प्रकार यह मोटकी विनास-भूमि है, जैसे पिशाचिनियों दूटी फूटी अटारीमें रहती हैं उसी तरह यह वन मदका स्थान है, यह शास्त्र दृष्टिही तिमिरोद्गति है, सब अविनयोके आगे उटनेवाली पताका है, क्रोधावेग-रूपी मगरोको उत्पन्न करनेवाली नदी है, विषय-रूपी मदकी पान भूमि है, भ्रूविकार-रूपी नाट्यही संगीत शाला है, दोष रूनी सबोंके रहनेकी गुफा है, सत्पुरुषोंके उद्देशोंको दूर भगानेवाली जैतनी छड़ी है, गुण-रूनी कलहसोंकी अकाल वर्षाभ्रमु है, लोभापवाद रूपी पिस्फोटके फैलानेवाली भूमि है, कपट नाटककी प्रस्तावना है, काम-रूनी दाहीकी ध्वजा है साधुमानकी वचन-शाला है आर धर्म-रूपी चंद्रमण्डलके लिये राहु जिह्वा है । ऐसा नाई पुरुष म नहीं देखता कि जिसे लक्ष्मीने विना परिचयके ही गाढ आलिंगन कर बादमें धोखा न दिया हो । इसमें संदेह नहीं कि यह चित्रित होनेसे भी जाती रहती है, पुस्तकोंमें भी इन्द्र जाल करती है, उत्कीर्ण होने पर भी धोखा दे जाती है, सुनी गई भी चली जाती है और चित्रित होने पर भी वचन करती है ।

१३२—ऐसी यह दुर्गचारिणी किसी भाँति दैवयोगसे राजाश्रोत्रा परिग्रह पर भी ले तो वे किसी कामके नहीं रहते और सब अविनयोके स्थान हो जाते हैं, क्योंकि अभिप्रेतके समय ही, मानो मंगल कलशोंके जलसे, उनकी सब चतुरता धुा जाती है, होकरिके पुराने मानो उनके हृदय मलीन हो जाते हैं, पुरोहितकी मुशरूब बुद्धीसे मानो उनकी क्षमा दूर फेंक दी जाती है, पगड़ीके धाँपनेसे मानो बुद्धीके प्रानेकी स्मृति टक जाती है, छत्र-मंडलसे मानो परलोक-दर्शनी रोक दी जाती है, चमकी पपनसे मानो सत्यमादिता उड़ जाती है, व्रत की प्रतिभेमें मानो सब गुण नाहर निमाल दिए जाते हैं, जयशब्दकी मल मलसे मानो स्तब्ध बचतीमा तिरस्कार हो जाता है और ध्वजाके वक्षके पत्तलेमें ही मानो सब गेड़ उलटा जाता है । मनही लोग सब त्तकी निंदा करते हैं । वह श्रमसे विधेय हुई स्तोत्रों गदने समान चल है और नटकी-नेके प्रकाशके समान दृश्यरूपके जयनौदर मानुष होता है । वह किये ही मनुष्यको प्रकटित कर लेती है । ये जयने ध्वजे पर्वते आने जयममवनी

स्थितिको भूल जाते हैं, अनेक 'दोषोंसे युक्त दुष्ट रुचिरके समान रागके^२ आवेश से पीड़ा पाते हैं, अनेक प्रकारके विषयोंके रसका आत्वादन करनेकी इच्छासे पाँच होने पर अनेक सहस्र सी मालूम होती इन्द्रियोंसे दुःख पाते हैं और प्रकृति चंचल होनेके कारण अवनश मिलनेसे एक होने पर भी मानो शत-सहस्र हुए मनसे अकुला कर पिछल हो जाते हैं । ग्रह मानो उनको घेर लेते हैं, भूत मानो उन पर प्रभाव डालते हैं, मंत्रोंसे मानो उनमें आवेश हो जाता है, विकराल प्राणी मानो हठसे उनको पकड़ लेते हैं, पवन मानो उनका उग्रहाम करती है, विशाच मानो उनका ग्रास करते हैं, कामके वाणोंसे मानो मर्मस्थान छिद्र गए हों इस तरह वे हजारों मुल-विभार करते हैं, धनकी गरमी मानो व्याप गई हो इस तरह कुम्भसे चलते हैं, अधर्मके कारण गति भग्न होनेसे वे, अपंगकी भौंति, अन्य पुरुषके सहारेसे चलते हैं, असत्य बोलनेसे मानो मुख रोग हुआ हो इस तरह वे बहुत कष्टसे बोलते हैं, सप्तपर्ण^३ वृद्धोंकी तरह कुसुमके रजोविकारसे पास बैठनेवालोंके माथेमें दर्द पैदा करते हैं, मृत्यु मानो पास आ गई हो इस तरह बंधुजनोको भी नहीं पहचानते, नेत्रोंमें मानो रोग होनेसे तेजस्वी^४ पुरुषोंको नहीं देखते, काले सॉपने काट लिया हो इस प्रकार महामंत्रों^५से प्रबुद्ध नहीं हो सकते, लाजामन हो इस भौंति सोषण^६को देख नहीं सकते, दुष्ट हाथियोंकी तरह महा मानस्तभसे^७ निश्चल किए जाने पर भी वे उग्रदेश ग्रहण नहीं करते, तृष्णा रूपी विषयी मूर्च्छा^८के कारण वे सबको वनकमय देखते हैं, वाणों की तरह पानते^९

१—वात-पित्त-रूफ के विकार, सदाचार का अतिक्रमण ।

२—विषयाभिलाष ।

३—सप्तपर्णके फूलोंके परागसे दर्द होने लगता है, धनी नेत्रोंके और रजोगुणके विकारसे पास बैठनेवालोंको अप्रसन्न करते हैं ।

४—तेजवाले, उद्योगी ।

५—मंत्र, सजाह ।

६—गरम वस्तु, धनी पुरुष ।

७—बड़े परिमाणका स्तम्भ, अहंकार रूपी स्तम्भ ।

८—सान, मदिरा पान ।

तीक्ष्णता^१ बड़ा कर पर^२ प्रेरणासे लोगोंका विनाश करते हैं, दंड^३ विद्वेषसे दूर रहने पर बड़े बड़े कुलोंको पलकी तरह तोड़ डालते हैं और मनोहर आकारके होने पर भी अमाल कुसुमोंके समान लोगोंके विनाशना हेतु हो जाते हैं। श्मशानकी प्रतिकी तरह उनकी विभूति^४ अत्यंत गैर होती है, नेत्र-नेत्राके समान वे अद्भुतदर्शी होते हैं, कामी पुरुषोंके समान उनके भजन जुदाधिष्ठित^५ होते हैं, उनमें बात सुन ली जाय तो नी मृत्युके समय बजाए गए बाजेकी भाँति भय पैदा करती हैं, मनमें उनका खयाल करनेसे भी उसी तरह उमट्टम होना है जैसे महाभक्तके विचारसे, प्रति दिन बटते पापसे मानो वे फूल जाते हैं और ऐसी दशा में सैयदों व्यसनोंमें मगन हो जानेसे, जल्मीनके ऊपरके तृणके अन्नभाग पर पड़ी हुई पाानी बूँदोंके समान, उनको अपनी पतित^६ आत्माका कुछ अनुभवान नहीं रहता।

१३३—जैसल स्वार्थ साधन रत्न, धन रत्नी भासना प्राप्त करनेमें उत्तम, समा-मदमस्त्व ज्यतिनीम तुम स्वयं और टगनेम कुशल कितने ही धूर्त राजाप्रोभो इष प्रया समभाषा करते हैं कि तुम्रा खेतगा भिन्द है, परन्वी-गमन चतुरता है, आखेट कगरत है, मय-दान दिलाता है, प्रमत्तता शार्य है, स्वभार्याया त्याग अण्यपतिता है, गुणकनकका यनारर स्मयीता है, सेवन-जनोंको अग्रगण्य करने पर देव न देता सुनपूर्वक सग है, गच्छता, गाता, प्रजाता पार शेषाने प्राप्तक रहता रसिजता है, बड़े बड़े अग्रगण्य पर ध्यान न देता महातु भावता है, नगमय महन करना क्षमा है, स्वतन्त्र आचरण प्रमुच दे, दे जाप्रोभो तुह न गिजाता महातीता है, जन्मोपनोते वी गई प्रशना पश है, पानी प्रलेपक उत्पत्त है पार जे सुरेभ भेइ न जानता निवृत्तन है। स्वर्गात् धूर्त न जानतो ते नुह नतजाते हैं परन्तु -परे अर नो हन्ते

१—तिष्ठता, चरुता।

२—शु, धूर्त।

३—जन्म, उरम ना।

४—जन्म, ऐश्वर्य।

५—वे, बाजोवे पुत्र, भयपरोवे पुत्र।

६—गिता दुःख रत्न।

हैं और, मनुष्योंके अयोग्य खुगामद करके, राजाओंको ठगते हैं। धनमदसे राजाओंके वित्त मत्त हो जाते हैं और वे, विवेक न होनेसे, यह सब यथाथं मान कर मिथ्या अभिमान करते हैं, मनुष्य होने पर भी अपनेको देवाशसे उत्पन्न, सदैवत, और अजातिक मानते हैं तथा दिव्य पुरुषोंके योग्य नाम करके अपना माहात्म्य दिखाते हैं, जिससे सब लोग उनका उपहास करते हैं और सेवक जन उनकी विटम्बना करें तो उसका भी वे अभिनन्दन करते हैं। मनमें देवताओंकी प्रेरणाके मिथ्या विचारसे टगाए जानेके कारण असत्य कल्याणामे बुद्धिहीन हुए वे, मानो उनके दो हाथोंके भीतर दो हाथ और घुस गए हो ऐसा समझ, अपनेको विष्णुके समान मानते हैं। अपने ललाटम त्वचासे ढका मानो तीसरा नेत्र और हो ऐसी शक्त करके शिवके समान समझते हैं। दर्शन देना भी बड़ा अनुग्रह समझते हैं, दृष्टिगतको भी उच्चार गिनते हैं, वातचीतको भी पुरस्कार जानते हैं, आज्ञाको भी वरदान विचारते हैं, स्वशको भी पवित्र गिनते हैं। मिथ्या माहात्म्यके गर्वसे भरे हुए वे देवताओंको प्रणाम नहीं करते, द्विजातियोंका आदर नहीं करते, मान्योका सम्मान नहीं करते, पूजनीयकी पूजा नहीं करते, जो नमस्कारके योग्य हैं उनको नमस्कार नहीं करते, गुरुग्रा को अभ्युत्थान नहीं देते, विद्वानोंको विषय भोगका सुख छोड़ वृथा धर्ममें परिश्रम करनेमाला समझ उनका उपहास करते हैं, बड़े बूढ़ोंके उपदेशको बुडापेभी विकलताके प्रलापके समान देखते हैं, मन्त्रीकी सल हसे अपनी बुद्धिभी अज्ञा समझ उससे द्वेष करते हैं, हितवादी पर क्रोध करते हैं। जो दिन रात हाथ जोड़, ग्रन्थ सब काम छोड़, निरन्तर, देवताओंकी भाँति, उनकी स्तुति करता है अथवा उनका माहात्म्य प्रसिद्ध करता है, उसका ही वे सर्वथा अभिनन्दन करते हैं, उसके साथ ही वातचीत करते हैं, उसको ही पास रखते हैं, उसका ही सवर्धन करते हैं, उसके साथ ही सुखसे रहते हैं, उसको ही दान देते हैं, उससे ही मित्रता करते हैं, उसका ही वचन सुनते हैं, उसको ही खूब धन देते हैं, उसका ही बड़ा मान करते हैं और उसको विश्राम-पात्र बना लेते हैं। राजा लोग प्राय अति दुष्ट उपदेश पूर्ण, क्रूर, चाणक्य शास्त्रों ही प्रमाण मानते हैं, मारण प्रयोगसे क्रूर हुई प्रकृतिवाले जिनको अपना गुरु गिनते हैं, पर-पुरुषोंको ठगनेमें तत्पर मन्त्री उनको

सचाइकार होने हैं, हजारों राजाओंसे भोग कर छोड़ दी गई लक्ष्मीमें वे ग्रामरु रहने हैं, मारणादि प्रयोगके शान्त्रिका अत्यन्त अभ्यास करते हैं और स्वाभाविक प्रेमके कारण हृदयसे अनुराग करनेवाले भाइयोंकी जड़ काटते हैं । उनको योग्य क्या है ?

१३४—इसलिए राजकुमार, ऐसी हजारों अति कुटिल और कष्टप्रद चेष्टाओंसे दारुण राज्यशासनके व्यवहार में और ऐसे महा मोहमारी गैवतमें तुम ऐसा प्रयत्न करो कि जिसमें मनुष्य तुम्हारी हँसी न करे, साधु निन्द्य न करे, गुरु लानत न दें, मित्र उलाहना न दें और विद्वान् शोक न करें । कामीजन तुम्हारी बुगई न करें, कुशल तुम्हारा प्रचन न करें लपट तुमसे धन न टगें, सेवक तुम्हारे पीछे न पडें, धूर्त धोखा न दें, मित्रों ललचायें नहीं, लक्ष्मी विदम्पना न करे, मद नचाये नहीं, काम उन्मत्त न करे, रिपय पुरे मार्गम न ले जायें, अनुपाग विकार न करे और सुप अरने अधीन न कर ले । तुम स्वभावासे अत्यन्त धैरवान् हो और भित्तने नड़े नड़े पज काके तुमको सख सखार काए हैं । केवल चञ्चल हृदयवाले मूर्खोंको ही धनसे मद हो जाता है, परन्तु तुम्हारे गुणोंसे मनुष्य होकर ही मने इतना कह है और यह न फिर मार मार करता हूँ कि मनुष्य चाहे जैसा विद्वान्, सावधान, वार्यमान्, तुलीय, धीर और उद्योगी हो उसे नीचे दुराचारिणी लक्ष्मी खल बना देती है । भित्तसे किए गए मागतिक योग्यताभिप्रेक्षा तुम नत्र कह्याणोंके साथ सर्वथा सुख भोगना । अरने पूर्वजोंके धारण किए गए, कुल-तमागत, राज्य-नारका पहन करो । शत्रुश्रींता सिर नीचा करो, बहुदर्शनी उत्पत्ति करो, अरिप्रेक्षे हो जाके अरन्तर दिविजयका प्रारंभ कर, सर्वत्र अरन्तर कर, लक्ष्मीमल्ली सुखनाली, भित्तमी जाके हुई पुष्पी फिर जीता । यह समस्त तुम्हारे प्रताप दिवानेका है । जिन राजाका प्रताप न्यिर हो जाता है वह लोकमदारी लक्ष्मी सिद्धादेश लेता है ।

हुआ हो इस प्रकार हृदयमें हर्षित होकर वहाँ कुछ देर ठहर अपने महलमें प्रा गया ।

१३६—फिर कुछ दिन व्रत जाने पर राजाने स्वयं ही मंगल-कलश उठा कर, एक अच्छे दिन, पुरोहितने राजाभिषेकत्री सब मंगल सामग्री तैयार कर दी तब, शुक्रनास और ग्रनेरु सहित राजाओंके साथ, मंत्र तीर्थोंसे, मंत्र नदियोंमें और सब समुद्रोंसे लाए हुए—मंत्र श्रोत्रियोंसे, मंत्र फलोंसे, मंत्र मट्टियोंसे और सब रत्नोंमें परिपूर्ण—आनदाश्रु मिश्रित, मंत्रोंसे पवित्र हुए जलसे कुमारका अभिषेक किया । लता जेते अपने मूल वृक्षको छोड़े बिना भी दूसरे वृक्षका आसरा ले लेती है उसी प्रकार राज्यलक्ष्मी भी तारापीडको बिना छोड़े ही अभिषेकके जलमें गीले शरीरवाले चन्द्र पीडके पास पहुँच गई । फिर सब अतःपुर-सहित विलासवतीने प्रेमाद्र-हृदय होकर स्वयं ही उसके देह पर पैरों तर्क, चाँदनीके समान सफेद, सुगन्ध-मय चन्दनका लेप किया, ताजे खिले हुए फूलोंका मुकुट पहनाया, शरीर पर कहीं कहीं गोरोचन लगाया, दूर्वा-प्रवालके कर्णपूर पहनाये, चाँडी किनारीके—चन्द्रमाके समान सफेद—दो नए वस्त्र पहनाये । पुरोहितने मंगल-सूत्र बाँध कर उसके हाथको अलङ्कृत किया । नवीन राज्यलक्ष्मी-रुमी कमलिनीके मृणालके समान और अभिषेक देखनेको आए सत् ऋषियोंके मटलके समान हार उसने छाती पर पहना । सफेद फूलोंकी गुँथो हुई, जॉय तर्क लटकती और चंद्रमाकी किरणों के समान मनोहर—जनेउत्री तरह पहिनी गई—मालाओंसे शरीर निरंतर व्याप्त हो जाने और वेश खेत होनेके कारण वह फैली हुई सटावाले नर-सिंहके समान, भरते हुए नदियोंके प्रवाहवाले कैलासके समान, मदाफिनीके मृणाल जालसे जटिल हुए ऐरावतके समान और उछलती फेन-रेखासे आकुल हुए क्षीरसमुद्रके समान शोभायमान हुआ । फिर उसका पिता उस क्षणके योग्य वैतकी छड़ी लेकर स्वयं आगेसे लोगोंको हटाने लगा । इस भाँति समा-मंडपमें आकर, मेव शिखर पर चन्द्रमाके समान, चन्द्रापीड काञ्चन मय विंश-सन पर बैठा ।

१३७—सिंहासन पर बैठ कर उसने सब राजा लोगोंका यथायोग्य सम्मान । फिर योत्री देर बाद दिग्विजयके लिए प्रद्वान दरनेके समयका सूचक,

प्रलयकालकी मेघघटाके घोषके समान घर घर शब्द करता, सुवर्णके डडोंसे पञ्जाग गया प्रस्थान दृष्टुभी इस प्रकार गर्जना करने लगा जैसे मदराचलके आघातसे समुद्र, युगान्तमे महाभूतोंके आपसमे टकरानेसे भूतल, विद्युद्द डके गिन्नेसे प्रलयमेघ प्रार महाभारती नामिकाके प्रहारसे पाताल क्रुद्धि गभीर गर्जना करती हो । उनकी ध्वनिसे सब भुवनान्तर मानो भर गए, स्फीत हो गए, पृथक् हो गए विस्तार पा गए, ढक गए, विर गए, बहरे हो गए और दिशाओंके आपसके सविचित्र मानों टूट गए । उसके स्वरको पातालमे, भयसे सहस्र फन निकाल, उन्हें आंग सीमा फेर आर ऊँचा करके, शेषनाग मानो आलिगन करता हो, वारम्बार सामने दाँतको ऊपर उठा कर भिम्बज मानो दिशाओंमे बुजाते हो, उरसे मटलामाग भ्रमण करते सूर्य-रथके घोड़े मानो आकाशमें प्रदक्षिणा करते हो, महादेवके अपूर्व दादरी शमाते हर्षपूर्वक हुंकार करता शिवका नादिशा देजाशमी चोटी पर माना प्रामथण करता हो, गभीर कठमे गर्जना करके ऐशवत देवलोकमे मानो उमका स्तकार करता हो और ऐसे प्रभ्रतपूर्ण नादसे रोपमे भर कर, सींग टेडे कर, प्रभके घरमें यममहिष मानो प्रणाम करता हो, ऐला यह शब्द जीतो भुवनोंमे भर गया । लोकागल उसे सुन कर भयभीत हो गए । उसे सुन कर सब लोग जय जय शब्द कहने लगे । इतनेमे विद्यापन परसे उठ कर चन्द्रापीड़के चलते ही शत्रुओंकी राजलक्ष्मी भी चलाप्रमान हो गई और आपससे झटपट उठ कर पीछे चलते, आपसमे टकरानेसे दूडे हावोंके जागोमेसे निकले मोतिपोंको, विभिन्नके लिए प्रत्यानके समर-के समीप जागोमी गँते, विदार विनेस्ते राजाओंके साथ—मकेद फूँगीकी कतिगो निशने कलकट्टीके साथ परिव्राज, नूँडने पानीना चूँई निचले दिग्गजके साथ ऐशवत तागाए दर्शन दिगम्बरके साथ अनाश-दिवार, रूँडा जलनिहु कति जलसेन साथ पर्यायलके समान—बह जना जे-जसे नेर चित्त ।

किया । मन्दराचलके भ्रमणमें हिलाए गए क्षीरसागरके प्रावर्तके समान सफेद, रावणके बाहुदंड पर स्थित कैलाशके समान कान्तिमान्, मोतीकी झालरसे युक्त, सोतानवाले छत्रमें उमकी धूम गौरी गई । चलतेमें हौड़े पर बैठे ही उसने देखा कि राजा लोग दरवाजेके पास खड़े हंकर उमकी राह देख रहे हैं । परफोटेके कारण वे दीखते नहीं हैं, पर उनके क्रिष्ण फैलाते मुकुटमणियोंके महावरकी कान्तिमें चुरानेवाले, प्रभूत प्रभास्वी बाल सूर्यके प्रभाशसे दशो दिशाएँ—मानों राज्याभिषेकके पीछे फैले हुए प्रतापकी अभिसे—अत्यंत लाल पीली हो गई हैं, वोवराज्याभिषेकमें उत्पन्न हुए अनुरागसे मानो भूतल लाल हो गया है, शीघ्र होनेवाले रिपुविनाशकी सूचना करते दिग्दाहसे मानो आनाश गुलाबी हो गया है और अभिसुर आई हुई भुवन लक्ष्मीके चरणोंकी महावरसे मानो दिन की मूस रक्त होगई है ।

१३६—ग्राहर निकलते ही राजाओंके भुङ उसको प्रणाम करने लगे । वे तेजीसे हजारों गध गजोंमें चलाते थे, उनके छत्र मंडल एक दूसरेमें टकरानेमें जर्जरित हो गये थे, आदर-पूर्वक माथा नीचा करनेसे उनके मणि-मुकुटोंकी कतार शिथिल हो गई थी, स्तन-कर्णपूर टेढ़े झुक गये थे, कुंडल खिसक खिसक कर गालों पर आ गए थे, और उनके नाम सेनापति, आज्ञानुमार, बतलाता जाता था । गवमादन नामक हाथी उसके पीछे पीछे चलता था । वह सिंदूर खूब नगानेसे लाल हो गया था, उसकी लटकनी हुई झूलकी मोतियोंकी झालर भूतल पर दोलायमान हो रही थी, सफेद फूलोंकी मालाओंके जालसे उसका सिर मिचित्र दीखता था जिससे वह सन्ध्या समयकी धूमसे युक्त टेढ़े रहते सफेद गंगा प्रवाहवाले गार तारागणोंसे ल्याए शिखरवाले मेरुपर्वतके समान शोभायमान लगता था । इन्द्रायुध आगे आगे चल रहा था । उसके सोनेके

१—एक बार रावण ने कुवेर को जीत कर उसका पुष्पक विमान ले लिया और फिर वह कैलाश की तरफ रवाना हुआ जहाँ शिव पार्वती थे । वहाँ जाने पर, शिवकी शक्ति से, उसके विमान की चाल बद हो गई । तब नदी ने उससे चने जाने को कहा । रावणने क्रुद्ध होकर कैलाश को उठा लिया । पर शिवने, उमका घनड तोड़ने के लिए अपने बाएँ चरणके अंगूठे से उसे जिससे रावण को कैलाश छोड़ना पड़ा ।

गहनोंकी प्रभासे विचित्र अणवबो पर मानो कुकुम-तिलक लगाए हों ऐसा मालूम होता था । इम प्रकार चन्द्रापीड धीरे धीरे पहले पूर्व दिशाकी ओर गया और हाथियोंके चलनेके कारण हिलते सफेद छत्रवाली सप्त सेना भी—ग्रसख्य तरगा पर पड़े हजारों चन्द्र प्रतिविम्बवाला मानो महा प्रलय कालका समुद्र जल हो इन प्रकार—सप्त महीवलको डुवाती और अद्भुत कल कल करती चलने लगी ।

१४०—चन्द्रापीडके चलते ही सप्त प्रस्थानोचित मागलिक क्रिया हो चुम्बने पर, सफेद दस्त्र आर सफेद फूलोसे शोभित वैशम्पायन पीछे चलती बड़ी सेना और भूमसमुदाय सहित—सफेद छत्र-सहित दूसरा मानो युवराज हो इस प्रकार—शीघ्रतासे चलती दयिनी पर बैठ कर अपने मद्दतसे उसके पास आ गया । प्राण, सूर्यके पास चन्द्रके समान, उसका आम्बवर्ता हो गया । फिर—युवराज निम्ना—यह सुन कर शत्रु उधरसे दौड़ी हुई सेनाओंके भारसे उस नम्र पृथ्वी मानो चलाप्रमान हुए कुन पर्वतोसे पीड़ित समुद्रनी तरङ्गमें घुमी हो इस तरह मँभने लगी । कितने ही राजा, ममने आ कर, राजपुत्रों प्रणाम करने लगे । उनके—किरण-जालने चमकनी मलगीवाले—मणि मुटुओंके प्रकाशसे आर खूब चमकते पत्र-भग-युक्त राजकुन्दनी प्रभासे दशो दिशाएँ ऐनी मालूम होने लगीं मानो कहीं नीलाफठके पत्थरोंका चूना मिखर रहा हो, कहीं उडते मसूके हिलते हुए चन्द्रबोसे विचित्र हों, कहीं अमाल सेपनी बिजलीसे चमकने लगीं ही, पही कलमचूके पल्लावाने, कहीं इन्द्र-बज्रोसे और कहीं बालसूईके प्रकाशसे युक्त हो । राजा प्राके छत्र, सफेद होने पर भी, विविध मणिबोसे प्रकाश होअसे आर चूगमणिबोसे पीजती हुई किरणोसे ऐसे दीपने लगे मानो मोरोंमें कुण्ड हो । छत्र मरन, महीवाल मानो तुंग नम हो, दिङ्मडल गज-नय

उठते—धूलके गुब्बारेसे, वज्रपातक मन्वान ऋठोर और गम्भीर घोषमाली हाथियोंकी कठगर्जनासे, रुधिर-कणकी वर्षाके समान हाथियोंके कुम्बस्थलसे उड़ती भिदूरकी रजसे, क्षुभित हुए समुद्र-जलकी तरंगोंके समान चञ्चल—चारी और फैलती हुई—तुरंग-पक्तियोंसे सब दिशाओंमें व्याप्त हुए घोर अवनतके, दिन रात होती मदजल घाग रूमी वर्षाके और सुनानान्तरमें व्याप्त हुए क्लृप्तके कारण मानो महा प्रलय-काल आया हो ऐसा दीखने लगा ।

१४१—बबल ध्वजाओंके समूहने निरतर आच्छादित हुई दशा दिशाएँ बड़ी भारी सेनाके कोलाहलमें मानो भगभीत होकर कहीं चली गई, मदमत्त गज घटाओंके हजारों आवरणोंसे व्याप्त हुआ आकाश, मानो, मलीन भूमिकी रज स्पर्श करनेकी शक्तीसे बहुत दूर सरक गया, पौड़ोंके खुमोंसे उड़ती रजसे मलीन होनेके मानो उससे सूर्यनी किरणें आगेके हिस्सेको—मानो प्रखर प्रतीहारोंकी बेंतकी छड़ियोंसे दूर की गई हो इस प्रकार—छोड़ गई, छुत्ते ढँके हुए आतपवाला दिन, मानो, हाथियोंकी सूँठोंसे निकलती पानीकी वूँदोंसे नष्ट हो जानेके भयसे भाग गया, सेनाके भारमें अत्यन्त पीड़ित हुई और मदमत्त हाथियोंके सैकड़ों चरणोंसे ताडित हुई पृथ्वी, मानो, दूसरी प्रयाण-भेरीके समान, भयंकर नाद करने लगी, मद रिसाते हाथियोंके टपने तक आते,—अश्व-मुत्रमेंसे निकले श्वेत फेनसे बड़े हुए—मदजलमें पद पद पर पैदल फिसलने लगे, और, हरतालकी गवके समान बहुत तेज मद सुगंध के भर जानेसे, हाथीकी तरह, मनुष्यकी नाककी अन्य गव ग्रहण करनेकी सब शक्ति जाती गयी । यथाक्रम चली जाती सेनाके आगे दोड़ते जन समूहोंके कोलाहलसे, नगाड़ोंकी बहुत तेज आर जैची आवाजसे, खुर्गोंके शब्दसे, मिले हुए घोड़ोंके दिनदिनाहटने, वाग्म्वार होते कर्णतालके स्वरसे मिली हुई हाथियोंकी तेज और भारी गर्जनासे, गलामें डाली हुई धु परियोंकी आवाजके साथ सुनाई देंगी—चलनेके कारण कभी कभी बजती—बटालियोंकी टनटनाने, मार्गलिक शंखकी ध्वनिसे बड़ी हुई आवाजवाले प्रस्थान-दुधुभीके नादसे और चारम्भार इबर-उधर बजते डमरूके स्वरसे लोगोंके मन सुन्न हो जाते थे और उनको मानो मूर्च्छा आ जाती थी ।

१२—गिरे गिरे सेनाके लोभमें उत्पन्न हुई धूल उड़ने लगी । वर,

पृथ्वीके अनेक वर्ण होनेके कारण, कहीं बूड़े मत्स्यकी छाताके समान धुँधली, कहीं ऊँटके तालके समान मटियाली, कहीं बूड़े हरिणके रोमके समान मलीन, कहीं बुले हुए रेशमी बखके तागेके समान पाण्डुर, कहीं पके हुए मृणालकी उडीके समान धवल, कहीं बूड़े वानरके तालोंके समान कपिल और कहीं महादेवके त्रैलोक्यके जुगाली करनेमे पैदा हुए भागके समान श्वेत थी। गंगा-प्रवाहके समान हरि-चरणमेसे^१ निकलती थी, क्रोशितकी भाँति क्षमाका^२ त्याग करती थी, परिहान करनेवालीकी भाँति नेत्रोंको बंद^३ करती थी, तृपितभी भाँति एषीकी सूँडमेसे निकलती हुई पानीकी बूँदोंको^४ पीती थी, पशु-समेतकी भाँति आकाशमे उठती थी, भाँरोकी भाँत मद रेखाका चुवन करती थी, सिद्धके समान हाथियोंके कुम्हल पर पद^५ धरती थी, विजयीके समान पञ्चात्रासा गदग करती थी, बुटापेकी तरह माथा सफेद करती थी, पलकोंके आगे रह कर दृष्टिमे मानो प्रद करती थी, मकरदके मधुकी बूँदोंसे चिपट कर मानो अर्णोत्सल सँभती थी, मद मत्त हाथियोंके हिलते कानोंसे ताड़ना किए जानेके मानो डरने उनके कान और कनपटीके भीतर भर जाती थी, सन्तुल्य आई हुई, राजाओंके मुकुट मणिधोमे मनी हुई मछलिधोसे मानो पानकी गई थी, घोड़ोंके मुँहमेसे गिर कर फैले फेन पल्लव रूरी फूलोंके गुब्झोंमे मानो पूर्ण गई थी, मत्त हाथियोंकी कुम्हलमेसे उड़ सिद्ध मानो उनका अनुसरण करता था, चमर झलनेसे उड़ा हुआ पटवास मानो उनका आर्लिगन करता था, और राजाओंके हजारों मुकुटोंमेसे गिरी फूलोंकी रज मानो उसे उल्लासित करती थी, प्रशुन सूत्रक सहजों भाँति विना कारण ही हर्ष मटलने पीती थी, राजाओंके प्रस्तावके मन्थ भोंपे गए माल त्रयो और हाने पर गोरोचनके

१—गंगा-प्रवाह विष्णुके चरणोंमेसे निकलता है, भूल घोड़ोंके चरणोंमेसे उड़ती थी ।

चूरेके समान दीखती थी और आरीसे काटे गए चदनके वृक्षमेंसे नीचे गिरे बुरादेके समान शोभायमान लगती थीं । वह अमल्य सेनाकी पिचपिचसे बढ़ती बढ़ती, प्रलय कालके बादलोंके समान श्याम होकर, सब जगत्का मानो संहार करती, धीरे धीरे फैलने लगी ।

१४३—ऐसा धूलका समूह, जो धीरे धीरे बढ़कर बहुत बढ़ा हो गया था, तीनों भुवनोमें भर गया । वह दिग्विजयका मंगल-ध्वज था, शत्रु कुलरूपी कमलोंका नारा करनेके लिए तुपार था, राजलक्ष्मीके विलामका पटवाम चूर्ण था, रिपुओंके छत्र-रूपी पुडरोकका तुहिन था, सेनाके भारसे पीडित हुई पृथ्वी की मूच्छाका अङ्कार था, चलती हुई सेना रूप मेघकालमें हुआ कदव-कुसुमोद्गम था, सूर्यकिरण-रूपी कमल वनको नष्ट करनेवाला गज समूह था, आकाश और भूतलके बीचकी जगहको डुबानेवाला प्रलय-सागरका प्रवाह था, त्रिभुवन-लक्ष्मीके सिरको ढकनेवाला वस्त्र था, महावराहकी सटाके समान विचित्र था, और प्रलयाग्निही धूम रेखाके समान स्थूल था । वह मानो पातालमेंसे उठता था, चरणोंमेंसे निकलता था, नेत्रोंमेंसे बाहर आता था, दिशाओंमेंसे आता था; आकाशमेंसे गिरता था, पवनमेंसे उड़ता था और सूर्यकी किरणोंमेंसे उत्पन्न होता था । चेतनाका न हरनेवाला निद्रागम था, सूर्यको कुछ न गिनने वाला अङ्कार था, बिना ग्रीष्म-ऋतुके बनाया गया तैखाना था, जिसमें तारे उदय नहीं हुए हों ऐसा कृष्णपद्मका प्रदोष था, वर्षासे रहित मेघ-काल था, फिरते हुए सगसे रहित पाताल था, और वह वामनके चरणोंकी तरह बढ़ता था ।

१४४—नवीन जल पड़नेसे जैसे प्रफुल्लित कुवलय वन दीखता है वैसे ही क्षीरसागरके फेनके समान सफेद पृथ्वीकी रजसे धिरा आकाश दीखने लगा । बहुतसी रजसे धूसर हुआ सूर्य-विम्ब हाथीके कानमें पहने चमरके समान फीका पड़ गया । कपड़ेकी सफेद स्वजाकी तरह मदाकिनी काली हो गई । राजाओंकी सेनाका बढ़ा भार सहन न कर सकनेसे पृथ्वी, उस भारको उतारनेके लिये, इस रजके आङ्कारमें मानो फिर अमर-लोकमें चटी । सूर्यके तापका नि शेष पान करनेसे भीतर मानो जलती हो ऐसी पृथ्वीकी रज सूर्य रथके चक्कन-चक्कन मटियाला करके समुद्रके जलमें पड़ी । एक क्षणमें ही पृथ्वी मानो

में, प्रलय-कालके समुद्र-जलमें, मृत्युके जठरमें, महानालके मुखमें और

ब्रह्माण्डम ध्रुव गई । सत्र दिन धूलिमय हो गया । दिशाएँ ऐसी दीखने लगीं मानो उन पर कुल्लु लिय दिया गया हो । आकाशने मानो रेणु-रूप ही धारण कर लिया, आर सत्र त्रिलोकीमें मानो एक ही महाभूव व्याप्त हो गया ।

१४५—फिर, अपने मदकी गरमीसे सतत हुए हाथियोंकी सूँड़के छेदों मेंसे निकल कर सत्र दिशाओंमें गिरते—क्षीरसागरके जलके समान—श्वेत ऋणोभी वर्षासे, उनके ऋण पल्लव टकरानेसे गल कर चरते मदजलकी बूँदोंकी वर्षान आर घोड़ोंकी हिनहिनाहटसे टपकती लारकी बूँदोंमें रजके द्रव जन्ने पर दिशाएँ फिर दीखने लगीं, और समुद्र जलमेंसे मानो बाहर आई हो ऐसी उस असख्य सेनाको देख, विस्मयसे सर्वत्र दृष्टि फेंक कर, वैशम्पायनने चन्द्रापीड़से कहा —

१४६—युराज, महाराजाधिराज तारापीड़ने क्या नहीं जीता है जिसे प्राप्त जीतेगे ? किन दिशाओंमें वशमें नहीं किया जिन्हें प्राप्त वश वरेगे ? कानसे मिले नहीं लिये जिन्हें प्राप्त लगे ? कान कौनसे द्वीप स्वाधीन नहीं लिये जिन्हें प्राप्त स्वाधीन वरेगे ? कौन कौनसे रत्न इकट्ठे नहीं लिये जिन्हें प्राप्त हाटा करेगे ? कौन कौनसे राजा उनके सामने नम्र नहीं हुए ? किसने अपने माथे पर कमलकी नई कलीके समान कोमल सेनाजलि नहीं बनाई ? इनक-करीबमारी ललाटसे किसने सभा मडपकी भूमिकी चिहना नहीं मिया ? किसने पर्याप्त पर चूड़ामणि नहीं रगड़े ? किसने छत्रियों नहीं पन्दी ? किसने चमर ही चुनाये ? किसने जय शब्द कहा कहे ? किसने जलधाराके तनान निर्गत परख तल-किरलोती राशिगा गिरीजेते पाव नहीं किया ? चारों सन्तुद्रोंके जल परसा वरनेके लिए हठ करती सेनासे मग्गनत हुए दशरथ, नगीरथ, नरस, विलास, प्रजर्क, आर भास्वताके तनान, पृथ्वीके तन कुचानिनानी, खोन्स खोन्सले, क्षत्रिय राजा प्राचीनी मंगलकरक चरकरजको, त्रिभुक्क-

उसको उगलती हैं, आकाशमेंसे उसकी वर्षा होती है, और दिवस उसे पैदा करता है ।

१४७—मुझे ऐसा मालूम होना है कि ऐसी असह्य सेनाके भारसे दम कर पृथ्वी आज मानो महाभारतके संग्रामके क्षोभकी याद करती है । वज्राग्राही चोटियोंमें प्रतिविम्बित हुआ यह सूर्य मानो कुनुहलसे उनको गिनता हो इस तरह पताकाओंके वनमें घूमता है । मदजल टपकाते हाथियोंके—इलायचीके समान सुगंधित और महावेगसे बहते—मड-जलमें सर्वत्र निरंतर झूमी हुई पृथिवी गिरे हुए भौरोंके कलकलसे ऐसा शब्द करती है मानो यमुना-जलकी तरंगोंसे भर गई हो । सेनाके भारसे उत्पन्न हुए क्षोभके भयके कारण आकाशमें चढ़ी हुई नदियोंके समान, यह चन्द्र-धवल वज्राओंकी कतार सब दिशाओंको ढके लेती हैं । सर्वथा यह महा आश्चर्य है कि सेनाके भारसे सब कुन-धर्वत रूपी सगि बंध टूट कर पृथ्वीके हजारों टुकड़े नहीं होते अथवा सेनाके भारसे पीड़ित हुई पृथ्वीको धारण करनेमें अशक्त होकर शेपनागके फन-रूपी दीवारों नहीं हिलती ।

१४८—उसके थों कह चुक्ते ही युवराज डेरेमें आ पहुँचे जहाँ अनेक तारण लटकाए गए थे, घासके अहाते बना कर हजारों बर बनाए गए थे, स्वच्छ श्वेत वस्त्रके सैकड़ों तबू शोभायमान थे । वहाँ उतर कर चन्द्रापीडने राजाके योग्य सब क्रियाएँ कीं । सब राजा और प्रधान इकट्ठे होकर अनेक कथाओंसे उसका मनोरंजन करने लगे । वह सब दिन पिताके नए वियोगके कारण उत्पन्न हुए शोकसे हृदयमें खिन्न होकर उसने कठिनतासे म्रिताया । दिनके बाद रात्रि भी—पास ही एक पलंग पर बैठे हुए—वैशम्पायनके साथ और—दूसरी ओर अपने पास ही जमीन पर बिछे हुए गलीचे पर सोती हुई—पत्रलेखाके साथ, कुछ कुछ देर पिता, माता और शुकनासकी बातचीत करते, उसने निद्रा न आनेसे प्रायः जागनेमें ही बिताई ।

१४९—फिर सबेरे उठ कर पहलेकी भाँति ही कहीं ठहरे बिना कूच करने लगा और मजिल मजिल पर बढती फोजसे बट बरतीको जर्जरित करता गया, पर्वतोंको कँपाता गया, नदियोंको छुलकाता गया, तालाबोंको खली करता गया, वनोंका चूरा करता गया, ऊँचे नीचे स्थानोंका एकरता करता गया, निलानों दूर दूर गड्डे भरता गया और टीलोंको नोचता करता गया । इस प्रकार

धीरे धीरे ग्रहणी इच्छानुसार चलते चलते वह उन्नतोंको नीचा करता, नम्रको उन्नत करता, भयभीतोंका आश्वामन करता, शरणागतोंकी रक्षा करता, लम्पटोंको निर्मूल करता, कटकोंका नाश करता, जगह जगह राजकुमारोंका अभिषेक करता, गौता उपाजन करता, भेंट स्वीकार करता, महामूल लेता, देश व्यवस्था के हुक्म देता, अपने चिन्होंको व्यापित करता, स्मृति-चिन्ह बनाता, आज्ञा-पत्र लिखता, ब्राह्मणोंका पूजन करता, मुनियोंको प्रणाम करता, आश्रमोंका पालन करता, लोगोंमें प्रेम उत्पन्न करता, पराक्रमका प्रकाश करता, प्रतापको फैलाता, पशुओं पटाता, गुणोंका विस्तार करता, मन्त्रियोंको प्रत्याग करता, तटके रक्षाको नष्ट करता, सेनाकी रजमे सब समुद्रके जलसे मलीन करता, सब पृथ्वीमें विद्य । पहले उसने पूर्व दिशाको जीता । फिर विशङ्क रानी निलकण्ठी दक्षिण दिशाको जीता । उसके पीछे पश्चिममें ग्रार क्षत्रमें पीछे मत्त ऋषियोंके ताराने विचित्र दीक्षती उत्तर दिशामें उसने दिग्विजय किया । तीन वर्षमें सब द्वीपान्तरमें पशुमें परसे वह चार समुद्रकी गोल खाईके प्रमाणवाली पृथ्वीमें फिरता रहा । इतने शक्तिसे पचासन वर्ष सुमनतल जीत कर, भूमिकी प्रदक्षिणा कर, निरखे निरखे उसने एक समय बेनासके पास पृमते आर देवदूटने रहने मिसतोंका—पूर्व जलमिणिके पास स्थित—सुवर्णपुर नामका विभासस्थान जीत लिया । वर्षों बादत परणि मज्जामे पर्यटन करतेसे खी हुई ग्रहणी सेनासे विग्राम देनेके लिए ३२ राजने ही दिन तक टहरा ।

दौड़ा या वह तो उसके देखते देखते ही सामनेके ऊँचे पहाड़की चोटी पर चढ गया ।

१५१—ऊँचे चढ जाने पर चन्द्रापीड़ने अपनी दृष्टिको उनकी ओरसे फेरा । पर्वतकी चोटी पर जो पत्थर थे उनसे आगेका रास्ता बका हुआ था इसलिए उसने घोड़ेको खड़ा कर दिया । उस समय घोड़ेके और अपने देहको थकावटसे निकले पसीनेसे तर देख कर, थोड़ी देर ठहर, आप ही हँस कर सोचने लगा—मैंने क्यों बालकके समान वृथा अपनी आत्माको श्रम दिया ? इस किन्नरोंके जोड़ेको पकड़ने वा न पकड़नेसे मुझे क्या मतलब था ? पकड़ लेना तो क्या होता और न पकड़ा तो क्या हो गया ? अहो ! यह मैंने क्या मूर्खता की ! कैसा अविचारका काम किया । कैसे निरर्थक कार्यका प्रयत्न किया । यह कैसा भारी लड़कपनका काम हुआ ! जिसका नतीजा अच्छा होता वह वृथा हो गया । अवश्य करने योग्य काम निष्फल हो गया । जो मित्रोंका कार्य करना था वह भी नहीं हुआ । राज-धर्मका आरम्भ करके उसे फलीभूत नहीं किया । जिस बड़े भारी कार्यका आरम्भ हुआ था वह पूरा नहीं हुआ । विनय करनेका प्रयत्न सिद्ध नहीं हुआ । पिशाचादिमे अस्तके समान क्यों मे परिवार छोड़ कर इतनी दूर आया ? और क्यों मे इस किन्नर-मिथुनके पीछे वृथा दौड़ा ? यों न सोचता हूँ तब तो मेरी आत्मा ही मुझ पर—अन्य पुरुषके समान—हँमती है । न भालूम मेरे साथ आई हुई सेना यहाँसे कितनी दूर होगी ? इन्द्रायुधका तो बड़ा वेग है और निमेष मात्रमे वह बहुत दूर चला जाता है । फिर आने आते मेरी दृष्टि इस किन्नर मिथुन पर ही जम रही थी, इससे—सैकड़ों वृद्धोंकी निरन्तर उलझी हुई डालियोंमे भरे और लगातार गिरते सूखे पत्तोंसे ढकी हुई पृथ्वी वाले—नहा वनमे घोड़ेकी तेजीके कारण मैंने रास्ता भी नहीं देना कि जिसमें पीछे लौट जाऊँ । इस प्रदेशमे बड़े बड़े यत्नसे भटकने पर भा कोई मनुष्य नहा दीवता जो मुझे सुम्णपुरका रास्ता बतलावे । परन्तु मैंने बहुतसे लोगोंको कहते सुना है कि सुम्णपुर पृथ्वीके सब देशोंकी उत्तर दिशाकी अन्तिम सीमा है, उसके पीछेके वनमे कोई मनुष्य नहीं रहता और उसके उब पार ही कैनास पर्वत है । अतः यह कैनास होगा । इसलिए अब मुझे ही, देस भाग कर, केवल दक्षिण दिशाकी ओर चलना चाहिए । आने

किए दोपोसा फल सचमुच अपने आप ही भोगना पड़ता है । वह निश्चय फरके चायें हावने लगाम खेंच कर उसने घोड़ेको मोडा ।

१५२—घोड़ेको मोड़ कर फिर मोचने लगा कि भूलभूती प्रभासे दीप्तिमान् सूर्य्य अभी दिवस श्रीने—मेखला मणिके समान—मध्यभागको अलकृत करता है । यह इन्द्रायुध बहुत बक गया है । इसलिए इसको थोड़ीसी घास खिला कर, किसी तालाबमें, पत्थरके भरनेमें, वा नदीके जलमें निला, पानी पिला, इसकी थकावट दूर कर थोर स्वयं भी पानी पीकर, किसी वृत्के नीचे छायामें थोड़ी देर आराम कर फिर चलूँगा । यों विचार कर पानीकी तलाशमें बारम्बार इधर उधर दृष्टि फंक्ता वह आगे बढ़ा । इतनेमें सरोवरके जलमें नहा कर थोड़े ही समय पहले गए हुए बड़े बड़े पहाड़ी हाथियोंके चरणोंसे चिन्हित और कीचड़से गीला रास्ता उसे देख पड़ा । वह खूँ उसे तोड़े गए मृणाल, मूल और दंड-सहित कमलोंसे चितकरा हो रहा था, प्रकृत गीले शैवत प्रमालसे उसका कुछ भाग श्याम हो गया था, तोड़ कर डाली हुई कमल, कुमुद, कुबलय और कल्यारके फूलोंकी कलियाँ बीच बीचमें दिग्गरी हुई थीं, जोर कर डाले हुए कमल कंद बीचड़-सहित पड़े थे, तोड़ कर डाले हुए फूलोंके गुच्छासे युक्त बाने वृत्तोंसे आच्छादित था, काट कर गिराई हुई वन लताओंके फूलों पर बैठे भारे वहाँ बिलास कर रहे थे और ताजे-चोरी परिभा देना—तमाल रत्नके रसके समान श्याम—मद जल परों चर्चन रहा हुआ था ।

से गिरते शिलाजीतके रससे उमकी शिलाएँ चिकनी हो गई हैं। टॉमीके समान कठिन घोड़ोंकी टांपोंसे टूटी हरतालके चूरेसे वह मलीन हा गई है। चूहोंके नखांसि खोदे त्रिलाके भीतर वहाँ स्वर्ण-रज त्रिछी है। उसकी रेतीमें चमर और कस्तूरी मृगोंके पैरोंके निशान हो रहे हैं। रजु और रत्नक जातिके मृगोंके गिरे रोमोंसे वह भरी हुई है। उसकी ऊँची नीची चट्टानों पर चक्षोर पक्षियोंके जोड़े बैठे हैं। तटकी गुफाओंमें वन मानुषके जोड़े रहते हैं। सुगन्धि-पाषाणकी महक आती है और बेंतकी वेलोंके प्रतानमें बॉम उगे हैं। उस तलहटीमें होकर, कुछ दूर जाकर, कैलाश पर्वतके पूर्व-उत्तरके कोनेमें, जलके भारसे मद हुई मेवमालाके स्मान, और कृष्ण-पद्मकी रात्रियोंकी इकट्ठी हुई अंधकार-राशिके समान एक प्रति विस्तीर्ण वृद्धोका मंडप देखा। सामनेसे आती, फूलोंके परागसे सुगन्धित जलके ससर्गसे ठडी, पानीके बूँदासे युक्त, चदन रसके समान स्पर्शवाली, जल-तरंगोंकी पवन मानो उसका आलिगन करती हो, और कमल-मधु पीकर मत्त हुआ कल हंसोंका श्रोत्र-हारी कोलाहल मानो उसको बुलाता हो इस प्रकार उसने उस मंडपमें प्रवेश किया।

१५४—घुसते ही मंडपके बीचमें उसने एक ग्रत्यत मनोहर—नेत्रोंको प्रसन्न करनेवाला—अच्छोद नामका सरोवर देखा। वह त्रिभुवन लक्ष्मीके मणि-दर्पणके समान, भूमि देवताके स्फटिक-मय तैखानेके समान, सप्त समुद्रके निर्गमन मार्गके समान, दिशाओंके भरनेके समान, गगन तलके अंशापतारके समान, गले हुए कैलाशके समान, विलीन हिमालयके समान, रसताको प्राप्त हुए चन्द्रमाके प्रकाशके समान, महादेवके पित्रले हुए हास्यके समान, सरोवरके आकारमें त्रिभुवनके पुण्य समूहके समान, पानीके रूपमें दीखते वैदूर्य मणिके पर्वतके समान, पित्रल कर एक जगह गिरे हुए शरदके मेघ समूहके समान, और वरुणके दर्पणके समान था। स्वच्छताके कारण वह ऐसा लगता था मानो मुनियोंके मनका, सज्जनोंके सद्गुणोंका, हिरण्योकी नेत्र प्रभाका और मोतियोंकी किरणोंका ही बनाया हुआ हो। खून भरा होने पर भी उसके भीतरकी सप्त चीजें स्पष्ट दिखलाई देती थी जिससे वह खाली सा लगता था। हवासे उछलती हुई जल-तरंगोंकी बूँदासे उत्पन्न हुए, सप्त दिशाओंमेंसे इन्ट्रे हुए, मानो, इन्द्र-धनुष उमकी रत्ना करते थे। विष्णुकी भाँति उसने भी उद-

तरह उममें काच स्त्रीका^१ विलाप सुनाई देना था, महाभारतकी तरह उसमें पाण्डु^२-वार्तराष्ट्र कुलके पन्न जोभ करते थे, अमृत-मथन वेलाके समान तट पर खड़े नीलकण्ठ^३ विप पीते थे, कृष्णके बाल-चञ्चिकी तरह तट पर लगे कदमके पेड़ पर घटकर हरि^४ जल-प्रपात-रूप क्रीड़ा करते थे, कामदेवकी ध्वजाके समान वहाँ मगरका वास था; दिव्य पुरुषके समान वह अनिमेष-लोचनसे^५ रमणीय लगता था, वनकी तरह वहाँ पुडरीक^६ विजृ भित होते थे, सर्प-कुलकी तरह वह अनंत शतपत्र^७ पद्मसे शोभित था, कसकी सेनाकी तरह मधुकर^८-कुल कुवलयपीड़का गान करते थे, कद्रूके दोनो स्तनोंकी तरह वहाँ हजारो नाग^९ पय पीते थे, मलयाचलके समान वन चदन-^{१०}शीतल था और असत् सावनके^{११} समान वह अट्टान्त था ।

१५६—इसके केवल देखनेसे ही चद्रापीडकी थकावट जानी रही और उसने मनमें विचार किया—ग्रहो ! मेरा किन्नर मिथुनका अनुमरण निष्फल होने पर भी इस तालाबके देखनेसे सफल हुआ । आज ही मेरे नेत्रोंको द्रष्टव्य देखनेका पूरा फल मिला । यह तो सचमुच मैंने रमणीयताका अंत देखा ।

१—पर्वत, वक ।

२—महाभारतमें दोनों पक्षोंमें युद्ध हुआ था, सरोवरमें सफेद इस पक्षोंसे लड़ते थे ।

३—महादेव विप पीते थे, मोर पानी पीते थे ।

४—कृष्ण, चटर ।

५—एकग्र दृष्टि, मत्स्य ।

६—व्याघ्र घूमते थे; कमल लिजते थे ।

७—अनंत, शतपत्र तथा पद्म (सर्पोंकी जातियाँ), सैकड़ों पँसड़ीवाले कमल ।

८—कंसकुल कुवलयपीड़ हाथीकी प्रशमा करते थे, नीले कमलोंमें भ्रमर गुजार करते थे ।

९—सर्प दूध पीते थे, हाथी पानी पीते थे ।

१०—चदनमें शीतल, चदनके समान शीतल ।

११—असत् हेतुका अट्टान्त नहीं होता, सरोवरका अन्त नहीं दीखता था ।

आनन्द-दायक वस्तुओंकी सीमा देखी। मनोहर वस्तुओंकी अतिम हद देखी। प्रीति-जनक पदार्थोंकी परिमार्तिमा साक्षात्कार किया और प्रदर्शनीयोंकी अवसान भूमि देखी। हम सरोवरका जल उत्पन्न करके अमृत उत्पन्न करनेवाले ब्रह्माने, मानो, अपनी सृष्टिमें पुनरुक्त किया है। वह भी अमृतकी भक्ति सब इन्द्रियोंका आल्लास करनेके लिये समर्थ है। अतः निर्मलताके कारण शीतलताके कारण स्पर्श सुख देता है। मनलकी सुगन्धसे नासिकाको तृप्त करता है। हमके स्वरसे कानोंको सुख करता है और सुगन्ध होनेसे जीनको अच्छा लगता है। यह विश्व है कि हमीको देखनेका तृष्णाने नगमान् महादेव वंशाश निवासके व्यसनको नहीं छोड़ें। नागवृक्षोंमें प्रयत्न शयनकी उत्पत्ति इच्छा नहीं रही, क्योंकि ये ऐसे अमृतस्वके समान सुगन्धित जलको छोड़ कर लक्षणरससे वर्कश जलवाले समुद्रमें चले गये हैं। क्यायम यह तालाव पहले नहीं होगा, क्योंकि प्रलयके समय परमा नासिका की आँखोंमें भयभीत होकर पृथ्वी—प्रमत्तके पातकरनेसे जलके जलकी भाँति मिल गई थी ऐसे—समुद्रमें उतर गई थी, तब तो जो पद कभी इन लक्षणके लक्षणोंके द्वारा अनेक पातालोंके समान गम्भार जलने निवास होती तो एक कदम ही नहीं मरनासह भा उमना भा न लगा सकते। यथायत हमने ही जो जो जो जल ले कर महा प्रलय कालमें प्रलय में प्रलयकी अति दृष्टी दिश प्रीति और प्रसार एक सब सुखमानो कर देते हैं और नैव विचार है कि इन्द्रियों परसे जो लक्षण लक्षण जलका सुख भा पदी एकचित होकर इव हरेन्द्रके प्रकाशमें लेते हैं।

निम्नले मदके भरनेसे वह गीला हो गया था और वहाँ पेरोके बड़े बड़े चिद्र बने थे जिनसे अनुमान होता था कि पार्वतीका मित्र उस मार्गसे पानी पीनेको उतरा था । वहाँ पहुँच कर चन्द्रापीड बोड़े परसे उतर पडा और फिर इन्द्रायुध का जीन उतार ली । बोडा भूमि पर जरा लोट कर उठा उतनेमें ही कुछ हरी गाम उमभो पिला, तालाबमें लेजा कर मन भरके पानी पिला और न्हिला कर, चन्द्रापीड उमको बाहर लाया । फिर लगाम निम्नल कर बाँधनेकी सुर्ण की हलकी जजीरसे निकटवर्ती वृत्तकी जडके पामकी डालीसे उमके दोनों पैर बाँध कर, गंजरसे काटे हुए, मगेरके किनारे पर उगे दूर्वाकुरके कुछ ग्राम उमके पास डाल कर फिर आप जलमें उतरा । उममें अपने हाथ धोकर, चातकी तरह जल मथ आहार कर, चक्रवाककी तरह मृणालके टुकड़ोंसे स्वाद चख, चन्द्रके समान करग्र^१से कुमुदका स्वर्ण कर, सर्पकी भाँति जल तरंगकी पवनका आनंद लेकर, कामदेवके बाणोंके प्रहारसे जर्जरित हुए मनुष्यकी तरह छाती पर कमल-पत्र-रुमी वस्त्र रख कर, जगली हाथीके समान जल कणसे गीले पुंकर^२से गोभित कर-^३सहित सरोवरमेंसे बाहर निकला । लता मडमें पड़ी शिला पर उमी क्षण तोड़े जानेके कारण शीतल और जल कणिका से भरे मृणाल-युक्त कमल पत्रोत्ता मिछोना बिछा कर, डुमट्टेको लपेट तिराने रख कर, चन्द्रापीड वहाँ लेटा ।

१५८—इम भाँति मुहूर्त भर विश्राम करनेके बाद उसने सरोवरके उत्तर तीरकी ओर होने दिव्यगानकी आवाज सुनी । घाम चरना छोड़ कर, कान सँके करके उस तरफ मुँह फेर, ऊँची गरदन कर पहले इन्द्रायुधने उसे सुना था । वह मागोमें मजुग मालूम हाती थी और उसके साथ वीणाके तारोंकी झनकार भी सुनाई देती थी । उसे सुन कर—ऐसे निर्जन वनमें मगीत शब्द कहांने आया ?—वह सोच उत्कण्ठित हाकर कमलके पत्रोकी शोभामें उठ कर वह, निम दिशामेंसे गीत चानि आती थी, उसीकी ओर देखने लगा । परन्तु वह नया वहुत दूर थी इसलिए वहुत प्रयत्नमें आँख फेर फेर कर देखनेसे भी उसे कुछ

१—किरण, हाथ ।

२—शु डाग्र, कमल ।

—शु ड, हाथ !

दिखाई नहीं दिया । केवल गीत शब्द ही बगवत सुनाई पड़ता था । गीत-
 व्यक्ति कौनसे आती है ? — वह जाननेकी इच्छाने उमने जानेका इगदा किया ।
 इसलिए इन्द्रायुग पर जीन रात्र और स्वयं प्रेड कर—गीत पर प्रोत्तिके कारण
 आगे दाइते वन त्रिनोंके विना पृष्ठे प्रताए हुए—मार्ग पर वह, व्यक्तिनी
 योजने उम परोपरके पश्चिम तीरभी वन लेगामे होकर आगे बटा । वह वन
 लम्बा सम-पत्र, वटुल, इलायची, लाग और लपलीकी लतायां पर विजने
 हुए फताभी मुगधस मक रही थी, भ्रमणके गुजारने सुप्रसिद्ध हो गडे ।
 आर तमाल वृत्तोपे वाली पड़नेके कारण दिग्गजके मदभी रेवाक समान
 मालूम होते थी ।

निकले मदके भरनेसे वह गीला हो गया था। ग्राम वर्तों पेशके पड़ पड़े चिद
 वने थे जिनसे अनुमान होता था कि पार्वतीका मिट्ट उम मार्गसे पानी पीनेसे
 उतरा था। वर्तों पहुँच कर चन्द्रापीड बोड़े परसे उतर पडा और फिर इन्द्रायु
 का जीन उतार ली। बोडा नमि पर जरा लोट कर उठा इतनेमें ही कुछ ही
 नाम उमसे पिला, तालावसे लेजा कर मन भरके पानी पिला और पिला कर,
 चन्द्रापीड उमसे बाहर लाया। फिर लगाम निकाल कर बाँधनेकी मुण
 की हलकी जर्नीसे निम्नवर्ती गृन्नी जडके पामकी डालीसे उमके दोनों पै
 बाँध कर, पंजरसे काटे हुए, सगेवरके किनारे पर उगे दूर्वाकुके कुछ प्रा
 उमके पाम डाल कर फिर ग्राम जलसे उतरा। उमसे अपने हाथ बाँध,
 चावकी तरह चल मन आहार कर, चक्रवाककी तरह मृणालके टुकड़ासा ल्या
 प १, चन्द्रके समान करग्रामे कुमुदसा दर्शन कर, सर्पकी भाँति जल तंगकी
 पतासा ग्रान्द लेकर, कामदेवके बाणोंके प्रहारसे जर्जरित हुए मनुष्यकी
 तरह प्राणी पर कमलपत्ररूपी पत्र रख कर, जगली हाथीके समान ता
 न गि गीले पुष्करामे शाभित कर-सहित सगेवरसे बाहर निकला। तब
 म उम पडी शिला पर उनी दग्ग ताड़े जानेके कारण शीतल और जन रीति
 ने नरे मृणाल-युक्त कमल पत्रोंत विद्योना विद्या कर, दुष्टोंसे लपेट लिखे
 रत कर, चन्द्रापीड वर्तों लेया।

२५८—इस भाँति सुवर्त भर विश्राम करनेके बाद उसने सगेवरके उच्च
 तारी और होते निम्नगानकी ग्रासत सुनी। पाम चरना छोड़ कर, मान पर
 करके उम परफ सुँट कर, ऊँची मरदन कर पहले इन्द्रायु उने उमा था।
 २५९—उमको मनु मालूम होती थी और उमके साथ वीणाके तारोंकी मना
 त सुनाई देता थी। उन सुन कर—ऐने निरान वनम मगीत सख हिन
 अ न १—उद से व उच्छ्रित बाँध कमलके पत्ताकी शोभासे उठ कर त १।
 नि गानेके नीत पार प्राणी थी, उमीनी और देखने लगा। परन्तु उद १
 उदु इ थी इतनी उदु प्रपवने और फेर फेर कर देखनेने नी उने १।

१—किरण, हाथ ।

२—शु डाँध, चमत् ।

३—शु उ, हाथ ।

खलाड़े नहीं दिया । केवल गीत शब्द ही बराबर सुनाई पड़ता था । गीत-पनि कहाँसे आती है ? —यह जाननेकी इच्छामे उसने जानेका इरादा किया । उसलिये इन्द्रायुध पर जीन रख और सय बैठ कर—गीत पर प्रीतिके कारण रागे दौड़ते वन हिरनोंके बिना पूछे बताए हुए—मार्ग पर वह, ध्वनिहीकी भोजमे उस सरोवरके पश्चिम तीरकी वन लेखामें होकर आगे बढ़ा । वह वन-लेखा सत-पत्र, बकुल, इलायची, लोग और लवलीकी लताओं पर हिलते हुए फूलोंकी नुगधसे महक रही थी, भ्रमरोंके गुजारसे मुखरित हो गई थी और तमाल वृक्षोंसे काली पड़नेके कारण दिग्गजोंके मदकी रेखाके समान मालूम होती थी ।

१५६—रुमसे सामने आती कैलासकी आल्हादक और पवित्र पवनोसे संतुष्ट होकर चन्द्रापीड उस प्रदेशके पाम आ पहुँचा । कैलासकी पवन सञ्चल भग्नेके जलकी बूँदोंमे शीतल थी, भोजपत्रकी छालको उसने जर्जरित कर दिया था, महादेवके त्रैलकी जुगालीमे पैदा हुए फेनको लाती थी, कार्तिकेयके मयूरकी शिखाका चुम्बन करती थी, पार्वतीके कर्ण-पल्लवको कँपाती थी, उत्तरकुरु देशोंकी कामनियोंके पहने हुए कर्ण कमलको हिलाती थी, कोष-फल वृक्षको हिलाती थी, सुरपुन्नागके फूलोंमेसे पराग गिराती थी और हर-जटामें बँधनेसे घबराए वासुकी नागके पीनेसे बची हुई थी । वहाँ, उस सरोवरके पश्चिमके तीर पर, चन्द्रापीडने चाँदनीके समान श्वेत प्रभासे सत्र प्रदेशको संफेद करती चन्द्रप्रभा नामकी—कैलास पर्वतके एक भागकी—तलहठी पर बना हुआ महादेवका एक शून्य सिद्ध-मन्दिर देखा । उसके सत्र और मरकतके समान हरे वृक्ष लगे थे । वे मनोहर तारीत पत्तियोंकी गुञ्जारसे रमणीय लगते थे । उनकी पकी कलियों उड़ते हुए भृगराज पत्नीके नखोंसे जर्जरित हो गई थीं । वहाँ आमोकी कोमल कोमलसे उन्मत्त कोकिलें खा जाती थी और खिली हुई आमकी कलियों पर मदमत्त भ्रमरोंके झुंड गुञ्जार करते थे । ठरे हुए चमोर पत्नी मिर्च के प्रकुर खाते थे । चमरके वृक्षसे परागसे पीले पड़े चानक पीमलके फल खाते थे । फलके भागसे लचे पने अनारोंके पेड़ोंके वासलोंमें चिड़ियांने बच्चे दिये थे । खेचते कूटते बदरोंके नर प्रहारसे ताड़के वृक्ष हिलने लगते थे । आपसमें चलद होनेने मोहित हुए मवृत्तोंके पत्रोंसे उनके फूल झड़ जाते थे ।

पुष्प परागके ढेरके समान विचित्र मैना उनकी चोटी पर बैठी थीं, सैकड़ों तोते अपने मुख आर नखसे उनके फलोंके टुकड़े टुकड़े कर डालते थे, मेघ जल जा कर लोभसे आए हुए—पर पीछे भागना खाए हुए—मुग्ध चातक वहाँ तनाल वृक्षोंकी घटाके कोजाहल करते थे। हाथोंके पत्तोंके द्वारा पत्ते तोड़े जानेमें लालीके लता मडप हिल जाते थे। नव यौवनसे मत्त हुए कबूतरके, पग फड़फड़ा कर, बैठनेसे मुच्छे गिर पडते थे। पवनकी लहरसे मँपते कोमल केलोंके पत्ते वहाँ पसेना काम देते थे। फलोंके बहुत भारसे नारियलके वन झुक गये थे। उनके आस पास कोमल पत्तेवाले सुपारीके वृक्ष लगे थे। कोई रोस्ता नहा था इस कारण पत्ती चोंचोंसे पीउत्तियूरके पुड़को कुतर डालते थे। उनके बीचमेंसे मदसे शब्द करती मयूगीका मुर हार निकलता था। उनमें अंगुना कलिया लग रही थीं। वहाँही रेतीली भूमि पर दर दर कैनासही नदिगोती तरंगोंके ऊँहोरे लगते थे। वन देताग्रीही हथेलीके समान—प्रलककक रमही बूंदोंमें गीली हुई हो ऐसी—अत्यन्त सुकुमार कोपल वृक्षों पर आ रही थी। प्रथिवार्ण साकर हिरनियोंके झुंड उनकी जड़के आगे आनन्दसे बैठे थे। वहाँ मृग आर अगक वृक्ष अधिक थे।

१६०—इन्द्र मनुषी तरह उनका स्थान पन^१ था, कुमुदके समान सूर्षी स्त्रियोंकी रान्ना न मिलनेसे उनके भीतरका हिस्सा ठंडा रहना था, राम रामचन्द्रकी सेवाके समान उनके प्रान्त भागमें आन नील^२ नन थे, प्रसादके समान पूर्ण पागवता^३ वास था, मया तापमोही भाँति उनके पास वेनामन^४ थे, नदके समान उनके पारकर^५ पर नागवता^६ लिपट रही थी, समुद्रके किारे के पुनिताके समान निरन्तर प्रवाल लताकुर^७ निम्ले हुए थे, अभिषेकाली

१—मेघ, मदन ।

२—इतुमान, नीच, नल, आनके समान स्थान वृष ।

३—कबूतर, बहर ।

४—येवके आसन, वेत्र, असन वृत्त ।

५—अनका नाग, कमर ।

६—गानकी वेत, स^७-वपवता ।

७—विद्रुमजवाके प्रहुर, नए पत्ते प्रीर झोपड़ ।

तरह उनमें सँभ्रम, पुष्प, फल और पल्लव थे, चित्र-सदनके समान वे अनेक वर्णके विचित्र परवाले सैरुड़ों पक्षियोंसे शोभित थे, कौरवोंकी तरह भरद्वाज द्विज^१ उनकी सेवा करते थे, महासग्रामकी तरह वहाँ पुत्राग^२ शिलीमुखोंका आकर्षण करते थे, महागजकी तरह वहाँ लटकते बाल-पल्लव^३ धरतीको छूते थे, अप्रमत्त राजाओंके समान उनके आसपास बहुतेसे गुल्म^४ थे, शस्त्र-सज्जितकी भाँति उनका शरीर भ्रमर कवचने^५ ढका हुआ था, तोलनेके लिये तैयार हुए पुरुषकी भाँति वहाँ वानर^६ करागुलीसे गुजाका स्पर्श करते थे, राजाओंकी शैथ्याकी तरह उनके तले^७ सिंहपादसे अंकित थे, पचासि साधन करनेवालोंकी तरह उनके आसपास ऊँची शिखावाले शिखी^८ शोभाग्रमान थे, दीक्षितकी तरह वे कृष्णसारके^९ शृगसे पिसे गए थे, वृद्ध गृह मुनियोंके समान वे जटालवाल^{१०} कमडलुधर थे और जादूगरकी तरह दृष्टि^{११}को हर लेते थे ।

१६१—कुमार मंदिरके भीतर गया । पवनसे उड़ कर इधर उधरसे आते केतकीके पगसे शरीर धवल हो जानेके कारण वह ऐसा मालूम होता था

१—द्रोणाचार्य ब्राह्मण, भारद्वाज पत्नी ।

२—सग्राममें हाथियोंकी तरफ बाण फेंके जाते हैं, वहाँ पुत्राग कुछ भ्रमरोंका आकर्षण करते थे ।

३—पूँछके बालोंकी नोक, नए नए पत्ते ।

४—सेना, स्यादी ।

५—भ्रमरके समान कवच; भ्रमर-रूपी कवच ।

६—मनुष्य हाथसे चिरमिटी उठाते हैं, वहाँ बंदर उँगुलियोंसे चिरमिटी छूते थे ।

७—तला, पाये ।

८—अग्नि, मोर ।

९—दीक्षित हिरनके सींगसे शरीर खुजाते हैं, हिरन वृद्धोंसे सींग खुजाते हैं ।

१०—जटाधारी बालकोंके समूहसे युद्ध, जिनकी जड़के पास जटापूँ हैं और धाँवले बने हुए हैं ।

११—देखनेकी शक्ति हर लेना, दृष्टिका आकर्षण करना ।

मानो महादेवके दर्शनके लिए जत्रग्दम्नी उमने अपने शरीर पर भस्म लगा लो हो और मठिरमे प्रवेश करनेके पुण्यने मानो उमे नेर लिया हो । यर्ग उमने चराचरके गुरु, सम्पूर्ण विश्रुत-चदित चरण, भगवान् चतुर्मुर्ती मग देवको देखा । उनका लिंग निर्मल मुक्ता-शिलाका बना था । वह चाग न्तम्भवाले छोटसे स्फटिकके मडपमे स्थापित किया गया था और तुरन्त तोड़े हुए, अत्यत गीले, परपडीही कोरमे जलकी बूँदें टपकाते, मदाकिनीके पीत पुउरीफोने उगकी पूजा की गई थी । वे पुउरीके ऊपरमे नीरे गए चन्द्रप्रियके दुहजेके समान, निजके हाथके अत्रययोके समान, शेषनागके फनके दुह कि समान, विष्णुके शलके सतोदरोके समान, और क्षीरसागरके हृदयके समान थे तथा उनको देग कर मोतीके मुकुटोही श्रॉति होती थी ।

१६२—उनकी दक्षिण मूर्तिके सामने उमने प्रह्लादन रच कर और पाशु पत जल पारण करके पैठी एक कन्या देवी । वह बहुत विस्तृत, सा दिशाओको दुबा देने, प्रलाप मालमे उमड़े क्षीरसमुद्रके प्रवाहके समान श्वेत, बहुत सभ्यसे दृष्टके हुए तप. मनुके समान फनते और पुताके बीच बीचमे, मानो गंगाजल की तरह दृष्टके होकर चलते, अपनी देह प्रभाके पितानमे, वन गिरिमन्ति उम प्रदेशमे मानो हाथीदांतका बना हा ऐसा कर देती थी, केनाश पाँवमे अत्र प्रहारमे ही चल बना देती थी, देखनेवाले के मनको भी, नेत्रोमे होकर उगक भीतर प्रवेश करनेमे, माना सफेद कर देती थी । शतरक आसपास अत्यन्त बचन प्रहाग फैलनेमे व माना स्फटिक शृंमे बडी हो, क्षीरसागरमे डूनी थी, निम्न नदीन चत्रो आच्छादित हो, दर्पण-जलम सकान्त हो, शरदुमे के नीचे द्युम गडे हो, दम प्रहार उमके अत्रयय भली भॉति साफ बना दीगने थे । प ।

* नून की अग उन्मन्न करनेके द्रव्यात्मक भावनोहा छ्वा * वह मानो केजल १११

हुई मानो ऐरावतके शरीरकी छवि हो, महादेवके दक्षिण मुखकी हास्य छवि मानो बाहर निकल कर बैठी हो, रुद्रके लगानेकी विभूतिने मानो शरीर धारण किया हो, महादेवके कठके अ धकारके नाश करनेका यत्न करती, मानो, प्रत्यक्ष चाँदनी हो, देह धारण करके आई हुई मानो पार्वतीकी मनःशुद्धि हो, कार्तिकेयकी मानो मूर्तिमती कुमारवस्थाकी तपश्चर्या हो, महादेवके बैलके शरीरकी काति मानो पृथक् स्थित हो, मंदिरके वृत्तोंकी पुष्प-समृद्धि मानो महादेवकी पूजा करने स्वयं आई हो; ब्रह्माकी तप-सिद्धि मानो भूतल पर उतरी हो, आदि युगके प्रजापतिवी कीर्ति, मानो, सप्त लोकोंमें भ्रमण करनेसे थक कर विश्राम करने आई हो, कलियुगमें धर्म-नाश होनेसे शोकातुर होकर मानो ऋक, यजु और साम वेदोंकी त्रयी घनवासके लिए आई हो, आनेवाले सतयुगके बीजकी कला मानो युवतीरूपमें स्थित हो, मुनियोंकी मानो मूर्तिमती ध्यान-संपत्ति हो, देव गज-पंक्ति मानो मदाफिनीके आनेके वेगसे गिरी हो, रावणके उठानेके क्षोभसे नीचे गिरी हुई मानो कैलासकी लक्ष्मी हो; श्वेत द्वीपकी लक्ष्मी मानो अन्य द्वीप देखनेके कुतूहलसे आई हो, काश-कुसुमोंकी विकास कान्ति मानो शरद् समयकी राह देखती हो; शेषनागके शरीरकी शोभा मानो पाताल छोड़ कर बाहर निकल आई हो, बलरामकी देह-प्रभा मानो मदिराका नशा चढ़नेसे गल कर गिरी हो, और शुक्लक्षत्री परम्परा मानो हकूटी हुई हो—ऐसी शोभायमान मालूम होती थी । धवल होनेके कारण हसाने मानो अपनी धवलता उसे देदी थी; धर्मके हृदयसे मानो वह उत्पन्न हुई थी; शंभुसे मानो वह उत्कीर्ण थी, मुक्ताफलमेंसे मानो बनाई गई थी, मृणालोंसे मानो उसके अवयव रचे गये थे, हाथी दाँतसे मानो गढ़ी गई थी, चन्द्रमाकी किरणोंकी कूँबीसे मानो वह साफ की गई थी; चूनेसे मानो पोती गई थी, अमृतके फेनसे मानो धवल की गई थी, पारेकी धारासे मानो धोई गई थी, चाँदीके रसकी मानो उस पर वार्निश की गई थी, चन्द्र मंडलमेंसे मानो वह बाट कर निकाली गई थी, कुटुन, कुद और सिंधुवारके फूलोंकी कान्तिसे मानो वह चमकाई गई थी, और धवलताकी मानो वह प्रतिम सीमा थी । कषे तरु लटकती, उदयाचल पर आये सूर्यप्रियमेंसे निकाली गई राख तिरणोंकी प्रकृति मानो बनाई गई, चमकती त्रिजलीके चंचल वेवके

समान लाल और थोड़ी देर पहले स्नान करनेसे कहीं कहीं लगी हुई पानीकी
 बूँदोंके कारण मानो प्रणाम करतेमें महादेवके चरणोंकी भस्म उसमें लगी हो,
 ऐसी जटा उसके मन्त्रको शोभायमान करती थी । माथेमें जटा कलापके सम
 गुये हुए शिव-नाम युक्त महादेवके दोनों चरणोंके मणिमय चिह्न उसने धारण किए
 थे, सूर्यरथके घोड़ोंके खुरोंसे खुदे हुए नक्षत्रोंके चूर्णके समान श्वेत भस्ममें
 उसका ललाट अलंकृत था, जिसमें वह चौटीकी शिलामें जड़ी हुई चंद्रमाकी
 कलावाली हिमालयकी मेखलाके समान दीपती थी, अतुल भक्तिसे अलंकृत
 हुई वह शिवालिककी लक्ष्मी त्रिके—मानो दूसरी पुडरीक-मालाके समान—
 अपनी दृष्टिसे भूतनाथकी पूजा करती थी, निरंतर गान करनेसे हिलते
 प्रहरपुष्टके कारण मुगमसे निम्नली, मूर्तिमान् शुद्ध हृदयकी किरणोंके समान,
 अगाध गुणोंके समान, सारके समान, आर स्तुतिके वर्णोंके समान, अत्यंत स्वच्छ
 स्वकिरणोंमें ही, महादेवकी, मानो, फिरसे स्नान कराती थी । प्रतापतिके मुग
 ममें निम्न ही आए साक्षात् वेदायाके समान, गुंये हुए गायत्री-वर्णाक
 मना, विष्णुके नाभिकमलमेंसे निम्नले बाजोंके समान, कर स्पर्शसे पवित्र होने
 में इन्द्राग्ने तापोंके रूपमें आए सप्तपिथाके समान, अति निर्मल आमलेके
 अमर रंग रंग मोतीके दानोंका दार उम्ने कण्ठमें पड़न रत्ना था जिससे वह
 अस्त्रैव नस्ति चद्र-मण्डवमें युक्त पुष्पिमाकी रात्रिके समान शोभायमान मालूम
 होता था । अमोघ्य किए हुए महादेवके सिर कपालके समान मण्डलाकार और
 नोक्त-दापके पात्र रत्ने गए कलशाके समान कतिमान् स्नानयुग्में पड़ मोके एक
 जोड़-मणि श्वेत गंगाके समान मालूम होती थी । पार्वतीके मिट्टी मट्टा ही
 नानो बनाता हो, चामरके समान सुंदर आकृति माला—जिसकी गाँठ स्वनाक
 लगी हुई थी ऐसे—स्वयंभूकी लताके बल्बल में ही उसने टुट्टे के
 न ओट रत्ना था । महादेवने प्रसन्न होकर दिए गए चूर्णमणिके चंद्रम
 रण में ही मानो मट्टन बना हो ऐसे मालूम होने लगे उग्रता क्षय
 त्तित हुआ था । पर तब लटकते आर बना देने श्वेत ऐसे ही प्रताप
 स्वाम ऊँच मुँह करके रत्ने अमृतवती प्रनाके लगी लाने दी।
 येमनी बन्ने उन्ने अमर टक रत्नी था । अने मन्त्र पर प्राणेश
 निम्नली आर निम्न सिद्धके समान, बीज नो उरता सेवा करा था । २५ ई

लावण्यने भी, पुण्यवान्की भौति, उमका परिग्रह किया था । सुन्दर लोचन-युक्त रूप भी, चपलता-रहित होकर, देवालयके मृगकी तरह, उसकी सेवा करता था । जिसकी उँगलियोंमें सूक्ष्म शंख जड़ी हुई अँगूठियाँ पहनी थी, त्रिपुरड लगानेसे बची हुई भस्मसे जो श्वेत हुआ था, जिसकी कलाई पर शलाभरण बंधा हुआ था, और जो नख किरण फैलनेसे मानो हाथीदाँतके बने वीणा बजानेके भिजरससे युक्त दीखता था ऐसे दक्षिण हाथसे वह, अपनी पुत्रीके समान, उत्सगमें रक्खी हाथीदाँतकी वीणा बजा रही थी, जिससे वह प्रत्यक्ष गंधर्व-विद्याके समान शोभायमान थी । मणि-मण्डपके स्तंभोंमें पड़ी हुई, वीणा लेकर बैठी—उसके सदृश रूपवती—सहचरियोंके समान, अपनी प्रतिमाओंसे वह युक्त थी । स्नान करानेसे गीले शिवलिंगमें प्रति-विम्ब पड़नेके कारण वह मानो अति प्रबल भक्तिसे पूजित शिवके हृदयमें प्रविष्ट हो गई थी । वह वीणाके साथ साथ महादेवकी स्तुतिका गान करती थी ।

१६३—हार लताके समान कंठ^१ युक्त, ग्रह-पंक्तिके समान ध्रुव बद्ध^२, क्रुद्धा स्त्रीकी भाँति रक्त मुखवर्णवाली^३, मेघ वनिताके समान घुणित मंद^४ तारकवाली, उन्मत्त युवतीके समान ताल^५ करती, और मीमांसाकी तरह असख्य भावनासे^६ भरी गीत-स्तुतिसे वह महादेवको प्रसन्न करती थी । अत्यन्त मधुर गीतसे श्राकृष्ट हुए और कान निश्चल करके मानो ध्यान करते हिरन, शूकर, चानर, हाथी, शरभ, सिंह आदि वनचर मडल त्रँव कर गानके साथ साथ वीणासी ध्वनि सुनते थे । देव-गगाके समान वह आकाशमेंसे उतरी थी, दीक्षित जनोक्ती वाणीके समान वह अप्राकृत^७ थी, शंकरकी त्राण-शलाकाके समान वह

१—गला, ध्वनि-नक्र शिरा ।

२—ध्रुव तारा, टेक ।

३—मुसका रंग लाल, अनेक राग-युक्त शब्दोंसे शारभ होती ।

४—पुतली कुछ कुछ फिरली, मंद, तारक स्वर बद्धती ।

५—ताली, ताल ।

६—भाव, गान-क्रिया ।

७—सत्कार सहित, दिव्य ।

समान लाल और थोड़ी देर पहले स्नान करनेसे कहीं कहीं लगी हुई पानीकी वूँदोंके कारण मानो प्रणाम करतेमे महादेवके चरणोंकी भस्म उसमे लगी हो, ऐसी जटा उसके मस्तकको शोभायमान करती थी। माथेमे जटा कलापके समान गुथे हुए शिव-नाम युक्त महादेवके दोनों चरणोंके मणिमय चिह्न उनमे धारण किए थे; सूर्यरथके घोडोंके खुरोंसे खुदे हुए नक्षत्रोंके चूर्णके समान श्वेत भस्मसे उसका ललाट अलंकृत था, जिसे वह चौथीकी शिलामें जड़ी हुई चंद्रमाकी कलावाली हिमालयकी मेखलाके समान दीखती थी, अतुल भक्तिसे अलंकृत हुई वह शिवलिंगका लक्ष्य करके—मानो दूमरी पुडरीक-मालाके समान—अपनी दृष्टिसे भूतनाथकी पूजा करती थी, निरंतर गान करनेसे हिलते अधरपुटके कारण मुखमेसे निकलती, मूर्तिमान् शुद्ध हृदयकी किरणोंके समान, संगीत-गुणोंके समान, स्वरके समान, और स्तुतिके वर्णोंके समान, अत्यंत स्वच्छ दंत-किरणोंसे वह, महादेवको, मानो, फिसे स्नान कराती थी। प्रजापतिके मुख मेंसे निकल कर आए साक्षात् वेदार्थोंके समान, गुंथे हुए गायत्री-वर्णोंके समान, विष्णुके नाभिकमलमेंसे निकले बीजोंके समान, कर स्पर्शसे पवित्र होने की इच्छासे तारोंके रूपमें आए सप्तधियोंके समान, अति निर्मल ग्रामलेके बराबर बड़े बड़े मोतीके दानोंका हार उसने कण्ठमें पहन रखा था जिसे वह परिवेष-सहित चद्र-मडलसे युक्त पूर्णिमाकी रात्रिके समान शोभायमान मालूम होती थी। अधोमुख किए हुए महादेवके शिर कपालके समान मडलाकार और मोक्ष-द्वारके पास रखे गए कलशोंके समान कातिमान् स्तनयुगसे वह हसोंके एक जोड़े-सहित श्वेत गंगाके समान मालूम होती थी। पार्वतीके सिंहकी सटाका ही मानो बनाया हो, चामरके समान सुंदर आकृतिवाला—जिसकी गाँठ तानोंके में लगी हुई थी ऐसे—कल्पवृक्षकी लताके बल्बलभो ही उसने दुपट्टेके में ओढ़ रखा था। महादेवसे प्रसन्न होकर दिए गए चूडामणिके चन्द्रका रत्न ही मानो मडल बना हो ऐसे मालूम होते जनेऊसे उसका शरीर पवित्र हुआ था। पैर तरु लटकते और स्वभावसे श्वेत होने पर भी ब्रह्मासनकी रचनामें ऊर्ध्व मुख करके रखे चरण-तलकी प्रभाके स्पर्शसे लालसे दीखते, रेशमी वस्त्रसे उसने कमर ढक रक्खी थी। अपने समय पर आनेभले, निर्विकारी और विनीत शिष्यके समान, यौवन भी उसकी सेवा करता था। स्वच्छ

लावण्यने भी, पुण्यवान्नी भौति, उमका परिग्रह किया था । सुन्दर लोचन-युक्त रूप भी, चपलता-रहित होकर, देवालयेके मृगकी तरह, उसकी सेवा करता था । जिसकी उँगलियोंमें सूक्ष्म शंख जड़ी हुई अँगूठियाँ पहनी थी, त्रिपुण्ड्र लगानेसे बची हुई भस्मसे जो श्वेत हुआ था, जिसकी कलाई पर शलाभरण बैठा हुआ था, और जो नख किरण फैलनेसे मानो हाथीदाँतके अने वीणा बजानेके भिजरवसे युक्त दीखता था ऐसे दक्षिण हाथसे वह, अपनी पुत्रीके समान, उत्सवमें रखी हाथीदाँतकी वीणा बजा रही थी, जिससे वह प्रत्यक्ष गधर्व-विद्याके समान शोभायमान थी । मणि-मण्डपके स्तभोंमें पड़ी हुई, वीणा लेकर बैठी—उसके सदृश रुखती—सहचरियोंके समान, अग्नी प्रतिमाओंसे वह युक्त थी । स्नान करानेसे गीले शिवलिंगमें प्रति-वेद्य पड़नेके कारण वह मानो अति प्रबल भक्तिसे पूजित शिवके हृदयमें प्रविष्ट हो गई थी । वह वीणाके साथ साथ महादेवकी स्तुतिका गान करती थी ।

१६३—हार लताके समान कंठ^१ युक्त, ग्रह-पत्तिके समान ध्रुव बद्ध^२, क्रुद्धा स्त्रीकी भौति रक्त मुखवर्णवाली^३, मेघ वनिताके समान घूर्णित मंद^४ तारक-वाली, उन्मत्त युवतीके समान ताल^५ करती, और मीमांसाकी तरह असख्य भावनासे^६ भरी गीत-स्तुतिसे वह महादेवको प्रसन्न करती थी । अत्यन्त मधुर गीतसे आकृष्ट हुए और कान निश्चल करके मानों ध्यान करते हिरन, शूकर, चानर, हाथी, शरभ, सिंह आदि वनचर मडल बाँध कर गानके साथ साथ वीणाकी ध्वनि सुनते थे । देव-गगाके समान वह आकाशमेंसे उतरी थी, दीक्षित जनोमी वाण्याके समान वह अप्राकृत^७ थी, शंकरकी बाण-शलाकाके समान वह

१—गला, ध्वनि-नकर शिरा ।

२—ध्रुव तारा, टेक ।

३—मुखका रंग लाल, अनेक राग-युक्त शब्दोंसे आरंभ होती ।

४—पुतली कुछ कुछ फिरती, मंद, तारक स्वर बदलती ।

५—ताली, ताल ।

६—भाव, गान-क्रिया ।

७—सस्कार सहित, दिव्य ।

तेजोमय^१ थी, अमृत पीनेवालीकी भाँति वह तृष्णा रहित^२ थी, महादेवकी चन्द्र-कलाके समान उसमें राग^३ नहीं था; अमयित समुद्रकी जल सपत्तिके समान वह अन्तः प्रपन्न^४ थी, समास-हीन पद-वृत्तिके समान^५ वह द्वंद्व रहित थी, बौद्धोंके शास्त्रके समान वह निरालम्बन^६ थी, जानकीकी भाँति उसने ज्योतिमे^७ प्रवेश किया था, जुग्रा खेलनेमें चतुर स्त्रीकी भाँति उमने अक्षहृदय^८ वशमें कर लिया था; पृथ्वीके समान उसका शरीर जलभृत्^९ था; जाड़ेके दिनोंकी प्रभात-लक्ष्मीकी तरह उसने सूर्य-तापका^{१०} ग्रहण किया था; आर्याके समान उसकी मात्रा यति^{११} गणके योग्य थी, चित्रितकी भाँति वह अचलावस्थित^{१२} थी, किरण-मयकी भाँति वह शरीरकी कान्तिसे भूतलमें रंग देती थी; वह ममत्व, अङ्कार और मत्सर-रहित थी; उसका आकार अलौकिक था और दिव्य स्वरूपके कारण वयका अनुमान नहीं हो सकता था तो भी वह मानो अठारह वर्षकी दीखती थी

१६४—फिर कुमारने उतर कर, एक वृक्षकी डालीसे बोड़ेको बँध, भगवान् महादेवके पास जाकर भक्ति पूर्वक प्रणाम किया और दिव्य युवतीको

१—अग्निमय, कान्तिमय ।

२—पिलास, सांसारिक इच्छा ।

३—रग, काम आदि का विकार ।

४—तलेमें रत्नोंसे युक्त, भीतर प्रसन्न ।

५—द्वंद्व समास-रहित, अकेली ।

६—शून्य-वादके अनुसार निराश्रय, स्वतंत्र ।

७—अग्नि; परब्रह्म ।

८—चौपड़के ऐतना रहस्य; इंद्रियों और हृदय ।

९—जलसे भरा, वह जलसे निर्वाह करती थी ।

१०—जाड़ेके दिनोंमें सुबह बरफके सबबसे धूप नहीं दीखती, उसने सूर्य-तापका पान किया था ।

११—आर्या छंदमें विश्राम और गण मात्राके अनुसार होते हैं, उसके वचन यतियोंके योग्य थे ।

१२—स्थिर रहना, पर्वत पर रहना ।

टकटक, त्रोंध कर निश्चल दृष्टिसे वह फिर देखने लगा । उसकी रूप सपत्ति, काति और शातिसे विस्मित हो वह विचारने लगा—अहो ! जगत्में प्राणियोंको कैसे कैसे अचर त्रिना विचारे मिल जाते हैं । मृगयामें, अकस्मात्, किन्नर-मिथुनका व्यर्थ अनुसरण कर मैंने यह अत्यन्त मनोहर, मनुष्योंकी पहुँचसे बाहर, दिव्य जनोके फिरने योग्य प्रदेश देखा । फिर यहाँ पानी ढूँढते ढूँढते सिद्ध पुरुष जिसके जलका उपवोग करते हैं ऐसा हृदय हारी सरोवर देखा । उसके तीर पर सोते सोते दिव्य गान सुना और उसका अनुसरण करनेसे यह मनुष्योंको दुर्लभ दर्शनवाली दिव्य कन्या देखी । इसकी दिव्यतामें मुझे जरा भी सराय नहीं है । आकृति ही इसकी अमानुषता प्रकट करती है । फिर गधर्व-गीत-ध्वनि भी मृत्युलोकमें कहाँसे आ सकती है ? इसलिए यदि यह मेरे सामनेसे चहसा अंतर्धान न हो जाय, कैलासके शिखर पर न चढ़ जाय अथवा गगनमें न उड़ जाय, तो मैं इसके पास जाकर मत्र पूछ लूँगा कि तुम कौन हो ? तुम्हारा नाम क्या है ? और क्यों तुमने युवावस्थामें अत प्रहृण किया है ? यहाँ आश्चर्योंके लिए बहुत जगह है । इस प्रकार निश्चय कर वह उसी छोटे लफटिक-मंडपके भीतर एक स्तम्भके सहारेसे बैस कर गान समाप्तिकी प्रतीक्षा करने लगा ।

१६५—फिर गीतके अंतमें वीणा बंद कर,—बंद हुए मधुकरोंके मधुर गुजारवाली कुमुदिनीके समान—उड़ कन्या उठकर, प्रदक्षिणा कर, महादेवको प्रणाम कर, पीछे फिर, स्वभावसे ही श्वेत और तपके प्रभावसे प्रगल्भ हुई दृष्टिसे मानो आश्वासन करती हो, पुण्योत्ते मानो स्पर्श करती हो, तीर्थजलोंसे स्नान करती हो, तपम पावन करती हो, शुद्ध करती हो, वरदान देती हो और पवित्र करती हो, इस भाँति चंद्रायोडसे कहने लगी—अभ्यागत, मैं आपका स्वागत करती हूँ, महाभाग, आप इस भूमिमें कैसे आये ? चलिए, उठिए, मेरा आतिथ्य स्वीकार कीजिए । उसके वचन सुनकर और केवल सभापत्यसे ही अपनेको अनुग्रहीत मान कर चंद्रायोड उठा और भक्ति-पूर्णक प्रणाम कर—भगरति, जो ग्रामिणी आशा—यों विनीत भावसे प्रत्युत्तर दे, शिष्यकी भाँति, वह चली सो ही उसके पीछे पीछे चला । फिर जाते-जाते रुकने विचारा—दर्पिणी बात है कि यह मुझे देकर अंतर्धान नहीं हुई । इसलिए अत्र नुत्तर-वहित प्रश्न

करनेकी आशा मेरे हृदयमें स्थिर हुई। ऐसे तपस्वियोंको दुर्लभ दिव्य रूपसे युक्त होने पर भी इसने जो अत्यंत सम्मान पूर्वक मेरा सत्कार किया इससे मेरा विचार है कि यदि मैं प्रार्थना करूंगा तो यह अपना सब वृत्तांत भी निःसंदेह कह देगी। इस तरह विचारते विचारते लगभग सौ कदम चलने पर ही उसने एक गुफा देखी।

१६६—उसके आगेके भागमें, दिनमें भी मानो रात्रि प्रकट करते, लगातार लगे हुए तमाल वृक्षोंने अधकार कर रक्खा था, खिले हुए फूलोंसे लदी बेलोंकी कुर्जोमें मंद मंद गुंजार करते मंद-मत्त मधुरोंसे उसका पर्यन्त भाग मुखरित हो रहा था, सफेद चट्टानसे टक्कर खाकर उठनेसे फेन-मय हुए, अत्यन्त दूर गिरते पानीके प्रक्षवणोंने और ऊँची उठी कोखाले पत्थरोंकी नोकोंसे जर्जरित, बड़ा शब्द करते, टूक टूक हुई तरफ के ठंडे कणोंकी वर्षासे ग्रोम भर रही थी। दोनों ओर भरते हिमके हार और महादेवके हास्यके समान सफेद भरनोंसे उसके द्वार पर मानो चंचल चमर लटकाए हों ऐसा दिखाई देता था। उसके भीतर वृद्धसे मणिमय कमंडल रखे थे। एक जगह योगियोंके पहननेका वस्त्र लटका था। एक छींके पर नारियतकी छालके दो साफ जूते रखे थे। एक ओर, अग पर लगी हुई भस्मसे धूमर हुआ, बल्कलका विछौना विछा था। टॉपीसे खोदे गए चंद्र-मंडलके समान एक शखमय भिक्षा कपाल रक्खा था और भस्मसे भरी एक तूनी उसके पास ही रखी थी। गुफाके दरवाजेके पास चद्रापीड एक शिलातल पर बैठा। वह कन्या बल्कलकी शैथ्याके सिराने वीणा रख कर, पत्तोंके दोनेमें भरनेमेंसे अर्ध जल लिए। उसे आती देख कुमार कहने लगा—भगवति, बहुत कष्ट मत करो, मैंने बड़ा अनुग्रह किया, मानो, बहुत आदर रहने दो, सब पाप-क्षयकारी का केवल दर्शन ही, आत्मर्षणकी तरह, पवित्र करनेके लिए काफी है, बस, लोभे। उसके बहुत आग्रह करने पर कुमारने सब अतिथि सत्कार विनय सहित सिर बहुत नीचा करके स्वीकार किया।

१६७—अतिथिका सत्कार करके, एक दूसरे शिलातल पर बैठ, थोड़ी देर चुप रह कर उस देवकन्याने जब राजकुमारसे उसका वृत्तांत क्रमसे पूछा तब उसने दिग्विजयसे आरम्भ कर, किन्नर-मिथुनका अनुसरण और नहीं आगमन

तकका सब कृतात उससे कहा । उसे सुन वह कन्या उठी और अपना भिक्षा-कपाल ले, आश्रमके वृक्षोंके नीचे घूमने लगी । वहाँ अल्प कालमें ही अपने आप गिरे फलोंसे उसका पात्र भर गया । लौट कर उसने चन्द्रापीड़से उन फलोंका आहार करनेके लिए कहा । उस समय कुमारने विचार किया—वास्तवमें तपसे कुछ भी असाध्य नहीं है । जब अचेतन वनस्पति भी सचेतनकी तरह इस भगवतीको पल भेट कर अपना अनुग्रह प्रकट करते हैं फिर इससे अधिक आश्चर्य क्या हो सकता है ? यह तो मेने एक अदृष्ट पूर्व विचित्र बात देखी । यों अत्यन्त विस्मित हो कर वह उठा और बाहर जाकर इन्द्रायुधको वहीं ले आया । उसका जीन उतार, जरा दूर बाँध कर, अपने झरनेके जलने स्नान किया और अमृत-रसके समान मधुर फल भक्षण कर, बरफके समान ठंडा झरनेका पानी पीकर, आचमन कर—जब तक उस कन्याने भी जल फल मूलका आहार किया तब तक—वह एकान्तमें बैठा रहा ।

१६८—इस प्रकार आहार कर जब वह कन्या सध्या कालके योग्य तत्र क्रिया कर चुकी और एक गिलातल पर निश्चित वैठी तत्र धीरे धीरे उसके पास जा, थोड़ी दूर बैठ, थोड़ी देर पीछे चन्द्रापीड़ उससे विनय पूर्वक कहने लगा—भगवति, आपके प्रसादसे उत्तेजित हुए कुतूहलसे आकुल, मनुष्य-जाति-सुलभ लसुना, मेरी इच्छा न होने पर भी मुझे बलात्कारसे प्रश्न करनेकी प्रेरणा करती है क्योंकि चंचल प्रकृतिके पुरुषको स्वामीकी कृपाका लेश भी धृष्ट बना दे । है । एक जगह थोड़ासा सहवास होनेसे भी परिचय हो जाता है और थोड़ासा सत्कार भी प्रेम उत्पन्न कर देता है । इसलिए जो अत्यन्त खेद न हो तो अपना कृतात कह कर मुझे अनुग्रहीत करिए । आपको देखा है तबसे ही मुझे इस बातका ज्ञान कुतूहल है । भगवति, आपने जन्म लेकर देव, ऋषि, गधर्व, पुरुष और अप्सराओंमेंसे किसके कुलको अनुग्रहीत किया है ? ऐसे कुमुद-सदृश सुकुमार नवयौवनमें आपने क्यों तब ग्रहण किया है ? कहीं यक्ष ? कहीं यह आकृति ? कहीं यह अत्यन्त लावण्य ? और कहीं यह इन्द्रियोंमें त्रिप्र ? यह सब मुझे अद्भुतसा लगता है । क्यों आप अनेक सिद्ध-साध्यों भरे, सुरलोकमें लुचन, दिव्यावन छोड़ कर इस निर्जन वनमें अनेजी रहती हो

फिर यह क्या बात है कि प्रसिद्ध पंच महाभूतोंका बना आपका शरीर इतना गोरा है ? ऐसा तो मने पहले न कहीं देखा, न सुना । इसलिए कृपा कर सब वृत्तांत विदित कर मेरा कुतूहल दूर कीजिए । चन्द्रापीड़के वचन सुन कर वह कन्या, कुछ विचारमें मग्न हो, थोड़ी देर चुप रह कर, लंबी साँस लेकर, आन्तरिक हृदय शुद्धिको लेकर मानो बाहर निकलते, इन्द्रियोंके प्रसादमें मानो बरसाते, तप-रूपी रसके भरनेमें मानो भरगते, और लोचनोंकी घबलताको मानो पिघला कर गिराते, अतः स्वच्छ, निर्मल गालों पर टपकते, दूटे हारके मोतियोंके समान शीघ्रतासे गिरते, लड़ीके समान निकलते, बल्कलसे ढँके हुए स्तन-शिखर पर जर्जरित होनेसे कण होकर बिखरते, बड़े बड़े आँसू टपका कर, आँख मीच, चुपचाप राने लगी ।

१६६—उसको रोते देख चन्द्रापीड़ उस समय चिन्ता करने लगा—अहो ! विपत्तियोंका आक्रमण भी दुर्निवारणीय होता है, क्योंकि ऐसी दुःखके अयोग्य आकृतिको भी वे अपने वशमें कर लेती हैं । शरीर धारीमें सताप-कारी दुःख अवश्य होते हैं । सुख दुःखादि द्वंद्वकी प्रवृत्ति प्रबल है । इसके रोनेसे मेरे मनमें पहलेसे भी अधिक कुतूहल उत्पन्न हो गया है । ऐसी मूर्ति कुछ छोटे मोटे कारणोंसे शोकके ग्रवान नहीं हो सकती । जरासे बज्रके आघातसे पृथ्वी चलायमान नहीं होती । इस रीतिसे उनका कुतूहल बढ गया और अपनेको ही शोक-स्मरणका हेतु होनेसे आराधी समझ, उठ कर, उसका मुँह धुलानेमें भरनेमेंसे अंजली भर कर जल ले आया । उस कन्याकी आँखोंसे आँसू बाहर बह रहे थे तो भी राजकुमारके अनुरोधसे, वह भीतरसे जरा लाज हुए अपने नेत्रोंमें धोकर, बल्कलके पल्लेसे अपना मुँह पोंछ कर, लंबे और गरम साँस ले, रो बोली—राजकुमार, मेरे समान अतिकूर हृदया, मदभागिनी, पापिनी में वैरग्य ग्रहण करनेके अश्रवणीय वृत्तांतके सुननेसे क्या लाभ है ? यदि आपमें बड़ा कुतूहल है तो कहती हूँ, सुनिए ।

१७०—यह तो आप—कल्याणेश्चक्र—ने प्रायः तुना ही होगा कि देव हमें अप्सरा नामकी कन्याएँ रहती हैं । उनके चौदह कुल हैं । उनमें एक नामान्त्रिकोंके मनसे उत्पन्न हुआ है, दूसरा वेदोंसे, तीसरा अग्निसे, चौथा पवनसे, पाँचवा मथे हुए अमृतसे, छठा जलसे, सातवाँ सूर्य किरणोंसे, आठवाँ

चन्द्रकिरणोंसे, नवों भूमिसे, दसवाँ विजलीसे, ग्यारहवाँ मृत्युसे, बारहवाँ कामदेवसे और शेष दो दक्ष-प्रजापतिकी बहुतसी कन्याओंमेंसे मुनि और अरिष्टा नामकी कन्याओंके गंधर्वोंके साथ समागमसे हुए हैं। इस रीतिसे चौदह कुल हुए। दक्षकन्याओंसे उत्पन्न हुए दोनों कल गंधर्वोंके हुए। मुनिका, चित्रसेनादि पन्द्रह भाइयोंसे गुणोंमें बड़ा हुआ, चित्ररथ नामका सोलहवाँ पुत्र उत्पन्न हुआ। तीनों भुवनोंमें प्रख्यात पराक्रमवाले, सब देवताओंकी मुकुटमाला जिनके चरण-कमलोंका पूजन करती है ऐसे इन्द्रने उनको अपना मित्र बना लिया, जिससे उनका प्रभाव अधिक बढ़ गया और शैशवमें ही उन्होंने रुद्रगंधी किरणोंसे श्याम हुई भुजासे उजाड़ित करके सब गंधर्वोंका आधिपत्य प्राप्त किया। यहाँसे थोड़ी दूर भारतवर्षकी उत्तर दिशाके निकटवर्ती क्तिपुरुष देशमें हेमकूट नामक पर्व-पर्वत पर वह रहते हैं। उनके पुत्र-पुत्रसे परिपालित लाखों गंधर्व भी वहाँ रहने हैं। उन्होंने ही यह चित्ररथ नामका अत्यंत मनोहर कानन बनवाया है, अच्छोद नामका यह बड़ा मरोवर खुदसाग है और भगवान् महादेवको स्थापित किया है।

१७१—दूसरे गंधर्व कुलमें अरिष्टाके पुत्र—तुवरु आदि छ पुत्रोंमें जेठ—हंस नामके जगद्विख्यात गंधर्व हुए। उन्हें गंधर्वराज चित्ररथने अभिषिक्त करके शैशवमें ही राजा बनाया। असख्य गंधर्व परिवारके साथ वह भी उभी पर्वत पर रहते हैं। चन्द्रकिरणोंमेंसे जो अप्सराओंका कुल उत्पन्न हुआ उसमें, किरणोंके साथ ही गले हुए चन्द्रकी सब कलाओंके पूर्ण लीवण्यसे हो मानो बनाई गई हो ऐसी, त्रिभुवनके नेत्रोंको आनंद देनेवाली, दूमरी मानो गौरी हो ऐसी गौरी नामकी, चन्द्रकिरणके समान ही श्वेत वर्णकी, कन्या उत्पन्न हुई। मन्किनीको जैसे क्षीरसागरने, उसी तरह द्वितीय गंधर्वकुलके अधीश्वर हंसने गौरीको अपनी प्रिया पत्नी बनाया। भगवान् कामदेवसे जैसे रतिने और शरत् समयसे जैसे कमलिनीको, उसी तरह हंसके साथ संयोग होनेसे गौरीको भी, समानके साथ समागम होनेसे, बड़ा हर्ष हुआ और वह उनके सब रनवासनी स्वामिनी हो गई।

१७२—उन दोनों महात्माओंको केवल शोकानुर करनेके लिए ही मैं ऐनी लक्षण दीन, अनेक-महल दुःख प्राप्त पुत्री उत्पन्न हुई। अनसत्यताके कारण निताने नरे जन्म रनप पुत्र-जन्मसे भी अधिक उत्सव मनाया। दस दिन होने

पर यथायोग्य संस्कार करके उन्होंने मेरा महारुवेता यह यथार्थ नाम रक्ता । फिर मैं बाल्यावस्थामें वीणाके समान मधुर बोलती, एक गधर्वकी गोदमेंसे दूसरेकी गोदमें जाती थी और स्नेह, शोक और दुःखका जान न होनेसे मनोहर अपनी बाल्यावस्थाको मेने पिताके महलमें ही बिताया । पीछे यथाक्रम, वसंतमें जैसे चैत्रमास, चैत्रमासमें जैसे नवपल्लव, नवपल्लवमें जैसे कुसुम, कुसुममें जैसे मधुर और मधुरमें जैसे मद प्रवेश करता है उनी भौंति मेरे शरीरमें नव बौवनने प्रवेश किया ।

१७३—एक समय, जब सब जीव लोकके हृदयको आनंददायक चैत्र मासके दिनोंमें नये कमल-वन खिल रहे थे, आमकी झोमल कलियोंका क्लृप्त कामुकोको उत्कण्ठित कर रहा था, मजयाचलनी ठंडी पवन चलनेसे कामदेवका ध्वजा फहरा रही थी, मदमत्त नमिनियोंके मुखसे छिड़के गए मधुसे मकुल पुलकित हो रहे थे, मधुर-कुल-रुगी कलकस चमेलीकी कलियाँ काली हो गई थीं, अशोक वृक्षोंको लात मारनेमें युवतियोंके मणिनूपुर हजारों भौंतिसे झन झनाहट कर रहे थे; खिलती कलियोंकी सुगंधसे एकत्रित हुए भ्रमरोंकी मधुर गुञ्जा से आमके वृक्ष मनोहर लग रहे थे, अवरल कुसुम झूलि रूनी रेताक पुलिनसे घरातल धवल दिखलाई देता था, मधुमदसे मत्त हुए मधुर लता लता झूलों पर झूल रहे थे, पल्लवोंमें छाई हुई लवनी लताओंमें बुनी मत्त कोकिल मधुरण उड़ा उड़ा कर उत्कण्ठ दुर्दिन कर रही थी, प्रोषित-पतिकाओंके प्राण लेनेसे हर्षित कामदेवके चढाए हुए धनुषकी टंकारके भयसे फटे प्रवासियोंके हृदयोंमेंसे बहते बधिरसे सब मार्ग तर हो रहे थे लगातार गिरते कामदेवके शरीरके पखोंकी मनसनाहटसे सब दिशाएँ बधिर हो रही थी, दिनमें भी हृदयमें कामदेवका संचार होनेसे अभिसारिकाएँ अंगी हो रही थी, और उमड़ते हुए रति-रस रूनी सागरके प्रवाहमें सब डूब रहे थे, तब मे माताके साथ, वसंतके कारण अधिक शोभायमान, पित्रसित अनिनव कमल, कुमुद, कुनलन और कलहार-युक्त अच्छोद संगंधरमें एक बार नदनेके लिए आई ।

१७४—बड़ों स्नान करनेके लिए आई हुई भगवती पार्वतीसे तटके शिवा तन पर काठी हुई भृगु और रिटी सहित शिव नूर्तियोंको—जिनके आनंद-रेतीमें बने हुए पैरोंके चिह्नोंसे ऐसा अनुमान होना था कि वहाँ मुनिव्रतों

प्रणाम करके प्रदक्षिणा की थी—नमस्कार करती,—यह भ्रमरोंके भारसे लचके हुए गर्भ-तंतुवाले जर्जरित कुसुमोंसे रमणीय लता मडप है, यह सुपुष्पित आम्र-वृक्ष है, इसकी खिलती हुई कलीकी डंडीमें कोकिलोंने नखाग्रसे छेद कर दिए हैं और उनमेंसे मधु धारा निकल रही है, यह मदमत्त मयूरोंके कल कलसे डरे हुए साँपोंसे छोड़ी गई शीतल चन्दन वृत्तोंकी कुज है, यह विकसित पुष्पोंके गिरनेसे वनदेवताओंमें भुजाया जाना सूचित करता, सुन्दर लताओंका हिंडोला है, यह पुष्प परागके ढेरमें पड़े कलहमके पैरवाला अति रमणीय, तटके वृत्तोंका तल है—यों कहती कहती सुशोभित और अत्यन्त मनोहर प्रदेश देखनेके लोभसे आकृष्ट हो, सखियोंके साथ इधर-उधर घूमती रही ।

१७५—मुझे उसी समय एक भागमें वन-पवनसे लाई गई, अखिल वनके प्रफुल्ल होने पर भी अन्य सब पुष्पोंकी परिमलको मात करती, सर्वत्र फैलती, अतिशय सुगंध होनेसे नासिकाका मानो लेग्न करती, तृप्त करती, भर देती, उतावलीमें दौड़ते भ्रमरोंके झुंडोंसे अनुगत, अनाघात-पूर्व, मनुष्य-लोकके अयोग्य कुसुम गव आई । यह कहाँमें आई । ऐसा कतूहल उत्पन्न होनेसे मे, जरा जरा आँख मीच कर, भ्रमरीकी तरह उस कुसुम-गंधसे आकृष्ट हो, जिज्ञासामें चंचल हो कर, कितने ही कदम आगे गई । मेरे चलनेसे अधिक हिलते मणिनूपुरकी झंझरसे सरोवरमेंसे कलहस दौड़ने लगे । फिर मैंने महादेवके नयनमेंसे निकली अग्निसे जलाए गए मदनके शोभसे ग्रस्त होकर तप करते वसंतके समान, सपूर्ण मडलकी प्रातिके लिए व्रत करते शिव मस्तकके चन्द्रके समान, और महादेवके वश करनेके लिए नियम ग्रहण करनेवाले कामदेवके समान, स्नान करनेके लिए आए हुए एक अत्यंत मनाटर मुनिकुमारको देखा । अत्यंत तेजस्विताके कारण वह ऐसा दिखलाई देता या मानो चमकती त्रिजलियोंके पित्रेमें हो, भ्रामरालके सूर्यमडलके उदरमें घुमा हो, या अग्निही लयोंके बीचमें लड़ा हो । देहमेंसे निकलती, दीर्घ-प्रकाशके समान पीली, अत्यन्त क्लकनी प्रभासे वनको पीला करके, उस प्रदेश को मानो वह सुनहरा बना रहा था । उसकी जटा गोरचनके रसमें डुबाए हुए मंगल-रत्नके समान सुकुमार और पीली थी । पुण्यपताकाके समान लगते नरम-पुडूकन—जो सरस्वती समागमकी उत्पत्तिका ही हुई चदन रेखाके

समान दीन्यता था—वह, नई पुलिन रेखासे गगा-प्रवाहके समान, शोभायमान मालूम होता था । उसकी दोनों भ्रूलता अनेक शापसमयकी भ्रुकुटियोंके भवन तोरणके समान लगती थीं । नेत्रों अति दीर्घ होनेके कारण उसने मानो नेत्रोंकी ही गुँथी माला पहनी थी । सब हिरणोंने मानो उसे नेत्रोंकी शोभाका बराबर भाग दिया था । उसकी नासिका लची और ऊँची थी । नवयौवनका राग उसके हृदयमें प्रवेश नहीं कर सका था इस कारण ही मानो उसका अधर लाल था । दाढी न निकलनेके कारण उसका मुख, चारों ओर फिरती प्रमदा वली-रूरी बलयकी शोभासे हीन, बाल-मल्लके समान दिखलाई देता था । मदन धनुषकी कुण्डलाकार की हुई डोरी, अथवा तप रूपी सरोवरकी कमलिनीके मृणालके समान यज्ञोर्वीत उसने कारण किया था । एक हाथमें उसने, उँडी सहित अकुल फलके समान, कमंडल लिया था और दूसरेमें कामके मिनाशसे शोकातुर हो रुदन करती रतिके मानो अश्रु बिंदुओंकी ही रची हुई एक स्फटिक मय अक्षमालिका ग्रहण की थी । उसकी नाभि-मुद्रा अनेक विद्या-रूमी नदियाके सगमसे उत्पन्न हुए आवर्तके समान शोभायमान थी । उसके उदर पर, अजन रजकी रेखाके समान कुञ्ज कुञ्ज श्याम और श्रन्त करणसे बान रूपी प्रकाशसे निकाले गए मोहान्धकारके बाहर निकलनेके मार्गके समान, महीन रोम-राशि निकल रही थी । अपने तेजसे सूर्यको जीत कर छीने हुए परिवेष-मण्डलके समान मूँजकी तागड़ीकी डोरी उसके जवन भाग पर पड़ी थी और आकाश गगाके जलमें धोया हुआ, वृद्ध चक्रके लोचनके समान लाल, मंदार वृक्षका वल्गल उसको वस्त्रका काम देता था । ब्रह्मचर्यका वह मानो अलंकार था, धर्मका मानो यौवन था, सरस्वतीका मानो विलास था, सब विद्याओंका मानो त्वयारपति था । अश्रु श्रुतियोंका मानो सकेत-स्थान था । ग्रीष्म कालके समान वह आषाढ़^१ था, हिम समयके वनकी भाँति वह प्रफुल्ल प्रियंगु^२-मजरी गौर था, वसंतमें^३ । त उसका मुख कुसुम धवल^३ तिलकी भूतिसे शोभित था और समान रूप

१—आषाढ़ मास, दृ ३ ।

२—वन, मजरीसे गौर, अग्नि, मजरीके समान गौर ।

३—वसंतके आरंभमें तिलक तृच सफेद फूलोंमें समृद्ध हो जाते हैं, अतिका मुख कुसुमके समान वसंत भस्मके तिलक व शोभायमान था ।

और वयका एक दूसरा ऋषिकुमार देव पूजनके लिए फूल तोड़ता उसके पीछे पीछे था ।

१७६—मुनिकुमारके कानमें उरसी, अमृत-त्रिन्दु टपकाती, एक ग्रह पूर्व कुसुम-मंजरी मैंने देखी । वह वसत दर्शनसे आनन्दित हुई वन श्रीकी स्मित-प्रभाके समान, मलय-पवनके स्वागतके लिए वसतकी लाजाजलीके समान, कुसुम-लक्ष्मीकी यौवन लीलाके समान, रतिके सुरत-श्रमके पसीनेकी बूँदोंके हारके समान, मदन-रूपी हाथीकी ध्वजाके चिन्ह-रूप चामरके समान, भ्रमर-रूपी कामुक्की अभिसारिकाके समान, और कृत्तिका नक्षत्रके तारोंके गुच्छेके समान शोभायमान थी । अन्य सब पुष्पोकी सुगंधको ढक देती यह परिमल उसकी ही होगी—इस प्रकार मनमें निश्चय कर उस युवा मुनिको देखती देखती मैं विचार करने लगी—अहो ! विधाताके अतिशय रूप सत्ति देनेके साधनोंके भंडारमें कभी कमी नहीं होती । क्योंकि त्रिभुवनमें अद्भुत रूप-वान् भगवान् कामदेवको उत्पन्न करके भी उसने उससे बढकर मनोहर वह मुनिवेष धारी दूसरा कामदेव बनाया । मुझे मालूम होता है कि ब्रह्माने सम्पूर्ण जगत्के नयनोंको आनन्द देनेवाले चन्द्रवित्रको, और लक्ष्मीके लीला-गृह-रुमलोंको उत्पन्न करके इस कुमारके मुखका आकार बनानेमें कुशल होनेके लिए पहले अभ्यास किया था; नहीं तो एकसी वस्तु रचनेका क्या कारण ? फिर यह भी भूठ है कि कृष्णपक्षके क्षीण चन्द्रकी सब कलाओंका सुपुम्न नामकी किरणसे सूर्य पान करता है । वे सब कलाएँ तो सचमुच इसके ही शरीरमें प्रवेश करती हैं; नहीं तो रूयका हरण करते—कलेशसे परिपूर्ण—तप करनेवालेका ऐसा लावण्य कैसे हो सकता है ? यों मैं चिंतन करती थी कि इतनेमें गुण-दोष न देख, केवल रूपहीका पक्षपात कर, नवयौवन सुलभ कामने, वसन्त-समयका मद जैसे भ्रमरीको परवश कर देता है उसी भाँति, मुझे परचय कर दिया ।

१७७—फिर लम्बे साँस लेती लेती मैं निमेष शून्य, कुछ कुछ मिची हुई, टेडी शर अति चञ्चल पुतलीसे भीतर विचित्र हुई दाँई ओरसे, माना, उनगसे उसका पान करती, उससे कुछ मॉंगती, मैं तेरे ग्रवीन हूँ—यो कहती, उबके खानने हृदयको अर्पण करती, सर्वात्मने उसमें प्रवेश करती, वत्न

होनेकी इच्छा करती, मदनसे हाग कर रत्नाके निमित्त उसके शरण जाती, हृदयमें मुझे अवकाश दो—ऐसी याचना करती, उमके सामने बहुत देर तक देखती रही । हा हा ! मने यह न्या ग्रथोग्य, लज्जा जनक, कुलीन कुमारियोंके अनुचित क्रिया ?—यह जानती भी मैं इन्द्रियोंको वशमें नहीं रख सगी । मानो स्तब्ध हो गई होऊँ, चित्रित होऊँ, उत्कीर्ण होऊँ, बाँधी गई होऊँ, मूर्च्छित होऊँ, या किसीसे रोकी गई होऊँ इस भाति तत्काल उत्पन्न हुए अग्रष्टम्भ से मेरे सग अवयव निश्चल हो गए, और न कहे गए, न सिखाए गए, न कहनेके योग्य, और केवल मुझे ही ज्ञात होते किसी भावसे, या क्या मालूम उसके अतिशय रूपसे या मनसे, या मदनसे, या नवयौवनसे, या अनुरागसे, न मालूम किससे मैं सिखाई गई—यह मेरी समझमें नहीं आया । मेरी इन्द्रियाँ मुझे उठा कर उसके पास मानो ले जाने लगीं, आगेसे हृदय मानो मेरा आकर्षण करने लगा और पीछेसे मदन मानो प्रेरणा करने लगा । इन अवस्थामें मने मुक्त प्रयत्न आत्माको भी बड़े कष्टसे धारण किया । फिर तुरन्त ही, नाम देवको मानो भीतर अवकाश देनेके लिए, मेरे शरीरमेंसे श्वाण पवन सरावर बाहर निम्लने लगी, अभिलाषा उत्पन्न होनेसे मानो हृदयमें कुछ रहना चाहते हो—इस भाँति दोनों कुच काँपने लगे, लज्जा, पसीनेकी बूँदोंसे माना धुल गई हो इस तरह, बहने लगी, कामदेवके पैने शरीरके प्रहारसे माना डर कर शरीर काँपने लगा, उसका अतिशय रूप देखनेके मानो कुतूहलसे आलिंगनके लिए तड़फते हुए अवयवोंमें रोमांच हो गए और पसीनेने निःशेष बुल बुल कर मानो चरणोंमेंसे रागने हृदयमें प्रवेश किया ।

१७८—फिर मने सोचा कि जिसने सुरत व्यापार छोड़ दिया है ऐसे शान्तात्मा जन पर मुझे मोहित करके धृष्ट मदनने कैसा अयोग्य कर्म किया है ? हृदय निःसदेह ऐसा अत्यन्त मूड होता है कि वह अनुरागके विना योग्यताका भी विचार नहीं कर सक्ता । कहाँ तो यह देदीप्यमान तंत्र पर तपना पुत्र, और कहाँ प्राकृत जनोको प्रिय मदनकी चेष्टा । नस्तन्देह यह कुमार मुझे मदन विडम्बित देख कर अपने मनमें हँसना होगा । यह भी विचित्र ही है कि मैं इतना जानने पर भी अपना विकार दूर नहीं कर सकती । अन्य बहुतसी कथाएँ भी लज्जा छोड़ कर अपने आप पतिके पास

गई होगी। बहुतसी नारियोको इस अविनीत कामदेवने उन्मत्त किया होगा। परन्तु मेरे समान एकको भी नहीं किया होगा। केवल आकार ही देखनेसे धरार कर एक ही क्षणमें मेरा अन्तःकरण क्यों ऐसा पर-वश हो गया ! काल और गुण ही सर्वथा मदनको दुर्निवारणीय कर देते हैं। जब तक मैं सचेतन हूँ और जब तक वह मुझमें मदन-दुर्विचारकी लघुता स्पष्ट नहीं देखता तब तक ही इस प्रदेशमेंसे मुझे खिसक जाना उचित है। कहीं अभिय मदन-विकार मुझमें देखनेसे कुपित होकर यह मुझे श्राप न दे बैठे ? मुनिजनोंका कुपित होना कृत्र काठन नहीं है। यों विचार कर मैंने लौटना चाहा और— इस जातिकी तो सब लोग पूजा करते हैं—यों विचार उसके मुखकी तरफ दृष्टि रख, टकटकी ब्रॉथ कर, गाल परसे जरा ऊँचे खिसके कर्णपल्लव-सहित, केशोंकी चचल लटोमें शोभायमान पुष्पों-सहित, और स्वध पर लटकते मणि-कुडल सहित, भूमिकी तरफ देखे बिना ही, मैंने उसको प्रणाम किया।

१७६—भगवान् कामदेवके अनुल्लघनीय शासनसे, चैत्रमासकी मदोत्पादक शक्तिसे, उस प्रदेशकी अति रमणीयतासे, नवयौवनके बहुत अविनय-पूर्ण होनेसे, इन्द्रियोंकी चचल प्रकृतिसे, विषयाभिलाषकी दुर्निवारतासे, मनो वृत्तिधी चपलतासे, और ऐसी ऐसी घटनाओंकी भवितव्यतासे—कहाँ तक कहूँ, मेरे मन्दभाग्योंकी कुटिलतासे और उस कुमारको इतना क्लेश अवश्य विहित होनेसे—प्रणाम करते ही मेरा विकार देख कर उसका धैर्य जाता रहा और पवन जैसे प्रदीप को तरल करता है उसी भाँति कामने उसको तरल कर दिया। उस समय उसे भी—नए प्रविष्ट हुए मदनके समान करनेके लिये मानो आगे जाना हो—इन प्रकार रोमाच हो आया। मेरे पास आते हुए मनको मानो मार्ग दिसलाता श्वास आगे आगे चलने लगा। ब्रत भंग होनेने मानो भीत हुई, उसके हाथकी अक्षमाला प्रकम्प गृहीत होकर काँभने लगी। उसके गाल पर लगी स्वेद जल-क्षणकी माला मानो कर्णमें परनी हुई दुःखी सुखममजरी हो ऐसी दीखने लगी। मेरे दर्शनकी प्रीतिसे पिल्लूत हुए, ऊँची पुतलीवाले आर उन प्रदेशको पुण्डरीकमय दर्शाते उसके दोनों नेत्रोंसे निरगत—अस्मत् अद्भ्योद सरोवरके जलको छोड़ कर गगनकी तरफ उड़ते विरसित कुजलयवनके समान शोभित—किरण-समूहसे

दर्शों दिशाएँ च्यात हो गईं । ऐमा उमका विकार स्पष्ट देख कर मुझमें कामावेग दूना हो गया और उन क्षण मेरी अवस्था वर्णन योग्य न रहा । फिर मैंने विचार किया—अनेक सुत-रमागम-रूपी नृत्य-लीलाका उभाच्या कामदेव ही सब विलासको सिमाना है, नहीं तो विविध रसोंके ससगसे ललित मालूम होते ऐसे व्यापारोंमें जिसका मन प्रविष्ट नहीं हुया ऐमे इत पुरुषकी यह अपरिचित शृंगारानुत्पन्न आकृतिवाली दृष्टि—मानो रतिरस छलकाती, अमृत वर्षाती, मदमे आधी मिची, खेदसे मद हुई, निद्रासे जड़ हुई, आनन्दके भारसे धीमी और चंचल पुतली-सहित फिरती भ्रूलताको निःशक नचाती—ऐसी क्यों होती ? और इतनी निपणता इसमें कहाँसे आई कि एक अक्षरके बोले बिना भी केवल नेत्रोंहीसे यह अतर्गत हृदयकी अभिलाषा कहता है ।

१८०—फिर अबसर पाकर उसके सद्चारी दूमरे ऋषिकुमारके पास जा कर प्रणाम पूर्वक मैंने पूछा—भगवन्, इन तरुण मुनिना नाम क्या है ? यह किसके पुत्र हैं ? किस वृक्षकी यह कुतुम्भंजरी इन्होंने कानमें उरसी है ? इसकी प्रभावशाली मारभवाली, अनायास पूर्व, फैली हुई सुगन्धिसे मेरे मनमें बड़ा कुतूहल उत्पन्न हुआ है । वह कुछ मुसकरा कर मुझमें कहने लगा—वाले, यह पूछनेसे तेरा क्या प्रयोजन ? यदि कुतूहल है तो कहता हूँ; सुनोः—

१८१—सकल त्रिभुवनमें जिनका यश विख्यात है, तप जिनका अति उदार है, और देव-दानवों और निद्राके वृद्ध जिनके चरणोंकी बदना करते हैं ऐमे श्वेतकेतु नामके एक महामुनि दिग्ग लोकमें रहने हैं । उन भगवान्का रूप शशोप त्रिभुवनमें सुन्दर, नलकूरसे भी उत्तम और सुगन्धोंकी सुदरिणी का हृदयानदक था । वे एक दिन देवपूजाके लिए कमल तोड़ने, ऐशाना के मद-जलकी बूँदासे बने सैकड़ों चन्द्राकारसे युक्त नीरपाली और शकलके समान श्वेत प्रवाह-युक्त, मदाकिनीमें उतरे । उतरतेम उनका नल-चनमें सर्पदा रहनेवाली, प्रफुल्ल सहल पत्रवाले पुडरीकमें बैठी लक्ष्मीने देखा । उनको देखते ही प्रेम-मदसे आवे मिचे और आनंदाश्रुकी तरंगने चरल हुई पुतलीवाले लोचनोंसे उनके रूपका स्वाद लेते लेते और ब्रह्मदेव आनेके कारण अलस हुए मुख पर हाथ रखते रखते उसके मनमें नाम निर

उत्पन्न हो गया । परन्तु दर्शन मात्रहीसे उसको सुरतसमागमका सुख प्राप्त हुआ और जिस पुडरीकमे वह बैठी थी उसीमे उसका मनोरथ पूरा हुआ । उससे एक कुमारका जन्म हुआ । उसको गोदमें लेकर लक्ष्मीने—भगवन्, अपने इस पुत्रको ग्रहण करो—यों कह कर उसे श्वेतकेतुको दिया । उन्होंने भी बालकके योग्य सत्र किया करके उसका नाम पुडरीक रक्खा, क्योंकि उसकी उत्पत्ति पुडरीकम हुई थी । फिर उसका यज्ञोपवीत कराके उसे सत्र चित्राए पटाईं । यह वही है ।

१८२—देव-दानवोंके क्षीरसागरको मथन करनेसे जो पारिजात वृक्ष निकला था उसकी यह मजरी है । यह ब्रह्मचर्यके विरुद्ध कैसे इनके कानमें आई?—तो भी कहना है । आज चतुर्दशी है इसलिए कैलाशवासी भगवान् महादेवभी पूजा करनेके लिए हम दोनों स्वर्गसे नन्दनवनके पास हो कर आ रहे थे । इतनेमे, वसुत-लक्ष्मीने जिसको अपने ललित हाथका सहारा दिया था, बकुल-मालाफली जिसने मेखला पहनी थी, पुष्प-पल्लवोंसे गुँथी हुई और जोंगों तक लटकती कटमालाओंसे जिसका सत्र शरीर ढरू गया था और आनके नए अंजुरका जिसने कर्णपूर पहना था ऐसी—पुष्पोक्ता आसव पीनेमे मत्त हुई—साक्षात् नन्दन-वन-देवीने बाहर आकर पारिजात पुष्पकी इस मंजरी को लेकर प्रणाम पूर्वक हमसे कहा—भगवन्, सपूर्ण त्रिभुवनको दर्शनोंके लिए उत्कटित करनेवाली आपकी इस आकृतिके समान ही यह अलंकार है । इसलिए कृपा करके इसे ग्रहण कीजिए । कर्णपूर होनेके विलासकी स्पृहा रखती हम मजरीमे कानमें पहनिये और पारिजातका जन्म सफल कीजिए । अनदेशीका यह वचन सुन कर, अपने रूपकी खुशितसे तडिगत हो, नीची दृष्टिसे, यह दुपार उनका अनादर करके ही चलने लगे, पर मेने उसका पीछे आती देखा तबसे कहा कि मित्र, हममे क्या दोष है ? जो यह प्रेमसे देती है उसको स्वीकार करो । इतना कह यह मजरी मेने इनके कानमे, इनकी बिना इच्छा ही, लटके डरम दी । वह जान हैं, यह मजरी किसकी है और कैसे इनके कानमें आई?—यह सत्र हलात नती नॉलि मेने कह दिया है ।

१८३—उनके मां कह चुनने पर कुछ नद नद (स दर पुडरीक स्वयं ही उक्तो नाला—मुद्दालिनि, पर प्रश्न करनेका अम तू क्यों उठाती है ? जो

तुम्हको इसकी सुरभि परिमल अच्छी लगती है तो तू इसे ले ले—इतना कह मेरे पास आकर, मधुर मधुकर-गुज्जारसे मानो रति समागमकी प्रार्थना करनी हुई मजरीको, अपने कानमेंसे निकाल कर, मेरे कानमें पहना दिया। उसके हाथके स्पर्शकी वृष्णासे, उसी क्षण, दूसरे पारिजात पुष्पके समान, अतस स्थानमें मुझे रोमाच हो आया। मेरे गालके दृश्य मुखसे उसकी उँगलियाँ कौंपने लगीं और हाथमेंसे लजाके साथ गिरती अपनी अक्षमालाको भी उसने नहीं देखा। उसे भूमि पर गिरते गिरते रोक कर मैंने ले लिया और उस कुम्हारकी भुजपाशके ही मानो कंठमें गिरनेका सुख मान कर अपूर्व हार-लताकी लीला दिखाती उस मालाको मैंने लीला सहित गलेमें पहन लिया।

१८४—इतनेमें मेरी छत्रधारिणीने मुझसे कहा—भर्तृदारिके, देवी स्नान कर चुम्बे और घर चलनेका समय हो गया इसलिए तुम भी स्नान कर लो। अंशुशकी पहली ही चोटसे पकड़ी हुई नई हथिनीके समान मे उसके वचन सुनकर त्रिना इच्छा ही, बड़े बड़े प्रयत्नसे, पीछे हटी और लावण्य-रूपी अमृत पंक्रमे मानो फँस गई हो, गाल पर उठे रोमाच-रूपी कौंटोमें मानो घुस गई हो, मदन वाणकी सलाईसे मानो छिद्र गई हो, और सौभाग्यकी डोरीसे मानो सिल गई हो ऐसी अपनी दृष्टिको उसके मुखसे बड़े कष्टसे हटा कर वहानेको चली। मेरे चलने पर पुडरीका ऐसा वैथ्य-स्खलन देख कर, मानो कुछ प्रणयनोप दिखलाता, दूसरा मुनि-पुत्र यों कहने लगा।

१८५—मित्र पुडरीक, यह आपके योग्य नहीं है। यह तुच्छ मनुष्याक जानेका मार्ग है। साधुओंको तो वैथ्य रचना चाहिए। क्यों एक साधारण मनुष्यके समान व्याकुल होकर आप अपनेको नहीं रोकते? कैसे आपमें आप अपूर्व इन्द्रिय-विकार हो आया कि जिससे आपकी यह दशा हो गई?

वह वैथ्य कहाँ गया? आपका इन्द्रिय विजय कहाँ गया? वह चित्तस्थ रथ कहाँ गया? वह प्रशान्ति कहाँ गई? वह कुशल क्रमागत ब्रह्मचर्य कहाँ गया? वह तप विषयोक्ती निरस्तुक्ता कहाँ गई? गुरुके उपदेश कहाँ गए? वेद शास्त्र कहाँ गए? वह वैराग्य-मुक्ति कहाँ गई? वह सुवर्ण अर्वाचन कहाँ गई? वह तप प्रेम कहाँ गया? वह भोगोंसे निरवृत्ता कहाँ गई? वह आत्मिक अनुशासन कहाँ गया? प्रज्ञा सर्वथा निष्कला हुई? धर्म-शास्त्राभ्यास निरुत्थ

निकला ! सस्कार निरर्थक हुआ ! गुरुके उपदेशका विवेक निरूपकारक हुआ ! प्रबोध निग्रयोजन हुआ ! ज्ञान निरूपयोगी हुआ ! क्योंकि आपके समान भी अनुरागके स्वर्शसे मलीन और प्रमादसे अभिभूत होने लगे । क्या आप अपने हाथमेसे गिरी हुई और किसीसे ले ली गई अक्षमालाको भी नहीं जानते ? अहो मूढता ! यह माला तो गई पर आपका हृदय भी यह अनार्या हरें लेती है; उसे तो रोकिए ।

१८६—उमके वचन सुन, मानो कुछ लजित होकर, पुडरीकने प्रत्युत्तर दिया—मित्र कपिजल, क्यों मेरे विषयमें तुम अन्यथा सम्भावना करते हो ? एम दुर्गिनीन कन्याता अक्षमाला ग्रहण करनेका आग्रह मैं क्षमा नहीं करूंगा । इतना कह कर, असत्य कोपसे सुन्दर लगते, प्रयत्नसे रचे हुए भृङ्गुटी लपी भूषणसे शोभित और चुम्बनेच्छासे कौपते होठवाले मुख-चन्द्रसे उसने मुझसे कहा—चपले, अक्षमाला दिए बिना तुम इस जगहसे एक कदम भी मत सरकना । यह सुन कर, कामदेवके नृत्यारम्भके समय विखेरनेकी पुष्पाजलीके समान अपनी एक लङ्की मालाको कठमेसे उतार कर,—भग-पन्, लीजिए, अपनी माला—यों कह कर, मेरे ही सामने देखते शून्य-हृदय कुमारके पसारे हुए हाथमें रख, पसीसे न्हाई हुई भी मैं फिर स्नान करने चली । नहानेके पीछे बड़े बड़े प्रयत्नसे मेरी सखियाँ मुझे, नदीकी तरह, लौटा लाईं और माताके साथ मे उस कुमारका ही चिंतन करती जवरदस्ती घर आईं । वहाँ आकर कन्यान्त पुरमें गई तबसे उमके विरहसे शोकातुर रहनेके कारण कुछ भी मेरी समझमें नहीं आया कि क्या मे आ गई हूँ या वहीं खड़ी हूँ ? क्या बनेली हूँ या सखियोंके साथ हूँ ? क्या चुन हूँ या चोलती हूँ ? क्या जागती हूँ या सोती हूँ ? क्या रोती हूँ या नहीं रोती ? क्या यह दुःख है या सुख है ? क्या यह उत्कटा है या व्याधि है ? क्या यह व्यसन है या उत्सव है ? क्या यह दिन है या रात है ? क्या अच्छा है और क्या बुरा है,—और मदन-उत्तानसे प्राभिन्न होनेके कारण—कहाँ जाऊँ, क्या करूँ, क्या सुनूँ, क्या देखूँ, क्या नाचूँ, किसने कहे और इसका क्या उपाय करना—यह कुछ भी मुझे नहीं सूझा । हमने कुमारके रहनेके मश्ल पर चट कर, सब सखियोंसे मिटा कर, उम परिवर्तनको ही जानेग निषेध कर, सब काम छोड़ कर, मणिमय जाली-

युक्त खिड़कीमें मुँह रख, देखनेमें सुन्दर लगती उभी दिशाकी ओर देतानी में अगेली सीवी खड़ी रही । कुमारके उम दिशामें होनेसे मुझे वह मानो अलकृत हो, कुसुमित हो, महारत्नोंके भण्डारसे भरी हो, अमृत-सागरके प्रवाहमें डूबी हो और पूर्ण चंद्रोदयसे शोभित हो—ऐसी दीखने लगी । उस ओरसे आती पवनसे भी, वन-पुष्पकी परिमलसे भी, पत्तियोंके स्वरसे भी मैं उसका वृत्तान्त पूछना चाहती । उसे तप अच्छा लगता था इसलिए तपका श्रम उठानेकी भी मैं इच्छुक हुई । उसमें अपनी प्रीतिके कारण ही मानो मैंने मौनव्रत ग्रहण किया । कामदेवके पक्षपात उत्पन्न करनेसे मैं मुनिवेषको, उसके ग्रहण करनेके कारण, अग्राम्य कहने लगी । यौवन उसमें था इसलिए उसको रम्य कहने लगी । पारिजात पुष्पने उसके कर्णका स्पर्श किया था इसलिए उसको मनोहर गिनने लगी । सुरलोकमें उसका वास होनेसे मैं सुरलोकको रमणीय मानने लगी और उसकी रूप-संगतिमा साधन होनेके कारण कामको दुर्जय बनाने लगी । उसके इतने दूर होने पर भी, कमलिनी जैसे सूर्यके, सागर-चेला जैसे चन्द्रके और मयूरी जैसे मोतके सामने देखा करती है वैसे ही मैं उसीके सामने देखा करती थी । उसके वियोगसे घबरा कर बाहर निकलते प्राणोंकी रक्षावलीके समान वह अक्षमाला वेधीकी वेधी मेरे कठमें पड़ी थी; उसके विषयकी रक्ष्य बात करती हा ऐसी कुसुम मजरी कानमें वेसीकी वेसी उरस रही थी, और उसके हस्तक स्पर्श-सुखसे उठे हुए—कदंबकी कलीके कर्णपूरके समान शोभित—रोमाचसे मेरा एक गाल वेसाका वैसा ही वंयक्ति हो रहा था ।

१८७—इतनेमें मेरी तरलिका नाम ताम्बूल-वाहिनी, जो मेरे साथ ही स्नान करने गई थी, पीछेने, मानो बहुत देरमें आकर, मुझसे धरिसे मर्ते लगी । भर्तृदारिके, जो दिव्य-स्वरूप मुनिकुमार हमने अच्छोद सरोवरके तीर पर देसे ये उनमेंसे एक, जिसने तुम्हारे कानमें देव-वृक्षकी यद् मुमुग् मजरी पहनाई थी, दूसरेसे छिप कर, पुनसे छाई हुई लता काम मेरे पाव धरिसे आकर, मैं आती थी तब, पीछेसे मुझसे तुम्हारे विषयमें पूछने लगा—
 बालिके, यह कन्या कान है ? किसकी पुत्री है ? इसका नाम क्या है ? का-
 यद् तहाँ जाती है ? तब मैंने उत्तर दिया—नगवन्, चन्द्रमाला विरचन

से उत्पन्न हुई गौरी अप्सराकी यह पुत्री है । सब गववोंके मुकुटमणियोंके किनारोंसे धिसे जानेसे कारण जिनके चरण-नख चिकने हो गए हैं, प्रेमसे सोती हुई गधर्व कामिनिशेके गाल पर कड़ी हुई पत्र-लतासे जिनके भुज-रूपी वृक्ष-शिखर चिन्हित हैं, और जिन्होंने लक्ष्मीके कर-कमलका आसन बनाया है ऐसे गधर्वाधिपति राजा हंस इसके पिता हैं । महाश्वेता इसका नाम है और वह गधर्वोंके वास-स्थान हेमकूटको जाती है । यह सुन कर, वह कुछ विचार कर, क्षणभर चुप रह, मेरे सामने एकाग्र दृष्टिसे बहुत देर तक देखता, मुझसे मानो प्रार्थना करता हो इस भाँति, विनय-पूर्वक फिर कहने लगा—बाले, शैशवमें भी तेरी यह आकृति मंगलकरी, निष्कण्ट और गभीर मालूम होती है इसलिए मैं प्रार्थना करता हूँ कि क्या तू मेरा एक वचन मानेगी ? यह सुन कर मैंने सविनय शय जोड़ आदर-पूर्वक उत्तर दिया—महाराज, आप ऐसे क्यों कहते हैं ? मैंतो बहुत ही तुच्छ हूँ ! सकल विभुवनमें पूजनीय—आपके समान—महात्मा पुण्य विना मेरे समान पुरुषों पर तो मत्र पाप हरनेवाली दृष्टि भी नहीं डालते हैं, फिर आज्ञाका तो करना ही क्या है ? इसलिए आपका जो कुछ कार्य हो उसकी निःसदेह आज्ञा दे कर मुझ पर कृपा कीजिए । मेरे यों कहने पर, स्नेह-युक्त दृष्टिसे सखी, उपकारिणी और प्राण-प्रदाके समान मेरा अभिनन्दन कर, निकटवर्ती तमाल वृक्षमेसे एक पल्लव लाकर, दवा कर पत्थर पर उसका रस निकाल, अपने उचरीय बल्कलमेसे एक पट्टी पाठ कर उस पर—गंध-गजके मदके समान सुगंधित—रसते, अपने कर-कमलकी कनिष्ठिका उँगलीके नखाग्रसे लिख पर, मुझे उते दे दिया और कहा कि यह पत्रिका तू उम कन्याको, जब वह प्रनेली हो तब, छिपा कर दे दी । इतना कह तरलिकाने मुझे पानदानमेसे निकाल कर वह पत्रिका दिखाई । शब्दमय होने पर भी ग्रंथ-करणमें मानो त्वर्शसुख उत्पन्न करती और कानमें पड़ने पर भी रोमाच होनेसे मानो सर्वांग प्रवेशकी सूचना देती, उसके विषयकी वह बात सुनते ही—मदना-पेश मन्ने मानो नीतर प्रवेश किया हो उस भाँति—तरलिकाके हाथमेसे उस पट्टीका लेकर देखा तो उसमें वह आर्श लिखी थी ।

१—अजात जो कभी लक्ष्मी को अपने पास से नहीं सरकने देते हैं ।

दूरं मुक्तालतया विससितया विप्रलोभ्यमानो मे ।

हंस इव दर्शिताशो गानसजन्मा त्वया नीत १ ॥

१८८—मार्ग भूले हुएको जैसे दिङ्मोह भ्रातिसे, अर्धको जैसे कृष्णपत्त की रात्रिसे, गूँगेको जैसे जिह्वाच्छेदसे, अर्थार्थ-दर्शाको जैसे जादूगरके मोरपंखोंके मोरछलसे, असबद्ध वक्ताको जैसे ज्वर-प्रलापकी प्रवृत्तिसे, विप्र विह्वल को जैसे दोष-जनक निद्रासे, अधर्मीको जैसे जड़वादसे, उन्मत्तको जैसे मदिरासे और पिशाच-ग्रसितको जैसे दुष्ट आवेश-क्रियासे दोष विकारकी वृद्धि होती है उसी भाँति इस आर्याके देखनेसे मेरे कामातुर चित्तमें दोष विकारभी खूब वृद्धि हुई और, ग़ाटसे नदीके समान, मैं इसमें आकुल हो विह्वल हो गई। तरलिकाने उस कुमारको दूसरी बार देखा था इससे वह मानो महा पुण्यशालिनी हो, सुरलोकमें रह आई हो, देवताओंसे अधिष्ठित हो, वरदान ली हुई हो, अमृत पी आई हो, त्रैलोक्यका राज्याभिषेक प्राप्त किया हो, इस प्रकार मैं उसे मानने लगी। सपूँदा मेरे पास रहने पर भी मानो उसका दर्शन दुर्लभ हो, और अति परिचित होने पर भी मानो नई आई हो, इस तरह मैं उसको आदर-सहित बुलाने लगी, निकट बैठने पर भी मानो वह सब लोकके ऊपर हो इस तरह मैं उसे देखने लगी। उसके गालका और उसकी घूँघराली लटोंका प्रेम-सहित स्पर्श करने लगी। इस प्रकार स्वामि-सेवकके सम्मनका मानो व्यतिक्रम दिखाती मैं बार-बार उससे पूछने लगी—कह, तरलिका, तूने उसे कैसे देखा? उसने तुझसे क्या क्या कहा? कितनी देर तू उसके पास खड़ी रही? कहाँ तक हमारे पीछे गीछे वह आया? इसी बातचीतमें उसके साथ, उसी महलमें, सत्र परिजनोंको भीतर आनेका निषेध कर, मैंने वह दिन मिलाया।

१८९—फिर मानो मेरे हृदयके साथ राग^२ बौट कर गगन-तलके किनारे पर लयन्ता रवि विंज जब लाल हो चला, सराग सूर्य देख कर अनुरक्त हुई—

१—जैसे मानसरोवरमें उत्पन्न हुणा हंस मृणालके समान श्वेत मोतियों की मातासे तुभाकर तथा आशा दिताकर दूर तक लेजाया जाता है उसी तरह मेरी—तुम्हारे साथ सगमकी—अनिजापको मृणालकेसमान श्वेत पृकावतीसे ललचाकर माया दिलानेसे तुमने चरम सीमाको पटुचा दिया ?

२—राग, प्रेम ।

कमलमे सोती—दिवस लक्ष्मी कामातुरके समान पाण्डु हो गई, गेरूके पर्वतके जल प्रपातके समान लाल सूर्य किरणें कमल-वनमेंसे निकल कर वन गजोंके झुंडवी तरह एकत्र होने लगीं, आकाशमें भ्रमणसे विश्राम लेनेके लिए उत्सुक हुए रवि-शंके घोड़ोंके हर्षसे किए हुए हिनहिनाहटके प्रतिशब्दके साथ दिन मेव पर्वतकी गुफाओंमें प्रवेश करने लगा, वन्द हुए रक्त-कमल-सपुटमें भ्रमणोंके प्रवेश करने से, रवि वियोगमे मूर्छा आनेके कारण जिनके हृदय मानो अधकारसे व्याप्त हो ऐसी कमलिनियाँ वन्द होने लगीं, और दोनोंकी पकड़ी हुई एक ही नृणाल लताके त्रिवरमें होकर आए हुए, एक दूसरेके हृदयको मानो लेकर, चक्रवाकके जोड़े वियुक्त होने लगे तत्र छत्र-धारिणी आकर मुझसे कहने लगी—भर्तृदारिके, उन मुनिकुमारोंमेंसे एक द्वार पर खड़ा है और कहता है कि मैं अक्षमाला लेने आया हूँ ।

१६०—मुनिकुमारका नाम सुनते ही मुझे उस स्थान पर बैठी रहने पर भी मानो द्वारके पास गई ऐसा लगा और उसके ही आनेकी शंकासे एक कंचुकीको बुला कर उसे भीतर बुलवाया । क्षण भरमें ही, रूग्णा जैमा यौगन, यौगन का जैमा मदन, मदनका जैमा वसंत-समय, वसंत समयकी जैसे दन्तिण पवन, ऐसा ही उसका अनुरूप मित्र कर्पिजल नामक ऋषिकुमार, वृद्धारस्थासे धवल हुए कंचुकीके पीछे पीछे, चंद्र-प्रकाशके पीछे बाल सूर्य-प्रकाशके समान, आते देख पड़ा । पास आने पर उसकी अंतर्गत अभिप्राय-पत्रक आकृति आकुल हो, खिन्न हो, शून्य हो, याचना करती हो, इस प्रकार मुझे मालूम हुई । उठ कर आदर-सहित प्रणाम कर मैं त्वयं उसके लिए आसन लाई । बैठ चुकने पर उसकी इच्छाके विना ही हटसे मैंने उसके चरण धोए और अपनी चहरेके गलेसे पोंछ कर मैं उसके पास विना कुछ विचार ही पर्श पर बैठ गई । थोड़ी देर ठहर कर मानो कुछ कहता हो इस भोक्ति उन्ने मेरे पास बैठी तरलिजा पर दृष्टि फेंकी । दृष्टिसे उमका अभिप्राय समझ कर मैंने वक्ष—मगवत्, मुझमें और इनमें कुछ भेद नहीं है इसलिए जो वृद्ध आरामो कहता हो निश्चय कहिए ।

१६१—मेरे वा करने पर करिञ्जले वक्ष—गजपुत्री, मैं क्या कहूँ ? लज्जाके कारण मेरी पार्वी ही प्रभिमत करनेको प्रवृत्त नही जाती । कहाँ कंद-

मूल फल खानेवाले शात वनवासी मुनिजन और वहाँ अशान्त जनके योग्य, विषयोपभोगके अभिलाषसे मलीन, मउनके विविध विलाससे व्यात यह राग-मय प्रपंच ? देखो, दैवने यह कैसा अनुचित काम आरम्भ किया है ? ऊपर वास्तवमें बिना यत्नके ही मनुष्य को उपहासास्पद बना देता है । मेरी समझमें नहीं आता है कि यह बल्कलके मद्दश है या जटाके उचित है ? तपके अनुरूप है या धर्मोपदेशका अंग है ? यह तो एक अपूर्व विडम्बना हुई है । मगर मुझे तो अवश्य कहना है, क्योंकि अन्य कोई उपाय नहीं, अन्य कोई प्रतिकार नहीं, प्रत्य कोई आश्रय नहीं, अन्य कोई गति नहीं, जो नहीं कहता हूँ तो उदा अनर्थ होता है, और अपने प्राण भले ही चले जायँ, परन्तु मित्रके प्राणोंकी रक्षा करनी ही चाहिए—इसीलिए कहता हूँ । तुम्हारे सामने ही मैंने उससे कुपित होकर निन्दुर वचन कहे थे । इसके अनंतर उसे वहीं छोड़ कर और कोरके कारण पुष्प इकट्ठे करना छोड़ म वहाँसे दूसरे प्रदेशमें चला गया । तुम्हारे चले आनेके बाद थोड़ी देर ठहर कर,—प्रकेला वह क्या करता होगा ?—यह जाननेके अभिप्रायसे मैं फिर लौट कर, एक वृक्षके पीछे छुप कर, उस स्थानको देखने लगा । मगर वहाँ मैंने उसको नहीं देखा । तब मुझे ऐसा खयाल हुआ कि कामके बशीभूत हो कर वह कहीं तुम्हारे पीछे तो नहीं गया होगा ? अथवा तुम्हारे चले जानेके बाद चेतना आनेसे लज्जाके कारण उसमें मैंने सामने आनेकी शक्ति नहीं है, या क्रोधित हो कर मुझे छोड़ कर चला तो नहीं गया होगा, अथवा मुझे ही दूँठता दूँडता किसी आर जगह तो नहीं चला गया होगा ? ऐसे सन्तन-विह्वल करता करता मैं थोड़ी देर राग राग । परन्तु जन्मसे एक क्षण भी उसमें वियोग न होनेके कारण मुझे दुःख होने । आर फिर मने विचारा कि कहीं त्रैय स्थलनसे लजित हो कर कुछ प्रसिद्ध कर डाले । लज्जाके कारण मनुष्य चाटे जो कुछ कर डालता है इसलिए प्रकृत्या द्याना योग्य नहीं है—यह विचार कर म दूँटने लगा । ज्यों ज्यों मैं मुझे नहीं मिला त्यों त्यों मित्र व्हेरते मेरा मन तिमल हो गया, और उसके विषयमें अमंगल ही शंका होने लगी । वृत्तों आर लता प्रांकी कुतूम, चन्दन वृक्षकी त्रीयिकाग्राम, लता मडानमें आर सरोवरके तीर पर देखने देलते इतने उपर भली भाँति दृष्टि फटना फँकता म बहुत देर भट्टा किया ।

१६२—इतनेमें सरोवरके समीप स्थित एक अत्यंत रमणीय—वसन्तकी जन्मभूमिके समान—लता कुजमें, जो घनी होनेसे कुसुममय, मधुकरमय, अथवा मयूर-मय लगती थी, मैंने उसे बैठे देखा । सब व्यापार छोड़ देनेसे वह भानो चित्रित हो, उत्तीर्ण हो, स्वस्थ हो, मृत हो, निद्रा-वश हो, योग-समाधि-स्थित हो, ऐना दीखता था । निश्चल होने पर भी वह अपने आचरणसे चलायमान हो गया था, प्रकृते होने पर भी कामदेव उसके साथ लगा था; सराग^१ होने पर भा वट फीका पड़ गया था, अन्त-करण-शून्य होने पर भी उसकी प्रियाका उमने वास था, चुप होने पर भी वह कामदेवकी अत्यंत वेदना प्रकट करता था और शिलातल पर बैठे हुआ भी वह मृत्युकी शरणमें था, श्रापके मानो उगसे ही अदृष्ट रह कर, मदन उसको सताप देता था, अत्यंत निश्चल होनेसे उसकी इन्द्रियों मानो हृदयमें रहती हुई प्रियानो देखनेके लिए अन्दर गईं हों, असह्य सतापसे उर कर नष्ट हो गईं हों, प्रथम मनका क्षोभ देख कुपित होकर छोड़ गईं हों इम प्रकार उसका शरीर इन्द्रियोंसे शून्य दीव्यता था । निश्चल और भिचे हुए—अन्त-प्रकलित मदनाग्नि के धूमसे अभ्यन्तरमें मानो व्याकुल हुए—उसके नेत्रोंमेंसे निरोनोके बीचमें होकर अस्वल्प धाराओंसे अश्रु-जलकी निरन्तर वर्षा हो रही थी, हृदयको पलाती मामाग्निही मानो ऊँची उठती ज्वालाला हो ऐसी लाल अधरकी प्रभाको लेकर नार निकलते उच्छ्वसोंसे पासकी लताओंके कुसुम केशर हिलते थे; नॉए गालके नीचे करतल रख लेनेके कारण फैलती निर्मल नख-किरणोंसे विमल ललाट मानो प्रति तन्त्रच्छ चन्दन-रत्नके तिलग्ने शोभित था, कानमेंसे पारिजात-पुष्पकी मजरी हवासे बोटी हो देर दानेसे उसकी बची हुई सुगंधिके लोभसे प्राकृत हुए—मधुर गुजारके प्राकारसे माना मदन-संनोहन मंत्र बनने—अमरोसे उमने कानमें मानो नील-कनक वा तमाल-पल्लव पहना हो ऐना दीखता था; उमंटाके ज्वरण हुए रोमाचके छलने, मानो, प्रचेर रोम-कुले पड़े हुए कामदेवके कुसुम बारीकी नोक बढ़ अंग पर धारण कर रहा था, नख-किरण छा जानेने, माना, करतल-वर्णके सुपने कदम्बित दीखती—अग्निवर्षा भी पतता—उत्तापमान उमने दक्षिण दिक्क छती पर रख पिण्ड था.

मदनको वशमें करनेके चूर्णके समान पुष्प-पराग वृक्ष उम पर बिखेरते थे, निःकटवर्ती अशोक-पल्लव, अरुणा राग मानो देते हुए, पवनसे हिल हिल कर उसका स्पर्श करते थे, सुगन्धके अभिप्रेरकके जलके समान नए पुष्पके गुच्छोंके मधुरगुणसे वन श्री उसको स्नान करती थी, भ्रमरोंके झुंड जिनकी परिमल पीत थे, ऐसी चक्क-कलियों उसके ऊपर पड़ती थीं, जिनसे ऐसा मालूम होता था मानो कामदेव तपाई हुई, धूम-समेत, शरकी नोक्सोंसे उसे प्रहार करता था, वनमेंसे निकलती अतिशय सुगन्धसे मत्त हुए मधुररोकी गुजारसे, दानिण पवन, मानो हुंकारसे, उसको फटकारती थीं। मद-कज कोकिल-कुलके मोलाहलसे, वसंत-जय-शब्दके फल कलके समान, चैत्र मास उमत्ते व्याकुल कर रहा था। प्रभात-चन्द्रके समान वह फीका दीनता था, ग्रीष्म-ऋतुके गगा-प्रवाहके समान वह कृश हो गया था, अतर्गत अग्निसे युक्त चदन वृक्षकी तरह वह कुम्हला गया था, अन्य हो, अदृष्ट पूर्व हो, अपरिचित हो, जन्मातरमें आया हो रूपांतर धारण किए हो, डाकिनी आदि उमके भीतर प्रवेश कर गईं हो, महाभूतोसे अविद्यित हो, ग्रहोंसे असित हो, उत्पन्न हो, टगाया गया हो, ग्रंथा हो गया हो, बधिर हो गया हो, मूक हो गया हो, विलास-मय हो, मदन-मय हो—ऐसा वह कामावेशकी अंतिम सीमा पर पहुँच गया था, उमके चित्तवृत्ति पराधीन हो गई थी, और उसका पहलेका आकार जरा भी नहीं पहचाना जाता था।

१६३—ऐसी अस्थामें उसका एन्टर बहुत देर तक देल कर मुझे यह खेद हुआ, मेरा हृदय काँपने लगा, और मैं मोचने लगा—कामदेवता के वयार्थम बड़ा दुःसह है। उमने एक क्षणमें ऐसी दुर्दशा कर डाली है कि उमसे बचनेका उपाय भी नहीं! नहीं तो ऐसी ज्ञान राशि एक साथ उमके अर्थक हो गई! अज्ञ! बड़ा आश्चर्य है! शैशवसे ही इसकी पकृति ऐसी धीर, और चरित्र ऐसा अगंडित था कि मैं और अन्य मुनिकुमार इतनी चरितकी बगवरी करना चाहते थे। उमे ही आज ज्ञानका पराभव कर, तब प्रभावका तिरस्कार कर आर गाभार्थका नाश कर कामदेवने सा कारण मनुष्योंके समान जड़ बना दिया है! सदा विकाररहित यौवन दुर्लभ है। पीछे तब ज्ञानर, उमी शिलातलने एक दिनारे पर बैठ, उसके कंधे पर शयन कर

आँसु मिची होने पर भी मैंने पृच्छा—मित्र पुण्डरीक, कबो तो सही आपको यह क्या हुआ है ? तब वह दीर्घ काल तक बंद रहनेसे मानो चिपक गई हों ऐसी, निरंतर रुदन करनेसे लाल, अश्रु-जलके प्रवाहमें डूबी हुई, सूजी हों अथवा दुखती हों ऐसी, स्वच्छ दलसे ढके रक्त-मलवनके समान शोभित, अपनी आँखें अति प्रयत्नसे खोल कर, लंबी साँस लेकर, निश्चल दृष्टिसे मुझे बहुत देर तक देख कर, लज्जाके कारण दूटे फूटे अश्रु अक्षरोंसे धीरे धीरे कष्टपूर्वक अस्पष्ट कहने लगा—मित्र कविंजल, सब वृत्तांत जान कर भी तुम मुझसे क्या पूछते हो ? मुझे तो यह सुनते ही उसकी अस्थिसे मालूम पड़ा कि उममा मदन-विकार ग्रसाध्य है, तथारि मित्रको चाहिए कि कुमार्ग पर चलनेवाले मित्रको यथाशक्ति प्रयत्न करके रोके । यह विचार मैंने कहा—

१६४—मित्र पुण्डरीक, यह मैं भली भाँति जानता हूँ परन्तु मैं केवल इतना ही पृच्छता हूँ कि यह जो आपने आरम्भ किया है उसे क्या गुरुने सिखाया है ? या धर्मशास्त्रमें पढा है ? या यह धर्म उपार्जन करनेका साधन है ? या किसी प्रकारका तप है ? या यह स्वर्गके जानेका मार्ग है ? या यह किसी व्रतका रहस्य है ? या मोक्ष प्राप्त करनेकी युक्ति है ? या व्रतचर्याका कोई भेद है ? आपको इसका चिंतन भी ग्रयाग्य है, फिर कहना और देखना कैसा ? क्या, मूर्खके समान, आप यह नहीं समझते कि इस दुष्ट मदनने आपको उपहासास्पद बना दिया है ? काम मूर्खको सताता है । माधुचनोंते निर्दित, साधारण मनुष्योंमें प्रिय, ऐसे विषयोंमें आपको क्या सुखकी आशा है ? जो मूड अन्तमें दुःखदायी विषयोपभोगमें सुगम ही इच्छा करते हैं वे, धर्म समझ कर, विष-जलाके वनमें सींचते हैं, कुपतप माला समझ कर लडगताका आलिंगन करते हैं, काले अगवनी धूमलेखा जान कर कृष्णसर्पको पालने हैं, रक्त जानकर जलते प्रदूरेका स्पर्श करते हैं, और मृणाल समझ कर दुष्ट हाथीके दंत लगी मूमलमें सींचते हैं । सब विषयोंका तत्त्व जान कर भी क्यों आप पटनीजनेके प्रयासके समान निर्वीर्य ज्ञानको धारण करते हैं, क्योंकि, प्रवल रज प्रसरने मनीषा विदियोंके समान, कुपतप जती इन्द्रियोंको आप रोद नहीं

सकते, और जुभित मनमो नियम-बद्ध नहीं कर सकते? यह कामदेव भी भला कुछ चीज है। धैर्य वारण कर इस दुराचारी का निरस्कार करिए।

१६५—इतनेमें मेरा वचन काट कर, आँखोंनेसे रोओमें होकर गिरते प्रशु-प्रवाहको अपने हाथसे पोंछ कर और मेरा हाथ पकड़ कर वह मुझसे कहने लगा—मित्र, बहुत कहनेसे क्या लाभ? तुम सर्वथा स्वस्थ हो, क्योंकि कामदेव के सप-विपके वेगके समान विपम वाण अभी तुमको नहीं लगे हैं। दूसरोको उपदेश देना बहुत सहज है। जिसकी इन्द्रियाँ जागृत हो, मन ठिकाने हो, जो देख सकता हो, सुन सकता हो, वा सुन कर विचार सकता हो, या मले बुरेको पहचान सकता हो, उसको ही उपदेश देना चाहिए। परन्तु मेरे पास तो इनमेंसे कुछ भी नहीं रहा। स्थिरता, ज्ञान, धैर्य, और विवेक-सत्र अत्र अत्र रो गए, प्राण न जाने कैसे पिना ही यज्ञ वाकी हैं। उपदेशका समय तो अब बहुत दूर चला गया, धैर्यका अबसर बीत गया, विवेक-वेला जाती रही और ज्ञानसे चित्तके धारण करनेका समय भी हो चुका। इस समय, तुम्हारे सिवाय, न कोई मुझे उपदेश कर सकता है, न कुमारमें जानेसे रोक सकता है। अन्य किसका वचन में मानूँगा? ससारमें तुम्हारे समान मेरा कोई अन्य नरु नहीं है। परन्तु क्या करूँ? मैं प्रानेको रोक नहीं सकता। मेरा जैसी दुष्ट अवस्था हो गई है उसे इस समय तुम देखते ही हो, शिवा देनेका समय तो अब जाना रहा। मैं केवल यही चाहता हूँ कि जब तक मुझमें प्राण है तब तक—स्त्वान्न में उदय होते द्वादश सूत्रोंकी त्रिणोके तापके समान तीव्र—इस मदन-सत्पापको दूर करनेके लिए तुम कुछ उपाय करो। मेरे आग मानो रवे जाते हैं, हृदय मानो उबना जाता है, आँखोंमें मानो दाह हो रहा है, पीर माना जला जाता है, इसलिए इस समय जो कुछ तुम योग्य समझो करा। माना कहकर यह चुा हो गया।

१६६—उमके पों करने पर भी मैं उमका बार बार समझाने लगा, परन्तु जब शान्ति-वैदेशसे विमन, दृष्टान्त-युक्त और इतिशम-मदित वचनसे, पिना और आनन्दके साथ, समझाने पर भी उमने ध्यान नहीं दिया, तब मैंने विचार कि अब यह अन्तिम मोना पर पहुँच गया है इसलिए लायाया नहीं जा सकता। अब सब उपदेश नगर्भक है। इसलिए मुझे इसका प्राण रका।

यत्न करना चाहिए । यों निरचय करके में उठकर चला और उस सरोवरमेसे हरी मृणालिका तोड़ कर, जल बिन्दु युक्त कमलके पत्ते, और भीतरकी रजकी परिमलसे मनाहर लगते कुम्हद, कुवलय और कमल लाकर मेंने लता-गृहके शिला तल पर उसके लिये विछौना विछा दिया । वहाँ जय वह सुखसे बैठा तत्र निकटवर्ती चन्दन वृक्षके कोमल पत्ते पीम कर मने उनका स्वभावसे ही सुगन्धित और अरफ के समान ठडा रस उसके ललाट पर चुम्पा और चरणोंके तलुओं तक सत्र शरीरमें लेप किया । पासके वृक्षोंमेंसे काटी हुई छालकी दरारोंमेंसे रिसते कर्पूरकी टाय से बुरुनी करके, उससे पसीना दूर किया । छाती पर चन्दन रममे भिगोया हुआ बल्सल रस कर, स्वच्छ जल-कण टपकाते केलके पत्तेसे उसका पखा किया । यों बार बार कमलके पत्तोंके विछौनेको एकके पीछे दूसरा बदलते बदलते, बार बार चन्दन चुम्पते चुम्पते, बार बार पसीना पीछते पीछते, और केलके पत्तेसे निरन्तर पवन करते करते, मेंने मनमें सोचा—भगवान् कामदेव को बल्लुत कुछ असाध्य नहीं है । कहाँ यह हिरन सदृश वनवासी, स्वभावसे ही भुग्व पु डरीरु और कहाँ विविध विलास रसकी राशि गंवरव-राज-पुत्री महाश्वेता ॥ जगत्में उसे सर्वथा दुर्गट, दुष्कर, अस्वाधीन, या अमर्तव्य नहीं है । दुर्भाव्य कामोंको भी वह अज्ञान-पूर्वक करता है, और किसी में उसके प्रतिकूल होने की शक्ति नहीं है । सचेतन तो क्या अचेतनों को भी वह जैसा चाहे बना सकता है । कुम्पादनी भी रवि-स्त्रियोंमें अनुकूल हो जाती है, कमलिनी भी चद्र स्त्रियोंमें द्वेष छोड़ देती है, रात्रि भी दिनके साथ मिश्रित हो जाती है, चद्रिणी भी प्रथमर का अनुकरण करती है, छाया भी प्रदीप के सामने रहती है, पिजली भी नेत्रमे दिखर हो जाती है, वृद्धावस्था भी यौवनके साथ संचार करती है । जब उतने ऐसे अगाध गम्भीर—सागरकी तृणके समान लघु नर जाला, तब उसे और क्या असाध्य रहा ? कहाँ वह तब और कहाँ वह प्रस्थान ? हम आशक्तिते नूटनेका सर्व । ओई उपाय नहीं है । अत्र क्या रगना ? क्या आचरण करना ? किस दिशा को जाना ? किसकी शरण जाना ? क्या उपाय करना ? किसमे महाप्रता लेना ? किस रोतिते चलना ? क्या बुक्ति करना ? किसका प्राप्त लेना कि जिनने दशके प्राण पच सजे ? किस चतुर्तागे ? किस बुक्ति मे ? किस महात्मे ? किस लूमनीने ? किस बुद्धि से ? किस तथा जाउनने

यह जी सजता है ? ऐसे ऐसे सफल्य मेरे विचित्र हृदयमे उठने लगे । विचार कि ऐसी निरर्थक चिन्ता करनेसे क्या लाभ ? अच्छे या बुरे—चाहे जैसे उपायोमे इसके प्राणों की रक्षा तो करनी ही चाहिए और रक्षाका इन दोनोंके समागमके सिवाय अन्य कोई उपाय नहीं है । बाल-भावसे असाहसिक होनेके कारण, मदन-विकारको तपके विरुद्ध, अनुचित और अपने उपहासके समान मानता हुआ यह अपने आप तो आम मात्र प्राण बाकी रहने पर भी वहाँ जा कर उस कन्या की अभिलाषा कदापि पूर्ण नहीं करेगा । अब यह विकार विलंब सहन नहीं कर सकता । साधु पुरुष अति निन्दित, अमूर्तव्य कर्मोंसे भी सर्वदा मित्रके प्राणोंकी रक्षा करना अर्थात् ममभक्ते हैं । इसलिए अब यह बहुत लज्जाजनक और प्रकरणीय काम भी मुझे अवश्य करना पड़ेगा । और कुछ हो नहीं सकता, और कोई गति नहीं सूझती, इसलिए उनके पास जाकर इसकी अवस्था बता दूँ । यों विचार कर-शायाद मुझे त्रयोम्य कर्म करने जाता देख कर लज्जासे यह मुझे कहीं रोक न दे-इससे उससे कहे बिना ही वहाँसे मैं बचना करके यहाँ चला आया हूँ । ऐसेमे जो इस अवसरके अनुकूल हो, अनुरागके सदृश हो, मेरे आगमनके अनुरूप हो, और आपको उचित हो, वही कीजिए । यो कह कर प्रत्युत्तर सुननेकी उत्कंठासे मेरे मुखकी ओर दृष्टि कर वह चुप हो गया ।

१६७—मे तो यह सुन कर सुखामृत मय सरोवरमे मानो डूब गई हूँ, रति रख मय समुद्रमे मानो गिरी होऊँ, सब आनन्दोंके ऊपर मानो पैठी गेऊँ, सब मनोरथोंके आगे मानो चढी हाँऊँ, सब उत्सवोंकी चरम सीमाको मानो पहुँची होऊँ, ऐसी हो गई और उम समय लज्जा आनेके कारण मुझ कुट्ट नीचा होनेसे, गालोंमें बिना स्पर्श किये ही, गुँथे हुएके समान, एकके ऊपर एक बराबर गिरनेसे मालाका धम दिवाती और रोश्योंके न छूनेसे पत्नी दीर्घा

१६८—आनंदाशुकी बूँदोंके गिरने से हाथ-प्रसंग प्राप्त करती, उन क्षण का रगने लगी—बड़े भाग्यकी बात है कि मेरी तरह उनको भी धम रन निरंतर सताता है । मुझे सनाते हुए भी उमने कुट्ट अनुकूलता प्रती दिवाई । जो बान्धवमे उनकी ऐसी ही दशा हो तो फिर उसके उपकारन स्वा नमो है ? अब क्या करनी रक्ष ? इसके समान अन्य कौन नाम है ? पान्ताकृति भविष्यलके इन मुग्धसे प्रसव्य पाणी त्वग्रमे भी ऐसे निष्ठा

सकती है ? अ- मुझे क्या करना और क्या कहना चाहिए ? यों मैं विचार रही थी कि इतनेमें प्रतिहारी दौड़कर मुझसे कहने लगी—भर्तृदारिके, परिजनसे आपके शरीरका अस्वास्थ्य सुन कर महारानी आपको देखने आई हैं। यह सुन कर परिजनादिकनी बड़ी भीड़के मध्यसे कर्पिजल तुरंत ही उठा और मुझसे कहने लगा—राजपुत्रि, अब देर बहुत हो गई और निभुवन चूड़ामणि भगवान् जूर्न अस्त होनेको हैं, इसलिए मैं तो जाता हूँ, पर हाथ जोड़ कर आपसे विनय करता हूँ कि मेरे प्रिय मित्रकी प्राण-रक्षा रूमी दक्षिणा मुझको देना। हाथ जोड़ने से अधिक और मैं कुछ नहीं कर सकता। इतना कह कर, प्रत्युत्तरकी राह देखे बिना ही वह, सुवर्णकी छड़ी ले कर माताके आगे प्रवेश करती प्रतिहारियोसे, ताम्बूल, कूसुम, पट्यास, और अगाराग लेनर चलते वचुक्योंसे और कब्ज, किरात, वधिर, वामन, नपुसक, कल-मूक जनोके आगे हाथमें चमर लेनर चलते परिजनों से सब ओरसे रुके द्वार-देशमेंसे किसी तरह निकल कर चला गया। माता मेरे पास आई और बहुत देर तक बैठ अपने महलमें लौट गई। परन्तु उन्होंने वहाँ आकर क्या किया, क्या कहा और क्या चेष्टा की ?—यह कुछ भी, शून्य-दृश्य होनेसे, मैंने नहीं जाना।

१६२—उमके जानेके बाद जब हारीतके समान हरे अश्ववाले, कमलिनी प्राणनाथ, चन्द्रवाक मित्र, सूर्य अस्त हुए, पश्चिम दिशाका मुख लाल होने लगा, कमल-वन, फूल बढ़ होने से, हरा होने लगा, पूर्व दिशाका भाग काला होने लगा और सब जीव-लोकमें—पाताल-पकके समान मलीन—अवकार, महाप्रलय-कालके समुद्र जलके प्रभटके समान, फैलने लगा तब—क्या करना ?—यह न सूक्त पठने से मने तरलिकासे पूजा—ग्रही तरलिके, तुम क्या नहीं देना कि मेरा हृदय अत्यंत व्याकुल हो गया है और इन्द्रियो अपने अपने विषयसे शून्य होनेके कारण विह्वल हो गई हैं ? मुझे अपना वर्तमान जग भी नहीं समझ पड़ता इसलिए जो उचित हो सा कहो। तुम्हारे सामने ही समित्त सब बातें कर गया हैं। जो न साधारण कन्नायी भाँति लज्जा छोड़ कर, धैर्य त्याग कर, विनय छोड़ कर, जनापवाद का विचार न कर, लक्ष्मण प्रवेदन कर, शीलका उल्लापन कर, कुलनी रक्षा न कर, प्रार पुसाई प्रान्तर कर, प्रेमसे प्रीती होकर, पितारी द्वारा विना और

माताके अनुमादन बिना, अपने आप जाकर पारि प्रहण करगर्ज तो गुणजनता प्रपमान होनेमे इनमे बडा अपर्म होगा, और जो म धर्मके प्राग्रहमे न जाकर प्राण-त्याग करू तो उममे भी पहले तो अपने आपसे आए हुए त्रोर पहली ही प्रार्थना करनेवाले कविजलता प्रेम भग होता है, और दूमरे तो कदाचित् मेरी दी हुई आशाके भंगसे उस पुरुषके प्राण पर कुछ विपत्ति आ जाय तो मुझे मुनिके वधका महापातक लगेगा । वही कहते कहते, पुन रजसे वमत ऋतुकी वनराजिकी भाँति, चन्द्रोदयके थोड़े थोड़े प्रकाशसे पूर्ण दिशा धूमर होने लगी ।

१६६—उम समय चन्द्र प्रकाशसे पूर्व दिगन्तर, शशिली मिहके करुणी नखरसे छेदे गये अवकार-रुमी गजके गडस्थलमेसे निकले हुए मोतीके चूरेसे माना श्वेत हुआ, उदयाचलकी सिद्ध सुन्दरियोंके स्तनो से छूटे हुए चन्दन चूर्णके पुञ्जसे मानो धवल हुआ और चलायमान हुए समुद्र जलकी तरंगोको कपाती हुई पवनरो उड़ाई गई रेतीके किनारेकी धूलके मानो ऊपर उठनेन शुभ्र हुआ देखा गया । वीरे धीरे चन्द्र दर्शन होनेसे मद्य स्मित करती निशाही—सत-प्रभाके समान गिरती—चंद्रिका उसके मुखको शोभायमान करने लगी, उसके पीछे, स्मातलमेसे पृथ्वीको फाड़ कर बाहर आते शेषनागके फन मण्डलके कनात, चंद्रमिसे रात्रि प्रकाशित होने लगी, और सब जीवलोकाँ आनन्दमरक, कामिनी-जन-वल्लभ, मदन-चतु, राग-युक्त, सुरतोत्सवके उपभोगके ही योग्य, अमृत-मय चंद्रमाके धीरे धीरे कुछ कुछ ताल-भाव श्रेयस, वायनकी तरह, आनेसे सत रमणीय लगने लगी ।

२००—फिर निःशब्दता समुद्रमेसे आती प्रवाल-प्रभासे मानो रक्त^१, उदयवतमे निकले कर अपने आनंद हुए अपने दिन के किरसे, मानो, ला ।
 १—आर रति-मलहम मुक्ति हुई गांधीके चरणोनी मशरसे मानो ला ।
 २—नया उदय रागने रक्त चन्द्रमा उदय हुआ देव मे मदनपिके, भाँ ।
 ३—जने पर भी चन्द्ररत्न^३ मुक्त टाँववाणी, तालिकाके उत्सवमे शरीर शनै^४

१—जलाटे, अनुराग ।

२—जलाटे, शिशुव ।

३—गंगा । मुने यह न मूला हि वा कड ।

पर भी मदनके हाथोंमें पड़ी, चन्द्रके सामने दृष्टि रखने पर भी मृत्युभी देखती, उस समय विचार करने लगी—एक ओर तो मदन, मधुमास, मलय-पवन प्रादि सब, और दूसरी ओर यह पानी दुष्ट चन्द्र असहनीय हैं । फिर मेरा हृदय भ्रति दुःसह मदन वेदनासे विह्वल हो गया है, और इसका उदय मुझे, दाह-ज्वरसे पीड़ित पर अङ्गारोंकी वर्षा, ठंडमें ठिठरे हुए पर हिमपात, और विपैले कोड़ेसे मूर्च्छितको कृष्णसर्पके काटने समान है । इस ध्यानमें ही, चन्द्रादय शोनेसे कमल वन समोच ल्प्य निद्राके समान, मुझे मूर्च्छा आ गई और मेरी आँखें मिच गई परंतु थोड़ी ही देरमें, तरलिकासी—घबराहटमें की हुई—चदन-चर्चा और पल्लोकी हवासे मुझे चेतना हुई और मैंने देखा तो तरलिका, मानो आत्मात् विप्राद ही हो ऐसी, अत्यंत प्राकुल बैठी थी । मेरे ललाट पर जल गिराती चन्द्रकान्त-मणिकी सलाई रख वह रो रही थी, और अविरल अश्रुधारासे उनका मुँह ढक गया था । मेरी आँखें खुली देख उसने मेरे चरणोंमें प्रणाम किया और चन्दन-रससे गीले अपने दोनों हाथ जोड़ कर कहा—भर्तृदारिके, अत्र लज्जा या गुणजनोंके भयसे क्या है ? कृपा करके मुझे भेजो ताकि मैं तुम्हारे प्राणनाथको युता लाऊँ, नहीं तो तुम ही स्वयं उठ कर वहाँ जाओ । प्रबल चन्द्रोदयसे घबटी सैफ़ों उक्कलिकावाले मसुदके समान इस कामदेवको अत्र प्रविष्ट देर तक तुम सहन नहीं कर सकती हो । तब मैंने उसको प्रत्युत्तर दिया—प्ररी उन्मत्त, कामदेवकी क्या बात कहती हो ? सब विकल्प हरनेवाला, सब अज्ञानके दर्शन दूर करनेवाला, सब विघ्नोंको छिपानेवाला, सब सदेहोंको टालनेवाला, सब रुकाओंको मिटानेवाला, लज्जाका विनाश करनेवाला, स्वयं जानेकी अघुताके दोषका ढकनेवाला, बिलम्ब दूर करनेवाला, मृत्युके या उनके ही पास ले जानेवाला, यह चन्द्रना प्रा ही गया है । इसलिए उठो, जब तक मैं जीती हूँ तब तक चल कर आवागमारी प्राणप्रियमी संभावना करें—यों कहती मर्ती न मदन-मूर्च्छाके खेदसे विह्वल हुए अङ्गोंसे उनका सहारा लेकर जैसे तने उठी, पर मेरे चलते ही अशुभ परिणाम-मूचक भोंई आँख फड़फड़ने लगी, उससे मुझे अज्ञान उत्पन्न हुई और विचार हुआ कि दैवने यह कोई दूसरा विदग्धा ।

२०१—पीछे त्रिभुवन-रूपी प्राणादके महा प्रणालके समान, मानो, मुग सलिलकी वारा नीचे बहाते, चन्दन-रसके भरनोंका मानो भरते, श्वेत-गंगाके हजारों प्रवाहोंको मानो उगलते, अमृत सागरके प्रवाहोंका मानो बमन करते चन्द्र-मण्डलका थोड़ा थोड़ा उदय होनेसे अन्तरिक्ष जत्र चॉदनीमें डूब गया था, सब जन मानो श्वेतद्वीपमें निवासका या चन्द्र-लोकके दर्शनका मुख भोगते थे, मही-मण्डलको—महावराहके दंष्ट्र-मण्डलके समान—चन्द्र क्षीरसागरके उत्तरमें मानो बाहर निकालता था, घर घरमें युवतियाँ विकसित कुमुदसे सुगन्धित किए हुए चन्दन-जलका चन्द्रोदय-समय अर्घ्य देती थीं, राजमार्ग पर कामिनिवा की भेजी हुई हजारों सुरत दूतियाँ आती जाती थीं, नील पन्थमें सुगन्धित कर चन्द्र-प्रकाशके भयसे चकित होकर—नीलोत्पल-प्रभासे ढँकी हुई कमल-वन-लक्ष्मीके समान—अभिसारिकाएँ जत्र इधर उबर दौड़ रही थी, प्रत्येक कुमुदमें जहाँ भ्रमरोंके झुण्ड भरे हुए थे ऐसी गृह सरोवरकी कुमुदिनी गिलने लगी थी, विकसित कुमुद वनकी अतिशय रजसे मध्यभाग श्वेत ही जानेके कारण अतरिक्ष, निशा-नदीके पुलिनके समान, दिखलाई देता था, मरुत जीव लोक, महासागरकी तरह, चंद्रोदयसे आनंदमें मग्न हँकर मानो रति-रस मय, उत्सव-मय, विलास-मय, और प्रीति-मय हो गया था, चन्द्रमणि रूपी प्रणालीमें जल बरने लगा था, ऐसे-आनंदसे गान करते मयूरोंके समान रमणीय—प्रदोष समयमें, विविध पुष्प, ताम्बूल, अगराग और पट्याम-चूर्ण लेकर पीछे आती तरलिकाके साथ—नूच्याँके समय ललाट पर लगाए, कुछ कुछ सूखे, चन्दन-रसमें चिपक जानेसे धूमर हुई और विपरी लटो सहित, चन्दन रसकी चर्चा-रूपी अगरागने अत्यंत भीगे हुए वेप-सहित, वैमीकी वैमी कंठम पहनी हुई अन्नमाला सहित, और कानमें उरसी पारिजात मंजरी सहित—पद्मगण मणि की किण्वका मानो बना हो ऐसे रक्त वस्त्रका नक्षत्र आड कर, कोई निवृत्त

११. नी न देवें ऐसी रीतिमें, प्राणाद शिखर परसे म उतरी ।

२००—वहाँमें नीचे आकर, जब पारिजात मंजरीकी परिमलसे लुप्त हुए, जब उत्पन्न आती कर और कुमुद वन छोड़ कर दौड़ आते, मागो नील पन्थके सुगन्धित आति उत्पन्न करते, व्रमराके झुट मेरे ग्राम-ग्राम वृद्ध रहे थे, नं

प्रमद-वनके एक थोरके द्वारमेसे बाहर आकर उसके पास जानिको निकली ।
जाते जाते अपने साथ केवल तरलिकाहीको—अन्य किसी परिजन के बिना—
देख चुके खनाल हुआ कि प्रियतमके पास जानेवालेको बाहरी परिजनोका क्या
नाम है ? ये ही सब परिजनोंका नाम देते हैं—जैसे कामदेव धनुष चढा कर
थोर उत्त पर बाण रखकर पीछे पीछे चलता है, चंद्रमा अपनी किरणें दूर तक
फैलाकर चलनेके लिये उत्साहित करता है, गिरनेके डरसे अनुराग मानो पद
पद पर सहारा देता है, लजा को पीछे छोड़ इन्द्रियों सहित हृदय आगे आगे
राजता है, आर प्रिय समागम निश्चित समझ कर उत्कंठा लिए ही जाती है ।
फिर म प्रकट करने लगी—श्री तरलिका, यह दुष्ट चन्द्र मेरे समान उसको
भी करसे पेश पकड़ कर कहीं सामने न ले आवे ? तरलिकाने हँस कर उत्तर
दिया—भट्टादारिके, तुम तो मुग्ध हो—चन्द्र आन ही कामातुरकी भाँति तुम्हारे
साथ विविध चोट्याएँ करता है । इसलिए उसे कुमारसे क्या प्रयोजन ? अपने
प्रतिनिम्नके छलसे वह—स्वेद-जलकी कणिकासे व्याप्त—तुम्हारे गालों का चुम्बन
करता है । लावण्य युक्त तुम्हारे भारी पयोधर पर कौपता हुआ कर' डालता है,
तुम्हारी करधनीके मणियों का स्पर्श करता है, निर्मल नखमें पडी हुई मूर्तिते
पद तुम्हारे पैरों पड़ता है और कामातुर जनकी तरह उसका शरीर ऐसा पीका
पड़ गया है मानो मदन-सतापसे उस पर सूखे चदनभा लेप किया गया हो । कर'
उमके मृणाल रत्नके समान धवल हैं । प्रतिमाके श्राकारमें वह स्फटिक
मणियों की नुमि पर पड़ता है, केतनीके भीतरकी रजके समान पादोंसे ' कुमुद-
सरोवरोम स्नान करता है, जल कणसे गीले चन्द्रमणियोंना अपने करोंसे'
स्पर्श करता है, आर चत्वाक निधुन जिनमें अलग हो गये हैं ऐसे कमल-
जनाते देख करता है, ऐसी भितनी ही उन मालके योग्य जातें करते करते उसके
साथ न उन प्रदेशमें पहुँच गईं । वहाँ कैलाश-तटमें चन्द्रादनते खिखते
पद्मभणिके करणमें, मार्गने चलनेते लगे लता पुष्प आर धूलते धूनर हुए
आने कर शोभा धोने धोते, जिन प्रदेशमें वह बुनिटमार या उसी प्रदेशमें,
एक सरोवरके पश्चिम तट पर, दूर होनेसे कुछ नरकट चुनाई देता, किसी
पुत्रके नेत्रा श द नेरे तानन म्हा । दारिना आँवके पड़नेते पदले ही

मेरे मनमें कुछ शक थी, पर उससे मेरा हृदय मानो विजकुल फट गया, भीतर कुछ अनिष्ट बताता मेरा अंत करण खेद पाने लगा और—ओ तरलिका, यह क्या?—यों भयभीत हो कर पूड़ती पूड़ती जाते शरीरमें म बहुत चन्दी जल्दी उस ओर चली ।

२०३—चलते चलते मैंने रात्री रात होनेके कारण दूरसे ही स्वर पहचान लिया, और आर्तनाद कर बदन करते नभिजलना विलाप सुना—हाय ! म माग गया, हाय ! मैं जल गया, हाय ! ठगा गया, अरेरे ! यह क्या आ गिरा ? क्या हो गया ? मेरा सर्वज्ञा जाता रहा ! अरे दुरात्मा पापी क्रूर विशाच मदन, तूने यह क्या कुर्म किया ? ओ पापिनी दुराचारिणी दुर्विनीत महाश्वेता, इमने तेरा क्या मिगाड़ा था ? अरे पापी दुष्ट चन्द्र-चाण्डाल, अब तू कृतार्थ हुआ ! दक्षिण्य हीन दुष्ट दक्षिण पवन, अब तेरे मनोरथ पूरे हुए—तैने चाहा सो किया, अब जहाँ तुझे जाना हो वहाँ जा ! हाय भगवन् श्वेतकेतो, पुत्रवत्सल, तुम्हें प्यार नहीं कि तुम्हारे यहाँ चोरी हो गई ! हाय वर्म, अब तेरा कोई भी प्रहण नहीं करेगा ! हाय तप, अब तू निराशर हुआ ! हा सरस्वती, तू तो आन प्रियवा हो गई ! हा सत्य, तू अनाथ हुआ ! हा सुगलोक, तू भी आन राह्य हुआ ! प्रियनिच, मुझे लेते जायो ! म भी तुम्हारे पीछे आता हूँ, तुम्हारे बिना एक क्षण भी अकेला नहीं रह सकता ! अरे ! तुम क्यों अर्धचित्त और अदृष्ट पूजनी भौति मुझे एकदम छोड़ कर जाते हो ? कदासि तुम इतने निद्रुग हो गए ? कहे तो सही, तुम्हारे बिना मैं कहाँ जाऊँ ? किससे नाँगू ? किसकी शरण चार्ऊँ ? अरेरे ! म तो अन्ध हो गया ! मेरी दशा दिखाएँ राह्य हो गई ! जीवन निरर्थक हो गया ! तब निःप्रयोजन हुआ ! चोकर तुम रहित हुए ! हाय, हाय, मैं किसके साथ किन् ? किसके साथ जाऊँ ? अरे ! तब उठो तो सही ? मुझे जरा उत्तर तो दो ? मुझे अब तुम्हारा प्रेम था वह कहाँ गया ? तुम्हारी मुमक्षुसदृशमे प्रेमवनेती गीती है ?

२०४—यह सुनते ही मेरे प्रणव तो मत्ता उड़ गए, और दूरी ही नई सुन्दने न रोने लगी ! सगेवरेके तीर पर उगी हुई लताप्रोत्र उभरके मेरे जतर नीचेक स्वडे पडने लगे, और मध्याशक्ति चट्टीके कारण ऊनी कर्ण

भूमि देखे बिना पैर पढ़नेसे पद पद पर टोकर खाती,—मानो मुझे कोई उठा कर ले जाता हो इस प्रकार—मैं उम जगह जा पहुँची, और सरोवरके तीरके पास ठडे जल-क्षण रिसते चन्द्रमणिके शिलातल पर विद्याए हुए कुमुद, कुवलय, कमल और विविध वन-कुसुमोंकी सुकुमार मालाओंसे बने हुए, मृणाल-मय,—कामके बाणोंसे ही मानो बने—बिछोने पर सोते, तत्काल मरे उस महाभागकी मुक्त पापिनी—मदभागिनी—ने देखा । अति निश्चल होनेसे वह मानो मेरे पैरोंका शब्द सुनते थे, अतः मोपसे सब मदनसंताप नष्ट हो जानेके कारण उस क्षण मानो वह आरामसे सो रहे थे, मनमें उत्पन्न हुए क्षोभके प्रायश्चित्तके लिए वे मानो प्राणायाम कर रहे थे, चमकती प्रभासे युक्त अपने अधरसे—तेरे सबबसे मेरी ऐसी दशा हुई है—यों मानो मुझसे कह रहे थे । चन्द्रके द्वेषके कारण उलटे फिर कर सोनेसे उनही पीठ पर गिरती चन्द्रमाही किरणोंने, मदनान्निसे विह्वल हुए हृदय पर रखे राधके नख-किरणोंके आकारमें, मानो छेद कर दिए थे, सूखी हुई श्वेत रंगकी, स्वविनाशके उत्साहके समान उत्पन्न हुई, मदनचन्द्रबलाके समान, चन्दन रेखा उनके ललाटमें शोभित थी । तुझे अन्य जन मुझसे अधिक प्रिय हैं ।—यों जान मानो कुपित होकर प्राणोंने उन्हें छोड़ दिया था, कामपीड़ाके साथ प्राणोंको भी मानो अपने आप छोड़ कर वे निश्चेतनताम सुख भोगते थे, अनग-योगविद्याका मानो वे ध्यान करते थे, अपूर्व प्राणायामका मानो अभ्यास करते थे, कामदेवने मुझे यहाँ लाकर उनसे मानो प्रेमपूर्वक प्राण-रूपी पूर्णपात्र पुष्कारमें लिया था । उनके ललाट पर चन्दनका तिलक लगा था, सरस बिससूत्रका उन्होंने यज्ञोपवीत धारण किया था; उनके स्कंध पर कदली गर्भपत्र-रुमी चाच बस चिपटा हुआ था, एकावली-रूपी विशाल अत्रमाना उन्होंने पहन रखी थी, उनका शरीर निर्मल कपूरके चुरेकी नन्मसे गौर हो गया था, मृणाल-बलय रूपी रत्नासूत्र बाँधनेसे वे मनोहर लगते थे, मदन-वक्त्रा वे बना कर वे मानो मेरे समागमका मंत्र साधते थे, जितनी घूनी हुई पुाली जग दीखनी थी और, निरन्तर रोनेसे लाल होनेके बाद, जितने मानो मृत्युके कारण आँसुओंका स्रव होनेसे रुधिर आ गया था ऐसे, मानदेवने शरीरोंकी बेदरती जग निचे हुए नेत्रसे वे मुझे—अरे

कठिन हृदयवाली ? इस अनुरक्त जन पर फिर दशन देकर भी अनुग्रह नहीं किया ?—यों मानो प्रेमसे उलाहना देते थे । अबरोके जरा खुले होनेसे, प्राण हरनेके लिए मानो भीतर घुमी हुई चंद्रकिरण बाहर निकलती ही ऐसी दन्त-किरणोंसे उनका आगेका हिस्सा सफेद हो गया था, मदन व्यासे फटने हृदय पर रखे हुए बाँए हाथसे वे हृदयमें स्थित मुझे—प्राणप्रिये, प्राणोंके साथ तू तो कुग करके मत चली जाइयो—यों कह कर—मानो धारण करते थे । नख किरणोंसे विषम होनेके कारण मानो चंदन भर्राते, दूमरे, चित्त रखे हुए, हाथसे वे मानो चद्रिकाको अपने ऊपर आनेसे रोक्ते थे । ऊँची गर्दन कर, थोड़ी देर पहले गए हुए उनके प्राणोंका मार्ग मानो देखता ही, ऐसा तपश्चर्या-समयका मित्र, कमडलु उनके पास ही रहता था । कण्ठमें पहने हुए मृणाल-चलयसे, उनको मानो चन्द्र-किरणकी पाशसे बाँध कर कोई परलोकमें ले जाता ही ऐसा मालूम होता था, और मुझे देख कर ऊँचा हाथ कर—महापाप हुआ, महापाप हुआ—यों दूना रुदन कर चीख मारते कपिउलने उठके कंठमें उनका आलिंगन किया था ।

२०५—यह देखते ही मुझे मूच्छासे येंवेरा आ गया और, मानो पाताल में बंसी जाती हूँ इस भाँति, उस समय मैं कहाँ गई, मने क्या किया, और मैं क्या बोली ?—तो मने जरा भी नहीं जाना । उस समय क्या जाने मूड हृदयके अति कठिन होनेसे, या पूर्वजन्ममें किए पापोंका भाजन होनेसे, या जले देवकी दुःख देनेकी निपुणतासे, या दुःखत्मा दुष्ट मदनके अत्यंत प्रतिह्वल होनेसे, या अन्य कारणोंसे मेरे प्राण न निकले—यह भी मने नहीं जाना । परन्तु बहुत देर पीछे तब मुझे चेतना आई तब मैंने देखा यही देखा कि मानो अग्निमें गिरी, असत्य शोफसे जलती हुई, दुःखिनी मैं भूमि पर तड़क रही थी । उनका यह आत्मिक मरण और अपना जीवन अमंगल था । उठ कर मैं आर्तस्वरसे—हाथ, हाथ, यह क्या हो गया ! हाथ माना ! पिता ! अरी मल्लिको !—यों पुकारती पुकारती—अरे नाथ ! प्राणाधार ! तू तो नहीं, यों निर्दय होकर, मुझ अशरणको अफली छोड़ कर चला तू ही ? तपस्वितसे पूछो तो, तुम्हारे लिए मने कितना दुःख भागा है ! सदस्य युगके समान लम्बा दिन कैसे कटते जाय ? क्या करके एक बार ॥

मुझसे मोलो ! भक्त वत्सलता दिखाओ ! जरा तो मेरी ओर देखो ! मेरे मनोरथ पूर्ण करो । म पीड़ित हूँ । तुम्हारी दासो हूँ । ग्रनुरक्त हूँ, बाला हूँ, गति हीन हूँ, दुःखिन हूँ, अनन्य-शरण हूँ, मदनसे हारी हुई हूँ, तो भी क्यों मुझ पर दया नहीं करते ? कदो तो सही मेरा क्या अपराध हुआ है ? मेने क्या सेवा नहीं की है ? तुम्हारी किस आज्ञाका पालन नहीं किया ? तुम्हारे अनुकूल क्या काम नहीं किया जिससे कुर्पात होकर दामजनको अपराण छोड़ कर चले जाते हो और लोकापवादसे नहीं डरते ? अथवा अमत्य अनुराग दिखा कर धोखा देनेमें कुशल, पापिनी और वामा मुझसे - जो अब तक जीती हूँ - आपको क्या ? अरे ! मैं हतभागिनी विनष्ट हुई, क्या हुआ कि तुम नहीं, नियम नहीं, बहुवर्ग नहीं, और परनाक नहीं, कुछ भी मेरा नहीं रहा ? मुझ पापिनीको धिक्कार है जिसके लिए आपको ऐसी दशा हुई ! हाय हाय ! मेरे समान कूर अन्त-करण-जाली कौन होगी जो मैं आपको ऐसे छोड़ कर घर चली गईं ! अरे ! मुझे घरसे क्या काम ? मातासे क्या काम ! नापसे क्या काम ? बहुत्रोसे क्या काम ? परिजनोसे भी क्या काम ? अब मैं किसकी शरण जाऊँ ? अरे दैव, करुणा कर, मुझसे प्रार्थना करती हूँ कि मेरे प्राणनाथको फिर जीवित कर दे । भगवति भवितव्यते, कृपा कर मुझ अनाथ अमलाकी रक्षा कर । अरे भगवति वनदेवि, मुझ पर अपार कर इनको जीवन दो । अब वसुन्धरे, सकल लोक पर अनुग्रह करनेवाली, रक्षा कर । हे रजनि, क्यों कृपा नहीं करती ? तात कैलाश, अब मैं आगवी शरण आई हूँ, आप दया वीजिये ! - इत भौंति चिह्नाती मैं कहाँ तक वाद कल्ल - महसे प्रदीत, पियाचसे आनित, उन्मत्त, अथवा भूतसे पीड़ितरी भौंति - बिलार करने लगी । उस राश नरावर गिरती अश्रुधाराके आमारमें मानो मैं गली जाती थी, निपली जाती थी आंग पानी पानी हुई जाती थी । मेरे प्रलापके प्रहर भी दत फिरयोके पीछे प्रानेसे मानो अश्रुधारा-सहित बाहर निकलते थे, माथेके माल नी - हुनसे पुष्प लगातार निरनेसे मानो आँसूनी बूँदे टपकाते थे, आँसूनी, नल फिरण ली प्रॉवु गिरा कर, मानो वदन करते थे । हत नरके सामने उनके तमा, मरनेकी इच्छासे - मरने पर भी उनके उदम सात वननि प्रवेश करनेके लिये उत्सु - उनके नाग पर, नूने वनसे रवेण वनभूतयले लजाट कर, सरस नृपालके दके कथ पर और

चन्दन रसमें डुबाया हुआ कमल पत्र जहाँ रक्ता था ऐंसे—हृदय पर हाथ फेरी फेरती—पुडरीक, तुम बड़े निटुर हो, मुझे—ऐसी दु खनीको—भी कुछ नई गिनते—यो उनको उलाहना देती, बारम्बार भिनय करने लगी, बारम्बार चुम्बन करने लगी और बारम्बार कठमे लिपट कर ऊँचे स्वरसे रुदन करने लगी । अरे पापिनी, तेने भी मेरे आने तक इनके प्राणकी रक्षा न की ?—इस प्रकार एकावलीकी निन्दा करने लगी । अरे भगवन्, तुम ज़रा करके इनको पुन जीवित करो—यो कह कर कर्पिजलके पैरोंमें पड़ने लगी और बार-बार तरलिका के गलेसे लिपट कर रोने लगी । आज विचार करने पर भी मेरी समझम नई आता कि उस समय ऐसे अचितित, अशिक्षित, अनुपदिष्ट, अदृष्ट पूर्व, प्राण हजारों भिय और दीन वचन मुझ पापिनीमें कर्शसे आ गये, सभ मनाप कर्शमें आये, और अति करुण और दीन रुदन कैसे हुआ, वह तो कोई दूसरा ही प्रकार था । भीतरमे अश्रु वेगके मानो प्रलय तरंग उठने लगे, अश्रु प्रवाहक मानो फुप्रारे छूटने लगे, प्रलापके मानो नये नये अफुर फूटने लगे, दु खके मानो सैकड़ों शिपर बढ़ने लगे, और एकके पीछे दूसरी मूर्च्छाकी मानो लार आने लगी ।

२०६—यो अपना वृतात कहते कहते मानो भूत-कालकी अति तपदायक अवस्था किसी प्रकारसे अनुभव करती महारवेता मूर्च्छासे अचेत हो गई और वेगमे शिला तल पर गिरनेको ही थी कि इतने मे शाक-कातर चन्द्रानीने पया दृष्टम शीप्रतामे, सेपकके समान हाथ फैला कर, उमे पकड़ लिया । अत्र, जवन तर हुए उर्मीके उत्तरीय बल्लकी कोरसे धीरे धीरे हवा करके योही देग उसने चेत कराया । करुणासे उसके गालों पर आँसुओंका प्रवाह पड़ने लगा, और जब महारवेताको चेत हुआ तब वह कहने लगा—भगति, मुझ गीने आपके शोकको फिर नया कर दिया, जिससे आपकी यह दशा ही है, अब अब इस कथाको रद्दने दो, यही समाप्त करो, अब यह मुझसे तुम भी नई जाना । वीते हुए भी भिन्नो क दुःख और प्रियजनों क विश्राम-वा किर रुदनेसे अनुभवके समान वेदना उत्पन्न करते हैं । इसलिए किसी भी प्रकार किए गए इन अनुभव प्राणोंमें अब आप बार-बार स्मरण को योनामिनें मन जलाइये ।

२००—कुमारके यों कहने पर मराखेता, लवे और गरम निश्वाम लेकर आँसुओंमें आँसु डबडवाती हुई दु खसे बोली—राजपुत्र, जो अति क्रूर प्राण उस अतिदास्य और अशुभ रात्रिमें भी मुझे नहीं छोड़ गए, उनका अब जाना तो बहुत दूरकी बात है। वास्तवमें भगवान् यम भी मुझ दुष्टा और पापिनीसे दूर ही रहता है। मुझ कठिन हृदयाको शोक कैसा ? यह तो सब इस दुःगत्मा शठ हृदयकी झूठी चाल है। इस निर्लज्जने मुझे सर्वथा सब निर्लज्ज स्त्रियोंकी अग्रगण्य कर दी है और फिर काम-वेदना प्रकट कर, वज्र मारी तरह, जो सब दु ख सह सकी उसको केवल कहनेसे क्या हो सकता है ? और इससे अधिक कष्टदायक और क्या कहनेको होगा जो न कहा जाय, न सुना जाय। इस वज्रपातके पीछे जो एक आश्चर्य हुआ अब केवल उसे ही मैं आपसे कहती हूँ और प्राण-धारणके एक छोटेसे गुप्त कारणका वर्णन करती हूँ जिसकी दुःगशा-रूपी मृगतृष्णामे पड़ी मैं इस मृत प्राण, परायेसे, भारके समान, निष्प्रयोजन, अकृतज्ञ, दुष्ट शरीरको धारण कर रही हूँ। उसे आप सुनिए।

२०८—फिर ऐसा अवस्था होने पर केवल मरनेकी निश्चय करके धार अनेक प्रकारका विलाप कर मैंने तरलिकासे कहा—अरी कठिन-हृदये, अब यों कब तक रोया करेगी ? उठ, लकड़ी लाकर बिना तैयार कर, जिममें मैं अपने प्राणनाथका अनुमरण करूँ ! इस बीचमे भट चंद्रमडलमेसे निकल कर, कुमुद-सदृश गौर, बड़े प्रमाणका, महापुरुषके लक्षणसे युक्त, दिव्य आकृतिवाला एक पुरुष आकाशमेसे उतरा। वह अपने राजसूयके किनारेसे अटके, प्रमृत्त-फेनके समान श्वेत, पवनसे चंचल, उत्तरीय की लीचता था, दोनों कानोमे लटकने मणि कुडलोंकी प्रभासे उसके गंडस्थल रक्त दीप्तते थे; बड़े बड़े मोतियाके कारण, गुँथे हुए तारा गणके समान, अत्यन्त मनोरंजक हार उसकी छाती पर पड़ा था; श्वेत रेशमी वस्त्रपल्लव का उमने साफा बाँधा था, भ्रमरके समान श्याम आर टेढ़े बालोंका लट्टे उसके मस्तक पर फैली हुई थी, प्रफुल्ल कुमुद उसने नानमें पहने थे, कामिनीयोके स्तनोनी कुमुद-पत्रलतासे उसका कंधा लाङ्घित था, त्यच्छ जलके समान श्वेत देश-प्रनासे यह दिग्न्तरौमा मातो प्रक्षालन करता था, अपने शरीरमेसे निश्चली शीत वृन्दियसे नानो अत्यन्त शीत उत्पन्न करता था, दिनके समान

अमृत-कण्ठी वर्षासे दिगन्तरोका मानो लेप करता था और गोरोचनका रस मानो लिङ्गता था । उसने ऐरावतकी सूँड़ के समान मोटी, मृणालमदभ्र गोरी उँगलियोंवाली और शीतल स्पर्शवाली अपनी बाहुओंसे उम शयनी उठा कर, दुःदुभिके नाद के समान गम्भीर स्वरसे, पिताके समान आदरपूर्वक कहा—पुत्री महाश्वेता, प्राण त्याग मत करना, फिर इसके माथ तुम्हारा समागम होगा—और वह उसे लेकर गगनमें उड़ गया । मैं तो इस व्यापारसे भयभीत और विस्मित हो गई, और कुनूहलसे ऊपर देखती देवती कविजल से पूछने लगी कि यह क्या हुआ ? परन्तु वह तो घबरा कर उत्तर दिए बिना ही खड़ा होकर—अरे दुष्ट, कहाँ मेरे मित्रको लेकर भागा जाता है ?— यों कहता कहता कुम्भित होकर ऊँचा मुख कर, वेगमे अपने उत्तरीय चल्चल कर फेंक बाँध, उम उड़ते हुएके पीछे पीछे अतरिक्षमें उड़ गया, और मेरे देखाते देखते सब तारागणोंके बीचमें चले गये ।

२०६—कविजलके जानेमे, मानो दूसरे प्रियतमके मरणसे, मेरा शोक दूग हो गया और मेरा हृदय अत्यंत फट गया । किर्तव्यता-विमूड हो कर मैंने तरलिससे पूछा—अरी ! तू नहीं जानती कि यह क्या हो गया ? परन्तु वह स्त्री-व्यभामसे कातर—उम समय शोकसे भी अधिक हुए भयसे उरी हुई—कंपमान गात्र यष्टिवाली, मेरे मर जानेकी शकासे हृदयमें अत्यंत पिया हुआ, दीन होकर बोली—भर्तृदारिके, म पापिनी कुछ नहीं जानती, परन्तु यह बड़ा आश्चर्य हो गया ! उम पुत्रवती आकृति अमानुष थी, और जाने चाते उसने पिताकी तरह आपका अनुकूल-सहित आवाहन किया था । प्रायः ऐसे दिव्य पुरुष स्वर्गमें भी जो कुछ कहने के मत्त होता है, फिर सत्तात् कहे तो कहना ही क्या है ? विचार करनेमें भूड करनेका जरामा , I भी मुझे नहीं दीगता । अब तो यही योग्य है कि आप विचार कर प्राण त्यागके व्यापारका छोड़ दो । ऐसी दरवान यह बड़े आश्चर्यमान है । कर कविजल उम पुरुषके पीछे गया ही है, उससे आप सब सुना । जानोगी कि वह पुरुष कहीं आया था, भाग था, तथा दरवानों उठा कर उगना, कहीं ले गया, और कहाँ उसने फिर समागमकी प्रसन्नता प्रकट दिना कर अपना आवाहन किया । इसके बाद जीवन या मरण का लक्षण

करना । निश्चय हो जाने पर मरण कुछ भी दुर्लभ नहीं है—यह तो फिर भी होगा । कपिजल जीता होगा तो आपसे मिले बिना रह नहीं सकेगा । इसलिए वह लौटे तब तक तुम प्राण त्याग मत करो । यों कहती कहती वह मेरे पैरों पर गिर पड़ी । जीनेकी तृष्णा छोड़नी सबको कठिन होनेसे, स्त्री-स्वभावकी लुद्रतासे, उम पुत्रके वचनसे उत्पन्न हुई दुराशा रूपी मृग तृष्णासे, और कपिजलके लोटनेकी अकान्तासे मुझे भी इस समय यही ठीक लगा और मने प्राण त्याग नहीं किया । आशासे क्या नहीं होता ? वह पापिनी, काल-रात्रिके समान, सदस्य वपके समान लम्बी, मानो यातना मयी, दुःखमयी, नरक-मयी वा अग्नि-मयी हो ऐसी, सब रात मने निद्राके बिना ही, उमी भौंति भूमि पर लोटते लोटते, सरोवरक उमी किनारे पर, तरलिकाके साथ चिताई । धून्ते धूमर और अश्रुजलसे गीले गाल पर चिपटे हुए छूटे छूटे प्रियरे गालोंसे मेरा मुँह ढक गया था, बड़ी बड़ी चीखें मारके रोनेस स्वर ज्वरित हो गया था और कठ स्रग् गया था ।

२१०—फिर सवेरे उठ कर, उसी सरोवर में स्नान कर, हठ निम्न कर, उन पर प्रीति होनेसे उमी कमटलु, उमी बल्कल और उमी अक्षमालाका लेकर, संसारमें अगार समझ, अपनी अज्ञपुण्यता जान, अचितित प्रित्तिना की उगाव रहित आर दारुण देव कर, शोककी दुर्नियारता विचार कर, देवकी निर्दयता देख कर, स्नेहको बहुत दुःखोंसे व्याप्त विचार कर, भावोंमें अहित मान कर, सब सुगोंको क्षण-भंगुर जान कर, माता पिताका लिहाज छोड़ कर, परिवर्तोंके साथ सबल मधुपर्गका त्याग कर, विषय सुगोंमें मन हथा कर, इन्द्रिभोगा भिन्न कर, आर द्रव्यचर्च ग्रहण कर मने, शरणके लिए, अज्ञाथोंके शरण नपमान् नेलोमनाय श्री महादेवजीका आश्रय लिया । धूमर दिन चलाते मेरा वृत्तांत सुन कर मेरे पिता पिता सब मधुपर्गको साथ लेकर यहाँ आए । बहुत देर तक उन्होंने शोक किया, आर अनेक उपायोंसे, बहुत प्रार्थनासे, अनेक उपायोंसे और आता प्रकारके आश्रमासे मुझे पर ले जाने के लिए नड़े नड़े प्रयत्न किए । परन्तु जब उपायों पर निम्न हो गया कि देने भी यह प्रयत्न व्यर्थ मने नरा विरे तो तब वे विराग हो गये और नर नर कर लौट जानेके लिए कहने पर नी, दुरि-नेर-भाग मडित होनेसे, वे भित्तने ही

दिन यहाँ रह कर दुखित ही, जलते हृदयमे, घर गये । पिताके जाने पर न उम
महापुरुषको केवल आँसू गिरा कर अपनी कृतज्ञता दिखाती, उमके प्रेममे कुछ
हुए, इस पापसे भरे, निर्लज्ज, अमंगल, अनेक सख्त वलेश ग्रोर श्रम सत्ते,
जले शरीरको विविध नियमोंसे सुन्वाती, वनमे उत्पन्न हुए फल मून ग्रोर जलमे
निर्वाह करती, जपके ब्रह्मने उमके गुण गणोंको मानो गिनती, तानां सन्धा
समय सरोवरमे स्नान करती, प्रति दिवस भगवान् शिवका पूजन करती, तरनि
के साथ, दीर्घ शोकमे इसी गुफामे बहुत दिनसे रहती हूँ । म ऐसी पापिनी,
नुद, निर्लज्ज, क्रूर, निःस्नेह, नृशस, निदनीय, निष्प्रयोजन उत्पन्न हुई, निष्फल
जीवन धारण करती, अनाथ, निराधार, ग्रोर दुखिनी हूँ । प्राक्षणा-पथका महा
पातक करनेवाली, मेरे देगने वा पूजनेसे आप महाभाग को क्या लाभ ? या
कर कर शदर मेगके टुकड़ेके समान श्वेत बलकलके किनारे से चन्द्रमाके समान
मुखको ढक कर, भारी अश्रु वेग रोکنेको अशक्त होनेके कारण, उमने प्रात
स्परसे बहुत ही जोरसे देर तक रुदन किया ।

२११—चंद्रापीडकी आदर-मुद्रि तो पहले ही उसके रूग, विगय, दाक्षिणा,
ममुर वाणी, नि मगता, अति तपस्विता, शक्ति, निरभिमानता, मक्षु
भापता, आर पवित्रतामे बहुत बढ गई थी । परन्तु सद्भाव दिला कर अपना
सब वृत्तान्त कहनेसे, ग्रोर कृतज्ञतासे उसका हृदय मोहित हो गया ग्रोर
अधिक प्रीति उत्पन्न हुई । हृदय प्रादं हो जानेसे वह उससे धीरे धीरे
रहने लगा—मगपति, कष्टमे डरनेवाले, अकृतज्ञ, मुखके लालची पुरुष सग
स्नेहके योग्य कर्म नहीं कर सकते, केवल निष्फल अश्रुपात करके ही अपना
स्नेह सिन्वा कर रोया करते हैं । परन्तु आपने तो कर्ममे ही सब कुछ करके सा
प्रेमके योग्य नहीं किया जिसमे रुदन करती हो । जन्मसे ही पिनसे आप
रिचय बढना गया ऐसे प्रिय मान्य जन आपने उनके लिए ही, अपरिनि
मान, झोटा दिर है । सुनन होने पर भी अति मुच्छ समक कर निपात
निरन्तर किया है । इन्द्रमे भी बदर सन्मुद्रिसे उत्पन्न हुए ऐरावतु
त्वाग दिना है । नृगानक समान अत्यन्त मोमल शरारको भी काली
प्रतिदिन अनुपिन टु व नक्षत्र मुख्या डाला है । ब्रह्मार्थ प्रदण किया है
नग वनम आनामो निवृक्त किया है, और श्रीजनको दुःखर ही

पर भी अन्याय अंगीकार किया है। फिर दुःखी जन आत्माका त्याग तो अनायास ही कर सकते हैं, अर्न्तु बड़े बड़े यत्न करनेसे उसका त्याग न कर वे केवल उमको भारी क्लेशमें ही डालते हैं। मरे हुए प्रियजनके पीछे प्राणत्याग करना बिलकुल व्यर्थ है। यह मूर्खों के जानेका मार्ग है। पिता, भ्राता, मित्र अथवा पतिके मरनेके पीछे किसीका प्राणत्याग करना पूर्वजा, अज्ञान, विना विचार, काम, क्रुद्ध दृष्टि, अति प्रमाद और मूर्खताका म्पलन है। प्राण जो अपने आप ही न जाय तो उनका त्याग न करना चाहिए। विचार करनेसे मालूम होता है कि प्राण त्याग करना केवल स्वार्थ है क्योंकि यह अपनी अमह्य शोक वेदना मिटानेका उपाय है। इससे मरे हुएका कुछ उपकार नहीं होता, वह कुछ फिर नहीं जी उठता, उसका र्भर्म नहीं बढ़ता, वह अच्छे लोकमें नहा जाता, नरकमें जानेसे नहीं बचना, दीपना नहीं, अथवा उमसे कुछ रम्बर समागम भी नहीं होता। वह अवश जन तो अपने कर्मोंके फलके योग्य स्थानमें जाता है। पीछेमें मरनेवालेको केवल आत्म त्याग पातक लगता है। यदि जाता रहे तो वह जलाजली आदि देकर मृतका और अपना बहुत उपकार कर सकता है परन्तु प्राण त्याग करनेसे तो दोनोंमेंसे एकको भी कुछ लाभ नहीं होता।

२१२—आपको स्मरण होगा कि सकल ललना हृदय-हारी भगवन् नाम देवर्ष, महादेवसे उत्पन्न हुई अग्निसे, जलने पर भा उनही एक मान प्रियपत्नी गनेने प्राणका त्याग नहीं किया और सुखसे जीते हुए जब राजाओंके मुक्त्याके अनुमाने जिनका चरणामन सुगन्धित हुआ था और सकल भुवनामेंसे जिन्होंने वाचनाम लिखा था ऐसे रूप सम्पन्न पाण्डु नाम पतिके, किन्दम मुनिनी शान्ताग्नि म, जाने पर भी पटुपराक शरसेन राजाकी पुत्री कन्तीने अमता देर नहीं छोड़ा था। नाल कन्दर्प सप्तान यमनानंद दापक, चिनववान् और शर अभिमन्युक न के पर भी योग्य राजा म पुत्री नाला उत्तराने प्राण त्याग नहीं किए वे और भी कन्दर्पकी परमे ललाड नद, धृतराष्ट्रकी पुत्री दुःशला सिन्धुराज जयद्रथ पाक पत्नी प्रवृत्त मीरर नर्तक—जिसकी महिमा महादेवकी कर्दानने

घड गई थी—अर्जुनके हाथसे मारे जाने पर भी उसके पीछे कृष्ण मर नहीं गई थी। इसी तरह अन्य भी राजन, देव दानव, मुनि, मनुष्य आदि गंधर्वाकी हजारों कन्याओंके विषयम सुना जाता है कि उन्होंने भर्तृरहित होने पर भी प्राण वारण किए थे। जो अनुमरणमे समागम जरा भी नभा ने तो प्राण छोड़ भी दे। परन्तु आपने तो समागमकी वाणीको स्वयं सुना है और जिनका अनुभव हो गया उममे क्या शक हो सकती है? ऐसे असाधारण आकृतियाँ सत्यभाषी महात्माओंकी वाणी कैसे जरा भी झूठ हो सकती है? नरे हुएके साथ चिते हुएका समागम नहीं होता—इसलिए वे महात्मा, दया करके, निःसंशय उनको प्रत्युज्जीवित करनेके लिए ही उठा कर सुगलोकमे ले गए हैं। महात्माओंका प्रभाव अचिंत्य होता है। मसार की वृत्तियों अनेक प्रकारकी होती हैं। दैव भी विचित्र है, तपकी सिद्धि अति आश्चर्यकारक है और कर्मोंकी शक्ति भी अनेक प्रकारकी होती है। फिर लूच विचार करने पर भी उनका उठा ले जानेका, जीवन-दानके सिवा, अन्य क्या कारण मालूम होता है? प्राणम यह असंभव नहीं समझना चाहिए। ऐसा तो पहले कई बार हो चुका है। गंधर्वराज विश्रावसुमे मेनकामें उत्पन्न हुई प्रमद्वरा नामकी कन्या जब सर्पके काटनेमे मर गई तब म्यूलेशने आश्रममे भागवत चरणके पीन आर प्रमद्वरके पुत्र वरु नामक मुनिमुमारने उसका अपना अर्ध जीवन दिया था। अर्जुन पर अश्वमेधके अश्वके पीछे जाते थे और युद्धमे उनके ही पुत्र वज्रपाशने गर प्रहार करके उनके प्राण हर लिए थे तब उन्नी नामकी कन्याने उठा माला किया था। अभिनव्युक्त पुत्र परीक्षित जब अश्वत्थामाके अग्नेशब्दमे मरने लगे गर्भमेंसे मरा हुआ निकला था तब उत्तमके विलापसे दयालु होकर भगवान् वासुदेवने उसे दुर्लभ प्राण दान किया था और उत्तमितीमें वही विनुरासि चरण भगवान् मादीपति द्विके पुत्रकी धन गर्से निजाल कर लाए ।

७२. ऐसा हा होगा, तो भी क्या किया जाय? किससे दोष ? निजाल

ये भीमने जब उसको बहुत तग किया पर बादमे द्रोपदीके कदोम मार दिया। तब जबद्वरने तप करके शिवको प्रसन्न किया और उनसे पाचों पादोंको मारनेका परमांग। शिवन कथा—यह समय नदी पर तुम, प्रदीप अतिरिक्त, अन्य पादोंको युद्ध नेत्रमे दूरा सधोगे।

बड़ा चलवान् है, भाग्य प्रवल है, अपनी इच्छासे कोई सौम भी नहीं ले सकता । अति निन्दुर दुष्ट दैवके विलास अति क्रूर होते हैं । निष्कण्ट होनेके कारण रमणीय प्रेम दीर्घकाल तक नहीं रह सकता । सुख स्वभावसे ही प्रायः क्षण-भंगुर और दुःख चिरस्थायी होता है । प्राणियोंका एक जन्ममें किसी प्रकारसे समागम हो जाता है आर सहस्र जन्मान्तर तक विरह रहता है । इसलिए अपनी अनिन्द्य आत्माकी निंदा करना ठीक नहीं है । संसारके अति गहन मार्गमें चलते मनुष्योंको ऐसी ऐसी घटनाएँ होनी ही रहती हैं । धीरे ही आपत्तिमा पार पाते हैं । ऐमे ऐमे अनेक कोमल आश्रासन वाक्योंसे उमको शान्त करके चन्द्रापीड़ने फिर अंजलीमें भगनेका पानी लाकर, इच्छाके बिना भी, हठमे उमका मुँह धुलाया ।

२१३—उसी समय सूर्य भी, महाश्वेताका वृत्तात् सुननेमे मानो शोक कातर होकर, दिग्म व्यापार छोड़ अधोमुख हो गया । फिर जब दिन क्षीण हो गया, आकाशमें लटकता हुआ रवि-मंडल पत्नी हुई प्रियगु-लताकी मन्त्रीकी रजके समान पीले रंगसे रँग गया, अस्त समयकी, कुसुमके फूलोंके रससे रँगे हुए वस्त्रके समान कोमल, धूमने दिशायाके सुगंधको छोड़ दिया, आकाशका नाला रंग दूर होकर चकोरकी पुतलीके समान भिंगल रंग लिए गया, शोषिलके लोचनोके समान भिंगल सन्ध्याके प्रकाशसे भुवन लाल हो गया, बड़े छोटे तारोंके समूह यथाक्रम दीपने लगे, वन महिषके समान श्याम रंगमाला और आकाशके विस्तारको लुगता रात्रिका अंधकार उत्तरोत्तर अधिक माला होने लगा, अपना हय रंग घने अंधेरेमें टक जानेने वृद्धोकी भाँडियों गहन दीपने लगी, ग्रीसकी बूँदोंसे जडता उत्पन्न करती—वन कुसुमोकी प्रतिशप पारमणसे जिसके चलनेका अनुमान होता था ऐसी—जमा आर दूरीकी कुनोको हिलाती वायु बहने लगी, और रात आनेने लक्षी मिश्रके कारण चुप हो गए, तब महाश्वेता धीरे धीरे उठ कर, पश्चिम अक्षरामाका वा, वन-जलके जलसे अपने पैर धोकर, खेदयुक्त उग्र निन्दास लेकर, अपने हाथोंके सिंघने पर जा बैठी । इतनेमें चन्द्रापीड़ने नी उठ कर धूमनेके लक्ष्यके लक्ष्यमें अंजली दी और सन्ध्याप्रणाम कर दूसरे अक्षरामाका वा लेकर लताप्रणय लाल कर दिखौना निहारा । बत्तों बैठ कर

पह महाश्वेताके वृत्तान्तके विषयमें बाग्यार मनमें विचार करने लगा । उसने सोचा—वास्तवमें इस कठदायक मदनका वेग अमहनीय है और प्रतिज्ञारहित होनेसे बड़ा दारुण है । उससे अभिभूत हुए महापुरुष भी इस भाँति मृत्युकी राह न देख, धर्म छोड़, तुरंत प्राणका त्याग कर देते हैं । त्रिभुवनाचलित शासन भगवान् कुसुमायुव को सर्वथा नमस्कार है ! फिर उसने महाश्वेतासे पूछा—भगवति, वनवामरूपी आपत्तिके समयकी मखी और दुग्धधैर्यानेवाली आपकी परिचारिका तरलिका कहाँ गई ?

२१५—तब महाश्वेता बोली—महाभाग, मे आपसे कह चुकी हूँ कि अमृतसे एक आसराश्रीका कुल उत्पन्न हुआ । उसमें मदिग नाम एक मदनधनक और बड़ी बड़ी आँखोंवाली कन्या उत्पन्न हुई । सफल गवर्णकुलक मुकुटाग्ररूपी पादपीठ पर चरण रखनेवाले देव चित्ररथने उससे विवाह कर लिया और उसके अगणित गुण गणोंसे मोहित होकर महाराजने उसको, अनाचारियोंको दुर्लभ सत्र अंतःपुरम उच्चता दिखानेवाला, हेमपद्मे लाजित गणकुत्रघेन-चमररूपी चिह्न प्राप्त करानेवाला महादेवीका पद परम प्रीतिपूर्वक दिया । फिर उनमें जब अन्यान्य प्रेम बढ़ रहा था और वे यावनसुगम भाग रहे थे तब कुछ कालमें उनका, माता पिताके अथवा गण गवर्णकुलक अथवा सफल जीव लोकरके ही मानो एक जीवके समान, आश्चर्यकारक एक कादंबरी नामक कन्या-रत्न उत्पन्न हुआ । वह आर मदनमें ही माय भेटी, माय मर्ती, साथ ही पान और भोजन करती थी, इसमें उसके माय नाम अत्यन्त प्रेम हो गया । वह मेरे पूर्ण विश्रामका स्थान हुई, आर माता पूर्ण हृद्य है इस प्रकार वह मेरी बाल्यावस्थासे ही मर्ती हुई । इस दोनोपि उगीनादि कलाश्रीका नाय ही अभ्यास किया आर बालमोहित ही मदन करते हमारी बाल्यावस्था पूर्ण स्वतंत्रतामें सुखसे बीती । पीछे उसने मेरी प्रणित वृत्तान्त सुन कर, गोकानुर हो, निश्चय किया कि प्रवृत्त महाराज सामने है तब तक न क्यारि अपना विचार नहीं करनी आर मर्ती सामने उसने शक्यपूर्वक कहा कि जो मेरी इच्छाक विवाह करने वाला माय मेरा विवाह करना चाहेंगे तो न भुली रह कर, अथवा अग्निम ११५ अथवा कौनो लगा कर, या फिर प्यार निःसन्देह अथवा ११६ का लक्षण दर्शनी

२१५—अपनी लड़कीके लिए हुए इस निश्चय और निश्चल वचन को परिजनोके द्वारा गधर्वराज चित्ररथने कर्ण परम्परासे सुना । फिर कुछ दिन बीतने पर उसे प्रफुल्ल नवश्रीवनमें आई देख कर उनको अत्यन्त परिताप हुआ और क्षण भर भी चैन नहीं मिला । केवल एक ही अपत्यके और उसपर अत्यन्त प्रेम होनेके कारण वह उससे कुछ भी न कह सके । अन्य कोई उपाय न करूँगेसे यह उचित जान कर, महादेवी मदिशके साथ सलाह कर, आज सवेरे क्षीरोद नाभके कचुकीसे मेरे पास भेजा, और उससे सदेशा कहला भेजा—पुत्री महाश्वेते, तुम्हारे वृत्तातसे ही हमारे हृदय जल रहे हैं । पर यह एक नया दुःख आ पडा है इसलिए अब कादम्बरीसे मनाना तुम्हारे ही हाथमें है । इस पर मने गुरुवचनके गौरव और सगीके प्रेमके कारण क्षीरोदके माथ तरलिकायो भेजा है और यह कहला भेजा है कि सगी कादम्बरी, क्यों तू दुःखिनीको अधिक दुःख देती है ? जो तू चाहती है । कम जीनी रहूँ तो माता पिताका वचन मान ले । उसके जानेके थोड़ी देर सिंछे ही प्राय इम भूमिमें पारे । इतना कह कर वह चुप हो गई ।

२१६—इस बीचमें, लाङ्गनके रहाने मानो शोभाग्निसे जले हुए मध्यवाले भागमें उसके हृदयका अनुकरण करता, मुनिकुमारकी हत्याके महाभयमें जो भावो भावण करता बहुत कालसे लगे हुए दक्ष मुनिके शापानिके दाहना चन्द्र मानो प्रकट करता और बहुत भयम लगानेसे श्वेत हुए और कृष्ण मृग भयमें प्राये डके पर्वतोंके वाम स्तनके समान, शम्भुके जय मडलके चूडामणि समान चन्द्रमाना उदय हुआ । धीरे धीरे जब गगन रूमी महासमुद्रका मूलन, पतलोककी पिशाच मगल बलश, कुमुद-चौधव, कुमुद-वनको विकलित करनेवाला, दश दिशाओंमें घेत रूप देनेवाला, शखके समान धवल, मानिनी-का भाव उतारने वाला, धवलन फैलानेवाला, चन्द्र-मडल उदय होना भाव चन्द्र-भरणने दक्ष जनेके कारण तारीकी प्रभा जब कम होती गई, तो माता के चन्द्र-भरण की शिलाओंके जलनेसेने जब सब दिशाओंमें धारा बहने

१—चन्द्रमाने अश्विनी आदि—दक्ष की—अन्याओं से विवाह किया पर वह देख कर रोहिणी ने प्रसन्न रहा । तब दक्ष ने उसे शाप दिया कि २५ वर्षों तक ही रहता ।

लगी, मृणालके अंकुरसे भरे अर्चोद सगेवरमे कमलाकी शोभा जाती रहनेसे चन्द्रमाकी किरणें मानो विरोधके वश जल पर गिरी हुई दीखने लगी, मा' निद्रामें ग्राह, बड़ी बड़ी तरंगोंकी छलकसे कौपते, विरही चक्रवाकके झुण्ड गी चीखे मारने लगे, चन्द्रोदय जब पूर्ण हो गया, और नयनमेमे आनन्दानुभूति रूपी ओस बरसती, आकाशमें विहार करनेवाणी, मनोहर, नियासों की प्रभिसारिकाएँ जब दौड़ लगाने लगी, तब चन्द्रापीड महाश्वेताको निद्रानशद अचने पत्तोंके त्रिलोने पर धीरेसे लेटा और—इस समय मेरे पिपयम वैशम्पायन, विचारी पत्रलेखा, और राजपुत्र लोग क्या विचारते गेगे ?—ऐसा चिन्ता करते करते सो गया ।

२१७—रात्रिके बीतनेपर प्रातःकाल सव्या करके गिलासन पर बैठ कर महाश्वेता पवित्र अथमर्षण मंत्रों का जप कर रही थी और चन्द्रापीड प्राभातिक विधि समाप्त कर चुका था कि इतनेहीमें तरलिका आ पहुँची । उसके पीछे एक सोलह वर्षकी उम्रका, साभिमान और अग्राम्य आकाराला, गण्डुल सपर्कसे चतुर फेयूरक नामका गवर्ध-पुत्र—मद खेदसे मद हुए गामास तनान भारी भारी पैर रखता हुआ—आया । उसी चन्दनके लेपसे उसके गाल उब दंड मटियाले हो रहे थे और कुंजुमके रंगसे वह गाल पीला दीगता था । वह केवल एक घोती पहन रहा था जो सुवर्णकी मेथनासे टूट बनी हुई थी, और जिसकी मोर कनाचक्रको छोड़ और जगद हिल रही था । उमर मुदा अष्टशेनेसे उसका मन्त्रभाग निभक्त हो गया था, प्राती विशाल था, गण्डुल गाल और मोटे थे, बड़े कलाई पर मानिकका संकण हिल रहा था कर्णभूषणसे नीचे फैलते अनेक रंगके किरण समूहों पर गाल पर डुपट्टेकी तरह एक कवे पर धारण करना था । उमर और आग्रह गण्डुल मोमल और बारम्बार नामून पानेमे लगे हुए रंगसे रसाल था ; कानों तक पहुँचने, खनाकमे ही खेत, लोचनों की मलामे लक्ष्मी को मानो सफेद करे डालता था, कुमुद नना माना पक्षी बना था और दिवसको मानो पुण्डरीकमय दरमना था । उसका गाल मुण्डुल गाल विशाल था, और उसके केश अनुर टुकके सनाप सान और गण्डुल गाल शी—बद मोन है ?—ऐसा कृतून उमर शेनेसे लक्ष्मी चन्द्रापीड

देर तक देर कर महा बेताके पास जाकर, प्रणाम कर, सविनय बैठ गई। पीछे केयूरक भी मन्तक बहुत झुका कर, प्रणाम करके, महाबेताके द्वारा दृष्टिसे चताए हुए एक निकटवर्ती शिला-तल पर बैठ गया। वहाँ बैठे बैठे अदृष्ट पूर्व, कुमुमायुवका भी तिरस्कार करनेवाला, सुर असुर-गधर्व और विद्याधरोंके रूपका भी उपहाम करनेवाला चन्द्रापीड़का उत्कृष्ट सोन्दर्य देर कर वह बहुत विस्मित हुआ।

२१०—जप समाप्त होने पर महाबेताने तरलिकासे पूछा—क्या तूने प्रिय-सखी कादम्बरीको सकुशल देखा? क्या वह मेरा वचन मानेगी? इस पर तरलिकाने, जरा नीचे झुके कर्ण पाश सहित, विनय-पूर्वक, सिर नीचा करके, प्रति मधुर वाणीसे विनती की—भर्तृदारिके, आसनी प्रियसखीको मैंने सब तरह स्वस्थ देखा, और आपका सप्त सदेश उनसे कहा, परन्तु उन्होंने तुम पर ढंके ढंके आँसू गिरा कर आर रोकर जो प्रत्युत्तर कहलाया है उसे, उनका ही भेजा हुआ वह केयूरक नामका वीणा वाहक आससे कहेगा—इतना वह पर वह चुप हो गई। फिर केयूरक बोला—भर्तृदारिके महाबेते, देवी कादम्बरी आसको दृढ़ कटालिगन करके विश्राम करती है कि तरलिकाने जो मुझसे आस करवा वह क्या गुरु जनोका वचन पालने के लिए है, या मेरे चित्तकी पराधा लेनेके लिये है, या—म धरमे रहती हूँ—इस अत्राधका एक मार्मिक उच्चारण है, या प्रेम तोड़नेका अभिलाषा है, या स्नेही जनके त्याग करनेका उपाय है, या प्रकोप है? मेरा दृश्य सहज प्रेमके प्रवाहसे भरा हुआ है—यह तो आप जानती ही हैं। उस पर भी आसको ऐसा अत्यन्त निम्नुर लदेशा भेजते क्यों जरा नी लाज न आई? आस तो मधुर-भाषिणी है, आसको ऐसा अप्रिय भाषण किसने सिखाया? स्वस्थ हुआ भी मैं सद्मर ऐसा नहीं रोग जो ऐसे तुच्छ, परिणाममें विरम कार्यमें मन लगावे, तब फिर मेरे सन्तान—दुःखसे दृढ़वने लगा हुई—नी तो बात ही क्या है? निम्न-दुःखसे तिरा हुआ न तो सुलाशा देती? शानि देती? सनेग जेवा? और लक्ष्य देय? कितने मेरी प्रिय लक्ष्मीकी ऐसी दशा की है उस अविद्यादर—जैसे जनाम प्रियवर्णा—किसको क्या म सकलम कल्लगी? कितने प्रसन्न होते कितना जम जोषादर ही है, तब न्हवात रचितवले चमर द्रुमुता

मी पति-समागमका सुख त्याग देती है, फिर स्त्रियोंका नो रहना ही क्या है ? फिर जहाँ भर्तृ विरहसे पीड़ित प्रियसखी दिन रात, परपुरुषता दर्शन त्याग कर, रहती है, उस मेरे हृदयमे अन्य पुरुष कैसे प्रवेश कर सकता है ? जब पति-वियोगसे शोक-ग्रसित प्रियसखी कठिन प्रतीति मानने लगी तो कुछ बड़े दुःख भोग रही है तब मैं क्या यह सब न गिन कर आपने ही सुगम विवाह करूँ ? मुझको सुख भी कैसे मिलेगा ? आपके प्रेमके कारण मेरे इस विषयमें कुमारिओके विरह स्वातंत्र्य लेकर अथवा अंगीकार किया, जानना कुछ परवा नहीं की, गुरु-वचनोंका उल्लंघन किया, लोकापवाद नहीं माना और—सो जनोके सहज भूषण—लज्जाको भी त्याग दिया, फिर कठिन प्रेम में इसे करूँ ? इसलिए मैं हाथ जोड़ कर, प्रणाम करते, चरण स्पर्श करते, कहती हूँ कि मुझ पर अनुग्रह करिए, आपके साथ मेरे प्राण भी उनमें ही गए हैं। इसलिए अब आप स्वप्नमें भी यह बात फिर मनमें मत लाएँ। इतना ही मैं केयूरक चुप हो गया।

२१६—महाश्वेताको यह सुन कर बहुत चिन्ता हुई, और—तुम जाओ, मैं स्वयं ही वहाँ आकर जो उचित होगा करूँगी—यों कह कर अपने केयूरको लाया दिया। उसके जाने पर वह चन्द्रापीड़से कहने लगी—राजपुत्र, हेमकट राणा है, चित्ररथकी निचित्र राजवानी है, किपुत्र्य देश कौतुकपूर्ण है, राजा बहुत सुन्दर है, और कादम्बरी सरल-हृदया और महानुमाना है, इसलिए मैं आपको वहाँ चलनेमें बहुत खेद न हो, अथवा कोई बड़ा भारी काम मिले जाता हो, अथवा चित्तम ग्रहण पूर्ण देश देखनेका कृतज्ञ हो, अथवा मेरी प्रिय लगता हो, अथवा आश्चर्य दर्शन सुगदायी हो, अथवा जो ऐसा प्रणामके योग्य हो, अथवा मेरी प्रार्थना न मानना अयोग्य समझल हो, अथवा कुछ दुःख चिन्तन मुझमें हो गया हो, अथवा मैं अनुग्रहके लायक होऊँ, तो मैं आपको आपको निष्कल न करनी चाहिए। यहाँमें मेरे साथ रहने का और वहाँ मुझसे अभिन्न, अतिशय लायक्यस्ती, कादम्बरिसे मिलने का और कुमतिसे उचल हुए मनामोटका विनाम दूर कर, एक दिन मैं विप्रान्त दुनरे दिन आप लौट आइएगा। आप मेरे लिए कारण जानते हैं। आपने कर और अपना वृत्तान्त सुना कर, दुःखान्यकारके चरके नीचे बैठ कर

चित्त बहुत काल पीछे आज मानो हलका हुआ है और शोक-मानो सहनीय हो गया है । साधु-समागमसे दुःखीको भी आराम मिलता है और आपके समान महापुरुषोंका गुणोदय केवल अन्य जनोको सुखी करनेमें ही लगा रहता है । इस पर चन्द्रापीडने उत्तर दिया—भगवति, दर्शन हुआ तबसे ही यह शरीर आपके अधीन है इसलिए जो कार्य आप योग्य समझे उसके लिए निःशक हाथ यद्येष्ट आज्ञा दें । जो कह कर वह महाश्वेताके साथ चला ।

२००—कमसे हमकृष्ट पहुँच कर, गधर्वराज ग्रहमें आकर, सुवर्ण तोरण जहाँ त्रिषे वें ऐसी मात झ्यौंठी लाँच कर, चन्द्रापीडने, महाश्वेताको देखते ही गड कर आते, दूसे ही प्रणाम करते, हाथमें स्वर्णकी छड़ी लेकर चलते प्रतिहारोके बनाए हुए मार्गमें, कन्यात्रांकि अत पुगके द्वारमें प्रवेश किया और रुकते ही उसने लारवाँ न्धियासे भरा दूसरा मानो नारी-मय मसार हो, सख्या जाननेके लिए मानो त्रिलोकीकी छिर्षों एक स्थानमें इकट्ठी की गई हा, पुरुष-दान मानो दूसरी सृष्टि हो, अपूर्व उत्पन्न हुआ मानो त्रिषोंसा द्वीप हो, पाँचवाँ मानो सारा युगका अवतार हो, पुरुष द्वेषसे प्रजापतिने मानो दूसरा सत्कार रचा हा, प्रथम कर्त्तव्य रचनेके लिए उत्पन्न कर तैयार रक्खा हुआ श्री जनमा मानो सौंप हो—ऐसा उम रनवासके भीतरका भाग देखा । दिनको मानो अमृत स्तनमें भराने लाचता, अन्तरिक्षमें मानो आर्द्र करता, दिसात्रोको इनावा, प्रचुर अरुणतर्पण भय प्रभा प्रसाता, अत्यंत पौलता हुआ, ललनाश्रोनी लाक्षण प्रभा ना प्रमाद नहीं करत. वास था, जिससे वह मानो तेजोमय हो, हजारों चन्द्र अरुणतर्पण मानो रचा गया हो, चन्द्रिकासे मानो बनाया गया हो, आभरण प्रभा त भागे उसकी दिशा प्रोका प्रयत्नश बनाया गया हो, विभ्रमने मानो सप्त अरुणतर्पण अनादित त्रिषे हा, यान्न विलासते मानो सप्त अश्वपव इने हो, रति अनादितर्पण हा भागे सत्त विभा हो, मदन चरितोंसे ही मानो अवकाश बनाया हा, प्रपुणवे हा भागे सत्त प्रदेश जान हो, मानो अट्टाल मर हा, भागे सत्त हा, सुत देवता मय हो, कुतुम शर-मय हो, कुतुमल मय हो, धान देवता हा, साकुमार्य मय हो, आर प्रेम मय हो—ऐसा मालूम होना था ।

२०१—अन्य श्रोती अन्तरिक्ष अरुणतर्पण उनका सुव प्रकाशने भागे रूप उपर अरुणतर्पण हो ही हो ही हो, उनके अन्तरिक्षमें धृष्टी भागे चचित

कुवलय-वन-मय होती हो, भ्रूलताओंके स्पष्ट विलासमें मानो तम मनु
सेना चलती हो, केश कलापके अघकारसे कृष्णपत्रके प्रदोष मनु म
इकट्टे होते हों, स्मित प्रभासे प्रफुल्ल पुष्पोंसे ज्वल जसत-दिवस म
सचार करते हों, श्याम-पवनकी पग्मिलमें मानो मलयाचलकी वायु चल
हो, कपोल मडलोंके प्रकाशसे मानो हजारों माणित्य दर्पण जगमगाते
हयेलियोंके लाल रंगसे पृथ्वी पर मानो रक्त-कमलोंका मेरु प्रस्ता
नख किरण चमकनेसे आठों दिशाएँ मानो हजारों मदन वाणसे आ
हों, भूगण किरणोंके इन्द्र धनुषोंसे मानो पालतू मयूर वृन्द उड़ते हों, १
योवन विकारसे मानो अनग उत्पन्न होते हों—ऐसा चन्द्रापीडने देखा
उन कुमारिकाओंके, उचित व्यापारके छलसे, सतिवोंके साथ पकड़
पाणि ग्रहण, वेणु वज्रानेमें नर-व्यापार, गेंद खेलनेमें कस्तुर-प्रहार, ४
लताओंके सींचनेके लिए कलश कंधे पर रखनेमें मुजालिमन, १८ डाल
झूलनेमें नितम्ब-द्वयलका चलन, पानकी बीड़ी चबानेमें दंतोपचार, ३
वृत्तोंमें मनु गड्ढपका प्रचार, अशोक वृत्तोंको ताड़न करनेमें चरणों
आर उपहार-कुसुम स्पलित होनेमें मीत्कार—यह सब उसने, प्रीति मनु
व्यापार मानो करती हो इस तरह, उनको देखा ।

के पल्लोका पवन भी आयासकारक होता था । उस अंतःपुरमें सखियोंके मिलाने के लिए, हाथका सहारा दिए बिना खड़ा होना, कुमारिकाओंको अति साहस लगता था, शृङ्गार करनेमें पहने हारका भार सहन करना स्नानकी कठिनताका ही प्रभाव था, पुष्प तोड़नेमें एकमे दूसरा पुष्प तोड़ना भी युवति-जनके प्रयोग था, कन्वाओंके अभ्यासमें माला गूँथना भी अलुकुमार जनोका काम लगना जाता था, और देवताओंको प्रणाम करनेमें (सूक्ष्मता के कारण) मध्यभागका दुहेरा होना कुछ बहुत विम्बन कारक न था ।

२२२—इस प्रकारके रसवामक जरा भीतर जाने पर उसने कादम्बरीके नाम रहनेवाली—इधर उधर फिरती—सखियोंके विधिव प्रकारके अत्यंत मनोहर प्रालाप सुने—अरी लखलिके, केतकीका मराग लेकर लखली लताओंके प्रास-पास स्यारी बोंध, नागरिके, गधोदकसे भरे कनकमय तरोवरमें खनी रेती बिटा, अरी मृणालिके, कृत्रिम कमलिनियोंमें पेचदार चक्रगाफ पर कुम्भनी चुम्बनी मुट्टी भर भर कर छिड़क, मकरिके, कपूर-पल्लवका रस डाल कर गणपादोंको सुगंधित कर, रजनिके, तमाल वृत्तोंकी अंधेरी कुजमें मणि प्रदीप रख, अरी कुमुदिके, पत्तियोंमें उचानेके लिये प्रनारोंको मोतीकी जातिमें रस दे, अरी निपुणिके, मणि-मय पुतलियोंके स्तन पर कुटुन-रससे फूल-पत्ते भगा, उत्पलिके, सोनेकी तुंगरिषों लेकर कदली-गूँठके मरज्ज-मय चमूतरे भास रा, केसरिके, नदिता रस लेकर मकुल-कुसुमोंके मउनोंमें छिड़क, अथ जाताने, वामदेव-दृष्टी—राधा दाँत की—अचारी की विदूर-गेलुने गुलाना रख दे, परा-नखलिके, उर-रत्न-सोने कमल मधुरा रस दिला, कदलिके, नाला मूँगा धारा-दृष्टे ले जा, अरी कमलिनिके, चन्दाकके बच्चोंके

अरी चामरिके, तू यों मिय्या सुगवता दिखा कर किस तो झुलना चााती है ? अरी यौवन विलासोन्मत्ते, स्तन-कलशके भारके कारण शरीरके झुक जानेसे मणि-स्तम्भके मयूरोंका सहारा लेती है—यह हमने जान लिया, प्रगे परिणाम कान्तिणि, तू तो रत्न-मय भीतमे पड़े अपने विाके साथ अतचीत करती है, सखि, तेरा डुमड़ा हवामे उड गया है, उसको समझने के पहले तू तो हाथका प्र देकर अपने हारकी प्रभाको पकडती है, प्ररी सरी, तू तो मणि भूमि पर फना पूजा-कमलों पर गिग्नेके डरमे अपने प्रतिविंब्रीहोको तज कर चलती है, रिा का की जालीमें पड़े पञ्चरागमणिके प्रकाशको बाल गूर्यका प्रकाश जान कर, मयो, तू अपने करतलमे छत्रीका काम लेती है, अरी, तेरे हाथमे खेड़े तम गिर पड़ा है—यह तो जानती नहीं है और केवल नम मणि ही हिरण्य ही हिलाया करती है—ऐसे वचन सुनता सुनता कुमार सद्मन्गीके भावक पास आया ।

२२५—वह मार्ग उपवन लताओंके फूलोंसे पराग गिरनेसे पुलिनके समान लगता था, गुडार करती कोकिलोंके नशमे कुतरे—आंगनोंमे उम हुआ—गामा फलका रम टपकनेसे वहाँ दुर्दिन दीपता था, पवनमे चिरीरे हुए—। हुन ल पर छिड़की गई मधुमाराके-कणोंमे वहाँ माना नीहार पड़ा मानूम था था, चम्पकभयके डेरसे वह माना काचनदीपना दीपता था, और कुमुदमूल गिरे हुए मनुकर-वृन्दके अवकारसे वह श्याम शशाङ्कानसा गोभायना था । वहाँ युवतियाँ इधर उधर फिरती थी, उनके चरणों पर लगी महारम लाली राग-सागर हुआ हो, अगलेपके सुनाममे मानो अमृतकी उत्पत्ति हो दिना । दत्तपत्रोंके मडलने मानो चन्द्रबोह हो, गारोवन ही तिलकरेमाश्रावण । प्रियगुन्तताओंका वन हो, काले अमरके पत्रभंगामे माना श्याम शशाङ्क । पढ़ने अशोकपल्लवसे माना रक्त शशाङ्क हो, शरीरमे लगाए लतामय वन वन मना हो, और शरीर पुष्पके आनुरागाने माना पुष्प । ऐसा दीपता था । सेवाके लिए आड़े हुई, दाता और करणवती हुई ननि, माना लावण्यमय प्रकार हो ऐसा, चाही मरुके मुके आवा । मार्ग उचने देना । उसके अन्दर पड़ा आनुराग निरुह नमना । मन्तून शेष था माना जलका प्रवाह नदीके जल मना हो । उसके अ

ने कर, मानो बहावके सामने जाता चन्द्रापीड़ आगे गया तब उसने एक श्रीमडप देखा जिसके आगे प्रतिहारियोंका मडल बैठा था ।

२२६—उसके नीचे, चारा ओर मडल बना कर बैठा,—गहनोकी चमक में कल्पलताओंके समान मालूम होती—अनेक सङ्घ कन्याओंसे परिवृत, नीचे वस्त्रके चादरेसे ढके हुए—जो बहुत बड़ा न था ऐसे—पलगके मध्यम, सफेद तक्रिए पर दुहरी ररके रक्की मुजलताके सहारेसे बैठी हुई, महावराहकी दृष्टिमें लट्कती पृथ्वीके समान शोभायमान, कादम्परीको उसने देखा । उसकी देह प्रभाते विस्तीर्ण जलमें, हाथ ऊँचे नीचे करके मानो तैरती, चमरधारिणी हवा करती थी, मणि भूमिमें नीचेही ओर प्रतिप्रिय पड़नेसे मानो सर्प उसे नीचे लिए जाते थे, आसपामकी रत्न-मय दीवारोंमें प्रतिप्रिय पड़नेसे मानो दिकगल उसमें लिए जाते थे, चार ऊपर, मणि मंडपमें, प्रतिप्रिय पड़नेके कारण मानो देवता उसे उठा कर ऊपर लिए जाते थे । बड़े बड़े मणि मय नाभानि मानो उसको अपने हृदयमें प्रवेश कराया था, भयन दर्पणाने माना उसका पाप किया था, चार श्रीमडपमें अधामुगते उत्तीर्ण हुए विगावर माना उसमें गगनम उठा कर ले जाते थे—उसके दर्शन करनेके पुनूलसे चित्रके रहने मानो कनो भुपत उसके आसपाम एकत्रित हुए थे ।

चरणोंसे वह मानो प्रवाल रसकी एक नदी बहती थी, उसके नूपुरोंके माणिक्य से निम्नलती किरणें—भारी नितम्बके भारसे रिक्त हुई जवायाँ ही मानो महायता करनेके लिए—ऊँचे चढ़कर जपन भागका स्वर्ण करती थी, प्रवाल के हाथसे अत्यंत दबाए गए मध्यभागमेंसे गला हर गिरा, जपन शिलातलका स्करसे मानो दो टुकड़े हुआ लावण्य जलका प्रवाह हो ऐसा उसका उदर-पुत्र शोभायमान था, सब दिशाओंमें दूर तक किरण फैला कर, ईर्ष्यामि मानो, उदर-पुत्रके दर्शनका प्रतिषेध करते, कुतूहलसे मानो अतिरिक्त हो गोरुवारा सुवसे मानो रोमांचित होते मेखला कलापने उसके नितम्ब-भिम्बका पारंगत कर रखा था । आकृष्ट होकर गिरे हुए सब लोगोंके हृदयके भारसे ही मानो उसका नितम्ब अत्यंत गुरु हो गए थे, उन्नत स्तन होनेके कारण मुगल दर्शन न पान के दुःखसे ही मानो उसका मध्यभाग क्षीण हो गया था, मुकुमलता के कण्ठ, स्पर्श करते हुए प्रजापतिकी मानो अगुलि मुद्रा जिसके भीतर सुम गइ शोभा श्रावर्त युक्त गोल नाभि थी, उसकी रोमराजि, कामदेवके द्वारा विजयकी प्रशंसा के लिए लिखी हुई वर्णमाला के समान शोभायमान थी, मदनका पाश्चीय—उसका सुंदर स्तन युग—इस प्रकार बाहर निकला पड़ता था मानो कर्णपानक प्रतिविम्बका अन्त प्रवेश होनेके कारण हृदय, अत्यंत भारके नीचे दबा जानेके हाथसे उसकी सरकाता हो, उसके बाहु वर्णभूषण के नीचे फैलती किरणोंके समान श्रौर निर्मल लावण्य जलमें उगे मृणालदण्डके समान मालूम होते थे, नभस से बरसने किरणोंके मेरुसे उनके दोनों हाथ ऐसे दीपने थे मानो माणिक्य के कण पहननेके भारसे बह कर पसीनेकी धारा गिराते ही, स्वर्णका भार ही मुँके मुँको मानो ऊँचा करता हो इस भाँति ऊँचे करके हरक हरक ही ठोड़ीसा स्पर्श करता था, उसके विदुमलना मंडरा लावण्य होइ, नभसकी लोभ पाए हुए राग सामरसेने उज्ज्वल तरंगित मना कर, उदर भाँति, गुत्तानी कातिके होनेसे, मंदिरा-रस भरे माणिक्य मुक्तिके मधुरक भाँति भावनात ये, उसकी नाकरतिके शीला जानेके रस पान निरालाक भाँति सुंदर लगती थी, उसका नेत्र युगल सुवनादतीके मनेतल किरणोंके त्रिमके मोने अपनी मनेके मार्गम विदुमलना नीला रस मानो मुँके

लाल हो गए थे, उससे सम्पूर्ण सृष्टिको मानो वह नीचनभय करनेको तैयार हुई थी, मद-मत्त बौवन कुजरकी मद-रेखाके समान दोनों भाएँ और राग-युक्त मदनका हृदय मानो वदन पर चिम्का हो ऐसा मन-शिलाके लेपना तिलक विंदु उसके ललाटमें चमकता था, कर्णमें उसने उत्कृष्ट सुवर्णके ताली-पद्म-भूषण मय कर्णपाश पहने थे, जिनमें सोनेके पत्ते हिलते थे ऐसे मरकत और माणिक्यके कुटल पहने थे—उनसे मानो कमलमेंसे मधुधारा छूटती हो ऐसी राका होती थी, ललाटको गुलाबी कर देती, सीमन्त पर पहनी चूड़ामणिमेंसे निकलतीं किरणोंसे उसके लम्बे केश मानो मदिरा रसमें धोए जाते मालूम होते थे, ग्रन्थी अर्ध देहमें प्रविष्ट शम्भुमें गर्विष्ठ हुई गौरीको हरानेकी इच्छासे वह ग्रंग ग्रंगमें व्यापे हुए ग्रनगसे अपना अत्यंत सौभाग्य दिखाती थी, छातीमें स्थापित एक ही लक्ष्मीसे ग्रानदित विष्णुका गर्व हग्नेके लिए वह प्रतिनिधीसे अपने रूममेंसे मानो सैफ़ों लक्ष्मियाको उत्पन्न करती थी, मस्तकमें स्थित एक ही चन्द्रसे विस्मित हुए महादेवका अभिमान तोड़नेके लिए अपने विज्ञास युक्त स्मितसे वह माणो प्रत्येक दिशामें हजारों चंद्र फैलती थी, महादेवके निदर होकर एक कामको जला डालनेसे मानो कुपित होकर वह प्रत्येक दृश्यमें तात्कालिक उत्पन्न करती थी, वह रात्रि-जागरणसे खिन्न हुए पालतू चमत्कान्-निधुनके लानेके लिए मीरा-नादियोंमें कमल-धूलि रूम रेतीके छोटे-छोटे पुलिन बनवाती थी, परिजनोंके नूपुर शब्द सुनकर दाढ़ जाते—ग्रन्थे प्यारे—हस्त-मिथुनको गृणाली रखीमें बाँध लानेकी हस-पालिकाको आज्ञा दे रही थी, गहनोमें जड़े हुए परमात्मा गौरी किरणोंको चाटते पालतू हिरनके बच्चोंको तर्कीके गहनमेंसे निकाल कर एक पमात्तुर देता थी, ग्रन्थी तपधित लताका प्रथम मुञ्चोद्गम विभेदा करके लिए आई हुई मालिनको तब गहनोका दान देकर सम्प्राप्त करती थी, किरण का कुसुमो और फलोंके नरा पत्तोंकी दोनी लेकर आई हुई—

ललाट पर लाली—सीमन्तों नाच न समकनेसे हँस-हँसकर उठते

वाहिनीके पयोवर पर मोतीसे भरी चंद्रलेखाका प्रतिविम पङ्कनेसे वहाँ रोदभिन्दुने भरे नख चिह्न जान कर, पट्टवामकी मुट्टी भर कर वह उम पर फेंकती थी, रा-कुडलका प्रतिविम चमरवारिणीके गाल पर पङ्कनेसे वहाँ 'आर्द्र' शब्द नृत जा कर, प्रमादके गहाने दिया हुआ कर्ण-गहना रख कर हमती ईमती, उमको पङ्क देती थी ।

२२८—पृथ्वीकी तरह उसने ऊँचे कुलके भूराजा सम्मन्त तज स्थि या आर शेष भोग पर स्थित थी । असत लक्ष्मीकी तरह उमका पाद पराम^१ भोग की लाई हुई पुष्पकी रजसे धूसर हुआ था । शरदकी तरह उमने मानम^२ जन्म पत्नीका शब्द उत्पन्न करके नीलकण्ठका गर्न उतारा था । पातीकी तरह उमके उत्तम अंगका आभूषण खेताशुक^३ रचित था । समुद्रके तीर पर उगी हुई वनोंकी कतारकी तरह वह धूमरसे श्याम^४ तमाल कानन युक्त थी । चन्द्र मूर्तिके समान उमके मुख कलावका^५ ग्रहण ग्राह प्राल मदन विवाम

१—पृथ्वीने कुल परंताको दूर दटा दिया था और वह शेषनामके फल पर स्थित थी, कादंबरीने उच्च कुलके राजाश्रोत साथ विवाद करनेसे शनकार कर दिया था और वह विवादके सिवा अन्य भोग पर स्थित थी ।

२—जसंतमें तुंगोका रंग फूलोकी रजसे धूसर हो जाता है, कादंबरीके चरणोम जगा हुआ सुगन्धित रंग भी फूलोकी रालसे धूसर हो गया था ।

३—शरदमें मानसरोवरमें पैदा हुए पण्डितके शब्दमें मयूरोका भाव जाता रहता है, कादंबरीने फिर विद्याएँ हुए कामदेवके भाषोके शब्दों महादेवका घमंड तोड़ा था ।

४—पावतीके मस्तकका आभूषण चंद्रमाकी किरणोंसे समझा है, यी सकेद रेखमका शिरोभूषण ग्रहण करती थी ।

५—श्याम तमालोके बनोमें युद्ध कादंबरीका मुख प्रत्यक्ष रंगों से युक्त था ।

६—चंद्रमाने कामके रथ द्वाकर प्रहस्यतिको नीचे ताराका इराय था, कादंबरीके स्वूत्र निवृत्त कामके विज्ञानसे प्राधान्य दे प्रहस्य त्व कर काम प्रदीक होता था ।

हुआ था । वन राजिकी तरह उसका मध्यभाग^१ श्वेत और श्याम लवली-लतासे शोभित था । प्रभात-लक्ष्मीकी तरह उसका गूङ्गार भास्कर मुक्ताशुसे^२ भिन्न पद्मरागका था । प्राकाश-कमलिनीके समान, उसके स्वच्छ अम्बरमेंसे^३ मृणाल-के समान नीमल उरमूल दीप्तता था । मयूरीकी श्रेणीकी तरह वह नितत्र^४ चुपि शिखड भार देदीप्यमान चन्द्रकांत थी । स्वयंभूकी लताके समान वह फाम^५-फल देनेवाली थी प्रार वह पाम ही, मन्मुग्य बैठे, चन्द्रापीडकी सान्तिमा वर्णन करते, केयूरकमे—वह कान हैं ? किसके पुत्र हैं ? उनका नाम क्या है ? उनका रूप कैसा है ? वय कितना है ? ये क्या कहते थे ? तने क्या कहा ? कहां तक उनको तने देगा ? महारथेतासे उनका परिचय कहांसे हुआ ? यहाँ वे आँसे या नहीं ? वो त्राम्मार चन्द्रापीडके मन्मथकी ही बातें पृथु रती थी ।

२२६—एसी कादम्बरी-रूप चन्द्र-रेखाकी गोभा देखते ही चन्द्रापीडता हृदय मनुदके जलभी तरह उछलने लगा प्रार वह सोचने लगा कि त्रामाने मगी ग्रन्थ इन्द्रयोका भी नेत्र मय क्यों नहीं बनाया ? इन नेत्रोंने एने क्या पुण्य किए हैं जो ये इसको वे गोकटोक देखते हैं ? प्रजापतिने मय रमणीयता का यह एक ही कामा विचित्र भंडार उतार किया है ? एने प्रतिशपद रूपके परिमाणु वह कहांसे लाया होगा ? मुझे मालूम होता है कि इसके बनानेमें, प्रजापतिके राव लगनेके दु रासे, इसके नेत्रोंमेंसे जो आँसुकी बूँदे अपनी उतने

१—धनराजिके भीचमें काली और सफेद लवली-लता होती है, काद-धरीका मध्यभाग श्वेत था और उसमें जरा काली काली सिलवटें थीं ।

२—प्रभात, सूर्यकी किरणोंके कारण खिले हुए कमलोंके रंगने शोभायमान होता है, कादधरीके पद्मरागके महानेकी चमक नौतियोंकी किरणोंके बड़ गई थी ।

३—स्वच्छ आकाशमें मूल नक्षत्र दीखता है, कादधरीके स्वच्छ करडेनेने उसके उरमूल दीखते थे ।

४—मयूर धोखी पक्षीमें चमकते हुए चद्रकोंके मनोहर मालूम होती है कादधरीकी धोखी मनर तक लटकती थी और वह स्वयं चद्रके समान मनोहर थी ।

५—१८ पद, कामका पद ।

वाहिनीके पयोवर पर मोतीसे भरी चंद्रलेखाका प्रतिविम्ब पड़नेसे वहाँ स्वेद मिट्टेसे भरे नख-चिह्न जान कर, पटवासकी सुट्टी भर कर वह उस पर फेंकती थी, रत-कुडलका प्रतिविम्ब चमरधारिणीके गाल पर पड़नेसे वहाँ श्राद्रं दन्त-क्षत जान कर, प्रमादके बहाने दिया हुआ कर्ण-पल्लव रख कर हंसती हैंमनी, उसको नङ्क देती थी ।

२२८—पृथ्वीकी तरह उसने ऊँचे कुलके भूरोंका सम्बन्ध तज दिया था और शेष भोग पर स्थित थी । वसत लक्ष्मीकी तरह उसका पाद पराग^३ भ्रमरोंकी लाई हुई पुष्पकी रजसे धूसर हुआ था । शरदकी तरह उसने मानम^३ जन्म पत्नीका शब्द उत्पन्न करके नीलकण्ठका गर्व उतारा था । पार्वतीकी तरह उसके उत्तम अंगका आभूषण श्वेताशुक्र^४ रचित था । समुद्रके तीर पर उगी हुई बर्नोकी कतारकी तरह वह भ्रमरसे श्याम^५ तमाल कानन युक्त थी । चन्द्र-मूर्तिके समान उसके गुरु कलत्रका^६ ग्रहण अति प्रबल मदन विलाससे

१—पृथ्वीने कुल पर्वतोको दूर हटा दिया था और वह शेषनागके फण पर स्थित थी, कादंबरीने उच्च कुलके राजाओंके साथ विवाह करनेसे इनकार कर दिया था और वह विवाहके सिवा अन्य भोग पर स्थित थी ।

२—वसतमें वृद्धोका रंग फूलोंकी रजसे धूसर हो जाता है, कादंबरीके चरणोंमें लगा हुआ सुगन्धित रंग भी फूलोंकी रजसे धूसर हो गया था ।

३—शरदमें मानसरोवरमें पैदा हुए पत्थियोंके शब्दसे मयूरोका घमंड जाता रहता है, कादंबरीने फिर जिलाए हुए कामदेवके बाणोंके शब्दसे महादेवका घमंड तोड़ा था ।

४—पावतीके मस्तकका आभूषण चंद्रमाकी किरणोंसे चमकता है, री सफेद रेशमका शिरोभूषण धारण करती थी ।

५—श्याम तमालोंके बनोसे युक्त, कादंबरीका मुख अत्यंत श्याम रंगके युक्त था ।

६—चंद्रमाने कामके वश होकर गृहस्पतिकी स्त्री ताराका हरण किया था, कादंबरीके स्थूल नितंब कामके विलाससे आक्रान्त थे अर्थात् उनसे दम कर काम प्रवृत्त होता था ।

हुआ था। वन राजिकी तरह उसका मध्यभाग श्वेत और श्याम लवली-लतामें गोभित था। प्रभात लक्ष्मीकी तरह उसका अङ्गार भास्वर सुक्राशुसे भिन्न पन्नरागका था। आकाश-कमलिनीके समान, उसके स्वच्छ अम्बरमेंसे मृणालके समान नोमल उरमूल दीखता था। मयुरोंकी श्रेणीकी तरह वह नितव चूचि शिखर भार देदीप्यमान चन्द्रकात थी। कल्पवृक्षकी लताके समान वह फल देनेवाली थी और वह पाम ही, मन्मुख बैठे, चन्द्रापीड़की आन्तिका वर्णन करते, केयूरकने—वह कान हैं ? किसके पुत्र हैं ? उनका नाम क्या है ? उनका लव कमा है ? प्रय कितना है ? क्या कहते ? नने क्या मश ? क्यों तक उनको नने देखा ? महाश्वेतासे उनका परिचय कहाँसे हुआ ? यहा वे आयेगे या नहीं ? या प्रारम्भार चन्द्रापीड़के मन्त्रकी ही बातें पृथु री थी।

२२६—एसी नादमयी-रूप चन्द्र-रेखाकी शोभा देखते ही चन्द्रापीड़का दृश्य समुद्रके जलकी तरह उड्डलने लगा और वह सोचने लगा कि प्रमाने मरी अन्य हान्द्रयोको भी नेत्र मय क्यों नहीं बनाया ? इन नेत्रोंने एने का पुण्य किए हैं जो ये हमको वे रोकटोक देखते हैं ? प्रजापतिने मय रमणीयता का यह एक ही कमा विचिा भंडार उत्पन्न किया है ? एने प्रतिशय रूपके परिमाणु वह कहाँसे लाया होगा ? मुझे मालूम होता है कि इनके बनानेमें, प्रजापतिके हाथ लगनेके दु राते, इसके नेत्रोंमेंसे जो आँसुकी बूँदे अपनी उतने

१—वनराजिके बीचमें काली और सफेद लवली-लता होती है, काद-परीका मध्यभाग श्वेत था और उसमें जरा काली काली सिलवटें थीं।

२—प्रभात, सूर्यकी किरणोंके कारण गिले हुए कमलोंके रंगने शोभ्यमान होता है, कादपरीके पन्नरागके गहनोकी चमक नोनियोंकी किरणोंने बढ़ गई थी।

३—स्वच्छ आकाशमें मूल नक्षत्र दीखता है, कादपरीके स्वच्छ रूपमेंसे उसके उरमूल दीखते थे।

४—मयूर धोखी पत्तोंने बनकरे हुए चद्रकोवे मनोहर मालूम होती है कादपरीकी छोटी कतर तक लटकनी थी और वह स्वयं चद्रके समान मनोहर थी।

५—१७ ५४, ५५, ५६ ।

ही ये कुन्द, कमल, कुवलय और कल्हार-युक्त वन उत्पन्न हुए हैं । इस भौति सोच विचारमे ही उसकी दृष्टि कादम्बरीके नयनों पर पड़ी और उसी क्षण—केयूरक वर्णित राजकुमार यही होंगे—यो विचार करती हुई कादम्बरीकी भी, अतिशय रूपके दर्शनके विस्मयसे विस्तृत, दृष्टि उस पर पड़ी और निश्चल होकर बहुत देर तक अपने लक्ष पर स्थिर रही । उसकी नयन प्रभामे घाल हुआ चन्द्रापीड़, उस क्षण, कादम्बरीको देख विह्वल हो गया और पर्यंतके सनान निश्चल देख पड़ा । कुमारको देखने पर प्रथम रोमांच हुआ, पीछे गहन का शब्द हुआ और अंतमे कादम्बरी स्वयं उठ खड़ी हुई । मदन विचारसे ही उसको इस समय पसीना आ गया, परंतु उतावलीसे उठनेका श्रम उसका बहाना हुआ । उसकी गति रोमनेवाला तो उरु-कम्प ही था, परन्तु उसका श्रमपयश, नूपुर-स्वर सुनकर दौड़ आए, हंस-मंडलको मिला । निश्वास चलनेमे उसका वस्त्र काँपने लगा, परंतु चमरकी पवन उसका कारण ममकी गई । अन्तः प्रविष्ट चन्द्रापीड़का स्पर्श करनेके लोभसे ही उसका हाथ उस क्षण आती पर पड़ा, परन्तु वह स्तनोके ढरुनेके बहानेसे रक्खा मालूम हुआ । आनन्दमे उसके नेत्रों में आँसू भर आये, परन्तु हिले हुए कर्णपूरकी कुसुमरज उसका बहाना होगई । लज्जासे ही उससे बोला न गया, परंतु मुग्ध कमल ही परिमलसे आए भ्रमर उसको रोकते मालूम हुए । मदन-त्राणके प्रथम प्रहारकी वेदनाहीसे उसको सीत्कार होने लगा, परन्तु वह फूलोके ढेरमेसे केपड़ेका काँटा छिड़ने के कारण उत्पन्न हुआ दीखा । कम्पसे ही उसका हाथ काँपने लगा, परंतु समाचार कहने आई प्रतिहारीको निवारण करना उसका बहाना हुआ ।

२३०—उस समय कादम्बरीमे प्रवेश करते हुए मदनका भी एक माता दूसरा मदन उत्पन्न हुआ, जो कादम्बरी सहित चन्द्रापीड़के हृदयमे घुसा । उसी ही गंधर्व-राजकुमारीके रत्नाभरणकी प्रभाको तिरोमान^१ समझने लगा, १ में उसके प्रवेशको भी परिग्रह^२ मानने लगा, उसके गहनोके शर २ रुभापण गिनने लगा, अपनी सत्र इन्द्रियोंके हरणको भी प्रवाद मानने दृष्टिको रोकनेवाली, विवाहके समय परव्यूके बीचमे लगाया गया ३। (रत्नेप) ।

२—स्वीकार, कर-ग्रहण ।

लगा प्रौर उसकी देह-प्रभाके मरकमे भी सुरत-समागमके मुखकी स्तना करने लगा ।

२३?—कादम्बरी, मानो बड़े ऋसे कितने ही मरम ग्रागे ग्रामर, बहुत दिनमें दर्शन होनेमे उन्मटित हुई महाश्वेताके ऋसे स्नेह प्रौर उत्कठा-पूर्वक लिपट गई । महाश्वेताने भी उसको अत्यत ऋलिंगन दे कर कहा—सखी कादम्बरी, भारतपरमे प्रजा पीडा-हारी, तारापीडा नामक भूपति है, उन्हेते अमरय उत्तम घोड़ीकी टापोंसे चारों समुद्रों तक अपनी सुहर लगा दी है । उनके यह, निज भुज रूपी शिखास्तम्भों पर विश्रान्त समस्त पृथ्वीरूपी चिन्त युक्त, चन्द्रापीड नामक पुत्र है । दिग्विजयके लिए फिरते यहाँ ग्रा निरते है । शको देखा है तपसे ही यह मेरे प्रकृतिमे निष्कारण मित्र हो गए हैं, प्रौर मरका मग ओइनेसे निरुर हुई मेरी चित्त वृत्तिका भी इन्हेने प्रनामान्य, स्वभाव सरल, गुणोंसे आकर्षण कर लिया है । ऐसे शिवाचार पुत्र, शुद्ध हृदयके, चतुर, अकारण मित्रका मिलना दुर्लभ है । इसलिए म शको यहाँ ऋपूर्वक ल आई है जिसमे, इनको देखा कर, मेरी तरफ तुम भा प्र-पतिना शिवाचार कशिल, प्रद्वितीय रूप, लक्ष्मीका योग्य स्थानमे प्रेम, पुष्पीको रद्द मरका सुग, मरुतलो की देवलोसे धेउता, मानवाय लोचनीकी लजलता, मर मरुतप्रभा एक स्वानमे समागम, साभाग्यभा उत्कर्ष प्रौर मनुष्योकी अक्रान्धता रट मरका, मर लुटारे विषयमे नने इनसे प्रनेक प्रकारसे कह दिया है इन लए—इसको पहले मभा देखा नही—ये समक कर जो लज्जा हो उने दौड़

माथेसे कहनेके लिये ही मानो उमकी एक झूलता ऊँची चढी, उँगलियाँक बीचमे होकर मरकत मणिकी अँगूठियोंकी फिरणें निकलनेके कारण लीला साहब पानकी वीड्डी समेत दीखता उसका हाथ जँभाई आनेको होनेसे मथर मुगता ओर गया, रिसते हुए पसीनेसे सब लावण्यके बुल जानेके कारण खन्नु हुए उसके अयवोंमे प्रतिबिम्ब पड़नेसे चन्द्रापीड मानो फिरता हुआ कामदेव ही ऐसा दीखने लगा—क्योंकि मणि-भूमि पर कुछ लिखते हुए उमके अँगूठेने, मानो मणिनूपुरोंकी झन्कारसे, उसको बुलाया हो, यों वह चरण-नयमे आ पड़ा था, देखते ही तुरंत दोड़ना हृदय मानो जाकर उमे ले आया हो—या 15 उमके स्तनाभ्यन्तरमे दीवता था, और प्रकसित कुमलवती माला जेभी गीप दृष्टिसे उसका पान किया हो—यों उसके गाल पर देखनेमे आता था । फिर उस समय वहाँ चैठी सब कन्याओंकी, जो उसने कुतूहलके कटान उल गल कर देवती थी, कोने तक गई हुई तरल पुतलियाँ, बाहर जानेकी इच्छामे ही मानो, कर्णपूरके भ्रमरोंके साथ फिरने लगीं ।

२३२—कादम्बरी लीला-सहित प्रणाम करके महाश्वेताके साथ पलंग पर चैठी । शीमतासे परिजनोंके द्वारा सिरानेके पास रखी गई, श्वेत अशुक्ल प्रच्छद-पटसे युक्त, सुवर्णके पायोंमे चिन्हित, एक छोटी चौकी पर चन्द्रापीड बैठे । महाश्वेताके सम्मानके लिए कादम्बरीके चित्तका अभिप्राय समझ कर, प्रतिहारियोने मुँह बंद करके, उस पर हाथ रख, शब्द बंद करनेका मन्तव्य करके वेणुका मन्त्र, वीणाका गोप, गीतकी ध्वनि, और मागधियाका जय शब्द, गा जगह बंद करा दिया । फिर एक दासी शीमतासे पानी ले आई । उमके कादम्बरीने खुद उठ कर महाश्वेताके चरण बोए और अपने दुःखमे उनकी पोंछ कर फिर वह पलंग पर जा चैठी । चन्द्रापीडके चरण भी, काम-म्बरीके सम्मान, उसकी विश्राम-पात्र मदलेगा नामक प्राण प्रिया कानोंमे इच्छा हठसे धोए । फिर कर्णभूषणकी प्रभासे आए हुए स्त्रियों पर प्रेममे फेरती, भ्रमरके भासे लचे हुए कर्णपल्लवको उड़ालती, चमरकी पानोंमे शीमताके केशोंकी लटोंको मँचारती महाश्वेता कादम्बरीमे कुशल पूछने लगी—परतु कादम्बरी तो सखीका ऐसा प्रेम देव, अपना परमे रहना मानो एतदर्थ अथवा जान, कुशल होनेसे ही मानो लजित होती हुई कष्टसे अपनी दुःख ।

कर नहीं। इस समय त्रास शोकानुभूति थी और महाश्वेताके सुखकी ओर देख रही थी तो भी, ज्ञान फँसनेमें मिलती चञ्चल पुनर्जीविते जितका मध्यभाग विचित्र दीप्ता का, ऐव नेत्रोभो, वज्र चटा कर खडा, भगवान् व्रतग, वासर वनमें चन्द्रापीडको मानो दुःख देनेहीने, उसकी ओर ले जाता जो आरत उन्हें नर नहीं सकती थी। उसी क्षण अपने पाम श्रेणी सन्निभके गाल पर चन्द्रापीडका प्रतिविम्ब देखा कर उसको ईर्ष्या होने लगी, स्तनोके रोमाञ्चित ने जानेका कारण उनमें पडा उपमा प्रतिविम्ब नष्ट होनेसे वह विभोग दुःख भोगने लगी, पर्वनेमें तर हुई चन्द्रापीडकी छातीमें पुनर्जीविते प्रतिमा देख कर उसको पुनर्जीविते पर रोष प्राने लगा, निम्नसे दौर्भाग्यका शोक करने लगा प्राण प्राना प्राणोंमें प्रानन्द जल भर जानेसे जब उसे देख न सकी तब प्रथमका दुःख होने लगा।

अत्यंत वेगसे आगे दौड़ आई हों, बढ गई हों, वा हंसती हों ऐसी दीरती थीं और (कादम्बरी के हाथके) स्पर्शके लोभसे उनमें तत्काल प्रवेश करती— राग-युक्त—पॉचों इन्द्रियोंके कारण, मानो, अन्य प्रकारकी उंगलियाँ धारण करता था । तत्काल सुलभ विलास दर्शनके मानो कुतूहलसे सब रस न जाने कहाँ कहाँ से आकर कादम्बरीमें बस गए और उसने, लक्ष्य न दीखनेसे शून्यम फैलाए हुए जिसके नख-किरण चन्द्रापीड़के हस्तको मानो ढूँढनेके लिए ही आगे आगे दौड़ते थे, और कंसे हिलते कंकणके शब्दसे जो मानो सम्भाषण करता था ऐसे हाथसे, स्वेद-जल-पात-पूर्वक—अनंगसे अर्पण की हुई इस दासीका ग्रहण करो, यों कह कर मानो अपना ग्रहण कराती, आजसे मेरा जीवन तुम्हारे हाथ है—यों कह कर, मानो अपना जीवन ही रखती हो, यों—उस पानकी वीड़ीको चन्द्रापीड़के हाथमें रक्खा; परन्तु स्पर्श-तृष्णासे भुक्तताके साथ आया हुआ, काम-त्राणसे बीचमें छिरा हुआ अपना मानो हृदय हो ऐसा, रस-बलय कोमल हाथ खँचतेमें निकल पड़ा । उसकी भी खबर नहीं पड़ी । फिर दूसरी वीड़ी लेकर उसने महाश्वेताको दी ।

२३४—इतनेमें सहसा एक मैना जल्दी-जल्दी आई । उसके चरण कुमुदोकी केसरके समान पीले थे, मुख चंपाकी क्लीके आकारका था और पाँव कुबलय-पत्रके समान श्याम थे । इस कारण वह मानो पुष्प-मयी थी । उसके पीछे पीछे एक इन्द्र धनुष सदृश तीन रंगका कठला गर्दनमें पहने, प्रगलाहुर सदृश लाल चौंचवाला और मरकतकी कातेके समान पद्म मूलजाला तोता मंद गतिसे चला आता था । वह मैना कोचमें बोली—भर्तृदारिके कादम्बरी, क्यों तुम इस, मिथ्या सौभाग्यसे गर्विष्ठ, धृष्ट, नीच तोतेको मेरे पीछे पीछे उल्लसते नहीं रोकती हो ? जो तुम मेरे परिभयकी परवा न करोगी तो मैं प्रवशः प्राण दूँगी । मैं तुम्हारे पाद-पङ्कजके स्पर्शकी शपथ लाकर सत्य करती हूँ ।

कर कादम्बरी तो मद-मंद हँसने लगी परन्तु महाश्वेताको इस बातकी खबर नहीं थी इससे उसने मदलेखासे पूछा कि यह मैना क्या करती है ? उसका जवाब—भर्तृदारिका कादम्बरीकी सखी यह कालिन्दी साग्नि है । उसका इस परिहास नामके तोतेके साथ इन्होंने पाणि-अदृष्ट कर कर व्याहृत किया है । परन्तु आज प्रातःकाल इस मैना ने कादम्बरीको ताम्बूला-चाड़िनी बनाकर

अनेलेमें हम शुकुमो कुञ्ज कहते देखा तबसे यह ईर्ष्या करने लगी है और कीरसे रूठ कर अत्र न उमके पास जाती है, न उमसे बोलती है, न उमका स्पर्श करती है और न उमकी ओर देखती है, हम सबने उसको अनेक प्रकारसे मनाया, परन्तु वह नहीं मानती ।

२२५—यह सुन कर चन्द्रापीड़, जिमके गालोंके बीचके भागका फड़कना साफ दीगता था, मद मद हँस कर बोला—यह बात ठीक है, राजगृहमें फर्ण-परंपरासे सुनी जाती है, परिजन भी ऐसी ही बातें करते हैं, बाहरके लोग भी ऐसी ही कहते हैं, दिगन्तरोंमें भी ऐसी ही कथा सुनी जाती है, और वो हमने भी सुना है कि कादम्बरीकी ताम्बूव गहिनी तमालिकाके साथ प्रेमने फंसा परिहास नामका तोता कामके बश हो कर यह भी नहीं जानता कि दिन गिनत तरह मीते जाते हैं । इसलिए यह दुष्टाचारी, निज बलवत्प्रागी, निर्दय हमके साथ रहे, परन्तु कादम्बरीको क्या यह उचित है कि ऐसी चरला दुष्ट शक्तीसे नहीं रोमती है ? अथवा देखने प्रथम ही हम विचारी कातिन्दीसे ऐसी अतिवारी तोतेसे देख कर अपनी निस्नेहता स्पष्ट कर दी है । अब यह विचारी क्या करे ? क्योंकि सपत्नी होना त्रिषोके बोपका प्रधान कारण है, पिराग उत्तम होनेका मुख्य हेतु है और परामवका बड़ा स्थान है । इसमें राजा पैर है, बनेकि इत्ने क्षाने मर दुर्भाग्यसे पराम्य हो जाने पर विप भक्षण नहीं किया, अत्रि प्रवेश नहीं किया अथवा भोजन परित्याग नहीं किया । त्रिषोरी लक्षुनाका कारण इतने जमाने अन्य कोई नहीं है । जो यह इतना राजा प्रताप होने पर भी कदाचित् जोके पितृसे प्रसन्न हो जायगी तो इससे विचार है और तबसे इत्ने निरद्वन्द्व-पूर्वक त्याग कर इतने दूर रहना चाहिए । इतने फिर नोन बात करेगा ? कौन इसकी ओर देखेगा ? और कौन इसका नाम भी लेगा ? कादम्बरी तदिन तब ५ माह, जो इतने गर्व बदनो समक गई थी, चन्द्रापीड़के नापटसे किलकिला कर लगे ली । परन्तु जो दुर्भाग्यसे बोनल बदन हुए कर निशान लोग करने लगे—हो व-पुन, परन्तु जो रोसिमार है । बचल जेने पर ना हाररे अना प्रसन्न करके जोतेन प्रनेकाला गरा है । ऐसी बनेकि ने बह ना लगे । है, परन्तु नापट ना इतने ज्ञान है, रजदने रदेके इतना मने भी बुरी नहीं है । इति ए प्रम सुन रहे । नापटकोके चक्र नामक

इस पर कुछ प्रभाव नहीं होगा। यह मधुरभाषिणी जो प्रेम प्रसन्नता का समय, कारण, प्रमाण, विषय और प्रसंग सब जानती है।

२३६—इस बीचमें कंचुकीने आर महाश्वेतासे कहा—प्राणमतो, राजा चित्ररथ और रानी मदिरा तुमको मिलनेके लिए बुलाती हैं। यह सुन कर जानेकी इच्छासे उसने कादम्बरीसे पूछा—सखी, चन्द्रापीड कहीं उतरेगे? क्या दुःअनेक स्त्रियोंके हृदय रूपी स्थान उनके रहनेके लिए पयात नहीं हैं?—यो विचार कर, जरा मनमें हँस कर, कादम्बरीने प्रकट कहा—सखी महाश्वेता, तुम ऐसा क्यों कहती हो? जबसे दर्शन हुए तबसे इस शरीरके भी ये ही स्वामी हैं तो फिर महल, विभव और परिजनकी तो बात ही क्या है? जहाँ ये चाहे अथवा तुम्हें अच्छा लगे वहाँ सुखसे रहे। यह सुन कर महाश्वेता ने कहा—तब तो तुम्हारे महलके समीपवर्ती प्रमद-वनमें कीड़ा पर्वत पर माणव्य महलमें ठहरें—और वह गवर्धराजसे मिलने चली गई।

२३६—चन्द्रापीड भी उसके साथ ही बाहर निकला, और उसके पितादत्तके लिए कादम्बरीकी आज्ञासे प्रतिहारी द्वारा भेजी गई—वीणा बजानेवाली, गण बजाने में निपुण, संगीतकलामें प्रवीण, जूआ खेलनेमें अनुसक्त, शतरंजमें चतुर, चित्र-कर्ममें श्रम करनेवाली, सुभाषित पढनेवाली—फितनी ही कन्या प्राणके साथ, पहले देखे हुए तथा कैयूरकके बताए हुए मार्गमें, कीड़ा पर्वत पर मणि मंदिरमें गया।

२३७—उसके गए पीछे तुरंत ही गवर्धराजपुत्री सब सगीजन और परिजनको विदा कर केवल थोड़ीसी दासियोंको ले कर महल पर चडी। वहाँ पर लौट गई और विनयवती परिचारिकाएँ दूर खड़ी हो कर उमंग हुईं कुछ मनोरंजन करने लगीं परन्तु वह अनेकी, उस क्षणमें—चपला, यह क्या करती है? यों कह कह मानो लज्जा उसको पकड़ती हो—गवर्धराजपुत्री, यों कह कह मानो योग्य है? यों कह कर विनय मानो उसको उताड़ना देना ही—कहाँ गया तेरा शूदार रसानभिज्ज बाल-भाज? यों कह कर मानो सुभाषिता उसकी ईसी करती हो—स्वरिणि, अकेली यथेष्ट अविनय मत कर! यों मानो तुम्हारा भाव कहता हो—अरे भीव, यह कुनीन कन्याप्रोक्षी रीति नहीं! यों कह कर मानो महत्त्व गर्हणा करना हो—दुर्गचारिणी, अविनय मत कर! यों कह कर

प्राचार मानो पटमारता हो—प्ररी नूड, मदनने तुम्हे तुच्छ कर जाला । यो
 मद्दर मानो कुलीनता शिक्षा देती हो—तेरा हृदय क्यों ऐसा चञ्चल हो गया ?
 यों कह कर धैर्य मानो लानत देता हो—स्वच्छंदचारिणी, तैने मुझे भी न
 गिना । यों कह कर मानो कुलमर्मादा निन्दा करती हो—यो न मालूम कहींसे
 ऐसी चेना आनेसे प्रत्यन्त लजित दीखने लगी ।

२३८—फिर वह विचार करने लगी कि मने हताश और मोहान्व हो कर,
 कुछ शया मिना, हृदयकी तरलता प्रकट कर यह क्या किया ? भेग और उनका
 यह पहला ही साक्षात्कार था—इसकी भी मने हृदयार्पण-रूप साहस करनेमें कुछ
 शया नहीं थी, लोग मेरे मनको चञ्चल प्रतारवेंगे—यह भी मने निर्लज्जताके
 पारण नहीं गिना, उनकी चित्तवृत्ति केंपी है—उसकी मुझ मूजाने पीना नहीं
 था, म उनके दर्शन योग्य हैं या नहीं—यह भी मुझ तरलाने विचार कर नहीं
 द था, उनके मग प्रणय स्नानार न करनेसे जो आकुलता रोगा उसका भी न
 नहीं हुआ, गुहजनका कुछ उर न हुआ, लीलापदादका उद्वेग न मिया, प्रार
 फिर महाश्वेता तु गिना है—यह मुझ विषय हीनाने देखा नहीं, पिच्छली
 मन्त्रों भी देखी होगी—इसका मुझ मन्द बुद्धिको शान न रहा, पर दर्शन
 लज्जत देवाते शगे—यह मुझ गल चेतनाने देखा नहीं, मोक्ष बुद्धिवाले तो ऐसे
 प्रायः सबको समझ लेगे, पर मदनवृत्ताजका अनुभव करनेवाली महाश्वेता
 सना पलाप्राने बुराता लपिमा, और राजकुल-सचार चक्र—किस चैत्र
 प्रायः सबको समझो—दासिपत्नी तो बात ही बना है ? ऐसी बातने मे
 रत'पुत्री वातवती एहि और न विपुण होता है । मुझ प्रवर्तनीयता नर्दय
 तस ली य ।

पहले कभी देखा न था, जिनका मुझे अनुभव नहीं था, जिनका नाम भी मैंने सुना नहीं था, जिनका चिन्तन कभी किया न था और जिनका कभी अनुमान भी न किया था, ऐसे यह कोई मेरी विचित्रता करनेके लिये ही आए वीरते हैं कि जिनके केवल देखनेसे ही मेरी इन्द्रियोंने मानो मुझे बाँव कर उनके अधीन कर दिया है; शरपंजरमें डाल कर मदनने मानो मुझे दे दिया है, दामी करके अनुराग मुझे ले गया है; और हृदयने उनके गुणोंके बदलेमें मानो मुझे बेव दिया है; इस भाँति मैं उन्हींकी सेवाकी वस्तु हो गई हूँ । अब मुझे उन चाल से कुछ भी काम नहीं है—ऐसा-सकल्य उसने कुछ देर तक किया कि तुरंत ही—मिथ्या विनीते, जो मेरा काम नहीं तो ले मैं यह चला—यों, हृदय कौपिण्यसे चलायमान हुए अंतर्गत चन्द्रापीड़ने मानो उसका उपहास किया हो; उनके परित्यागके सकल्पके साथ ही गहूर निकलते उसके प्राणने कण्ठ पर गार मानो गज्जा माँगी हो, अरी मूर्ख, आँखें धोकर फिर देख कि वह पुण्य परिष्कारके योग्य है या नहीं—इस भाँति उस समय आए वाष्पने मानो उससे कहा हो, और तेष धैर्य में प्राणके साथ ही निकाल डालूँगा—यों माना अनगने उसे फटकारा हो—इस प्रकार फिर पहलेहीनी भाँति उमका दृश चन्द्रापीड़की ओर झुका । इस तरह सब उभाय निष्फल होनेके कारण प्रेमोश से स्वतंत्रता खोकर, पर-वशकी भाँति उठ कर, लिङ्गकी भी जालीमेंसे कीर्ण पर्वतको देखती देखती वह खड़ी रही । वहाँ खड़ी खड़ी आनन्द बलक प्रतिबंधसे मानो उद्विग्न होकर नेत्रोंसे देखनेके बदले वह उसे स्मृतिसे देगन लगी ! उँगलियोंमेंसे पसीनेभी बूँदें टपकनेके कारण विगड़ जानेक माना डरसे कलमसे चित्र काटनेके बदले, केवल भावनासे ही उसकी तस्वीर खींच लगी, रोमोद्गमसे विग्न होनेकी मानो शक्तिसे छातसे लिपटनेके बदले वह आलिंगन करने लगी, और उसके समागम होता मिलन सदन पर । जो अशक्त होकर, दासीके साथ सदेश भेजनेके बदले, अपने मनकी ही के पास भेजने लगी ।

२३६—चन्द्रापीड़ भी, कादंबरीका मानो दूसरा हृदय हो ऐसे, लज्ज मणि-गृहमें प्रवेश करके शिलातल पर तिष्ठे गलीच पर लेट मानो उसके दोनों ओर, एक दूसरे पर-बहुतसे तक्रिए लगे थे ।

केयूरकने उसके चरण गोदमे ले लिए, और वे कन्याएँ निद्रिष्ट स्थान पर उसके आश्रयण आ बैठीं । तत्र वह चित्तमे व्याकुल होकर चिन्ता करने लगा कि सर्व्वराजपुत्री कादम्बरीके क्या वे ऐने सर्व्वलोक हृदयहारी विलास स्वाभाविक हैं या त्रिना आराधनाके प्रसन्न होकर भगवान् मकरध्वजने मेरे लिए करवाए हैं, जिससे कि वह मुझे अधुने भरी, राग-युक्त, और हृदयके भीतर लगे कायनायके पुण्यपी रज पड़ी हो इस भाँति जग मीची हुई श्रौणोने कटाक्ष करके देखती है । मं जत्र उसकी और देखता हूँ तत्र वह लजा कर वल्लके समान श्वेत मित प्रभाने प्रपना प्राच्यादन कर लेती है । मुझसे शर्मा कर मुँह फेर, मानो मेरे प्रतिप्रियको प्रवेश करानेके लालचसे, वह अपने गाल रूमी दर्पणको मेरी तरफ कर देती है । मुझे अचमल देनेवाले हृदयकी प्रथम प्रविनयनी मानो देखावो वह अपने नयने नयन पर क्षिपति है । मुझे मीठी देनेमे वेदसे जाँगते अपने हाथमे—जिहवी रक्त बनना धमक पर प्रमराके गुण्ड इधर उधर घूमा करते वे—मानो जगता स्वयं लेखर पर लिख हुए गुल पर दया करती है ।

२४०—वह फिर विचारने लगा कि प्रायः यह ननुप जाति जलन शब्दों से, ऐसे ऐसे एगारी भिन्ना समस्त क्या क्या कर, मुझे छुपाती है, प्रपन्न अपने रति मंग नद या मदन उन्नाद करता है, कसोके विनिर प्रवृत्त हृदयुगीना हृदयो प्रलपतुगी भी बहुत लगता है, जराते खेदना नी ललके जगता मंग पद बहुत प्रित्कार कर देता है, स्वयं ही पैदा को हुई प्रवृत्त जगता शक्ति प्रवृत्तार तगला, कसिमी उदकी तरह, विनदी उभेदा नहीं

१—नेत्र रोग, विचार-भ्रम-वर्ता ।

२—प्रपन्न, काम विचार । प्राथम यह है कि विचारहीन मोहमान कसोके जराते वा विचारको बहुत समस्त लेते हैं ।

३—जैज प्रेत । जैसे जलने गेरनेसे जराता लेख नी लेख जाता है जल प्रेत प्रपन्न करताही प्रीतिको नी जल वाके गेरनेके कारण बहुत बड़ी समस्त लेते हैं ।

४—प्रिय, विचार । जैसे कसिमी उदकी लीक स्वयंसे बहुत मोह चित्तमे प्रवृत्त हृदयो विचार कसिमी उदकी लीक स्वयंसे बहुत मोह चित्तमे

करती है ? चतुर अनगसे^१ गृहीत तद्वग पुत्रोही चित्त-वृत्ति, चित्त माउनेही सूचीकी तरह, कुछ नहीं काढती यो नहीं है, रूपसे गर्भिणी^२ हुई वेश्याके समान प्रात्म-संभावना कहीं आत्मार्पण नहीं करती यों नहीं है । मनुष्य का मनारथ, स्वप्नके समान, अननुभूत वस्तुका भी दर्शन करा देता है । जादूगरके मोग्गलके समान प्रत्याशा असंभावितको भी लाकर आगे रखा देती है । फिर विचारने लगा कि यों मनको केवल वृथा खेद देनेसे क्या लाभ ? जो कदाचित् उन मन नयनाकी चित्त-वृत्ति मेरी ओर वस्तुतः ऐसी ही हो गई है तो योही देरमें बिना प्रार्थना ही प्रसन्न होकर भगवान् कामदेव उसे प्रणत कर देगा, और नहीं यद सशय दूर करेगा । ऐसा निश्चय कर, उठ कर बैठ गया, और उन कन्यागाने साथ पासोंसे, गानेसे, वीणा बजानेसे, ढोलकी बजानेसे, निषादादि स्वरके मोमल मंत्रादि सदेहके विवादसे, सुन्दर वार्ताओंसे, और ऐसे ही अन्य आलाप गार सुकुमार कला विलाससे विनोद करने लगा । इस प्रकार वहाँ योही देर उर कर, बाहर जाकर उपवन देखनेकी इच्छासे, वह हीड़ा पर्वतके शिखर पर चडा ।

२४१—ऋद्धरी उमें देखते ही, महाश्वेताको आनेमें देर हो गानेसे उत्तका मार्ग देखनेके बहाने, कामातुर चित्त हो उस रिङ्गीको छोड़, अपने मटलकी सबसे ऊपरकी अटारी पर, पावती जैसे कैलास पात पर चढती गे उन प्रकार, चढ गई । वहाँ उमके साथ योही ही दासियाँ थीं, पूर्ण-चन्द्रमंडलके समान श्वेत स्वर्ण दंडकी छड़ी उम पर धूम रोझनेके लिए लगाई गई थी— फेनके समान सफेद चार छोटे छोटे पखे हिला कर दासियाँ उसकी पान करती थीं, और सिर पर फूँचोंकी सुगंधसे लज्जा कर घूमने प्रमरोमा मानो काला उम

करती है उसी प्रकार कामी लोग अपने आप पैदा की हुई प्रत्येक इष्ट वस्तुमें इच्छासे व्याकुल होकर किस किस वस्तुकी अभिजाता नहीं करते हैं ?

—चित्रमर्ममें कुशल मदन जैसे बूची डायमें जेकर चित्र ६११ ६११ जो तरह चतुर कामदेवके यशमें हुई युवकोंकी चित्तवृत्ति भी १४३३ १४३३ लेती है ।

२—जैसे चेरमा अपनेको नेट कर देती है, उसी तरह आनसना ११६ ११६ कारण लोग सबको अपना समझते हैं । आत्म-संभावना = प्रीति ११६ ११६ चडा समझना ।

दिनमें भी अठ कर पर चन्द्रापीड़की अभिसारिका होनेके बेपना अभ्यास करती थी । वहाँ चार चार कभी चमर शिलाका सहारा लेकर, कभी छत्रदंडका अवलम्बन कर, कभी तमालिकाके पत्रे पर टाय कर कर, कभी अरुनी सखी मदलेखा का आनिगन कर, कभी पवित्रनामे शरीर ढरु जानेके कारण केवल अर्धवर्षकी वोरने देग्न कर, कभी इस तरह फिर फिर कर जिसमें ललाट पर तीन दिजवटे पड़ जायें, कभी प्रियारीकी छड़ीकी मूठ पर गात रख कर, कभी निश्चल हाथने ली हुई भीड़ी होडक प्रागे चार चार पर कर और कभी कमल केरु कर उनमें प्रहार करनेसे दाँड़ती दायीके पीछे निगने ही उदम चलकर, हँसती रगती पर चन्द्रापीड़से देग्नने लगी और चन्द्रापीड़ उसे देग्नने लगा । ना करने करते बहुत काल बीत गया, पर साजुम नहीं हुआ ।

गई जल फिरणोंसे भवनोंको श्वेत रूप देती मदाकिनी पृथ्वीतल पर आ गई ।

२४४—जिस दिशामेंसे वह प्रकाश आता था उस प्रार कुतूहलसे नेत्रोंके तो बहुतसी कन्याओंके बीचमें मदलेताको आती देखा । उसके ऊपर सफेद छत्री लग रही थी, और दोनों ओर दो चनर झलते थे । कादम्बरीकी प्रतिहारिने अपने बाएँ हाथमें बैतकी छड़ी और गीले रुमालसे दायाँ चन्द्रन लेपसे युक्त, नारियलका सपुट ले रखा था और दक्षिण हाथसे म. लेखाके हाथको सहारा दिया था । फूँक मारनेसे उड़ जायँ ऐसे, साँपको काँवलीके समान दण्ड, कल्पलताके दो धुले वस्त्र पहने केयूरक मार्ग बताता जाता था । हाथमें चमेज़ीके फूलोंके गजरे पहने तमालिका उसके पीछे पीछे आ रही थी । उसके पास ही तरलिका चलती थी, जिसके हाथमें सफेद रूपरेसे ढकी एक छोटीसी टोकरीमें क्षीरसागरनी धवलताका मानो काण्ड, चन्द्रके सहोदरके समान प्रभा वरसाना अत्यन्त शुद्ध एक हार था । वह नारायणके नाभि-रूपतके मृणाल दण्डके समान, मंदरा-चलके द्वारा उलान हुए दोभसे उठे ग्रन्थके फेरा पिंडके समान, मथा-श्रम होनेमें छोटी हुई वासुकी नामकी काँवलीके समान, पितृ-गृहके विभोगसे गल कर गिरे लक्ष्मीके हाथके समान, मंदरा-चलके मथन करनेसे कुचली हुई चन्द्रमा की मय कलाओंके लंगके लंबय के समान, सागर-चलमें से उठाए प्रतिप्रित तारागणके समान, दिग्गता की सूँडमें से गिरते जल कणके पुँजके समान, मदन गजके नाना माता नामक आभरणके समान, शरदके मेघके टुकड़ोंका मानो बनाया गया, कादम्बरीके रूपसे ब्रह्म हुए मुनिजनोंके हृदयोंका ही मानो रचा गया, सव स्त्रीसिरोमणि, सव सागरोंका मानो एकत्र किया गया यश-समूह, चन्द्रमाका मानो प्रतिपद् और चन्द्रिकाके प्राणके समान था । लक्ष्मीके हृदयके समान, चन्द्रके समान उसके कर मृणाल चलय प्रलय^२ थे, शरद् चन्द्रनी ॥ १ ॥

१—लक्ष्मीका हृदय जल सूँद के समान चंचल है, दारके मजबूत नहीं है सूँदके विदासके समान था ।

२—जामातुर के हाथ मृणालके उद्योते ध्वज होते हैं, दारकी चिरी मृणाल चक्रके समान चंचल थीं ।

गई जल फिरणोंसे भवनोंको श्वेत रूप देती मदाग्निनी पृथ्वीतल पर या मरु १
 २४४—जिस दिशामेंसे वह प्रकाश आता था उस प्रार कुम्भसे ने
 फेंके तो बहुतसी कन्याओंके बीचमें मदलेपाको प्राती देगा । उसके ऊपर
 सफेद छत्री लग रही थी, और दोनों ओर दो चमर झलते थे । हाथमें
 प्रतिहारीने अपने बाएँ हाथमें चैतकी छड़ी और गीले रुमालसे दाह,
 चन्दन लेनसे युक्त, नारियलका सपुट ले रक्खा था और दक्षिण हाथमें
 लेखाके हाथको सहारा दिया था । फूँक मारनेसे उड़ जायँ ऐसे, सागरी
 कौचलीके समान सख्खु, कल्पलताके दो धुले पत्र पहने केगूक माग ताता
 जाता था । हाथमें चमेजीके फूलोंके गजरे पहने तमालिका उसके पीछे पीछे
 आ रही थी । उसके पास ही तरलिका चलती थी, जिसके द्वारा सफर
 रूपसे ढकी एक छोटीसी टोकरीमें क्षीरसागरभी धवलवाहा मानो क्षरण, १
 के सहोदरके समान प्रभा वरसाता अल्पन शुद्ध एक ढार था । यह तासगणके
 नाभि-रुमजके मृणाल दण्डके समान, मंदरा-चलके द्वारा उताज हुए गोभर
 उठे अमृाके फेफिडके समान, मथान-अन होनेमें छोटी हुई तामुला सागरी
 कौचलीके समान, पितृ-गृहके वियोगसे गल कर गिरे लक्ष्मीक हाथके समान,
 मंदरा-चलके मथन करनेसे कुचली हुई चन्द्रमा की मर कवाप्रति संज्ञक
 संवय के समान, सागर चलमें से उठाए प्रतिविम्बित तासगणके समान, १
 की खूँडमें से गिरते जल कणके पुँजके समान, मदागणके नाममा
 नामक आभरणके समान, शरदके मेवके दुर्गोंका मानो बनाया गया, हाथमें
 के रूपसे बरा हुए मुनिजनोंके हृदयोंका ही मानो रखा गया, मर सागरी
 शिरोमणि, सत्र सागरोंका मानो एकत्र किया गया बरा समूह, चन्द्रमाका नाम
 प्रतिपत्त आर चन्द्रिकाके प्राणके समान था । लक्ष्मीके हृदयके समान, १
 द्वार कमल पत्रके ऊपर ही जल की बूँदके विभावके समान ११११ १,
 कामातुरके समान उसके कर मृणाल पत्र ११११ १, शरद ११११ १ ।

१—लक्ष्मीका हृदय जल बूँद के समान चमक १, हाथके मथन १
 जलकी बूँदके विभावके समान था ।

२—कामातुर के हाथ मृणालके पत्रोंके बरा होते हैं, हाथके मथन
 मृणाल पत्रके समान पत्र थी ।

तन मुक्ताशुसे^१ दिशाश्रों को श्वेत करना था, और मदाकिनीके प्रवाहमी तरह वह देवांगना-स्तन^२-परिमलवाही था । उस हारको देख—चन्द्रिमाभो भाग करनेवाली इस धवत्तताका कारण यही है—यों निश्चय कर, दूरसे चन्द्रापीड़ने श्रम्भुत्थानादि योग्य उपचार विधिसे, आती हुई मदलेखामा स्वागत किया । आकर वह उमी मरकत शिलातल पर थोड़ी देर बैठी, परन्तु फिर फौरन उठ कर चन्दन रसका उसने चन्द्रपीड़भो लेप किया, दोनों वस्त्र पहनाये, मालती के फूनोंकी मालाओंसे शेखर की रचना की और हार लेकर कहने लगी—राजपुत्र, श्रहंनार-रहित आपकी मनोहर कौंति प्रीति परवश जनसे क्या क्या नहीं करसकती है ? आपका विनयही ऐसे प्रीति-परवश जनोको आपके सन्मुख आनेका श्रवकाश देता है । आप इस आकृतिसे किसके जीवनके स्वामी नहीं है ? यह आपका निष्कारण स्नेह-मय चरित्र देख कौन आपका बन्धु न होगा ? आपका यह मधुर प्रकृतिमा व्यवहार किसको मित्र नहीं करता ? स्वभावसे ही सुकुमार वृत्तिवाले आपके गुण किसका समावासन नहीं करते ? दोष तो आपकी आकृतिहीका है कि वह प्रथम दर्शनमें ही ऐसा विश्वास उत्पन्न कर देती है, नहीं तो आपके समान-सकल भुवनमें विख्यात महिमावाले-पुरुषोंके साथ चाहे जैसा वर्तान करना अनुचित सा लगता है—सभापण से भी मानो लघुत्व होता है; आदरसे भी मानो प्रभुताका गौरव सूचित होता है, स्तुतिसे भी मानो स्वाभिमान प्रकट होता है, उपचारसे भी मानो चपलता दीजती है, प्रीतिसे भी मानो आत्म-ज्ञान का श्रभाव मालूम पड़ता है, विज्ञापना भी प्रगल्भता के समान मालूम होती है, सेवा भी चपलता-सी दीजती है, और दानसे ऐश्वर्यका तिरस्कार सा होता है—आशय यह है कि जिसने स्वयं हृद्रयका ही ग्रहण कर लिया उसको क्या दिया जाय ? जीवितेश्वर के लिए करने को क्या रह जाता है ? यहाँ पधार कर आपने जो प्रथम ही बड़ा उपकार किया उसका बदला क्या हो सकता है ? दर्शनसे ही आने हमारा जीवन सफल किया;

१—चन्द्रमा मेघोंसे छोड़ी गई किरणोंके समूहसे दिशाश्रोंको सफेद करता है; हार घने मोतिप्रोंकी किरणों से दिशाश्रों में चांदना कर देता था ।

२—मदाकिनीका प्रवाह देवांगनाश्रों के स्तनोंके लेपकी सुगन्ध धार करता है, हारका देवांगनाश्रोंके स्तनोंके साथ रदु-सयोग रह चुका था ।

आपका आगमन हम किस प्रकार सफल कर साती है। इस विषय में
 मादम्बरी आपको अपना केवल प्रेम शिगाना चाहती है, विभवा नहीं, यद्यपि
 का विभव दूसरों के लिए होता ही है, यह कुत्राभर करने की बात है।
 है, इसलिए विभवकी बात तो यहाँ है ही नहीं। आपके समान नयनकी
 दासी होकर रहने से भी वह कुत्रायोग्य हम्म करती नहीं करी जायगी,
 अपनी आत्मा आपको समर्पित करे तो भी वह छुली गई नहीं करी जायगी,
 और जीवनका त्याग करे तो भी उसको कभी परित्याग न होगा, क्योंकि
 सज्जनों की मर्त्ता प्रणयिजनका निराकरण करनेके पराश्रम्य और मन्त्रा के
 अभी रहती है—कुत्रा देते हुए जितनी हमने शर्म पायी है उतनी तो
 माँगते हुए भी नहीं प्रायी। इसलिए इस व्यापारसे वास्तविक कादम्बरी माना
 अपनेसे आपकी आराधनी मानती है। यह द्वार प्रमृता मयन करके विभव
 गए सब स्तनोमि से बचा शेष नामका है इसलिए भगवान् जवाबका यह
 बहुत प्रिय है। उन्होंने पर जाने पर वरुणको दिया था। उन्होंने माँस
 को, और गदर्वराजने कादम्बरी को दिया। उसने यह प्राणुण्य आपका शर्मक
 योग्य देव, चन्द्रका योग्य स्थल आकाश ही है पुत्री नहीं, यह विचार हम पाक
 वास भेजा है। यद्यपि आप नसे सत्पुरुष अपने शरीर का गुण-गुण को
 आभूषणोसे अलकृत गिन कर, अन्तर्जनोंका प्रिय आभरण, लक्ष्मीके
 कर, नहीं वारण करते तो भी यहाँ कादम्बरीकी प्रीति ही कारण है। का
 भगवान् नारायणने कस्तुभ नामक शिलाके टुकड़ेको, लक्ष्मीका यज्ञके
 कर, बहुत मानसे अपनी आत्मी पर नहीं पाना ? नारायण कुत्रा आपका शर्म
 नहीं है, कान्धुभमण्डि जरास गुण-लेखन भी शेषक यह कर पाये है, प्रा
 ही अनुकृतिम कादम्बरीका भगवती लक्ष्मी का भी नहीं कर पायी है।
 इसी उमका मान रखना चाहिए—जैसे प्रीति का नाम प्रकृत का

तट पर तारागणके समान, उसके वक्षःस्थल पर दार वारण रगाया ।

२४५—फिर चन्द्रापीड़ने विभ्रित हो कर उत्तर दिया—मदलेला, म नरा कहीं ? तुम बहुत निरुण हो, स्वीकार करना जाननी हो । बोलनेम ऐसी चतुर्णा की है कि उत्तर देनेका अग्रकाण नहीं करता । मुझे, प्रना म जान हूँ ? आर फिर लेने और न लेनेका ही म मौन हूँ ? इस बातका तो बस प्रत ही गया । तुम सब सौजन्यशील कुमारिकाओंने मुझे अपना बना लिया है इमालद इष्ट अथवा अनिष्ट व्यापारमें जिस तरह चाहो मुझे नियुक्त करो । प्रत्यंत भिनीत कादम्बरीके वशीकरण-शील गुण जिसे उनका दास नहीं बना लेते हैं ? इतना कह, कादम्बरीके विषयकी हा बहुत देर तक बातचीत कर, राजपुनने मदलेलाको विदा किया । उसके थोड़ी दूर जानेके बाद क्रीड़ा पर्वत पर—उदयाचल पर आए हुए चन्द्रके समान—चन्दन, वस्त्र तथा हारसे घवल दीपते चद्रापीड़को देखनेके लिए, छड़ी छत्र चमर आदि राजचिह्न छोड़ कर, सब परिजनमें दूर कर केवल तमालिकाके साथ कादम्बरी फिर महलके शिखर पर चढ़ी । वराने पहलेकी भाँति ही वह विविध भ्रूविलास रूरी तरंगसे भरे उद्दीपक क' जात उसका मन हरने लगी । कितनी ही बार अपना बायाँ कीमल हाथ नतन पर रख कर, पहले हुए वस्त्रके कोने तक दायाँ हाथ नीचे लटका कर, निश्चल पुतली युक्त, मानो काढी गई हो, कितनी ही बार जँभाई आनेको होनेसे मुँहके आगे धरे चित्त हाथसे मानो उसका नाम ले लेनेके भयसे अपना मुँह बंद करती हो, माँसकी सुगंधसे घूमते भ्रमरोको, कितनी ही बार, वस्त्रके किनारसे झपट मार कर उनकी गुञ्जारसे मानो चन्द्रापीड़को बुलाती हो, कितनी ही बार पवनसे झाँकीके वस्त्र उड़ जानेकी घबराहटमें अपने दोनों हाथोंको मोड़ और उनसे स्तनोको टक कर मानो आलिंगनका इशारा करती हो, कितनी ही बार केशपाश मेंसे फूट ले कर अपनी अगली भर लीला सहित सूँघनेसे मानो नमस्कार करती हो, कितनी ही बार दोनों हाथोंकी तर्जनियोंसे मोतीका हार फिरा कर हृदयमें उत्पन्न होनी उक्कण्टाको मानो सूचित करती हो, कितनी ही बार कसुमोसे ठोकर खा जानेसे हाथ काँपनेके कारण मानो मदन बाणके प्रहारकी वेदना दिखाती हो, कितनी ही बार तागड़ीकी लड खिसक जानेसे चरण बँध जानेके कारण मानो कामदेवसे बाँध कर अर्पित की गई हो, कभी कभी उक्कण्टा होनेसे उसका वस्त्र

डीला हो जाता था और भूमि पर फहराते वृक्षके जेबल एक किनारे हीमें खान ढके रहते थे, चकित होकर पीछे मुडनेसे उगकी तिल्ली-लता सूट जाती थी, उमके हाथ रक्ष पर लटकते के लक्षणपत्ते इच्छे करने और मॉनेमें लग जाते थे, कदात् फेंकनेसे कर्ण कमल धवल हो जाता था और लज्जसे उदात्त होते हास्यामृत्की रजसे माल भूपर हो जाते थे । इस प्रकार सूत्रप्रकाश नद पड़ कर दिव्य लाल लाल दीपाने लगा तब तब नद मुँह मोड़ मोड़ कर उदात्त, अनेक भाव उचल होनेके कारण, कदात्से देपती देपती सजी रही ।

२४६—फिर हृदय स्थित कमलिनीके मानो रागसे^१ जल सपूर्ण गुण मउलके चक्रवर्ती, कमलोंके प्राणनाथ, भगवान् भास्कर रक्त देने लगे, तब मझ कर देनेसे कुणित होती क्षमिनिर्भोकी लाल लाल दृष्टिसे ही माता प्रकाश जल लाल लाल हो गया; वृद्ध हारीतके समान शरित प्रथमाला सूर्य जल ग्रानी प्रभा योडी योडी कम करने लगा, रविगोमसे नद दुष्ट पत्र गजे कमलना जल हरे दीपाने लगे, कुमुदसमूह जल सफेद दीपाने लगे, दिग्गप्रोके मुन जल लाल लाल होने लगे, प्रदोष जल श्याम होने लगा, दिग्गप्रोकरने समागम होनेकी मानो प्रासासे अनुगत^२ युक्त सिम्पिका भाय तब भगवान् सूर्य धीरे धीरे अगत हा गय, तत्काल उदात्त दुष्ट नदी हृदय गग^३-रम-सागर के समान मव्या रागसे जल सख्य भुज पण जे गय, क्षमाग्निने जलते हजारों चक्रवर्ती के हृदयोंमें ये निम्नो भूषण स्नान—मातिनीके नवनेमिने अनुचल्य अक्षला—तत्काल समागत समान चक्रवर्ती प्रकाश तब तब जगद केने लगा, दिग्गप्रोके (दृग्गप्रोके) दुष्ट नव नृके समान तागण्यमे तब प्रासासे नव दीपाने लगा और तब देव नदी पड़ने लगा, तब नदमयी मूलके जगत्परम नदी मने हीश-सर्वके तितर परमे चन्द्रापीड उला ।

२४७—त्रिभुवन ही, पाद ४ वदय तब तब नदाले तागण्यमे तब तब

१—रग, अनुगत ।

२—उदात्त, नद ।

३—उदात्त, नद ।

४—त्रिभुवन, वदय ।

करती थी; श्याम मुख होनेसे कोपित सी दीपती दिशाओं को जो मानो प्रमत्त करता था, सोती हुई कमलिनियो को, जाग पड़ने के डर से जो मानो ह्योउता जाता था, लौंछन के वहाने जो मानो साक्षात् रात्रिको अपने हृदय में धारण करता था, रोहणीके चरण-प्रहारसे लगी हुई महावरके समान उदय-रागसे वयुक्त, जो अभिमारिकाके समान तिमिर नील अम्बर^१ युक्त आकाश के पास जाता था और उसके अतिशय प्रेमके कारण जो मानो सौभाग्य विखेरता था, ऐसा नेत्रोंको आनन्द देनेवाला-भगवान् चन्द्रमा उदय हुआ । फिर जय कान-देवके साम्राज्यका अद्वितीय छत्र, कुमुदिनी रूपिणी वधूमा प्रिय, निशाके विलासका दंत-पत्र, दिशाएँ श्वेत करता चन्द्रमा उदय हुआ, और अखिल भुवन मानो हार्थार्थमेंसे उत्कीर्ण किया हो ऐसा दीखने लगा, तब, जिसकी सुधासी घवल सीडियाँ जल-तरगसे घोई जाती थीं; छोटी छोटी तरंगरूपी पंखोंकी जहाँ पवन उड़ती थी, हसना जोड़ा जहाँ सो रहा था और वियोगसे चक्रवाकके जोड़े जहाँ शब्द कर रहे थे, जो चाँदनीके निरंतर विद्यनेसे कुम्हमय दीखती थी ऐसी गड़-कुमुदिनीके किनारे पर चद्रार्पाड, कादम्बरीके परिजनोंके वताए हुए, एक चद्रशीतल मुक्ता-शिला पर लेया । यह मुक्ता-शिला चारों किनारों पर कुमुद-पत्रोंसे पत्रलता रचनेसे ऊँची नीची हो रही थी, सफेद सिंधुवार पुष्पके हार वहाँ रखे थे, और हरि-चन्दनके रससे उसे धोकर स्वच्छ किया गया था । वहाँ वह लेया ही था कि इतने में केयूरवने आकर कहा—देवी कादम्बरी आपसे मिलने के लिए आई हैं ।

२४८—यह सुन कर चन्द्रपीड संभ्रममें उठा, और उसने थोड़ीसी सखियों से परिवृत कादम्बरीको, मदलेखाका हाथ ढके, आता हुआ देखा । सब राज-चिन्ह उसने दूर कर दिए थे, साधारण स्त्रीके समान केवल एक लड़की माला पहन रखी थी, स्वच्छ चंदनके लेगसे तनु-लता श्वेत कर रखी थी, एक कान में दंत पत्र पहना था; चन्द्र-कला-रूप क्लीके समान कोमल कुमुद पत्र, कर्णपूर की जगह, शोभायमान था और चद्रिकाके समान श्वेत कल्पवृक्षके दो वल्ल पहन रखे थे । उस काजमें रमणीय लगते वेपसे साक्षात् चंद्रोदय-देवताके समान आकर, प्रीतिकी चारुता दिखाती, परिवनोके योग्य भूनल पर, प्राकृत

१—तिमिर से नील अन्तरिक्ष, तिमिर के समान नील वस्तु ।

भावता, गधर्वराज लोकेशी अतिशय समृद्धि, और उनके देशकी रमणीयताके विषयमें मनमें विचार करता, केयूरक चरण दागता था इतने में ही, निद्रा-व्य हो गया और सत्र रात उसको एक क्षणके समान मालूम हुई ।

२४६—फिर कादम्बरीके दर्शनार्थ जागनेके कारण थक जानेसे मानो शयन करने जाता हो इस प्रकार, ताल, तमाल, ताली और कदलीकी कोंपलेंसि भरपूर, मृदु जल-तरगोंकी पवनसे शीतल, किनारेकी वनराजिमें चंद्रमा धीरे धीरे उतर गया । वियोग समयके निकट आनेसे शोकातुर कामिनियोंके मानो उष्ण निश्वाससे ही चंद्रिका फीकी पड़ गई । चन्द्रापीड़को देखनेसे मानो कामातुर हुई लक्ष्मी सारी रात कुमुद-दलके भीतर बिता कर कमलोंमें जा पड़ी । रात बीत जाने पर जब मद हुए शयन-रुइके दीप्त कामिनियोंके कर्णोत्तल-प्रहारको याद कर मानो उत्कटित होते हुए दुर्बल हो गए, निरंतर वाण रेंचनेसे थके श्रनंगके निवास-सदृश विलास-युक्त प्रभातकी पवन, लताओंके पुष्पोंकी सुगंध सहित, चलने लगी, अरुणोदयसे तेजहीन होते तारे मानो डर डर कर मदराचलके लता-मडपोंकी भाङ्गीमें घुसने लगे, और चक्रवाकके हृदयमें रहनेसे लगे श्रनु-रागसे मानो रक्त हुआ सूर्य मडल धीरे धीरे उदय होने लगा, तब चंद्रापीड़ने शिलातलसे उठ कर मुँह धोकर, संध्या-वदन कर, पानकी बीड़ी खा, केयूरकसे कहा—देख आग्रो, देवी कादम्बरी अभी उठी या नहीं, अथवा इस समय कहाँ हैं ? केयूरकने वहाँसे आकर खबर दी—देव, महाश्वेताके साथ वे मंदर-प्रासाद के नीचे आँगनमें बनी हुई बैठकके चबूतरे पर बैठी हैं । यह सुन कर वह गधर्व-राज-पुत्रोंसे मिलने आया ।

२५०—पहले उसने महाश्वेताको देखा । जिनके ललाटे पर सफेद भस्म लग रही थी, अक्षमालाके फेरनेसे जिनके हाथ चलायमान हो रहे थे, ऐसी शिव-व्रत धारण करनेवाली त्रिर्घाँ; गेरुसे रगे लाल वस्त्रवाली परिव्राजिकाएँ; पक्के तालफलके बल्कलके समान रक्त वस्त्र पहने रक्त-पट-व्रत-धारिणी; और ब्रह्मचर्य चिन्ह धारण करनेवाली तपस्विनी—श्वेत वस्त्रसे जिन्होंने अपने स्तन-मडलको दृढ़ ढाँध दिया था, सफेद वस्त्र जिनके चिन्ह थे, और जटा, अजिन, मूँज, बल्कल, पलाशके दंड—ये सब धारण कर रही थीं—जो साक्षात् मंत्र-देवता ही हों यों—सब उमापतिकी, ठमाकी, अर्तिकेयकी, विष्णुकी, जिनकी,

स्त्रीके समान, वह बैठी ही थी कि वह देख कर चन्द्रापीड भी,—राजकुमार, आप तो शिलातल पर बैठे रहिये—यों मदलेख्याके बहुत बार रहने पर भी, भूमि पर ही बैठा और सब कन्याओंके बैठ जानेके बाद, थोड़ी देर ठहर कर कटने लगा—देवि, आपमें केवल दृष्टिपातसे ही मदुट हुए दामजनको समापणादि प्रसादा भी अज्ञात नहीं होता, फिर ऐसे बड़े अनुग्रह तो कहना ही क्या है ? बहुत सूक्ष्म विचार करने पर भी मैं अनेकमें ऐसा गुण लेश भी नहीं देखता जो ऐसे महान् अनुग्रहके अनुबन्ध हो । आपकी सरलता और अभिमानहीन मधुर सुजनता ही मेरे समान नवीन सेवका भी ऐसा आदर करती है । आप मुझको कदाचित् ऐसा असभ्य गिनती होगी जो उच्चारसे बशमें हो जाय । धन्य है उस परिजनको जिस पर आपका अधिकार हो ! जो सेवक आपकी आज्ञा पालनेके योग्य है उमना इतना आदर कैसा ? यह शरीर तो परोपकारके लिए है और जीवन तृणके समान तुच्छ है । आपने वहाँ पधार कर जो बड़ा अनुग्रह किया है उसके बदलेमें इन्हें अर्पण करनेमें मैं शर्माता हूँ । तो भी यह मैं रहा, यह शरीर रहा, यह जीवन, ये इन्द्रियाँ, इममेंसे जो अच्छा लगे उसका ग्रहण करके मान बढ़ाइए ? चन्द्रापीड यों कह रहा था कि इतनेमें मदलेखाने बात काट कर जरा हँसते हँसते कहा—राजकुमार, बस—बहुत आग्रह रहने दो । इससे मेरी सखी कादम्बरी को दुःख होना है । आप क्यों ऐसा कहते हैं ? कहे बिना भी यह सब उमने अगीकार कर लिया है । फिर व्यर्थ उच्चारसे यों कह कह कर क्यों सदेहमें डालते हो ? इतना कहनेके बाद थोड़ी देर ठहर कर उसने, अपसर देख, पूछा—तारापीड राजा कैसे हैं ? देवी विलासवती कैसे हैं ? आर्य शरणास कैसे हैं ? उज्जयनी कैसी है ? यहाँसे वह कितनी दूर होगी ? भारत-धर्म कैसा है ? सत्यलोका रमणीय है या नहीं ? इस प्रकार बहुत देर तक बात चीत हानेके पीछे कादम्बरी उठी और चन्द्रापीडके पास सोने वाले केयूरक आर अन्य परिजनको आज्ञा दे कर अपने शयन-सौवके शिखर पर गई । वहाँ जा कर श्वेत वस्त्रके चंदोवेके नीचे त्रिछे पलंग पर सोई । चन्द्रापीड भी उसी शिलातल पर सोकर कादम्बरीकी निरभिमानता, अभिरूपता और गभीरता, महाश्वेताकी निष्कारण वत्सलता, मदलेखानी सुजनता, सब परिजनकी मदाउ

भावता, गधर्वराज लोकनी अतिशय समृद्धि, और उनके देशकी रमणीयताके विषयमें मनमें विचार करता, केयूरक चरण दागता था इतने में ही, निद्रा-वश हो गया और सब रात उसको एक क्षणके समान मालूम हुई ।

२४६—फिर कादम्बरीके दर्शनार्थ जागनेके कारण थक जानेसे मानो शयन करने जाता हो इस प्रकार, ताल, तमाल, ताली और कदलीकी कांपलोंसे भरपूर, मृदु जल-तरगोती पवनसे शीतल, किनारेकी वनराजिमें चंद्रमा धीरे धीरे उतर गया । वियोग समयके निकट आनेसे शोकातुर कामिनियोंके मानो उष्ण निश्वाससे ही चंद्रिका फीकी पड़ गई । चन्द्रापीड़को देखनेसे मानो कामातुर हुई लक्ष्मी सारी रात कुमुद-दलके भीतर बिता कर कमलोंमें जा पड़ी । रात बीत जाने पर जब मद हुए शयन-रङ्गके दीप्त कामिनियोंके कर्णोत्पल-प्रहारको याद कर मानो उत्कण्ठित होते हुए दुर्बल हो गए, निरंतर बाण खेंचनेसे उनके अन्नगके निवास-सदृश विलास-युक्त प्रभातकी पवन, लताओंके पुष्पों की सुगंध सहित, चलने लगी, अरण्योदयसे तेजहीन होते तारे मानो डर डर कर मदराचलके लता-मडपोंकी झड़ीमें घुसने लगे, और चक्रवाकके हृदयमें रहनेसे लगे अनु-रागसे मानो रक्त हुआ सूर्य-मंडल धीरे धीरे उदय होने लगा, तब चंद्रापीड़ने शिलातलसे उठ कर मुँह धोकर, संध्या वदन कर, पानकी व्रीड़ी खा, केयूरकसे कहा—देख आशु, देवी कादम्बरी अभी उठी या नहीं, अथवा इस समय कहाँ है ? केयूरकने वहाँसे आकर खबर दी—देव, महाश्वेताके साथ वे मंदर-प्रासाद के नीचे आँगनमें बनी हुई बैठकके चबूतरे पर बैठी हैं । यह सुन कर वह गधर्व-राज-पुत्रासे मिलने आया ।

२५०—पहले उसने महाश्वेताको देखा । जिनके ललाटे पर सफेद भस्म लग रही थी, अक्षमालाके फेरनेसे जिनके हाथ चलायमान हो रहे थे, ऐसी शिद-व्रत धारण करनेवाली स्त्रियाँ, गेरुसे रंगे लाल वस्त्रवाली परिव्राजिकाएँ; पद्मके तालफलके बल्कलके समान रक्त वस्त्र पहने रक्त-पट-व्रत-धारिणी, और ब्रह्मचर्य चिन्ह धारण करनेवाली तपस्विनी—श्वेत वस्त्रसे जिन्होंने अपने स्तन-मंडलको दृढ़ षोष दिया था, सफेद वस्त्र जिनके चिन्ह थे, और जटा, अजिन, सूत्र, उल्कल, पलाशके दंड—ये सब धारण कर रही थीं—जो साक्षात् मंत्र-वेत्ता ही हों यों—सब उमापतिकी, उमाकी, ऋतिकेयरी, विष्णुकी, जिनकी,

श्राय विलोकिते-वरकी, अर्हन्की और ब्रह्माकी पवित्र स्तुति करती करती उनकी उपासना कर रही थी और वह श्री १०पुरमे मान पाई हुई, तथा दर्शनार्थ आई हुई गंधर्वराज-कुलकी वृद्ध स्त्रियोंको आदर पूर्वक नमस्कार कर, बातचीत कर, श्रम्बुस्थान देकर, पासकी चटाई बैठनेको देकर, उनका सत्कार कर रही थी। फिर उसने कादंबरीको देखा। उसके पीछे बैठा किन्नर-मिश्रुन वेणुग्रीसि भ्रमरों की झुंकारके समान मधुर तान देता था, और मीठे स्वरसे गान करती नारदकी बेटीके सर्व-मंगलकारी महाभारत ब्रॉचनेमें वह ध्यान दे रही थी, सामने रखे मणि-दर्पणमें ताम्बूलके रंगसे लगी काली रेखासे श्यामता देते श्रम्बतरमाले तथा दन्त-प्रभासे चमकते, मौम लगा कर साफ किए वस्त्र जैम, गुलाबी श्रवर को देख रही थी, और शैवलकी तृष्णासे यह कल हस, उसके कानमें पहने हुए शिरीष-पुष्प पर दृष्टि रख कर, चारों ओर फिरता था जिससे ऐसा मालूम होता था मानो प्रभातका चन्द्रमा गमन समय होनेसे उसकी प्रणाम-सहित प्रदक्षिणा करता हो। ऐसी कादंबरीके पास जाकर, नमस्कार कर, राजपुत्र उसी चूनेके चबूतरे पर रखे एक आसन पर जा बैठा और थोड़ी देर ठहर कर महाश्वेता के मुखको देख मुसकराया जिससे उसके गाल कुछ फूल गए, इससे ही वह उसका अभिप्राय समझ गई और कादंबरीसे कहने लगी—सखी, चन्द्रकान्त जैसे चन्द्रमाकी किरणोंसे पिघलने लगता है इसी प्रकार चन्द्रापीड़ तुम्हारे गुणोंसे आर्द्र हो गए हैं; इसलिए बोल नहीं सकते, परन्तु उनकी जानेभी इच्छा हुई है, क्योंकि पीछे सब राजचक्र उनका समाचार न मिलनेसे दुःखी होता होगा। फिर दूर रहने पर भी तुम दोनोंकी प्रीति तो अब कमलिनी और सूर्यकी तथा कुमुदिनी और चंद्रकी प्रीतिकी तरह प्रलय-काल तक स्थिर रहेगी। इसलिए तुम भी जानेकी अनुमति दो।

२५१—यह सुन कर कादंबरीने कहा—सखी, जिस तरह उनका अंतरात्मा सी तरह सब परिजन-सहित यह जन भी कुमारके अधीन है इसलिए इसमें अनुरोध क्या है? इतना कह कर गवर्बकुमारोंको बुला कर आज्ञा दी कि राजकुमारको इनके देशमें पहुँचा दो। इसके पीछे चन्द्रापीड़ने उठ कर प्रथम महाश्वेताको और फिर कादंबरीको प्रणाम किया। उस समय कादंबरी—
प्रेमसे स्निग्ध—नेत्र और मन अपनी और आकृष्ट होनेसे वह कहने लगा—देवि,

क्या कहूँ, बहु-भाषीका लोग विश्वास नहीं करते, इसलिए थोड़ेमें इतना ही कहता हूँ कि परिजन-कथामें श्राव मुझे भी याद करना । इतना कह कर वह कन्याओंके अतः पुरमसे बाहर निकला । उसके गुण गौरवसे आकृष्ट हुई, कादम्बरीके सिवाय, अन्य सब कन्याएँ, मानो परवश हों इस प्रकार, उसे पहुँचाने बाहरके बड़े दरवाजे तक आई । उनके लोटने पर राजपुत्र केयूरकके लिए हुए बोड़े पर सवार हो कर, पीछे आते गधर्वकुमारों सहित, हेमकूटमेंसे चल निकला—चलतेमें चित्ररथ-तनया केवल अभ्यन्तरमें ही नहीं, बल्कि बाहर भी सब आशाओंका निवधन-रूप हो गई, क्योंकि मन तन्मय होनेसे वह मानो अस्वप्न विरह वेदनाके सतापके कारण उसके पीछे आती हो, आगे आकर मानो मार्ग रोकती हो, वियोगसे व्याकुल हुए हृदयमें उत्पन्न होती उत्कंठाओंके दाय मानो आकाशमें फँक दी गई हो, और विरहातुर चित्तसे वदन धरावर देखनेके लिए मानो उर-स्थलमें आ बैठी हो—यों वह उसीको देखने लगा ।

२५२—फिर धीरे धीरे जब वह महाश्वेताके आश्रमके पास आ पहुँचा तब उलने देखा कि इन्द्रायुधके टापोंके अनुसार आई हुई उसकी सेना अच्छोद सरोवरके तट पर पड़ी है । वहाँसे गधर्वकुमारोंको उसने विदा किया और सेनाके आदमियोंने उसको देख, आनन्द-सहित, कुतूहल सहित, विस्मय-सहित, प्रणाम किया । इस रीतिसे वह अपने भवनमें बुसा और वहाँ सब राजा लोगोंका सन्मान कर, दिनका बहुत कुछ भाग उसने ऐसी महाश्वेता है, ऐसी कादम्बरी है, ऐसी मदलेखा है, ऐसी तमालिका है, ऐसा केयूरक है—ऐसी ऐसी बातें बेशर्मायन तथा पत्रलेखाके साथ करनेमें बिताया । कादम्बरीका रूप देखने पर राज्य-लक्ष्मीसे मानो विद्वेष हो गया हो यों पहलेके समान वह उसको अब प्रिय नहीं लगी और उत्कटित चित्तमें उसी श्वेत-लोचनाका चिन्तन करते करते सब रात उसने जागनेमें ही बिताई ।

२५३—दूसरे दिन सूर्योदय होने पर स्वयं उसी विचारमें सभा-मंडपमें बैठा था कि इतनेमें अस्मात् उसने प्रतीहारके साथ केयूरकको आता देखा । केयूरकने दूरसे ही मस्तकसे भूमिका स्पर्श कर प्रणाम किया इतनेमें—आओ,

१—सब आशाओं—अभिलाषाओं—का केन्द्र हो गई, सब दिशाओंमें उसे कादम्बरी ही दीखने लगी ।

आओ—कह कर चन्द्रापीडने प्रथम हर्षसे विस्तृत चक्षुमे, फिर हृदयसे, फिर रोमोद्गमसे और पीछे बाहुओंसे शेर कर उसका प्रत्यक्षमे गाढ आलिंगन किया और अपने समीप ही बैठाया । फिर मानो रिमते हुए स्नेह रससे बने, हास्यामृतसे श्वेत अक्षरोंमे, आदर-सहित पृष्ठने लगा—केयूरक, केश, देवी कादम्बरी सखीजन-परिजन सहित और भगवती महाश्वेता सब कुशल हैं ? तब राजपुत्री अतिशय प्रीतिसे उत्सन्न हुए मद हास्यसे ही माना न्हा गया हो और अनुलित हुआ हो, इस प्रकार तुरन्त ही केयूरकका मार्ग-श्रम जाता रहा और प्रणाम पूरक बड़े आदरसे उसने उत्तर दिया—आज वे कुशलिनी हुईं कि आपने ऐसा प्रश्न किया ! इतना कह कर नीले रूमालमें लिपटे, मृणाल-सूत्रसे मुख पर बँधे, ताजे चन्दन-रसमें लगी हुईं बाल-मृणाल बलय रूप मुहरवाले, कमलके पत्तोंके एक संपुटको निकाल कर उसने दिखाया, और रूमाल उठा कर उसमें कादम्बरीके भेजे कितने ही अभिज्ञान दिखाये ! उनमें मरकतके समान हरी, छिली हुईं, सुन्दर मजरीवाली दूधिया सुपारियाँ थीं, तोतेके गाल जैसे श्वेत कितने ही पान थे, शिव-मस्तक पर शोभायमान चन्द्र खडके बराबर बड़ा कपूरका दुग्धा या, और कस्तूरीकी बहुत तेज महकसे मनोहर लगता चन्दनका लेप था । इनको दिखाकर केयूरकने कहा—कोमल उँगलियोंके त्रिवरमेंसे निम्नली रक्त किरणोंसे छाई हुईं अजलीसे चूड़ामणिका स्पर्श करके देवी कादम्बरी आपको वदना करती है, महाश्वेता कठालिंगन-सहित कुशल-समाचार पूर्वक वदना करती है, केश-कलापके माणिक्यकी प्रभासे रंगे ललाटसे मदलेखा नमस्कार करती है और तमालिका तथा सब कन्याओंने सीमतनी मकारिकाके अग्रभागका कोण पर रख कर और चरण-रज स्पर्श सहित आपकी पाद-प्रणाम कहलाया है ।

१२५ । आपके पान सदेसा भेजा है कि जिन्होंने आपको कभी नरा

वे घन्य हैं, कारण कि समक्षमे जो आपके गुण हिम-शीतल और चन्द्र

मयसे लगते हैं, वे ही विरहने मानो रवि-मय हो गए हैं । सब जन दैन्योगते

आए पिछले दिनमें अमृतकी उत्पत्तिके दिनके समान किसी प्रकार फिर देखनेके

इच्छुक हैं । आपके वियोगसे सब गधर्व राजनगर ऐसा मालूम होता है मानो

उत्सव होनेके पीछे मद हो गया हो । आप जानते तो हैं कि मने सब वन्दुओं

का स्वागत कर दिया है; तो भी—मेरी इच्छा बिना भी—मेरा हृदय मानो इतने

आप—निष्कारण मित्र—से मिलनेकी इच्छा करता है, और कादम्बरीमा शरीर भी बहुत अत्वस्थ है। वह आप—स्मर-कलत्र और स्मेरानन—की वाद करती है, इसलिए पुनरागमन रूमी गोरवमे आपको उसे गुणोंमें अभिमान-युक्त करना योग्य है। उदार पुरुषोंके किए हुए आदरसे बहुत मान मिलता है। आपको हमारे जैसाके परिचयकी पीडा तो अवश्य उठानी चाहिए। आपकी सुजनता देख कर ही ऐसा अनुचित सदेशा भेजनेकी प्रगल्भता हुई है। आपके मिछोने पर पडा यह श्रेय हार भेना जाता है। यों कह कर उत्तरीय वल्लके पल्लेमें बँधा हुआ, मरीन सूतोंकी बुनावटमेंसे निकलती किरण-रेखाओंसे पहचान लिया जाता, वह हार निराल कर उसने चामर-आहिणीके हाथमें दे दिया।

२५४—यह महाश्वेताकी चरणाराधना रूपी तपका फल है कि परिजन पर भी देवी कादम्बरीने ऐसा स्मरणादिका भारी अनुग्रह किया।—इतना कह कर चन्द्रापीडने उन सब वल्लुओंको शिरोधार्य कर आपहीने लिया। कादम्बरीके पिघले हुए कपोल लावण्यके समान, रत्नाको प्राप्त हुए स्मित-प्रकाशके समान, प्रवत्त पाए हुए हृदयके समान, भरे हुए गुण-गणके समान,—शीतल त्वशं-पाले, मनोहर और सुगंधित—लेपका उसने लेप किया और हार फण्डमें पहना। फिर पानकी बीड़ी खाकर, थोड़ी देर वाद उठ कर और बाएँ हाथसे केयूरकके कषे पर सहारा दे कर, खड़े खड़े ही, यथायोग्य सन्मान देनेसे आनंदित हुए प्रधान राजा लोगोंको विदा कर, धीरे धीरे वह गधमादन हाथीको देखने चला। वहाँ योजी देर ठहर कर, नख-किरणोंमें जटिल होनेसे मृणाल-सहित दीखती थोड़ीनी घास उसे अपने आप ही डाल कर, वहाँसे अपने प्रिय घोड़ोंके अस्त-वलनी और चला। जानेमें दोनों तरफ जरा जरा मुँह फेर कर परिजनोंको देखने लगा। उसका अभिप्राय जाननेवाले प्रतीहारने परिजनोंको आनेका निषेध करके दूर कर दिया तब वह अनेके केयूरकको ही लेकर अस्तवलमें गया। निराल दिव्ये जानेके डरसे सम्राट लोचनवाले वहाँके साईंस प्रणाम कर करके सिठक गये तब इन्द्रायुधकी पीठ परसे एक तरफ खिसका हुआ चीन ठीक करता करता, जय मिची हुई आँख पर आकर टटिको रोकती—कुकुमके समान कपिल—केसर-सटाको हृथाया, खुरधारिणी पर चरण रख, अश्वशालाके खूँटे पर शरीरको सहारा दे कर, वह कृत्तल सहित लीलासे मंद मंद कहने लगा—

केयूरक, मेरे आनेके पीछे गधर्वराज-कुलमें क्या वृत्तान्त हुआ ? गधर्व-राजपुत्री ने किस व्यापारमें दिन बिताया ? महाश्वेताने क्या किया ? मदलेखाने क्या कहा ? परिजनोंमें क्या बातचीत हुई ? तुमने क्या किया ? मेरे सम्बन्धमें कुछ बात हुई या नहीं ?

२५५—केयूरकने सब प्रश्नोंका प्रत्युत्तर दिया—देव, सुनो, आपके बाहर निकलते ही तुरन्त कन्याओंके अन्तःपुरमें नूपुरोंके रणरणाहटसे हजारों हृदयोंके प्रस्थान-दुन्दुभीका मानो कल कल हुआ । इतनेमें देवी कादम्बरी परिजन सहित सौधशिखर पर चढ़ कर घोड़ोंकी उड़ाई हुई धूलसे धूमर दीखते आपके जानेके मार्गको देखती रहीं । पीछे जब आप दृष्टिके बाहर हो गये तब मदलेखाके रुवे पर अपना मुँह रख कर, श्वेत छत्रके आकारमें मानो चन्द्र ही आकर ईश्वरि सूर्य-किरणोंका स्पर्श न होने देता हो यों प्रकट करतीं, क्षीरनागरके समान घनल दृष्टिपातसे प्रीति पूर्वक दिशाके उस भागको मानो भरतीं, बहुत देर तक वहीं रहीं । अतमें खिन्न हो कर, वहाँसे महावृष्टसे नीचे उतर कर, थोड़ी देर समा-मंडपमें बैठ कर उठीं और शायद उपहार-पुष्पों पर गिर न पड़ें—ऐसे मानो झरसे गुञ्जार करते भ्रमर उन्हें फूलोंको बताने लगे; जलघाराके समान रवेत नख किरणोंकी तरफ देखते गृह-मयूरोंकी बेकासे उद्वेग पा कर निकले कणसे प्रत्येक मयूरके गलेमें मानो कंठ-बध बाँधने लगीं, कदम कदम पर पुष्प-घनल गृह-लताओंके पल्लवोंका हाथसे और आपके गुण-गणोंका मनसे ग्रहण करतीं, जिस क्रीड़ा पर्वत पर आप रहे थे वहीं आ पहुँचीं । वहाँ आने पर परिजन उनको सूचना देने लगा कि—मरकत-शिलाकी मकराकार मोरीके प्रसन्नणसे हुए हरे लता-मंडपवाले इस, जल कणसे छाप हुए, शिलातल पर कुमार थे, गंधोदरकी परिमलसे इकट्ठे हुए भ्रमरोंके टोलोंसे भरे इस शिलातल कुमारने स्नान किया था, पुष्प-पराग रूप रेतीसे भरे क्रीड़ा पर्वतकी इस नदीके तट पर भगवान् पशुपतिका पूजन किया था, चद्रकी भी कातिको हरनेवाले इस सुन्दर स्फटिक शिलातल पर भोजन किया था, और चिपके हुए चन्दन स्वके चिह्नवाली इस—मोती जड़ी हुई—भारी शिला पर शयन किया था । वां मर चार दिलाए हुए आपके ही स्थानके चिन्होंके देखनेमें उन्होंने सब दिन बिताया ।

२५६—दिनका अन्त हुआ तब महाश्वेताके बहुत कहने पर रुद्धाके निरा

भी उन्होंने उसी स्फटिमणि-गृहमें भोजन किया। सुमान इनके चन्द्र-चन्द्रमाका उदय हुआ तब वे कुछ देर तक जहाँ रहीं। फिर मानो चन्द्रमाका उदय हो इस प्रकार चन्द्रोदयसे उनका शरीर गीला हो गया, और शायद चन्द्र-प्रवेश करनेके मानो भयसे गाल पर हाथ रख कर, जरा प्रार्थना मात्र कर, कुछ विचार ही विचारमें वहाँ क्षण मात्र बैठी रहीं। फिर उठ कर निर्भय नयन पड़ी चन्द्र-प्रतिमाका मानो भार लगता हो या महाशक्ति पैर पर रख, लीला युक्त मद गतिसे चल कर, शयन गृहमें गईं और पलंग पर लेट गईं। तबसे ही अति प्रबल शिवोद्देशनासे करवटें खलने लगीं और शब्द अतिसे समान स्वर पीड़ा देने लगा। उससे सत्र रात उन्होंने न जाने किन व्याथले नगल-प्रदीप, कुन्द-समूह और चन्द्रवाक्के साथ ही खुली आँखोंसे महा महा दुःखमें बिताई। फिर प्रभात हुआ तब मुझे बुला कर आपके समाचार जाननेके वास्ते जानेनी, ताना देकर, आजा दी।

२५७—यह सुन चन्द्रपीड जानेनी इच्छासे—गोड़ा लाओ—वो महा भवन्से बाहर निकला और जीन कस कर ताईमके द्वारा शीघ्र लाए गए इन्द्रायुध पर सवार हो, पीछे पत्रलेखाको बैठा कर, सेना पर वैशम्पायनको नियत कर, सब परिवर्तनोंको पीछे लौटा कर, दूसरे घोड़े पर बैठ कर पीछे पीछे आते केयूरकके साथ हेमकूटकी ओर चला। कादम्बरीके महलके द्वार पर पहुँच कर घोड़े परसे उतरा, उतर कर अश्वको द्वारपालके सुपुर्द कर कादम्बरीका प्रथम दर्शन करनेनी उत्सुक पत्रलेखाको पीछे कर, अंदर जाकर, सामने आते एक नपुंसकसे पूछने लगा—देवी कादम्बरी कहाँ हैं ? उसने प्रणाम कर उत्तर दिया—देव, देवी मत्तमयूर नामक क्रीड़ा पर्वतके नीचे, कमल-सरोवरके तीर पर, हिमगृहमें निराजती हैं। यह सुन केयूरकके बताए मार्गसे प्रमद-वनमें होकर वह कुछ दूर गया था कि इतनेमें ही मरकतके समान हरे केलेके पत्तोंनी प्रभासे—हरी घासके समान—वि-किरणोंसे युक्त दिवस हरा-सा दीखने लगा और उनके बीचमें कमलके पत्तोंसे निरंतर दके हिमगृहको उसने देखा। उनमेंसे बाहर निकलती हुई, शिशिर उभारमें कुशल, कादम्बरीके शरीरनी सेवा करनेवाली, भूषण-रहित दासियोंको उसने देखा। वे गीले वस्त्रके वहाने मानो अच्योद सरोवरके बलसे दकी गईं हो

ऐसी दीवती थी; बाहुलताओं पर धारण किए मृणाल-बलयोंसे, क्या मानो आभूषणोंसे ही, उनके व्यवय श्वेत मालूम होते थे, उनके एक कानमे पहने हुए अच्छे श्वेत रंगके केतकी गर्मपत्र के ताटंक दत्रपत्रकी शोभाकी भी हँसी करते थे; उनके मुखारविंद पर मानो सोभाग्यपट्ट हों ऐसे चन्दन तिलक लगे थे, गाल पर चन्दन-त्रिदुका तिलक लगानेसे दिनमे भी मानो स्पर्श-लोभसे चन्द्र-प्रतिविम्ब वहाँ स्थित हो—इस प्रकार दीखता था, शिरीषकी समग्र शोभा भी जिन्होंने चुरा ली थी ऐसी शैवल-मंजरियोंके उन्होंने कर्णपूर पहन रखे थे, कपूरकी रजसे धूसर हुए, चन्दन-रस चुपड़े, वकुलावली-रूपी बलयवाले लतनों पर उन्होंने कमल पत्र-रूपी वस्त्र रख लिए थे, वारम्बार चन्दन-रस चुपड़नेसे श्वेत हुए—मानो सताप और रोषसे चन्द्र-किरण मसल डाली हों ऐसे दीखते—हाथोंमें उन्होंने मृणाल-दंड लगा कर विसतन्तु मय चमर ले लिए थे। ऊँचे दंड करके कमल, कुमुद, कुवलय, कदली पत्र, कमलिनी-पत्र और पुष्पके गुच्छे छत्रके आकारमें रख कर उन्होंने छाया कर रखी थी और वे जल-देवताओंका मानो समूह हो, वरुण-श्रियोंकी मानो मडली हो, शरद् ऋतुका मानो समाज हो, और सरसियोंका मानो एकत्र निवास हो—ऐसी शोभायमान थीं।

२५८—परिजनने प्रणाम कर पद-नखों पर प्रतिविम्ब गिरनेके मानो मयसे तुरन्त सरक कर उसको मार्ग दिया। इतनेमे ही उसने केलेके तोरणोंके तलमें प्रवेश किया। वहाँ चंदन-पंककी वेदियाँ बनाई गई थीं, पुण्डरीककी कलियोंकी घंटालियाँ बाँधी गई थीं, विकसित सिंधुवार पुष्पकी मजरीके चामर थे; मल्लिकाकी बड़ी बड़ी कलियोंके हार लटकाए गए थे, लोंगके पल्लवोंसे युक्त चंदनकी मालाएँ बाँधी गई थीं, कुमुदके पुष्पोंके हारोंकी ध्वजाएँ फहरा रही थीं और मृणालकी छड़ी हाथमें लेकर, फूलोंके सुन्दर गहने धारण करके, लक्ष्मीकी प्रतिमाके समान द्वारिपालिकाएँ खड़ी थीं। सब तरफ देखते-देखते चला तो क्या देखता है कि कहीं दोनों किनारों पर तमाल-पल्लव लगा कर बनाई हुई वन लेखावाली तथा कुमुद धूलि रूपी रेतसे युक्त पुलिनवाली चन्दन-रस बहाती गृह-नदियाँ हैं, कहीं निचुल वृक्षकी मजरीके बने हुए रक्त चामरवाले, जलसे गीले, चंदोवेके नीचे, सिदूरसे रंगे भूतल पर, लाल कमलोंके विद्योने बिछे हैं; कहीं—स्पर्शसे ही जिनका अनुमान हो ऐसी—सुन्दर दीवारों-

वाले स्फटिक-गृहोंमें इलायचीका रस छिड़का जाता है; नदी किनारे केसरसे युक्त नव तुण मय भूमिवाले, मृणाल-प्रचुर फव्वारोंके शिखर पर जल-धाराके फेनसे धूमर हुए यत्र मयूरीके झुरड हैं, नदी ग्रामके स्नान भिगाए हुए जनु-पल्लवोंसे भीतर ढकी हुई पर्ण-कुटियाँ हैं; कहीं चक्र द्वारा फिरोने हाथके बच्चोंकी क्रीड़ासे आकुल होती सोनेकी कमलिनियाँ हैं, कहीं सुनारी चूनेके सुन्दर चबूतरेवाले, सुगंधित जल भरे, कूपोंमें पत्र पुटके रेंड पड़े हैं—उनके चबूतरे श्रारे स्थूल मृणाल-लता-रूपी दंडके बनाए गए थे, डोल पतलीके रुमिजनी के थे, और वे कुवलावाली-रूप रस्सियोंसे ढँपे थे, कहीं स्फटिकमय मण्डलोंके मुखमेंसे निकलती जलधारावाली, और चित्रित इन्द्रधनुषवाली, इन्द्रिम मालाएँ बिर रही हैं, जिनके तीर पर सफेद यवाकुर उगे थे ग्रार जिनकी तरंगें तैरती हुई मालती-पुष्पोंकी नई नई कलियोंसे विपम दीपती थी ऐसी रश्मिन्दन रसकी बाबालियोंमें कहीं हारलता ठडी की जा रही थी; कहीं रुमिम टुण उग रहे थे—उनके आसपास मोतीके चूरे की क्यारियाँ बनाई गई थीं, और उनमेंसे नई नई पानी की बूँटें निरन्तर टकप रही थीं, कहीं फड़-फड़ते पत्तोंमेंसे उगते जलकणोंसे नीहार फैला कर भ्रमण करते पत्तोंके बने यत्र-मय पक्षियोंकी फतारें हैं, कहीं पुष्पहारके हिंडोले टकप रहे हैं—वे भ्रमर-रूप घटियोंकी पतिते अत्यन्त स्वात हैं, कहीं कोई स्वर्ण कलश भीतर ले जा रहा है—उनके मुख, अन्दर उग कर बाहर निरले ऊँचे दंडवाले कमलके पत्तोंसे छुा गये हैं, नदी केलेके भीतरके—सुन्दर बाँसके आकारवाले—स्तम्भके बने दंडवाले पुष्पके गुच्छों के छत्र ढँपे हैं, नदी मृणाल तन्तु मय वस्त्र, हाथमें कपूरके पत्ते मसल कर, उनके रससे सुगंधित किए जा रहे हैं, कहीं लवली-फलके रसमें भीगे महिमा-मञ्जरी रूप कर्णपूर हैं, और कहीं पत्थरकी कुँडलियोंमें भरे शीतल श्रोपनी रसकी कमल-पत्रके पखेसे पवन की जा रही है, इस प्रकारके शिथिरोपचारके साधन परिजनोंने तैयार किए थे और किए जा रहे थे ।

२५६—उन समझे देलता राजपुत्र हिमगृहके बीचमें आ पहुँचा । वह बीचका हिस्सा मानो हिमालयका हृदय था; वरुण देवका मानो जल-क्रीडा-गृह था, चन्दनवनके सब देवताओंका मानो जन्म-स्थान था, सत्र चद्रमणियोंका मानो उत्पत्ति-स्थान था; माघ मासकी सत्र रात्रियोंका मानो निवास था; सत्र वर्षों

शृङ्खलोंका मानो सकेन गृह था, सत्र नदियोंके तीर्थका ताप दूर करनेका मानो स्थल था, सत्र सागरोंका, वड़वायिका सतान दूर करनेका, मानो स्थान था, सत्र जलधरोंका वैद्युत ग्रभिना दाह शात करनेका मानो स्थल था, कुमुदिनियोंको चन्द्र-वियोगसे दुःसह हो जाते दिन काटनेका मानो स्थान था, और कामदेवका हर-हुगाशन बुझानेका मानो क्षेत्र था । वहाँ फव्वारोंसे निकलती हजारों धाराओंसे दूर हुई सूर्यकी किरणों भी मानो अति शीत स्पर्शके डरसे निवृत्त हुई हों इस भाँति आती नहीं थीं, कदम्ब त्रैसर-सहित पवन भी मानो रोमांचित होकर चलती थी, चारों ओर लगे कदली-वनके पत्ते पवनसे हिलनेके कारण ऐसे मालूम होते थे मानो शीतलतासे कांपते हों, पुष्पोंकी सुगन्धसे मदमत्त होकर गुञ्जार करते भ्रमर भी वहाँ मानो दौँत किङ्किड़ाते थे; और निरंतर घुमे हुए भ्रमरोंसे ढकी लताएँ भी ऐसी मालूम होती थीं मानो उन्होंने श्याम वस्त्र ग्रीड लिया हो । क्रमसे भीतर तथा बाहर—जो हाथमे भी जान लिया जाय ऐसे—अति दृढ शीतल स्पर्शसे अनुलित होनेके कारण राजकुमार अपने मनको चन्द्र-मय, इन्द्रियोंको कृमुद-मय, ग्रवयवोंको चन्द्रिका-मय और बुद्धिको मृणालिनी मय समझने लगा, और वह सूर्य किरणोंको मुक्ताहार मय, तापको चंदन मय, पवनको कर्पूर-मय, कालको जल मय और त्रिभुवनको तुषार-मय समझने लगा ।

२६०—इस प्रकारके हिमगृहके बीचमे एक तरफ सखियोंके झुण्डसे घिरी हुई कादम्बरीको उसने देखा । वह ऐसी मानुष होती थी मानो भगवती गंगा सत्र नदियोंके साथ हिमालयकी गुहाकी तलहटीमे पहुँच गई हो । वहाँ मृणाल दंडकी एक मडपिका बनी हुई थी । उसके सत्र ओर कर्पूर-रसका प्रवाह, छोटीसा कृत्रिम नदीकी तरह, वह रहा था । कादम्बरी उस मडपिकाके नीचे फूलोंके त्रिछोने पर सो रही थी । डार, बाजूबद, कंकण, मेखला और नूपुरके बहाने कामदेवने इर्षासे मानो उमे मृणालको जंगीरोसे बाँध लिया था । चंदनसे श्वेत रत्नाटमे मानो चंद्रने उसका स्पर्श किया था । आँसू बहाते नेत्र पर मानो वरुणने चुम्बन किया था । अधिकाधिक श्वास छोडते मुख पर मानो वायुने दंश किया था । सतापसे तपे ग्रगोमे मानो सूर्यने वास किया था । कामाग्निसे प्रज्वलित हृदयमें मानो अग्निने प्रवेश किया था । त्वेद युक्त शरीर पर मानो जलने आलिंगन किया था । इस प्रकार मानो देवताओंने आन ही उसका

सौभाग्य सब तरहसे लूट लिया था । दृष्टिके साथ उनका मन चानचानी प्रियतमके पास चले गए हैं इस भाँति वह दुर्बल दीवती थी । जग 'कूरे' चन्दन-लोभसे श्वेत हुआ उसका रोमाच ऐसा मालूम होता था मानो दृष्टिके निरन्तर स्पर्शसे मोतियोंकी किरणें लग गई हों । पत्नीनकी नूँदसे क्यात गान्धों पर ण्खोंसे पवन करके भूषणोंसे आकृष्ट हुए मधुकर मानों प्रभुनी प्रभु या प्रकट करते थे । कर्णभूषणसे आकृष्ट हुए मधुनरोंकी गुञ्जार रूपी आरामें नानो कान दग्ध हुआ हो इस तरह वह उस पर आँखके बोनेमसे निम्नने प्रभु-प्रवाहसे सिंचन करती थी । कानमें सफेद केतकीरी कली पहन कर वह मानो वेगसे बहते अश्रु-प्रवाहके लिए प्रणालिका बनाती थी । संतापके नाने भागता मानो देह-प्रभाका समूह हो ऐसा उसका वन लवे राँससे काँसेके शरणा चंचल होकर स्तन-कलशके ऊपरसे खिसक जाता था । शिलते हुए चामरके प्रतिविम्बसे प्राणनाथके पास जानेके श्रौत्सुक्यसे मानो पंख उरता दिष्ट हों ऐसे मालूम होते दोनों कुच-कलशोंको उसने आने शयसे दाप रक्षा था । बरफकी शिलाकी पुतलियोंका भुजलतासे बार बार आलिंगन करती थी । कर्पूर की पुतलियोंको बार बार गालसे लगाती थी । चरणारविन्दोंसे बार बार चन्दन-पकड़ी प्रतिमाका स्पर्श करती थी । स्तनमें प्रतिविम्बित हुआ मुख भी मानो कुतूहल-सहित हुआ हो इस प्रकार फिर वर उसकी देवता था । कर्णपूरपल्लव भी मानो उत्कठित हुआ हो इस प्रकार अपने प्रतिविम्ब-रूपी पल्लवमें रह कर उसके गाल पर चुम्बन करता था । मुक्तात्म' हार भी मानो मदन-परवश हुआ हो इस प्रकार कर^२ पसार कर उसका आलिंगन करता था । मण्डि दर्पण छातीके ऊपर रखनेसे उसीके समान आकारवाले चन्द्रमानो मानो वह अपने जीवनकी शपथ दिताती थी कि आज उदय मत होना । वह सामने आते प्रमद-वनके गधवारणके^३ लिए, हथिनीके समान, कर

१—मोतियोंका हार, नि सख, म्लान ।

२—किरण, हाव ।

३—वनके मदोच्छ्रित गन्ध-गजके सामने आने पर हथिनी सूँढ़ बंधी कर देती है, कादरोंने सामनेसे आते प्रमद-वनकी गन्धको रोकनेके लिए हाथ फैला दिए थे ।

पसारती थी । मानो प्रस्थान करती हो इस प्रकार उसको दक्षिण भागमें वात मृगका^१ आगमन अशुभ लगता था । मदनके स्नान करनेकी मानो चोरी हो इस प्रकार उसके पार्श्व पर कमलावृत और चंदनसे षण्ण पयोवर^२-कलश शोभायमान थे । आकाश कमलिनीकी तरह उसमें स्वच्छ अम्बरके^३ तलमेंसे मृणालके समान कोमल उरुमूल^४ दिखाई देता था । कुसुमवनुप लोखाके समान वह मदनारोपित^५ गुणकोटिकान्ततर थी । वसत देवताके समान वह शिशिर^६-हारिणी थी । भ्रमरीकी तरह वह कुसुम-मार्गयाकुल^७ थी । चन्दनके लेपसे युक्त होने पर भी वह अनंगरागणी^८ थी । बाला होने पर भी वह मन्मथजननी^९ थी और मृणालिनी^{१०} होने पर भी हिम-स्पर्शकी इच्छा रखती थी ।

२६१—जैसे जैसे एकके पीछे एक परिजन चन्द्रार्पाङ्गो देख कर उसका आगमन निवेदन करनेके लिए आता था तैसे तैसे वह प्रत्येकके मुँह पर

१—वातप्रभो एक प्रकारका मृग । उसका आना अशुभ होता है, कादंबरीको दक्षिण पवन-रूप मृगका आगमन अच्छा नहीं लगता था ।

२—कलश चंदनसे षण्ण पानीसे भरे होते हैं और उनके मुक्त कमलोंसे ढके होते हैं, कादंबरीके कलशके समान पयोवरों पर चंदन लगा हुआ था और वे शोभायुक्त थे ।

३—साफ आसमान, स्वच्छ वरु ।

४—मूल नक्षत्र, उरुडंकी जड़ ।

५—कामदेवकी लाग आई हुई डोरीकी कोंटिसे वह अधिक शोभायमान मालूम होती थी, कादंबरी जवानीके कारण चढ़े हुए बहुतसे गुणोंसे अत्यंत शोभायमान मालूम होती थी ।

६—शिशिर ऋतुका अपहरण करनेवाली, शीततोपचारसे मनोहर लू होती ।

७—फूलोंके अन्वेषणमें व्याकुल, फूलरूपी बाथोंसे व्याकुल ।

८—अगराग रहित, कामदेवमें अनुरागवाली ।

९—कामदेव, काम विकार ।

१०—कमलिनी; मृणाल धारण करनेवाली ।

पडते, चंचल पुतलीवाले, नेत्रसे बिना चोले ही पूछती कि क्यों इस ने नन्दगुप्त प्राये हैं ? तुमने उनको देखा है ? वे कितनी दूर हैं ? क्यों हैं ? इतनेम जन उसने अधिक धमल होती अपनी आँसुमें चन्द्रापीड़को दूरसे ही सम्मुख प्रान्त देखा तब वह फूलोंके विछोने परसे उठी । वर तुरंत पकड़ कर लाई हुई वरारोहा^१ हथिनीके समान उरुत्तम्भ^२ विधृत थी, अग-चेष्टा कर रही थी, कुसुम शैयाकी सुगंधके कारण प्राय मुखर मञ्जुश्रीसे मानो जगदम्ती उदाई गई थी, सभ्रममें खिलके उत्तरीयके बदले हारकी किरणोंसे छाती ढक रही थी, मणि-भूमि पर रखे धाम करतलसे अपनी प्रतिमासे मानो हाथका यशारा मांग रही थी, खुले हुए वालोंकी चौथी आँवनेसे थके दाहिने हाथमेंसे टपते पंजानसे मानो प्रोक्षण कर अपना दान करती थी, पीठ मुड़नेसे भिचली सिद्धिनेके मारण रोमराजिके तरंगित होनेसे ऐसा मालूम होता था मानो कामदेव उसे निचोड़ कर सब रस शहर निकल रहा हो, तिलकमेंसे अन्दर पहुँचे चन्दन-रससे मानो भिप्रिन हुआ शीतल आनन्द-जल आँखोंमेंसे टपका रही थी; आनन्द जलकी वृद्धा प्रवाहसे—चञ्चलमान अर्ण्यूरनी रजसे मलिन हुए—गालको प्रियतम की प्रतिमाके प्रवेश करानेके मानो लोभसे धो रही थी, चंदन-तिलकके भारसे मानो कुछ नीचे देख रही थी, उस क्षण कोनेकी ओर गई पुतलीवाली ओर राजपुत्रके मुख पर ही लगी लगी दृष्टि मानो उमका आकर्षण कर रही थी । चन्द्रापीड़ने तो पाठ आकर पहलेकी भाँति प्रथम महाश्वेताको प्रणाम किया, पीछे विनय पूर्वक उसको नमस्कार किया । बदलेमें प्रणाम करके फिर वह उसी कुसुम-शयन पर बैठी थी कि इतनेमें प्रतीहारिनी एक सुवर्ण मय कुरसी लाकर रक्की जितके पावोंमें चमकते हुए रख जड़ रहे थे । उसे पैरसे हटा कर राजपुत्र भूमि पर ही बैठा ।

२६२—फिर केयूरने कहा कि देवी, यह महाराज चन्द्रापीड़की स्नेह भाजन पत्रलेखा नामकी ताम्बूत गदनी है—ओर पत्रलेखा को दिखाया । उसको देखते

१—हथिनी पर चढना अच्छा मालूम होता है, कादम्बरीका नितंब भाग सुन्दर था ।

२—मोटे स्तनसे रँधी हुई (हथिनी), सात्विक भावसे रोकी गई (कादम्बरी) ।

ही कादम्बरी साचने लगी कि अहो ! मनुष्य-जाति ही त्रियामे प्रजापति का यह पक्षपात ! फिर पत्रलेखाके प्रणाम करते ही उसने आदर-सहित—आओ, आओ—कह कर उसे अपने पास पीछे ही बैठा लिया और सत्र दासियाँ चक्रित होकर उसे देखने लगीं । देखते ही अत्यंत प्रेम उत्पन्न होनेके कारण उद-वार-वार स्नेह पूर्वक अपने कर-पक्षवसे उसका स्पर्श करने लगी ।

२६३—थोड़ी देरमें आगमनके योग्य सत्र उपचार हो चुके तत्र चन्द्रामीड कादम्बरीको ऐसी अवस्थामें देख कर विचार करने लगा—मेरा अत्यन्त मूड हृदय अत्र भी नहीं मानता है ! खैर, इससे युक्ति पूर्वक कुछ पूछूँ । यदि विचार कर उसने कहा—देरी, मैं जानता हूँ कि तुम किस अनुरंजक^१ पदार्थके ग्रभाज के कारण यह अविचल सतापाधीन व्याधि सहन करती हो । सुतनु, सच सच हमको जितनी उससे पीड़ा होती है उतनी तुमको नहीं होती होगी—इसलिए देह-दानसे भी तुमको मैं स्वस्थ करनेकी इच्छा करता हूँ—तुमको काँपते देउ अनुरुम्पा^२ करता और कुसुमोंमें^३ पीड़ासे पड़ी तुमको देखता मेरा हृदय मानो निकला पड़ता है—तुम्हारी कृश भुजलता अनगद^४ हुई हैं—गाढ सतापसे तुम्हारी दृष्टिमें स्थल-कमलिनीके समान रक्तामरस^५ दीखता है । तुम्हारे दुःखित होनेसे वार-वार अश्रु-विन्दु टपका कर परिजनोने भी मुक्ताभरणता^६ धारण की है, तो अत्र स्वयंवर^७ माग्य मगल-भूषण ग्रहण करो, क्योंकि नमालता^८ तो कुसुम^९—शिलीमुखके साथ ही शोभायमान मालूम होती है । बाल्याग्रम्याके

१—दूसरा अर्थ—कटुपै जनिज अनुरागके कारण ।

२—कृपा करता, काँपता ।

३—दूसरा अर्थ—कामकी पीड़ासे ।

४—याजूषद-विहीन, कामको पैदा करनेवाली ।

५—कठोर रक्तता, विरस अनुराग ।

६—अर्थात् मोतियोंके गहनोके स्थानमें आँसू गिराती है ।

७—स्वयं (अपने आप) अच्छे और योग्य मगल भूषण, स्वयंवरके योग्य ।

८—नई लता, युवती ।

९—फूल तथा धनुर, कामदेव ।

कारण कादम्बरी मुग्धा प्रवश्य थी, तो भी, मानो कामदेवने बुद्धिहीन उपदेश दिया हो इस प्रकार, राजकुमारके अस्फुटार्थ भाषणसे जो प्रथम सूचित हुआ उसे समझ गई। परन्तु अपने मनोरथोंकी इतनी सफलता सभय न नमस्क, लज्जित शेर, चुन रही। उस क्षणम सुवन्दी सुगमिसे आकृष्ट हुए भ्रमरोंके प्रणयसे द्रुम चन्द्रापीड़को मानो देखनेके लिए किसी महानसे म्मित प्रसादा करने लगी।

२६४—फिर मदलेखाने प्रत्युत्तर दिया—कुमार, क्या कहूँ ? यद्यत्ताप अत्यन्त दारुण और अरुथनीय है, जिसमें फिर देवी कुमार भाय युक्त है इसलिए उनको किससे पीडा न हो ? कमलिनीका टडा पत्ता भी अग्निदाहके समान और चाँदनी भी तापके समान मालूम होती है। जिसलवणके पखेकी पवनसे भा उनके मनमें जा खेद होता है उसे क्या आप देर ते नहीं ? इनके प्राण वारण करनेका कारण केवल धैर्य है। मदलेखाके कहनेको ही कादम्बरीने हृदयसे चन्द्रापीड़को प्रत्युत्तर दिया। इस भाषणके दा अर्थ होनेसे चन्द्रापीड़का चित्त सदेहमें रहा तो भी बहुत देर तक महाश्वेताके साथ प्रति युक्त वातचीत करनेके पीछे, उड़े उड़े प्रयत्नसे अपना पीड़ा छुड़ा कर, डेरेंको जानेके लिए कादम्बरीके भवनमेंसे निकला।

२६५—बाहर निकल कर बोड़े पर सवार होता ही था कि इतनेमें केयूरकने पीछेले आकर कहा—महाराज, मदलेखा विनय करती है कि पत्रलेखाके प्रथम दर्शनसे ही देवी स्नेह करने लगी हैं इसलिए उनकी इच्छा है कि इसे आप यहाँ छोड़ दें, वे इसे पीछे भेज देंगा, महाराजकी क्या आज्ञा है ? चन्द्रापीड़ने यह सुन कर उत्तर दिया—केयूरक, पत्रलेखा धन्य और स्पृहणीय है कि उस पर देवीकी दुर्लभ कृपा हुई ? इसे रहने दो। इतना कहकर वह सेनाके पास आ पहुँचा और वहाँ पिताके पाससे आए हुए एक अत्यन्त परिचिन पत्रवाहकको देखा। वाड़ेको रगड़ा करके पीतसे फैले हुए नेत्र-सहित दूरसे ही पूछने लगा—क्यों ? क्या सन परिजनोंके साथ पिता और सत्र अन्तःपुरके साथ माता कुराल पूर्णक हैं ? यह सुन उस दूतने पास

१—सुकुमारता, संताप देनेवाले कामदेवके नाचसे युक्त अथवा आप कामसे भी अधिक सुन्दर हैं, आपके भावसे युक्त।

आकर प्रणाम किया और कहा—हाँ महाराज, जैसे आप कहते हो वैसे ही हैं। फिर दो पत्र दिये। राजकुमार उनको सिरसे लगा कर, और आपही खोल कर क्रमसे पढ़ने लगा—

२६६—स्वस्ति। उजयिनीसे सम्मल भूगाल-मोलि शैखरीकृत चरणार्णव, परम शैव, महाराजाधिराज देव तारापीड सत्र सम्पत्तित्रिके निवान चद्रापीडके ऊपर फैलते हुए, सुदर चूड़ामणिके किरण जालसे चुम्बित मस्तक पर चुम्बन-पूर्वक अभिनन्दन करके लिखता है। प्रजा कुशल पूर्वक है, परंतु तुमको विना देखे बहुत दिन हो गए। हमारा हृदय बहुत उत्कटित है। सब अंतःपुरके साथ देवी भी उदास रहती है। इसलिए पत्रको ढाँचते ही कूच करना। फिर शुक्रनासके भेजे हुए दूसरे पत्रमें भी वही लिखा हुआ ढाँचा। इतनेमें वैशम्पायनने पास आकर अरने पास आए हुए इसी मजमूनके दो पत्र दिखाए। तत्र—जैसी पिताजीकी आज्ञा—इतना कह कर, यों का यों हा घोड़े पर में बैठे, उसने कूचका नक्कारा बजवा दिया और अपने पास बहुतसे घोड़ोंके बीचमें खड़े बलाहर के पुत्र, मेघनाद नामके, पौत्रके बड़े अफसरको आसादी—तुम पत्रलेखाके साथ आना। कैयूरक उसे लेकर यहाँ तक जरूर आवेगा इसलिए तुम मेरी तरफसे उसके द्वारा देवी कादंबरीको प्रणाम सहित यह विज्ञप्ति करला भेजना कि सचमुच मनुष्योंकी यह विभुवन निन्दनीय, अनुरोध न माननेवाली, परिचयकी परवा न करनेवाली और दुर्ज्ञेय प्रकृति है कि उनकी प्रीति एक साथ धोखा दे जाती है और निष्कारण वत्सलताका भी नहीं गिनती। इस तरह चले जानेसे मेरा स्नेह तुमको कपटका मिथ्या प्रपंच मालूम होगा; भक्ति मिथ्या वक्तोक्ति कहनेकी कुशलता गिनी जायगी, केवल ऊमरी विनयसे मरु दीखता आत्मार्पण वृत्तता होगी, तथा मेरी आणी और मनमें भिन्नार्थ प्रकट ।।। अब मेरी बात तो रहने दो। अयोग्य मनुष्यमें प्रसाद अर्पण कग न ने दिग्ग योग्य देवांगे भी निन्दनीय क्रिया है, क्योंकि अयोग्य स्थानमें व्यर्थ आती हुई प्रसादामृत दृष्टियाँ पीछेसे महानुभावोंको लज्जा उत्पन्न करती है। देवीकी अपेक्षा महाश्वेताका विचार करके मेरा हृदय लज्जाके भारमें अधिक बह होता है क्योंकि जो गुण मुझमें नहीं हैं उनको बतला कर, मेरी प्रशंसा करते और अस्थानमें पक्षपात करनेके कारण, देवी सचमुच महाश्वेताको बार बार

उलाहना देगी। परन्तु अब मैं क्या करूँ? पिताजी प्रनुल्लभनीय आनामा केवल मेरे शरीर पर ही अधिकार है, परन्तु हृदयने तो हेमकूटमें रहनेके शौन्ते सत्त्व जन्मान्तर तक देवीका गुलाम रहनेके लिए पैनामा लिख दिया है। जैसे भाड़ी वाला प्रदेश जगली आदमीको नहीं निकलने देता उनी भाँति हृदयको देवीका प्रनाद नहीं हटने देता। स्वया पिताकी आशासे उज्जैन जाता हूँ। प्रनासे जन-कथा-कीर्तनमें चन्द्रापीड़-चाडालको भी आप याद करना। परन्तु यदि मत समझना कि चन्द्रापीड़ जीता रहेगा तो देवीके चरणारविंदोंकी वदना करनेके आनन्दका अनुभव किए बिना रह सकेगा। प्रदक्षिणा-सहित सिरसे महारखेताके चरणोंका वदन करना, मदलेखासे प्रणाम-पूर्वक दृढ आलिंगन कहना, तमालिख का गाढ आलिंगन करना। हमारी तरफसे कादम्बरीके सब परिजनोंसे कुशल पूछना और हाथ जोड़ कर भगवान् हेमकूटको आमंत्रण करना।

२६७—इस प्रकार आशा देकर वह वैशम्पायनसे कहने लगा—तुम, अपने पक्षके राजाओंकी सेनाको क्लेश न पहुँचे इस प्रकार, धीरे धीरे आना। यों कर वैशम्पायनको सेनाके ऊपर नियत किया और आप भी उसी तरह घोंड़े पर बैठा बैठा, कादम्बरीके नये वियोगके कारण हृदय शून्य होने पर भी, अपने पर्याणके पास चलते पत्र बाहकसे उज्जैनका रास्ता पूछता पूछता चल निकला। गमन-रूपी विलासके हर्षसे दिनदिनाहट करके कैलाशको कँपाता, टापोंके आघात से पृथ्वीको खडित करता, मनोहर मल्ल-रूप लता-वनको ले जाता, बहुतसे तरुण नुरंगवाला अश्व-सैन्य उसके पीछे पीछे चला आता था। चलते चलते एक शून्य वन आया जिसमें प्रायः अत्यन्त ऊँचे तनेके वृक्ष लगे थे; वृक्षोंके झुरमुटोंमें मालिनी लताओंके मडप बने थे, हाथियोंके गिराए हुए वृक्षोंके पड़े रहनेके कारण पगडडी टेडी हो गई थी, मनुष्योंके द्वारा बहुतसे घास-पत्ते और काष्ठके ढेर लगानेसे वीर पुरुषोंके घातके स्थानकी सूचना होती थी; एक बड़े वृक्षकी जड़में वन दुर्गाकी मूर्ति खुदी थी, तृपित पथिकोंके द्वारा गूदा उतार कर फेंके गए आँवले पड़े थे, वहाँ नितने ही पुराने कूप थे; उनके तट पर खिले हुए फरज नामक वनस्पतिकी मजरीकी रज विसरी हुई थी, किनारों पर लगे वृक्षोंमें पुराने वनों और चिथड़ोंकी ध्वजाओंके चिन्ह बँधे थे, ईंटों पर बने सूखे पत्थरोंके विद्योनेसे वहाँ पथिक जनोंके विश्राम करनेका अनुमान होता था, उनके किनारों

के पासके स्थान विश्रामके लिए बैठे रक्ताम्बर यात्रियोंके चरणाकी बूलके उड़ने से मलिन हुए किसलयोंसे लाञ्छित थे, उनका जल अनेक प्रकारके पत्तोंके पड़ने से दुर्गन्ध, गरम, पकमय, गदला और अस्वादु हो गया था, चारों ओर गाँठे लगा कर बनाए पत्तोंके पात्र और बासकी बनी फिरकिनीके चिन्हसे वे पहचान लिए जाते थे, उनमें जल असुलभ होनेसे वह प्रदेश किसीके पसंद नहीं था। सूखी हुई कितनी ही गिरि-नदियोंसे उस वनका मध्य भाग ऊँचा नीचा हो गया था, उनके तीर मधुकी बूँदें टपकाते सिधुवारके वनकी कतारमेंसे उड़ कर आई हुई रजसे धूसर हो गए थे, निकुञ्ज नामक लताके जाल उनकी रेती पर निरंतर व्याप्त थे और बटोहियोंने रेती खाद कर वहाँ छोटी छोटी कुदियाँ रोदी थीं जिनमेंसे थोड़ा थोड़ा मलिन जल मिल जाता था। जिसमें मुगाँ और कुत्ता के शब्दसे अनुमान होता था कि भाड़ीके बीचमें कोई छोटासा गाँव होगा ऐसे शून्य वनमें दिन भर चलनेके पीछे जब राविका त्रिम्ब अस्त होने लगा और दिन त्रिम्बकी लाल धूपसे युक्त हो गया तब एक बड़ा रक्त ध्वज दूरसे ही उभरे देख पडा।

२६८—वनके उस प्रदेशमें, चोटी पर एक पल्लव रहनेसे छत्रकी मिटमना करते, शाखा-रहित, अनेक कदम्ब, शालमली और पलाशके वृक्ष लगे थे, जिनमें नई कोपल निकल कर ऊपरकी चट रही थीं ऐसे स्थूल स्तम्भोंकी जड़ोंसे बरभग हुआ था, वहाँ हरतालके समान पीले पके बॉसके वृक्षोंकी बाड़ बनाई गई थी, हिरनोंको डरानेके लिए तृण-पुरुष बनाए गए थे, पक जानेके कारण पीले दीखते फल-युक्त प्रियगु वृक्षोंसे भरे वन-क्षेत्रोंसे वह मकुचित हो रहा था। वहीं बहुत कालसे लगे लाल चन्दनके वृक्षके ऊपर वह ध्वज बंधा था, जा इधर-उधर मानो पथिकोंके बलिदानका रास्ता देखता था। वह ध्वज सरस मासके १०के समान अलक्तक और अभिनव रुधिरके समान लाल रक्त चन्दनके लेपसे रंग था, उसके दण्ड पर बिड्वा-लताके समान लाल रक्त-पताकाएँ और केश कलापके समान काले चामर अधोमुखसे लटकते थे, जिनमें ऐसा मालूम होता था मानो ताजे मारे हुए प्राणियोंके अवयवोंके आभूषणोंसे उसे सजाया हो। उस ध्वज पर कौड़ियों लगा कर बहुतसे गोल गोल बरे तथा अर्ध चन्द्र बनाए गए थे, उनसे ऐसा मालूम होता था मानो अपने पुत्र यमके पश्चिमी ग्वाह

लिए उसके शिखर पर उतरे सूर्यने चद्रको उतार लिया हो। उस पर-जो आकाशको छूले इतनी ऊँची—एक सोनेकी निशूलिका लगी थी, उसके मोगो से बंधी लोह-शृङ्खलाओंमें घटियाँ लटक रही थीं जिनके हिलनेसे घर घर ओ-घोर शब्द होता था, और सिंहकी सटाका बना मनोहर चामर उससे बंधा था।

२६६—उस ध्वजकी ओर थोड़ी दूर चलनेके पीछे उसने हाथीदाँतके बने हुए, केवड़ेकी बालके समान धवल, कपाटके भीतर, चंडिकाको देखा। वहाँ द्वा-र देश पर एक लोहेकी महाराज बनी थी। उसमें लोहेके गोल दर्पणोंकी बदनजाग लटक रही थी और उसके बीचबीचमें लाल लाल चामर लग रहे थे। उनमें ऐसा मालूम होता था मानो वहाँ कमल केशोंसे भयंकर दीखते शत्रुओंके मरतों की माला बाँध दी हो। सामने काले पत्थरके चबूतरे पर एक लोहेका महिष बैठा था; उस पर लाल चदनके थापे लगे थे, उनसे ऐसा मालूम होता था मानो यमने रुधिरसे लाल हाथ उस पर फेरा हो, रुधिरकी बूँदके लोभसे ललचाई शृगाली उसके लाल नेत्रको जिह्वासे चाट रही थी। कहीं भीलोंके द्वारा मारे गए जंगली महिषोंके नेत्रोंके समान लाल कमलोंसे, कहीं सिंहाके पंजोंके समान अग्रस्ति पुष्पकी कलियोंसे, कहीं शार्दूलोंके रुधिर पंजोंके समान किशुक पुष्पोंकी कलियोंसे, पवित्र पुष्पोंके उपहार दिए गए थे। मार कर देवीकी भेट किए गए पशुओंकी हिंसा, मंदिरमें एक तरफ, ऐसी मालूम होती थी मानो हिरनोके टेढे सींगोंके अग्रभागके समूहोंसे अकुरित हुई हो, सैकड़ों सरस जिह्वाओं से पल्लवित हुई हो, हजारों रक्त नयनोंसे पुष्पित हुई हो, और मुण्डमडलसे फलित हुई हो। अँगनमें लगे लाल अशोक वृक्षकी डालियोंके बीचमें लाल मुगें निरंतर भर रहे थे, उनसे ऐसा प्रतीत होता था मानो भयसे अकाल कुसुम स्तवक लगे हों। बलि रुधिर पीनेकी तृष्णासे आए बैतालोंके समान तालवृक्ष फलरूपी मुडका उपहार दे रहे थे; पशुओंका वध देखनेकी शकासे पैदा हुए ज्वरसे मानो काँपते कदली-बनोसे, भयसे मानो कंटकित हुए श्रीफल वृक्षोंसे और बाससे मानो ऊँचे उठे केशवाले खजूरके बनोसे वह स्थान सर्वत्र व्याप्त हो रहा था।

२७०—वहाँ अग्निकाके लाड़ करनेसे चाहे जहाँ घूमते सिंहके बच्चोंसे विदीर्ण किए गए जंगली हाथियोंके कुम्भस्थलोंमेंसे गिरे लाल लाल मोतियोंके

दानोंको मुग्ध मुर्ग नवीन रुधिरसे रक्त चावलोके बलिदानके लालचसे ले लेकर फिर उगल देते थे, और उन्हें खेलमें विखेलेते थे। बहुतसा रुधिर देखनेसे मानो मूर्च्छित होकर गिरे, अस्तके समयके, लाल सूर्यके प्रतिबिम्बसे अधिक लाल दीखते, रुधिर रूपी जलके प्रवाहसे वहाँका आँगन चुपकने लगा था। अदरवाले दरवाजेके वल्ल, लटकते हुए दीपकोंके धूमसे, रंगीन हो गए थे, उसमें मयूरके गर्लकी गुंथी हुई माला बँधी थी; आटेसे साफ की हुई टड घटियोंका हार लटक रहा था; उसके दोनों किवाड़ोंमें नीसेके सिहके मुँहके मध्यमें मोटी लोटेका चटखनी बनी थी, हाथीदोंतकी आगल लगाई जाती थी, और पीले, नीले और लाल दर्पणोंमें कीलोंकी परछाईं पड़ती थी। अदरकी कुर्सीकी सतह पर गिरत, सब पशुओंके शरणमें आए जीवके समान, अलककसे रगे वल्लसे उस देवी क चरण सदा टके रहते थे। वहाँ परशु, भाला आदि कितनेही जीवोंकी हिसा करनेके शक्त थे; उनमें कृष्ण चामरोका प्रतिबिम्ब पड़नेसे ऐसा मालूम होता था मानो सिर काटनेसे बाल चिपक रहे हों, उन शस्त्रोंकी प्रभासे गाढ़ अकारर हो जानेके कारण चंडिका मानो पातालमें वास करती हो ऐसा प्रतीत होता था। वह बिल्वपत्रोंके हार पहन रही थी; उनके बीचबीचमें लाल चदन चुम्पे हुए पत्ते और फल चमक रहे थे तथा वे ऐसे मालूम होते थे मानो बालकोंके मुँहोंकी लम्बी लम्बी मालाएँ हों। रुधिरसे लाल हुए कदम्बके गुच्छोंसे पूने गए और पशुओंका बलिदान करते समय बजाई गईं दुःसुभीके तीक्ष्ण शब्दसे उत्पन्न हुए आनन्द-रससे मानो रोमाञ्चित हो ऐसे अवयवोंसे वह उग्रता दिखाना गी। सुन्दर कनकपट्टसे आच्छादित तथा भीलनियों द्वारा लगाए गए सिंदूरके तिलक बिन्दुसे युक्त ललाटसे, कानमें पहने हुए अनारके फूलकी प्रभाके मध्यमें लाल हुए चौड़े गालसे, रुधिर रूपी ताम्बूलसे लाल हुए दोटसे, लाल नेत्रों तथा माया सकोड़नेसे टेढी मोहवाले मुपसे, और कसूमम गुलानी रंग के दुकूलसे युक्त देह-लतासे, उरुने मदाकालकी अभिसारिकाके वेष का विलास वारण किया था। लहराते हुए श्याम गूगलको वृषके भ्रमने रक्त हुए भीतरक मडपकी चंचल दीपिका लताएँ ऐसी मालूम होती थी मानो महिषासुरके नागरही जूँदोंसे लाल हुई उँगलियोंसे वह चौड़े कवचे सुजानेसे त्रिशूल-दण्डको शिवा देनेके अपराधके कारण उन महिषको पमफानी हो। लम्बी लम्बी उग्र

पर बकरे भी मानो मत करते हैं, होठ फड़फड़ा फड़का कर चूने भी मानो मत करते हैं, कृष्णचर्म आठकर मृग भी मानो धरना देकर सोने हो और मलमल चमकते हुए लाल रत्नकी किरणोंके कारण कृष्णमर्ष भी मानो माथ पर मणि-दीपक धारण करते हो—इस प्रकार सब उसकी आराधना करते थे। कटोम कौवे भी सर्वत्र काँव काँव करके मानो प्रशंसा करनेमें लगे हुए उमरी नृति करते थे।

२७१—वहाँ एक बूटा द्रविड़ धार्मिक रहता था, मोटी मोटी नर्सीक जालते निरंतर व्याप्त होने के कारण वह ऐसा मालूम होता था मानो जले हुए टूठकी शंफले गोद, झिम्कल्लो और गिरगटोंके झुंड उम पर चढे हैं। सोड़ोंके बावके चिन्होंसे विव्रित उमका सब शरीर ऐसा मालूम होता था मानो अलक्ष्मीक द्वारा जडते उखाड़ गए शुभ चिन्होंके जाली स्थानोंमें उक्त हो। कर्णभूषणकी जगह रखी गई उसकी शिखा छोटी सी ब्राह्मण नालाके समान मालूम होती थी। अग्निाके पैरोंमें गिरनेसे उसके काले ललाट पर गुमडा पड़ गया था। किसी अन्तारके दिए हुए सिद्धांजनके लगानेमें उसकी एक आँख फूट गई थी, इस कारण हर वक्त वह दूमरी आँखमें अन्न लगानेके लिए एक काठकी सलाई पतली किया करता था। बाहर निकले शंतीकी चिकित्साके लिए वह प्रति दिन कडवी दूर्बरीका पसेत्र लगाया करता था। किसी तरह अस्थान पर गरम इट लग जानेके कारण उसने मुर्रियोवाली टफ भुजान्त मदन करना बंद कर दिया था। बार बार कडुक-वर्तीका निरंतर प्रयोग करनेसे उसका तिमिर रोग बढ गया था। पत्थर काटनेके लिए उसने रत्नके दाँत इस्टो कर रखे थे। इंगुदीके वृक्षके कोश में आँघध और अन्नका स्रष्ट कर रखा था। प्रकोष्ठकी एक नसको रुईसे सी लेनेके कारण उसके बाएँ हाथ की उँगलियाँ सुकड गई थीं। रेशमी मोर्जेके प्रिस जानेसे चरणके अँगूठेमें त्ववाई फट गई थी। विधिके अनुसार न बनाई गई रत्नायनके प्रयोगसे उसे अकाल प्जर आ गया था। वृद्ध होने पर भी दक्षिण देशके राज्यके बरकी प्रार्थना करके बढ चटिकाफो पीडा देना था। किसी दुष्ट भिक्षुके बताए हुए तिलक पर उसकी विभव मिलनेकी आशाका आधार था। हरे पत्तोंके रसमें कोयलेकी नदी हुई न्वाहीमें मलिन हुई एक सीपी उसके पास थी। एक

पट्टी पर उसने दुर्गाका स्तोत्र लिख रक्खा था। उसके पास ताल-घंटों पर लिखे इंद्रजाल, तत्र और मंत्र की छोटी छोटी पुस्तकोंका संग्रह था, जिनके लाल लाखके अक्षर बुँसे रँग गए थे। प्राचीन महापाशुपतके उपदेशसे उसने महाकाल-मत लिख लिया था। इस साधनसे खजाना मित्रोगा—ऐसे निधि-वादकी उसे व्याधि थी। इस साधनसे तौत्रा भी सुवर्ण हो जायगा—ऐसे धातु-वादकी त्राय उसे होगई थी। पातालमें प्रवेश करनेका पिशाच उसके पीछे लगा था। यक्ष-कन्याके साथ भोग की अभिलाषा करनेसे उसकी बुद्धिमें भ्रम हो गया था। अदृश्य हो जाने के कितने ही मंत्रों और साधनोंका उसने संग्रह कर रक्खा था। श्रीमर्वतकी हजारों आश्चर्य-मय वार्ताओंसे वह परिचित था। अभिमंत्रित की हुई सरसोंके बार बार फँकनेसे दौड़े हुए—पिशाचसे आविष्ट—मनुष्योंने चनकटे मार मार कर उसके कान चपटे कर दिए थे। उसने अपने शैव होने का अभिमान नहीं छोड़ा था। उलटा पुलटा पकड़ कर बजाए गए तमूरेका शब्द सुन कर उद्वेग पाते पथिक उमक पास तक नहीं फटकते थे। दिन भर सिर हिला हिला कर वह मच्छरकी भिनभिनाहटके समान कुछ गाया करता था। अपने देशकी भाषामें बने हुए भागीरथीके एक स्तोत्रको गाता हुआ नाचा करता था। अश्व-ब्रह्मचर्य ग्रहण करनेके कारण अन्य देशोंसे आकर बसती हुई उद सन्यासिनियों पर बार बार स्त्री-वशीकरण चूर्ण डाला करता था। बहुत चिडचिड़ापन होने के कारण कभी कभी इधर उधर रस्की हुई ग्रष्ट-पुष्पिका^२ के गिरजाने पर वह क्रोधित हो जाता था। मुँह बना बना कर चाडकाफा भी खूब उपहास करता था। कभी कभी टहरनेका निषेध करने से क्रुद्ध हुए के साथ मार-पीटमें गिर पड़नेसे उसकी पीठ टूट जाती थी। कभी कभी थ करके दौड़े हुए बालकोंसे चिड़कर उनके पीछे दौड़ में टोकर गाएँ मुँह पत्थर पर गिर पड़नेसे उसके सिर और कपाल फूट जाते थे तथा गर्दन टेढ़ी हो जाती थी। कभी कभी वहाँ लोगोंके द्वारा किमी नए ग्राए हुए अन्य धार्मिकका आदर हुआ देख मत्सरसे (ग्रात्मघात करनेके लिए)

१—अर्थात् स्त्रियोंके न होनेसे जबरदस्ती ब्रह्मचर्यसे रहना।

२—थाठ तरहके फूलोंका संग्रह।

फाँसी लगा लेता था। संस्कार-राहत होने के कारण चाहे जो कुछ करता रहता था। लँगड़ा होनेके कारण धीरे धीरे चलता था। उबरा होनेके कारण इगारोंसे त्रातचित करता था। रतोधा होनेके कारण दिनमें ही बाहर निम्नलता था और लम्बा उदर होनेके कारण आहार बहुत करता था। अनेक उपायोंके द्वारा फल गिरानेसे चिढ़े हुए बन्दरोंने पत्रोंसे खसोट कर उसकी नाक पर छेद कर दिए थे। कितनी ही घार फूल तोड़नेसे उड़े हुए हजारों भीरोंने उर मार मार कर उसका शरीर शीर्ष कर डाला था। हजारों बार, साफ किये बिना, शून्य देवालयोंमें सोनेसे काले मणोंसे उसे काट लिया था। मंरुड़ा बार श्रीफलके वृक्षकी चोटी परसे गिरनेके कारण उसके मस्तकका चूरा हो गया था। अनेक बार दूटे दूटे देवीके मंदिरमें रहने वाले रीछोंने पत्रे मार मार कर उसके गाल जर्जरित कर डाले थे। हमेशा वमतमें खेलने वाले लोग एक दूटी खाट पर बिठा कर लाई गई वृद्ध दासीके साथ विवाह करके उसका अपमान करने थे। बहुतसे देव मंदिरोंमें अभीष्टकी सिद्धिके लिए धरना दे कर सोने पर भी उसे कुछ फल नहीं मिला था। अनेक व्यक्तियोंसे पीड़ित अपनी दुःस्थितिका भी वह कुटुम्बकी भाँति पालन करता था। बहुतसे व्यसनोंसे युक्त मूर्खताकी यों दरसाता था मानो उस मूर्खताने अनेक अपत्य उत्पन्न किए हों। अनेक उंटोंकी चोटसे शरीर पर पड़े गूमड़ोंसे क्रोधके भी मानो फल गए हों यों प्रकट करता था। सब प्रबन्धों पर प्रज्वलित दीपकके समान दाह पैदा करनेवाले ब्रणोंसे अपने क्लेशोंके भी मानो बहुतसे मुग्ध हुए हों यों दिखाता था। बिना कारण बुलाए गंधलागोंके द्वारा पैर पकड़ कर मँकड़ों बार खींचा जानेके कारण अपने तिरस्कारोंके भी मानो सप्रवाद हो यों चारण करता था। सूखी वन-लताओंकी एक बड़ी टोकरी फूल भरनेके लिए और बाँसका एक अँकड़ा फूल तोड़नेके लिए उसने बना लिया था और काले कम्बलके टुकड़ोंकी एक टोपी क्षण भर भी अलग नहीं रखता था। उनी जगह चन्द्रापीड़ने विश्राम लिया।

२०२—फिर थोड़े परसे उतर, मंदिरमें जा कर, चट्टिकाको उसने भक्तिपूर्ण चिन्तने प्रणाम किया और प्रदक्षिणा-पूर्वक फिर प्रणाम करके ऐसी शान्त जगह देखनेके चामत्ते वह इधर उधर फिरने लगा। इतनेमें उसने देखा कि एक जगह त्रिविध धार्मिक गुस्तेमें आकर ऊँचे स्वरसे रोता और चिल्लाता है।

कादंबरीके वियोगसे उत्पन्न हुई उत्कठा और उद्वेगसे स्वयं पीड़ित होने पर भी उसे देखकर वह बहुत देर तक हेसा । उसके साथ उपहाम और क्लृप्त करने अपने सैनिकोंको उसने रोक दिया और किसी भाँति मीठे मीठे बचन कह कर तथा विनयसे समझा बुझा कर उमे ठंडा किया । फिर उसकी जन्म भूमि, जाति, विद्या, स्त्री-पुत्रादिक विभव, वयः प्रमाण, और सन्यास ग्रहण करनेका कारण क्रमसे स्वयं ही पूछा । तब उसने अपना सब वर्णन किया और पहलेके शौर्य, रूप, विभव आदिके विस्तार पूर्वक वर्णन सुन कर राजकुमारको बहुत ही आनंद हुआ । उसके विरहोत्कंठित हृदयको कुछ विनोदसा भी हुआ । परिचय हो जानेसे उसको ताम्बूल दिलाया ।

२७३—फिर जब भगवान् सूर्य अस्त हो गए, सब राजपुत्रोंने जैसे मिले वैसे वृक्षोंके तले डेरे डाल लिए, सुवर्णकी जीनें शाखाओं पर लटना दी गई, भूमि पर लोटनेसे लगी हुई धूल झाड़नेके लिए बालोंको इधर उधर फटकाने ने घोड़े उत्साह दिखाने लगे, उन्होंने थोड़ी थोड़ी घास घाली, जल पी लिया, स्नान करनेमें पीठ गीली होनेके कारण थकावट दूर हो गई और उनका चामने गद्दी हुई भालोंकी लकड़ियोंसे बंध दिया, दिनमें चलनेमें गंके हुए सैनिकोंने प्रहर निश्चय कर लिए, घोड़ोंके पास ही पत्तोंके बिल्लोने बिछाकर व सोने की तैयारी करने लगे और बहुतती जगदंभि सुलगाई गई अग्निकी प्रभासे अंधकारका नाश हो जानेके कारण सब सेनाका डेरा दिनके समान प्रकाशमान लगने लगा, तब चन्द्रापीड़ परिजनोंके द्वारा एक भागमें बाँधे गए इन्द्राबुद्धके सामने बने हुए, प्रतिहारके बताए हुए, शयनके तंबूमें गया । वहाँ बैठते ही शुकुलाहटसे उसके हृदयमें सताप होने लगा । जब किसी तरह मन नहीं लगा उसने सब राजा लोगोंको बिदा किया । पास बैठे हुए अत्यंत विषमनाके भी वह कुछ बातचीत नहीं कर सका । केवल आँसू मीच कर मनस बंदेशको बार बार जाने लगा । एकाम चित्तसे देमकूटकी ही याद करने ५ । महाश्वेताकी कृपाकी निःकारण बाधनताके विषयमें चिन्तन करने लगा ।

दंबरीके—जीवन सफल करनेवाले—दर्शनकी पुन पुनः अभिलाषा करने लगा । अभिमान रहित होनेसे मनोहर लगते—मदलेवाके—परिचयको निरार चाहने लगा । तमालिकाके देखनेको उत्कंठित हुआ । नेत्रोंके प्रानेकी पर

रेखने लगा । हिमगृहको देखने लगा । गरम और लवें माँस तार तार होठने लगा । शेष हारसे अधिक प्रीति करने लगा । पीछे रही पत्रलेखाको पुण्यशालिनी मानने लगा । इस प्रकार जरा भी नींद आए बिना ही उसने सय गत विताइ । प्रातःकाल उठ कर, द्रविड़ धार्मिककी इच्छाके अनुसार, द्रव्यके दानसे उसका मनोरथ पूरा करके, यथारुचि रमणीय प्रदेशमें टहरता हुआ, थोड़े ही दिनोंमें उज्जयनीमें आ पहुँचा ।

२७४—अकस्मात् आ जानेसे हृष्ट और सभ्रात हुए नगर निवासिन्नाकी—अर्ध कमलके समान—हजारों नमस्काराजलियोंको स्वीकार करते राजपुत्रने अतर्कित ही नगरीमें प्रवेश किया । सबसे पहले खबर ले जानेकी आशासे दौड़ते और अत्यंत सरंभ तथा हर्षसे विह्वल हुए परिजनसे जय उसके पिताने सुना कि देव, द्वार पर चन्द्रापीड़ आ पहुँचे हैं, तब वह अत्यंत आनन्दके भावसे मद मद चलता, क्षीरसागरके जलको मदराचलके समान अपने नीचे गिरते निर्मल दुपट्टेको गँचता, कल्पवृक्षसे गिरते मोतित्रोंकी वर्षाके समान नेत्रोंसे आनन्दाध्रु टपकाता, पैदल ही सामने मिलने आया और उसके पीछे हजारों राजा आये । उनके मस्तक बुढापेसे सफेद हो गए थे, चन्दनका उन्होंने लेप किया था, कोरे रेशमी वस्त्र, चात्र, मट, उज्ज्वीय, मुकुट, और शोखर पहननेसे वे पृथ्वीको अनेक कैलास मय वा अनेक क्षीरसागर-मय दरसाते थे और उन्होंने खड्ग, छड़ी, ध्वज, चामर आदिको ग्रहण किया था । पिताने दूरने देखते ही चन्द्रापीड़ने घोड़े परसे उतर कर चूड़ामणिकी किरणोंसे व्यात हुए मस्तकको भूमि पर झुका कर प्रणाम किया । इतनेमें बाँह पमार कर तथा—आओ, आओ—कह कर पिताने उसका आलिंगन किया । उस समयमें पास खड़े हुए माननीयोंको नमस्कार करनेके पीछे हाथ पकड़ कर राजा उसको विलामवतीके महलमें ले गया । रानीने भी उसीके अनुमार सब अन्त पुर तथा परिवार-सहित मिलनेके लिए आगे आकर, आगमनका अभिनंदन करके, मांगलिक कियाए कीं । वहाँ थोड़ी देर तक दिग्विजयके संबंधकी बातचीत करके वह शुभ्नाससे मिलने गया । वहाँ भी उसी प्रकार थोड़ी देर बैठ कर तथा सेनाके साथ वैराग्यनकी कुशलताका समाचार म्द कर

मनोरमासे मिल कर, फिर तिलासवतीके महलमें आकर, मानो पर-
वश हो इस प्रकार, उसने नानादिक सब क्रियाओंको समाप्त किया।
मन्ध्याको फिर अपने ही महलको गया परन्तु वहाँ उत्कंठासे मन खेद पाने
लगा इसलिए वह कादम्बरीके बिना केवल अपनेहीको, अपने महलही
को, और अन्नन्ती नगरीहीको नहीं, परन्तु सब महीमंडलोंकी शून्य
समझने लगा। फिर गर्व-राजपुत्रीकी बात सुननेके लिए उत्सुक होनेके
कारण पत्रलेखाका आना मानो महोत्सव हो, मनोवाञ्छित वरकी प्राप्ति
श्रवण हो, श्रमृतोत्पत्तिका समय हो—इस प्रकार उसकी राह देखने लगा।

२७५—फिर कुछ दिनोंके बाद मेघनाद पत्रलेखाको ले कर आया और
राजपुत्रके पास लिया लाया। पत्रलेखाके नमस्कार करने पर दूरमें ही
मुसकुराहटसे प्रीति दिखा कर चन्द्रापीड़ने स्वभावसे प्रिय होने पर भी, काद-
म्बरीके पाससे उसकी कृपासे मानो और मोभाग्य हो आई हो इस प्रकार,
उसको अधिक प्यारी समझ कर, उठ कर अत्यन्त आदर दिखा कर आतिथ्य
किया। प्रणाम करते हुए मेघनादकी पीठ पर उसने अपना कोमल हाथ
फेरा और बैठ कर बहने लगा—पत्रलेखा, आर्या महाश्वेता और मदलेखा
सहित देवी कादम्बरी सबकी कुशल कहां ? तमालिका जेयूरकादि सब परि-
जन भी कुशली हैं ? पत्रलेखाने उत्तर दिया—देव, जैसे आप पृथ्वी हैं
वैसे ही सब हैं। अञ्जलि मस्तक पर रख कर देवी कादम्बरी, सब सगी-जन
और परिजन सहित, आपका अर्चन करती हैं। इस प्रकार कहता हुई पत्र-
लेखाको लेकर और सब राजा लोगोंका विदा करके वह मंदिरके भीतर गया।
वहाँ मन विरहसे आतुर होने के तथा अत्यंत प्रीतिके कारण वह बहुत

कुतूहल न रोक सका। इसलिए सब परिजनको हटा कर, एक कमरेमें
कर, नई स्थल-कमलनी के बीचमें तुम गया। उसके ऊंचे दंडवाले पर
पत्ते छत्रका नाम देते थे। सुनसे मोए हुए एक हममिथुनको मर
न पताकाके समान शोभायमान मालूम होते एक दूसरे पत्रमंडपके पत्र
रूप दिसे सरका कर, वहाँ बैठ कर, पत्रलेखा से पूछने लगा—पत्रलेखा,
कह, कैसे और कितने दिन तक रही ? देवीभी कृपा तुम पर कैसी थी ? क्या
क्या बातचीत हुई ? सखियोंसे क्या क्या बातें हुई ? इन पत्र मन मु

वाद करता है ? और कौन अधिक प्यार करता है ? राजपुत्रका यह प्रश्न सुन कर उसने उत्तर दिया—देव, कैसे और कितने दिन में वहाँ गई, देवीकी कृपा मुझ सर कैसी थी, और हममें क्या बातचीत हुई, और क्या कथा हुई, यह सब आप ध्यान दे कर सुनिए ।

२७६—आरके वहाँसे चलने पर, केयूरकके साथ पीछे लाट कर, म पहले की तरह फूलोंके त्रिलोनेके पास जा बैठी, और देवीके नए नए प्रसादका अनुभव करती वहाँ सुखसे रही । अधिक कहनेसे क्या फायदा—बहुधा जहाँ मेरी आँख, वहाँ देवीकी, जहाँ मेरा शरीर, वहीं देवीका, जहाँ मेरा हाथ, वहाँ देवीका कर-पल्लव; वह मेरे नामके श्रद्धांशका ही उच्चारण करती थी और मुझसे प्रीति करनेमें उनका हृदय लगा हुआ था । इस प्रकार सब दिन होता रहा । सायंकालको मेरे ही सहारे हिमगृहमेंसे निकल कर, सब परिजनोंको आनेका निषेध कर, स्वेच्छासे टहलती वह अपने प्रिय बालोत्पानकी ओर चली । वहाँ यमुना-जल-तरंग-मय मालूम हाती एक मरकत-मणिकी सोपान माला पर हो कर चूनेसे धवल हुए प्रमद-न्नके चवृत्तरे पर चढी और वहाँ एक मणि-स्तम्भका सहारा लेकर खड़ी रहीं । जरा खड़ी रह कर, हृदयमें दीर्घ काल तक विचार करके, मुझसे कुछ कहने की इच्छासे, पुतली और पलकोंको निश्चल रख, नेत्रोंसे मेरे मुखकी ओर बहुत देर तक देखती रहीं । देखते देखते ही निश्चय-पूर्वक मद्नाभिमें प्रवेश करनेकी इच्छासे स्वेद-जलके प्रवाहमें मानो स्नान किया । फिर स्वेद-जलके प्रवाहसे मानो तरल हुईं ही इस प्रकार काँपने लगीं । अंग काँपनेके कारण गिरनेके मानो भयसे विनाशने उनकी पकड़ लिया ।

२७७—इससे मने उनका अभिप्राय समझ लिया और उनके मुख पर निष्कंप नयन रख, ध्यानसे देख कर, मैंने जब विनय किया कि मुझे आजा करें, तब उनके श्रवण भी काँप कर मानो उनकी रोकने लगे; रहस्य सुननेकी लज्जासे अपनी प्रतिमाको भी मानो हटानेके लिये चरणगुष्ठ मणि-भूमि पर फेर फेर कर वह उसे रगड़ने लगी, मणि-भूमि पर अंगुष्ठ घिसनेसे भक्त भ्रूनाइट करते नूपुरवाले चरणारविंदोंसे भवन-कलहसोंको भी दूर भगाने लगी, कर्णोत्तलके आगे धूमते भ्रमरोंको भी स्वेदसे गीले वदन पर पंखेका

काम देते वस्त्र-पल्लवसे उड़ाने लगीं, दाँतसे काटे हुए पानकी मीठीके टुकड़ेकी मयूरको मानो (केका न कानेके लिए) विश्रयत देने लगीं, वन-देवताओंके सुननेकी मानो शकामे इधर उधर बाग बाग देगने लगी; और बोलनेकी इच्छा होने पर भी लज्जासे कंठ गद्गद् हो जानेके कारण कुछ भी बोल न सकी। उनकी वाणी मानो जलती हुई मदनाग्निने मयूरी सब जला दी हो, निरन्तर बहते नयन-जलमें बह गई हो, प्रवेश करण हुए दुःखसे व्याप्त हो, ऊपर गिरते कामके वाणोंमें टुकड़े टुकड़े हो गई हो, निकलते हुए निःश्रामोंने निःशाल बाहर की ह, हृदयमें भरी हुई मंकाई चिन्ताओंने पकड़ रखी हो, और निःश्रामका पान करने हुए मधुहोने पी ली हो—इस प्रकार बड़े-बड़े प्रयत्न करने पर भी प्रवृत्त न हुई। टुकड़-सहस्रभी गिनती करनेके लिए मानो मोतीके दानोंकी एक श्रद्धामाला बनाती हो इस प्रकार वे नीचा मुख करके, गालको स्पर्श न करें ऐसे त्वच्छ अश्रु-विन्दुओंकी केवल वर्षा करने लगीं। उस समय उनसे लज्जाने भी मानो लज्जालीला सीखी, विनयने भी अति विनय सीखा, मुग्धताने भी मुग्धता सीखा, चातुर्यने भी चातुर्य सीखा, भयने भी भीन्ता सीखी, विभ्रमने भी विभ्रमिता सीखी, विपादने भी विपादिता सीखी और विलासने भी विलास सीखा।

२७८—ऐसी अवस्थामें मने उनसे विनती थी—देवी, वह क्या ? तब उन्हीं भीतरसे लाल हुए अग्निने नत्र पाछु डाले, अत्यंत दुःखसे मानो अपनेका कौंधी लगानेके लिए मृणाल कोमल, बाहुलतासे लता गृह की मालिनकी न थी हुई एक कुसुम-मालाको, पकड़ कर, मृत्युका मानो मार्ग देगती ही इस तरह, एक अलताको ऊँची चढा कर, वह लवे और गरम निःश्राम छोड़ने लगी। उनका कारणकी उत्प्रेक्षा कर मने बार बार कहनेके लिए अनुरोध किया, परन्तु कारण कहनेकी बात मानो निगम कर देती ही इस प्रकार नगाधर के पत्ते पर कुछ लिखने लगी, बोलने की इच्छामें होठ फड़फड़ने लगे, श्वाससे आकृष्ट हुए मधुकरोंसे मानो कानमें मदेशा कहने लगी, और मूर्धनि निश्चल नयन रग कर बहुत देर तक खड़ी रही।

२७९—फिर वीरे वीरे मने मुँहकी ओर इष्टि कर, कामाग्नि में मूले मूले हुए अग्नी वाणीमें भरी हुई आँसुओंने गिरने अश्रु-विन्दुओंने माला माला

वार धोती हुई, और अत्र, विन्दुप्रोके बहाने, घबराहटमें भूले हुए अपूर्ण
 वाक्यार्थोच्छ्रोकों विलक्षण तिमिरसे झलकती हुई दन्त किरणोंसे मानों गूँथती
 हुई देवोंने किसी भौत चोचनेकी हिम्मत की और मुझसे कहा—यत्नेना,
 वल्लभताके कारण जिस स्थानमें तू है, उसमें न पिता है, न माता है, न महा-
 नेता है, न मदलेखा है, न मेरे प्राण हैं । जयसे तुझे देगा है तबसे ही तुझसे
 ऐसी प्रीति हो गई है । न नहीं जानती हूँ कि क्यों सब सगियों परसे विसर
 कर मेरा हृदय तुझ पर विश्वास करता है । अन्य किसको उलाहना दूँ ? अन्य
 किससे परिभवकी बात कहूँ ? अन्य किसको अपना दुःख बँटूँ ? यह सब
 प्रसन्न दुःख-भार तुझे जता कर अब मैं अपने प्राण त्याग दूँगी । मैं जीवनभी
 मागट खाती हूँ । मेरा हृदय यह वृत्तात जानता है इसलिए मुझे उससे भी
 लाज आती है, फिर अन्य किसीके हृदयका तो कहना ही क्या है ? मेरी-सी
 नी चन्द्र-किरणोंके समान शुभ्र कुलको लोकापवादसे कैसे कलक लगावेगी ?
 कुल-कर्मगत लज्जाका कैसे त्याग करेगी और कन्याओंके अयोग्य चपलतामें
 कैसे चित्तको जलावेगी ? पिताने मेरा सकल नहीं किया, माताने दान
 नहीं किया, और गुरुओंने अनुमोदन नहीं किया, इसलिए मैं कोई भी
 मदेसा नहीं कहती हूँ, न कुछ भेजती हूँ; और न देहका विकार दिखाती
 हूँ । मुझे गर्विष्ठ कुमार चन्द्रापीड़ने दीन और अनाथके समान गुरुजनोंमें
 मन्डित होनेके योग्य बना दिया है । तू ही कह—क्या यह बड़े आदमियोंका
 आचार है ? क्या यह परिचयका फल है कि मेरे नवीन मृणाल-पल्लवके तनु-
 के समान सुकुमार मनको इस रीतिसे दुःख दिया जाता है ? युवकोंको तो
 कुमारिकाओंके साथ कभी जयादती नहीं करनी चाहिए । मदनान्नि प्रायः
 पहले लजाफो जला डालती है, फिर हृदयको, कामके बाण पहिले तो
 विनयादिकका खटन करते हैं फिर मर्मस्थानका, इसलिए मैं तुझे पुनर्जन्मान्तरमें
 मिलनेके लिये आमन्त्रण करती हूँ । तुझसे बच कर धारा मुझे कोई नहीं है ?
 प्राण-परित्याग-रूपी प्रायश्चित्त करके मैं अपना कलक अब घोंट डालती हूँ । या
 कर कर वह चुप हो गई ।

२८—मैं तो वृत्तात जाननेसे सचमुच मानों शर्मा गई होऊँ, डर गई
 रोऊँ, रमरा गई होऊँ, चेतना हीन हो गई होऊँ, इस तरह विपाद सहित कहने

लगी—देवी, चन्द्रापीडने क्या किया ? क्या अपराध उनसे हुआ ? और तुम्हारे क्रुमुद-कोमल अखेदनीय मनको कैसे अविनयसे उन्होंने खेद पहुँचाया ? यह मन्त्र में सुनना चाहती हूँ इसलिए कृपा करके कहिए। सुन कर प्रथम मैं प्राण त्याग करूँगी और पीछे तुम। मेरा ऐसा वचन सुनकर वह फिर बोली—ले कहती हूँ; ध्यान देकर सुन। प्रतिदिन वह चतुर धूर्त स्वप्नमें आ आकर पिजरेके शुरुसारिका-रूप दूतियोंके साथ रहत्य मदेशा भेजता है। मैं सोती रहती हूँ तब, व्यर्थ मनोरथसे मनको मोह कर, मेरे कानोंके दन्त पत्रोंमें संकेत स्थान लिख जाता है। समोहके कारण समागमकी आशासे प्रेरित होकर वह भितने ही ऐसे मनोहर मदन-लेख भेजता है कि, अन्तर स्वेदसे विगड़े होने पर भी, उनमें पड़ी हुई अजन युक्त अश्रु-विन्दुकी पंक्ति ही उसकी अप्रत्याशता देती है। ज्वरदस्ती मेरे चरणोंको वह अपने अनुराग^१ से इस तरह रँगता है मानो अलक्तक-रससे रँगता हो। अविनयसे निश्चेतन होकर वह मेरे नयन में पड़े हुए अपने प्रतिविम्बको भी बहुत मानता है। उपवनमें मैं अकेली जब उसके पङ्कजनेके मयसे दौड़ती हूँ और पल्लवोंमें वस्त्रका पल्ला अटक जानेसे चलनेसे रुक जाती हूँ तब लता रूप सखियाँ मुझे पकड़ कर मानो उसके अर्पण कर देती हैं, इससे वह मिथ्या-प्रगल्भ मुँह फेर लेने पर मेरा आलिङ्गन करता है। मेरे स्तन स्थलके ऊपर पत्रलताएँ रच कर वह दुष्ट मेरे प्रकृति से मुग्ध मनको कुटिलता सिखाता है। श्रम-जलकी कणिका-रूपी तारोंसे भरे हुए मेरे गालोंका वह—मिथ्या मधुर बोलनेवाला—हृदयोत्कठा रूपी तरंग पर होकर आती हो ऐसी शीतल मुख-पवनसे पंखा करता है। स्वेद-जालसे ढीला होकर कमल जिसमें गिर गया ऐसे शून्य हाथसे भी वह दुर्विदग्ग,

१. कुरके समान, अपनी शुद्ध नख किरणोंका कर्णपूर मुझे पड़नाता है। अत्यन्त

२. वक्रुल वृक्षके सींचनेके समय मुँहमें भरी गई सुराकी घूंटोंको मैं

३. मेरे केश पकड़ पकड़ कर चार चार मुझे पिला देता है। महलके

४. के ताड़न करनेके लिए जब मैं चरण उठाती हूँ तब मेरे पादप्रहार अपने मस्तक पर लेता है। पत्रलेपा, कद, मदनसे मन मूड होनेके

१—रंग, प्रेम।

कारण निश्चेतन हुए उसे किस रीतिसे अब म रोक् ? वह प्रणय भगसो भी ईर्ष्या समझता है। निदाको भी परिहास गिनता है। असम्भाषणको भी मान नमझता है। दोष कहे जायें तो भी उनको स्मरण करनेका उपाय मानता है। श्रवज्ञाको भी अनर्गल प्रणय गिनता है। लोभापवादको भी यश गिनता है।

२८१—उनकी ऐसी बाणी सुन कर मुझे अत्यंत दर्प हुआ और म विचार करने लगी—बहो। चन्द्रापीड़में कामदेवने इसका अनुराग बहुत गहन कर दिया है। श्रवणा जो कादम्बरीके बहाने यथार्थमें कामदेवकी साक्षात् चित्तवृत्ति ही महाराज पर यों प्रसन्न हुई है तब तो उनके सहज और सावधानतासे सर्गधत गुणोंने प्रत्युत्कार किया, यशने दिशाओंको घबल कर दिया, यौवनने रात-रसरूपी सागरकी तरंगोंसे बलवृष्टि बरसाई, यौवन-प्रिलासोंने चन्द्रमे नाम लिखा, मौभाग्यने निज श्रोका प्रकाश किया, लावण्यने मानो चन्द्रकलाओंसे अमृतकी वृष्टि की। यों ही मलय पवनको बहुत दिनमें अब समय मिला, चन्द्रोदयको अबसर प्राप्त हुआ, वसन्तकी कुसुम-समृद्धिको अनुरूप फल मिला, मदिरा रसका दोष गुण हो गया और मन्मथ-युगके अवतारने मुँह दिखाया। फिर मैं हँस कर प्रकट-रूपसे बोली कि देवी, जो यह बात है तो तुम कृपा करके कोप छोड़ दो। कामके अपराधोंसे तुम्हें देवकी दोष नहीं देना चाहिए—यह सब तो शठ कामकी चपलता है—इसमें देवका क्या है ? मेरे यों कहने पर उन्होंने कुतूहल सहित पुनः प्रत्युत्तर दिया कि यह काम, श्रवणा जो कोई हो, उसके रूप क्या क्या हैं ? मुझसे कह।

२८२—तब मैंने विनती की—देवी, इसका रूप कैसा ? यह तो अग्र-रहित श्रद्धि है, क्योंकि ज्वालाओंका प्रकाश किए बिना ही सताप उत्पन्न करता है, धूम प्रसट किए बिना श्रुपात करता है, और भस्म-रज दिखाए बिना ही पाण्डुता उत्पन्न करता है। अखिल त्रिभुवन में ऐसा कोई प्राणी नहीं जो इसके शर-गोचरमें न आ गया हो, न आ रहा हो वा आनेको न हो। इससे कौन नहीं डरता ? कुसुम-धनुष लेकर यह बाणोंसे बलवान्को भी भेद डालता है। जो कामिनिर्गो इसके वश होकर कल्पनामें अपने प्रियके नुब चन्द्र गहल देगा करती है, उनको आकाश भी छोटा लगता है, जो

अपने प्राण-पतियों के आकार बनाती हैं उनको मही-मडल भी छोटा लगता है, जो अपने वल्लभ के गुण गिना करती हैं उनको सख्या भी त्वल्प लगती है, जो प्रियतमकी कथा सुना करती हैं उनको सरस्वती भी कम बोलने वाली लगती है और जो अपने प्राणनाथके समागम के सुख का व्यान करती हैं उनके हृदयको तो काल भी बहुत थोड़ा लगता है ।

२८३—यह सुन थोड़ी देर विचार कर उन्होंने उत्तर दिया—पत्रलेखा, तू कहती है जैसे ही मुझे कामने कुमारका तरफदार बना दिया है, उसके ये सब और इनसे अधिक भी जो रूप हैं सब मुझमें हैं । हृदयसे तू कुछ गन्ना नहीं है इसलिए अब मैं तुझसे ही पूछती हूँ । इस समय जो उचित हो मुझे बता । ऐसी ऐसी बातोंमें मैं कुछ भी नहीं समझती । मेरा हृदय तो यों ही कहता है कि गुरुजन अब निन्दा करेंगे और मुझे बहुत शरमाना पड़ेगा इसलिए जीनेसे मरना ही अधिक अच्छा है । उनका यह वचन सुन मने फिर कहा—देवी, बहुत हुआ, बहुत हुआ, यों निष्कारण मरणका निश्चय करनेसे क्या फायदा ? भगवान् मकरकेतुने तो बिना आराधनाके ही प्रसन्न होकर तुमको वर दिया है, और फिर जब कामदेव, गुहके समान, कन्याका सरलप करता है, माताके समान अनुमोदन करता है, पिताके समान दान करता है, सखीके समान उत्कठा उत्पन्न करता है और धात्रीके समान तद्व्यावस्थामें रत्युपचार सिखाता है, तब उसमें गुरुजनकी निन्दाकी क्या बात है ? कहे तो कितनी ही ऐसी गिना दूँ जिन्होंने अपने आप विवाह किया है । जो यो न होता तो धर्मशास्त्रमें बताई हुई स्वयम्बर-विधि निरर्थक हो जाती । इसलिए देवी, प्रसन्न होओ, मैं तुम्हारे पाद-परकज-स्पर्शकी सौगन्द साधर करूँगी कि अब तुम मरनेकी बात मत करो—मुझे कुछ सन्देशा देकर भेजो कि मैं तुम्हारे प्राणप्रियको बुला लाऊँ । मरं यों कहने पर प्रीति-द्रवसे आर्द्र चक्षुसे मानो मेरा पान करतीं, रोके जाने पर भी कामनाएके प्रशरमें अर्पित हुई लज्जाको माना भेदनेसे रास्ता पाकर वादर निम्नते अनुयाग-भिन्ना आकुल होती, प्रिय वचन सुननेसे उत्पन्न हुए हृदयसे चिपटे उत्तरीयागुह को रोमाचके जालसे मानो उठा कर धारण करतीं, और लटफते हुए कुशल और प्रणिक्यपत्रके मकरकी नोकोंने उलभे हुए अपने शरभो, मानदेहके

द्वारा गलेमें डाले गए, चन्द्र-किरण-मय मरण-पाशके समान सुलभाती, वह हाँसे श्रन्त-करण विह्वल होने पर भी कन्याओंकी सहज लजाका मानो अवलम्बन करके धीरे-धीरे कढ़ने लगी—

२८४—मे जानती हूँ कि तू मुझसे बहुत ही प्रीति करती है, परन्तु कोमल शिरीष-पुत्रके समान मृदु-प्रकृतिवाली अवलात्रोंमें और फिर विशेष करके बाल भावकी कुमारियोंमें इतना अधिक प्रागल्भ्य कहाँ ? जो स्वयं सदेखा भेजती हैं, अथवा पास चली जाती हैं, वे तो साहसकारिणी होती हैं । मैं तो बाला हूँ, और सन्देहा भेजनेका साहस करनेमें शरमाती हूँ—अथवा मुझे सन्देहा भी क्या कहलाना है ? जो यों कहूँ कि तुम मुझे बहुत प्यारे हो—तो यह कहना पुनश्क्ति होगा, क्या तुमको मैं प्यारी हूँ ? इस सवालसे मूढता प्रकट होगी, तुम पर मेरा अत्यन्त प्रेम है—यह तो वेश्याओं के कहनेका तरीका है, तुम्हारे बिना मैं जी नहीं सकती हूँ—यह अनुभव-विरुद्ध है, अनग मुझे बहुत पीड़ा देता है—यह तो अपने ही दोषका उलाहना है, मदनने मुझे तुम्हारे अपेण कर दिया है—यह उनके पास जानेका उपाय है, मैंने तुमको जोरसे पकड़ रक्खा है—यह कुलटाका प्रागल्भ्य है, तुम अवश्य यहाँ आना—यह सौभाग्यका गर्व है; मैं आप ही तुम्हारे पास आती हूँ—यह स्त्री चापल्य है, यह दासी अनन्य रक्त है—यह तो अपनी भक्ति दिखानेकी लज्जता है, इन्कारकी शकासे मैं सदेशा नहीं भेजती—यह निश्चयपूर्वक नहीं जानी गई बातका जताना है, तुम्हारे वियोगके कारण जीवन भार लगता है और मैं दुःख का अनुभव कर रही हूँ—यह अति प्रणय है, और मरणसे तुम मेरी प्रीति जानोगे—यह तो अमभव ही है ।

२८५—और जो अब तू कुमारको ले भी आई तो चंचलतासे उत्पन्न हुई लज्जाके वाण्य मैं उन्हें देख न सकूँगी, काम विचारसे उत्पन्न हुई पर्याकुलता-

४ इतना प्रथम रचकर वाण्यभट्ट स्वर्ग चले गए तब उनके पुत्र पुलिन भट्ट ने क्या को पूरा किया । पुलिनभट्ट की प्रस्तावना.—

१—जिसमें सविका जोड़ नहीं दीखता ऐसा जिनका एक शरीर आधे आधे दो शरीरोंके तुड़नेसे बना है उन, जगत्के माता-पिता, पार्वती

के कारण उनके आगे न ठहर सकूँगी, क्या करना चाहिए ?—पह न जाननेकी जड़ताके कारण उनके पास न जा सकूँगी, अपने आप पास जानेकी लज्जताके कारण उनका सत्कार न कर सकूँगी, और उनको जबरदस्ती बुलानेके भयके कारण उनके ममुख न हो सकूँगी । और जो किसी तरह गुनजनाकी शरमसे, या राजकार्य के अनुगोचसे, या बहुत कालके अनंतर देने हुए—साथ परवरिश पाए हुए—ब्रह्मज्ञानके दर्शन सुखसे, या मित्रोंका मुगकमल देखनेकी उत्कटासे, या फिर आनेका कष्ट न उठाने की इच्छासे, या अपने घर पर रहनेकी रुचिसे, या जन्मभूमिके स्नेहसे, या भेरी चाह न होनेसे परमेश्वरकी, अत्यन्त दुर्घट कथाके परिशेषकी सिद्धिके लिए, पन्ना करता हूँ ।

२—केसर सटा की चेष्टासे जिनका मुख विकाराज मालूम होता है, जिनके हाथमें शख, गदा, खड्ग और चक्र शोभायमान हैं तथा जिन्होंने मनुष्य और सिंहका रूप एक साथ प्रकट किया था उन, सत्कारके मन्त्रा, नारायणको भी नमस्कार करता हूँ ।

३—जिन आर्योंकी लोग घर घर पूजा करते हैं, पुण्योके कारण जिनका मैं पुत्र हुआ हूँ और जिन्होंने—जिसके रचना करनेकी शक्ति अन्य किसीमें नहीं थी ऐसी—हम कथाकी सृष्टि की है उन, पार्श्वके देवपर, अपने पिताको प्रणाम करता हूँ ।

४—पिताके स्वर्ग जाने पर उसकी वाणीके साथ ही पृथिवी पर निम कथाके प्रबन्धमें विच्छेद हो गया था उसके समाप्त न होनेसे पैदा हुए सजनोंके दुःखको देख कर मने उसे प्रारम्भ किया है, कृपित्वके गर्वसे नहीं ।

५—यद्यपि मेरे पिताने गद्यमें रचना की थी तथापि उन्होंने वैश्वरोका प्रयोग किया उह उनका ही प्रभाव था (तो भी मैं क्या नारायण हूँ, क्योंकि) एक प्रवाद में बहते अमृत-स्त के स्थान चन्द्रमाकी किरणोंका सपर्क ही चन्द्रमणि के द्रव के लिए काफी होता है ।

६—पृथ्वी पर छोटी छोटी नदियाँ भी गगामें प्रवेश करके तन्मय होकर स्कीत हुई समुद्रमें जा मिलती हैं । मैं भी समुद्र तक पहुँचनेवाले—पिताके वचनोंके—प्रवादमें कथा पूरी करनेके लिये अपनी वाणी हो पहुँच रहा हूँ ।

उनको तू—मेरी प्यारी सखी—पैगें पड़ कर और मुझ पर स्नेहके कारण प्रयत्न करने पर भी यहाँ न ला सकी तब तो आशा भी बिलकुल नहीं रहेगी ।

२८६—और अब ज्यादा क्या हो गया है ? मैं वही कादम्बरी हूँ जिसको खिले हुए कुमुद वनकी महकसे सुगंधित दिगतवाली कुमुदिनीके तट पर, चन्द्रमाकी किरणोंके स्पर्शके कारण चंद्र-मणियोंके शिखरमेंसे भर भर वहते भरनेवाले क्रीडा-वर्तके बीचमें, जहाँ मनोहर हरिचदनके रसकी कणिकाओंसे उनके कर-तलके स्पर्शके सुखसे उत्पन्न हुई पसीनेकी बूंदोंका भ्रम होता था ऐंसे—उस समय रमणीय लगते—मुक्ता-शिलाके तख्तके ऊपर, जहाँ फूलोंकी सुगंधित दशों दिशाएँ महक रही थीं और जो हिम-कणोंके एकत्र होनेसे मनोहर होने पर भी केवल बाहरका ही देह-दाह शान्त करता था ऐसे—सब रमणीय वस्तुओंके स्रष्ट-स्थानके समान—हिमगृहमें, प्रदोषके समय—जब वपूरका चूग मिला कर घिसे गये चदनकी गोलियाँ लेकर कुपित कामिनियोंका मन बहलानेके योग्य गीतोंसे परिजन मुखर हो रहे थे, बार बार अपने-स्वामियों को देख कर उठनेके कारण कचुकी लज्जित हो रहे थे, मधु-मदसे गुंजार करते भ्रमरोंके मधुर कोलाहलसे व्याकुल हुईं कोयलोंके कर्ण शब्दसे अचरही जन मनमें दुःखी हो रहे थे, खिले हुए कमलोंके मकरदसे आनंदित होकर मद मद चलती हवा दशों दिशाओंको सुगंधित कर रही थी, खिले हुए फूलोंकी सुगंधसे कामदेव मानिनियोंका मान छुड़ा रहा था, और (पके हुए

७—जैसे लोग मदिरा के स्वाद से उन्मत्त हो जाते हैं उसी तरह कादम्बरीके रससे मत्त हो जानेके कारण सब लोग गुण दोषकी परीचा जरा नहीं कर सकते हैं । इस कारण अपने रस-वर्णविहीन वचनोंसे उस कथाके बाकी हिस्सेको पूरा करनेमें मुझे कुछ भय नहीं है ।

८—जिनमें फल पैदा करनेकी शक्ति है, बोलनेवालेने ही जिनको अच्छी जगहमें ढाला है, बड़ी मेहनत करके जिनकी सँभाल की है, जिनमें अक्षुर निकलने लगे हैं और खूब फल लगनेको है उन बीजोंको उसका पुत्र एकत्रित करता है । (आशय यह है कि बाण भट्ट ने जो बीज तैयार किए थे—सकेत बनाए थे—जिनका उन्होंने कादम्बरी में उपयोग किया था—उन्हींके अनुमा' उनका पुत्र कथा पूरी करता है) ।

सरपतेके गट्टेके समान पाडु तथा कड़े कुडल जिन पर टकरा रहे थे ऐसे सुन्दर युवतियोंके गालोंकी त्रिडम्बना करता और आकाशमें भूषित करता) चद्रमा निरतर चमकते श्वेत कणसमूहसे चँदनी-रूपी जल खूब बरसा रहा था, तब—कुमारने मुझे फूलोंके बिछोने पर लेटा देगा था ! उनके दर्शनकी नई स्पृहावाले वे के वे ही मेरे नेत्र हैं जिन्होंने उनको देखा था, अगानमे शून्य हुआ वह का वही मेरा हृदय है जो भीतर प्रवेश करने पर भी उनको धारण न कर सका , वह का वही यह शरीर है जो बहुत देर तक उनके पास उठासीन रहा था, वह का वही हाथ है जिसने गुरुजनोंकी प्रिया अपेक्षासे अपना ग्रहण नहीं कराया, दूमरोंकी पीड़ाकी परवा न करने वाले चंद्रापीड भी वहीं हैं जो यहाँ आकर दो बार लोट गए हैं, और मुझे ही मारते मारते बाण ही चुकनेसे अन्यत्र कुछ न करनेवाला कामदेव भी तब का वही है, जिसका हाल तूने बतलाया था ।

२८७—और महाश्वेतासे मैंने प्रतिज्ञा की थी कि जब तक तू दुःखन है मैं अपना विवाह नहीं करूँगी, पर उसने कहा था—“देवि, ऐसी रात मनमन आने दे, यह रात अच्छी नहीं, यह प्राणी कामदेव बड़ा दारुण है, प्रिय जनका दर्शन न हो तो हृदयमें अनुराग उत्पन्न करके यह कभीकभी प्राण भी ले लेता है ।” पर मेरे साथ तो यह रात नहीं । कामदेवने, या दान, या विरहने, या यौवनने, या अनुरागने, या मदने, या हृदयने, या प्रण किसीने मुझे कलनामय कुमार दिया है जो लोगोंके सम्मुख भी किसी देवनेमें नहीं आता और सिद्धके समान सर्वदा दर्शन दिया करता है, और प्रत्यक्ष चंद्रापीडके समान यह कलनामय कुमार ऐसा निष्ठुर नहीं है कि एक साथ मुझे छोड़ दे । यह आप ही मेरे विधोगमें उरता है । दिन रात दर्शनके लिए व्याकुल नहीं रहता । पृथ्वीका पति नहीं है । उसे सम्बन्धी अपेक्षा नहीं है । न कर्तिको प्रजाता है । शयनमें, श्रीमदामे, पद कमलिनियाम, उद्यानोमें, लीला सरोवरोंमें, मीनामय पर और क्षोधी श्यामगिरि-नदियोंमें, उस सुगम स्त्रिया-आकाश पचन करनेके मुख्य हेतु, उग कुमारकी चैतनेमें, खड़े होनेमें, फिरतेमें, सोतेमें, जागनेमें, श्राव्य मिथी होने पर, चलाने, और त्यजने, जिस प्रकार मैं दिन रात देवती हूँ वह मने इन्में कहती हूँ ।

है। इसलिए अब उनको यहाँ ले आनेकी बात रहने दे। या कहतीं कहतीं, मानो अचानक मूर्छा आ गई हो इस प्रकार, आँखें मीच कर, पलकोंके पास इकट्ठे हुए आँसू बरसातीं, मानो अन्तर्गत मतापके वेगसे गली जाती हो, घमराहटसे गला भर गया हो—इस तरह चबूतरेके चंदोवेके बीचम लट्फती हुई टोरीसे बँधे बल्लका जिसने सहारा ले रक्खा था ऐसी अपनी बाहु-लता पर मुँह रख कर, उत्कीर्णकी भाँति, चुन्चाप खड़ी रहीं और उनका मुँह ऐसा मालूम होने लगा जैसे स्वच्छ जलके प्रवाहमें उगी मृणालिका पर पानीके हिलोरे लगनेसे श्याम पड़ा लाल कमल हो।

२८८—यह सुन कर मैंने विचार किया—वह कल्पनामय प्रिय सर्वदा विनोगिनी कुलीन स्त्रियोका और विशेष करके कुमारियोका यथार्थमें जीवनका उदा आधार और मन ब्रह्मानेका साधन है, क्योंकि दूतियोंके पैरो पडकर दीनता दिखाए बिना ही इसके साथ क्षण-क्षणमें उनका सँकड़ो वार समागम होता है, नियत कालमें न होनेसे रमणीय मालूम होते स्वेच्छाभिसरणका सुख मिलता है, और ऐसी रति होती है जिससे कुमारी-भावको दूषण न लगे। सुरतमें स्तनोंके बीचमें होनेसे जो अङ्गन होती है उससे रहित आलिंगन होता है, प्रण दीखनेसे उत्सन्न होती लज्जाके बिना नख-दन्त-क्षतका सुख मिलता है, केश पाशको टीला बिये बिना ही कच-ग्रह-रूपी महोत्सव होता है, शब्द-रहित रत होता है, और क्षत पर गुरुजनोकी दृष्टि पड़नेसे होती हुई हैरानीके बिना अधर-खडनना विलास होता है। अधकार इसे अदृश्य नहीं कर सकता, मेघकी धारा टक नहीं सकती और तुपार समूह छिपा नहीं सकता। यों मे विचार कर रही थी कि इतनेहीमें अनुराग कथाके रसमें मानो डूब जानेसे दिन लाल लाल हो गया। उस क्षण राग प्रकट करता हुआ सूर्यमण्डल लज्जासे भागते हुए कादंबरीके हृदयके समान देख पड़ा। रात्रिने पत्तोंके विछौनेके समान संध्यारागकी रचनाकी और प्रदोपने परिचारकके समान चन्द्र रूपी मणि-शिला-तलकी शैया बनाई। इतनेमें अपने अपने काममें जुटी हुई दीपिका लानेवाली मालिकाएँ दूरसे आकर, तेलके सुगंधित होनेसे महक फैलानेवाली, दीपिकाओंका मंडल बनाकर उन्हें आसपास रख गईं। फिर निर्मल लावण्यमें दीखते दीपिकाओंके प्रतिविम्बों से देनी ऐसी मालूम होने लगी मानो कामदेवके बाणोंकी नोकें

उनके अंगोंमें छिद्र गईं हैं। तब नई कलियोंमें निरंतर लदी हुई चपक-लताके समान देवी को देख कर मैंने फिर विनय किया—देवि, कृपा करिए, आप स्वदेके योग्य नहीं हैं इसलिए हृदय को खेद पहुँचानेवाला मत्ताप आपको नहीं करना चाहिए। शोकके वेगको दबाएँ। मुझे चन्द्रापीडको लेकर प्राई हुई ही समझिए। विष दूर करनेके मंत्रसे विष मूर्च्छितके समान आपके नामसे युक्त मेरे इस वचनसे उन्होंने झट आँखें खोली और स्पृहा-पूर्वक मेरी ओर देख कर—यहाँ कौन परिजन है ?—इस प्रकार पूछा ।

२८६—तब कितनी ही कन्याएँ दोड़ी। उनकी शरीरलता सफेद बत्तियों से शोभित थी, दरवाजेके अन्दर बुननेमें उन्होंने अपने अंगोंको सुकोई लिया था; वे परशुरामके वाणसे किए गए विवरमेंसे निकली हुईं कव हसों की कतारों के समान मालूम होती थीं, कलटमोके समान मधुर स्वरसे उनके पायजेत्र मानो जवाब दे रहे थे, कर्णपूरपक्षवने लटफनेसे दृष्ट हुए उनके कान आशा सुननेके लिए मानो दौड़ते थे, कंधे पर पड़ी हुईं मोक्षिक कुडलकी फिरणोंके जालसे ऐसा मालूम होता था मानो उन्हाने चमर मारण किये हों, गालों पर टकराने कुडल उनको मानो बलपूर्वक ले जाते थे, और उनके कर्ण-कमलके वाचाल मधुर मानो—*‘‘या आजा है ?—‘‘* यी कहते थे। वे सब आजा सुनने की इच्छासे उनके मुख कमलकी तरफ देखने लगीं तब क्रमसे उन पर स्निग्ध इंदीपराफी मालाके समान दृष्टि गेरता गेलीं वह मरकत-शिला तल पर बैठ कर कहने लगीं—*‘‘पत्रलोभा, यह बात मैं इस कारण नहीं कहती हूँ कि तुम्हें अच्छी लगेगी। तुम्हें ही देख कर मैं जिन्य हूँ। तथापि जो तेरा ऐसा ही आग्रह है तो तुम्हें अच्छा लगे सा है।’’* यह, अपने अंगमें पहने हुए वस्त्राभूषणों के तथा ताम्बूलके दानमें अन्नकृत करके उन्होंने मुझे विदा किया ।

२८०—इतना कह कर पत्रलोभा मेह जरा नीचा झुके। फिर मेरे हाथ कहने लगीं—देव, देवीके नए प्रसादकी अतिमानमें भुट हुईं मनुष्या ही कर सूचित करती हूँ कि ऐसी दशा में देवी को छोड़ कर क्या आगे नो अपनी आपन्न-वमल प्रकृतिके अनुकूल किया। पत्रलोभाका यह उपासना मुन कर और कादंबरीका ऐसा खेदके वचननि भाग हुआ, मनोर, निरक्षर

युक्त, वाचना-युक्त, अभिमान-युक्त, अवहेलना युक्त, प्रसाद-युक्त, निर्वेद युक्त, अनुराग-युक्त, पीड़ा-युक्त, धैर्य युक्त, कोप युक्त, आत्मार्पण युक्त, सटाव युक्त, व्यग्न युक्त, उपालभ युक्त, अनुकोश युक्त, स्पृहा-युक्त, विमर्श युक्त, मधुर^१ होने पर भी दुःखसे सुननेके योग्य, सरस^२ होने पर भी शोषकारी, कोमल^३ होने पर भी कठोर, मन्त्र^४ होने पर भी उन्नत^५, विनय-युक्त होने पर भी अहकार^६-युक्त, और लालित्य-युक्त होने पर भी प्रोढ़ आलाप सुनकर, पलक निश्चल हो जानेके कारण दुःसह दुःखसे उत्पन्न हुए आँसुओंसे भरे बड़े बड़े नेत्रवाले कादम्बरीके मुखकी उत्प्रेक्षा करता करता, चंद्रापीड स्वभावसे धीर-प्रकृति होने पर भी अत्यन्त व्याकुल हो गया ।

२६१—फिर मानो कादम्बरीके शरीरमेंसे, पत्रलेखासे कहे गए शब्दोंके साथ ही आकर शोभने हृदयमें, जीवनने कंठमें, कपने अधर-पल्लवमें, निःश्वसने मुखमें, स्फुरितने नासाग्रमें और आँसुओंने नेत्रोंमें एक साथ वास किया । इस कारण कादम्बरीके समान दशा वाला होकर वह आँसू टपकाता टपकाता गद्गद वाणीसे ऊँचे स्वरसे कहने लगा—पत्रलेखा, मैं क्या करूँ ? शृ गार-नृत्यका आचार्य भगवान् कामदेव अन्तर्गत विकार दिखानेके लिए उस बालासे भरे विषयमें जो कुछ अनेक प्रकारसे हठ पूर्वक कराता है वह सत्र, अष्ट-पूर्व होनेके कारण, दिव्य कन्याओंके रूपके अनुरूप लीला समझनेसे और अपने साथ ऐसे मनोरथका होना भा असम्भव जाननेसे—यह सत्र उसका स्वाभाविक है—यों मुझे दुरात्मा, दुःशिक्षित, ज्ञानाभिमानी, पण्डितमानी, दुर्चिदम्ब, दुर्बुद्धि, मिथ्या धैर्यवाले, अग्ने आप किए हुए शत सहस्र मिथ्या सन्देशों से भरे हुए, अविश्वासु मूढ़ हृदयने विकल्प और मशयमें डाल कर देवी के ऐसे दुःख और तेरे उपालभका हेतु बनाया है । मैं समझता हूँ कि मुझे

१—(१) सुखसे श्रवणीय, (२) शृ गार रसके पोषक पदोंसे युक्त ।

२—(१) शार्द, (२) रति आदि रसके वर्णनसे युक्त ।

३—(२) मृदु-वर्ण-युक्त ।

४—(१) नीचा, (२) विनय-युक्त ।

५—अर्थात् उदार ।

६ (२) कुल आदिके अभिमानसे युक्त ।

भी यह कोई विवेकका नाश करनेवाला भ्रम लगा है। नहीं तो अनसमझ को भी जिनमें कुछ संदेह न हो ऐसे-ऐसे कामदेवके स्पष्ट चिह्नोंके विषयमें भी मुझे इस तरह भ्रम क्यों हुआ? अत्यन्त सूक्ष्म होनेके कारण जिनका ज्ञान कठिनतासे होता है ऐसे मसुकुरादय, कृष्ण, कथन, विद्वत्, लीला आर लज्जाको रहने दो, क्योंकि इनका अन्यथा होना भी संभव है, पर चिर-काल तक अपने कंठके मसर्गके सौभाग्यको प्राप्त हुए इस द्वारको मुझ पुण्य हीनके गलेमें उभी लाना पढ़ना कर उन्होंने क्या नहीं जताया? और हिम-गृहका वृत्तान्त तो तूने भी प्रत्यक्ष देखा था। इसलिए देवी ने प्रणय-कुपित होने पर भी इसमें झूठ क्या कहा है? यह सब मेरे विरुद्ध आचरणका दोष है, तो अब मैं ऐसा बर्ताव करनेमें अपनी जान तक लज्जा दूँगा कि जिससे देवी मुझे ऐसे अत्यन्त कठिन हृदयका न जानें। कुमार यों कह रहा था कि इतनेहीमें वैत हाथमें लिए एक प्रतीहारिने कहलाए बिना ही भीतर आकर प्रणाम पूर्वक विनय किया—युवराज, देवी निलासवतीने कहलाया है कि परिजनोकी बातचीतमें मेने सुना कि पत्रलेखा पीछे रह गई थी सो त्रास लौट आई है। मैंने उसकी परवरिश ही है इस कारण तुम पर और उस पर मेरा एक-सा स्नेह है। तुमको बिना देखे भी बहुत देर हो गई है इसलिए उसके साथ ही आओ। तुम मंजूरी मनोग्यान प्राप्त हुए हो। तुम्हारे मुँह कमलका दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है।

२६२—यह सुन चद्रापीड़ने विचार किया—अहो! मेरा जीवा संदेह दोलापर चढा है। एक ओर माता मुझे नष्ट कर भी नहीं देखती तो इस प्रकार दुःखित होती है, दूसरी ओर निष्कारण काला देवीने पत्रलेखाके द्वारा मुझे नहीं आनेकी आज्ञा भेजी है। एक ओर जन्म समयसे पटा मातासंन्यास है, दूसरी ओर मेरा हृदय चाहे से व्याकुल हो गया है। एक ओर चरणोंकी सेवाका सुख छोड़ा नहीं जाता, दूसरी ओर नष्ट कायका दुःख पीड़ा देता है। एक ओर गुण कर्मोंका ताडपण मनाहर है, दूसरी ओर उत्कृष्टका दुःख सदा नहीं जाता। एक ओर नौ-सौकी प्रीति माने।।।।

१—जब प्रीतमके मिलने पर भी लज्जा वश नाथिका अपना मनोरथ प्रकट नहीं करती है तब विद्वत् दास होता है।

करनेवाली है, दूसरी ओर नई प्रार्थना कुतूहल पूर्ण है । एक ओर कुल-
कामगत राजा लोग मेरे मुखको देखा करते हैं, दूसरी ओर प्रियतमाके
मुखका दर्शन जीवनका फल है । एक ओर प्रजा अनुरक्त है, दूसरी ओर
कादंबरीका प्रेम बहुत गहन है । एक ओर जन्मभूमि छोड़ना बहुत कठिन
है, दूसरी ओर कादंबरी परिग्रहके योग्य है । एक ओर मन विलग सहन नहीं
कर सकता, दूसरी ओर हेमकूट और विद्याचलके बीचर्म बहुत अंतर है।
जो विचांगते विचारते, पत्रलेखाका हाथ पकड़, प्रतीहारीके बताए हुए मार्गसे
वह माताके पास गया । माताके अनेक प्रकारके लाड़के सुखमें दुःसह
हृदयोत्कंठा भूल कर वह दिन उसने वहाँ बिताया ।

२६३—फिर, मानो आत्मचिन्ताकी तरह, जब दशो दिशाओंमें अधिकार
करने वाली रात्रि आई, अनिवाय विरह-वेदना से मनमें खिन्न होनेके कारण
व्याकुल हुए चक्रवाक-युगल ऊँचे स्वरसे करुण शब्द करने लगे, अकोल के
परागके समान धूसर प्रभाशवाली चंद्रमाकी अन्न-किरणें कामवाणको पैना
क के फैलने लगीं, और पिलती हुई कुमुदिनीके श्वासकी परिमल लेकर
प्रदोष-पवन मद मद चलने लगी, तब चन्द्रापीड़ पलग पर लेटा, परन्तु आँखें
भीचने पर भी उसे निद्राका विनोद नहीं मिला और हेमकूटसे आनेके
स्वेदके कारण कादंबरीके पाठ रल्लपत्ती छायामें गिर कर मानो विश्राम करता
हो, पिंडलियों पर चढ़ कर मानो दोनों पुष्ट जराग्रोसे चिपट गया हो,
विस्तृत नितंब फलक पर मानो चित्रित हुआ हो, नाभि मूद्रामें मानो डूब
गया हो, रोम गजिमें मानो उल्लसित हुआ हो, तीन सिलवट रूय सीडियोंसे
मनोहर लगते मध्य-भाग पर मानो चढ़ गया हो, उन्नत और विस्तीर्ण
स्तन तट पर मानो जा पैटा हो, बाहुओंमें मानो लीन हो गया हो, हाथोंका
मानो सहारा ले रहा हो, गलेमें मानो चिपट गया हो, गालोंमें मानो प्रविष्ट
हुआ हो, अधर-पुटमें मानो दृट लग्न हो, नासिका सूत्रमें मानो गुँथा हो,
नेत्रोंमें मानो प्रफुल्लित हुआ हो, चौड़े ललाटमें मानो स्थित हुआ हो, केश-
कलापके अंधकारमें मानो अटक गया हो, और मय दिशाओंको भरें डालते
लाभकर प्रवादमें मानो तैरता हो, ऐसे मनसे वह कामदेवके मंदिरके समान
कादंबरीके रूपरा स्मरण करने लगा ।

२६४—फिर जब उसे होश आया तब अत्यन्त मनेहसे आर्द्र हृदय शहर उस दिनसे ही मानो उसकी रक्षा करनेके लिए कमर कसली हो इस तरह जहाँ जहाँ फूलोंका वनस्पत चढा कर कामदेवको उस पर प्रहार करते देखने लगा वहीं वहीं आप बीचमें पड़ने लगा । चमेलीके ताने फूलके समान सुकुमार शरीर पर निर्दयतासे प्रहार करके क्या तुम्हे शरम नहीं आती ?—इस तरह माना चंचल पुतलीवाली और आँसू भरी दृष्टिसे कामदेवको दिन-रात उलाहना देने लगा । फिर कामनाकी चोटसे मूर्च्छित हुई कादंबरीको मानो होशम लानेके लिए ही वह अपने अवयवों पर पसीनेकी बूँदें धारण करने लगा और लंबे लंबे निःश्वासेकी हवा छोड़ने लगा । उसके होशमें आनेसे मानो हंगित होकर भी सब अंगोंमें व्याप्त हुए रोमांचको उसने क्षणभरके लिये भी दूर नहीं किया । हृदयसे वेदना सहन होती है या नहीं—यह बात कादंबरीसे पूछनेके लिए ही मानो उसने अपने मनको भेजा हो इस प्रकार वह शून्य-दृश्य हो गया । उसके समाचार सुननेके लिए ही मानो वह सर्वदा चुन रहने लगा । कादंबरीके मुस दर्शनमें मानो सब फीका हो गया हो इस प्रकार वह अन्य कुतूहल नहीं देखता था । चंद्रवित्रसे भी उसकी दृष्टिको चन नहीं पड़ता था । कादंबरीके आलापसे मानो कान भर गये हो इस तरह उसे आर कुतू मुनाई नहीं देता था । वीणाकी ध्वनि भी अच्छी नहीं लगती थी । सुभाषणमें भी आनन्द नहीं मिलता था । मित्रोंकी वाणी भी कठिन सी लगती थी प्रायः वायवोंके शब्दसे भी सुख नहीं मिलता था । कोई उसके आर्गों का न समझ ले—इन डरसे ही मानो वह, पहले ही तरह, किमीका दर्शन ही देना था । निरंतर निकलती हुई ज्वालावाली कामाग्निसे प्रसन्न हो गये भी गुरुजनोकी लज्जाके कारण वह तत्काल तोड़े गए गीले कमवाके पित्रा नहीं मोता था । मरम मृणाल-लताओंको अंग पर नहीं लगा था । ल-मिदु-रूपी मोतियोंके चित्रित हुए सोमन कमल प्रोका पार न भी नही रहता था । फूल-पत्ताका पिछोना मनानेकी आशा नहीं देता था । फव्वारोंके निरंतर चलनेके कारण ठंडे जलकी क्षणिक प्राप्ति उभरने की दुर्दिन बना रहता था ऐसे वायुशक्ति को भी नहीं देना था । हृदयके धक मदा धक्केमें शीतल हुए अन्तर्गत—दर्शनों का जग जगति—

लता मड़पोंमें भी नहीं जाता था । चदन जल छिड़की हुई मणि-भूमि पर भी जान कर नहीं लोटता था । चंद्रमाकी किरणें पड़नेसे मनोहर लगते—कामिनियोंके हाथमें लिए गए—चंद्रमणि-दर्पणोंमें भी अपना प्रतिबिम्ब नहीं गेरता था । अधिक क्या ?—गाढा हरिचंदन-रस भी चरणों तक नहीं चुड़वाता था ।

२६५—इस प्रकार तन्दुरुस्तीकी कुछ परवा न करके, सताप-दागक हाने पर भी दाह-शक्तिसे हीन, स्नेह-रूपी ईर्ष्यनका क्षय किये बिना ही जलती और सताप सहन करनेके लिए ही मानो भस्म न करनेवाली कामाग्निसे भीतर और बाहर उबलता राजकुमार दिन-रात सूखने लगा, पर प्रतिक्रिया बढ़ती हुई आर्द्रता^२ को उसने न छोड़ा । इस तरह अत्यन्त कुटिल कामदेवकी वेदना सहन करने पर भी उसका कुछ उपाय न करने तथा त्याग दुष्कर होनेके कारण उसने लोगोंकी दृष्टिमें अपने आकारकी ही रक्षा की, काम-प्राणोंसे अपने जीवनकी नहीं; देहमें ही कृशता आने दी, लज्जामें नहीं, खाने-पीनेमें ही अनादर दिखाया, कुल-मर्यादामें नहीं, प्रजाका आदर किया, कामकी उत्कंठा न नहीं; और सुखकी ही अवज्ञा की, धैर्यकी नहीं । इस प्रकार कादंबरीके रूप आर गुणोंको उसके प्राणोंका या आर बनानेवाला प्रबल अनुपाग उसे आगे खाचने लगा और गुरुजनोंके अनुगोधसे अधिक डट हुआ गहन स्नेह पछे रोक्ने लगा । परन्तु उमकी प्रकृति गंभीर थी इस कारण यह, चंद्रमासे समुद्रके समान, अत्यन्त उल्लसित हुई आत्माको मर्यादासे रोकने लगा । इस तरह यादें होने पर भी हजार जैसे मालूम होते दिन किसी तरह बीत गये तब एक बार उत्कंटाओंके कारण भीतर आगम न मिलनेसे नगरीके बाहर जाकर, जल तरंगोंके ससर्गसे शीतल जल-कणवाली पनसे युक्त—कलहसों और चक्रगणोंके झुंड जिसके नरम तथा सुकुमार रेतीके किनारों पर मधुर शब्द पर रहे वे ऐसे—सिप्रानदीके तट पर होता हुआ बहुत दूर तक पैदल ही टटलता टहलता चला गया ।

२६६—स्वामिनाथिकके मंदिरके पास पहुँचा था कि इतनेहीमें मस्तीकी चालसे अत्यन्त वेग-पूर्वक आते बहुत से घोड़े दूरसे ही उसे दीख पड़े । उनकी

१—वैल, प्रेम ।

२—सुदुलता, स्नेहपत्ता ।

टापें जल्दी जल्दी पड़ती थी, वे कभी इम्हट्टे हो जाते थे और कभी पुदे पुदे हो जाते थे, कभी पास पास आ जाते थे और कभी विपर जाते थे, कभी उत्साहसे आगे चलते थे और कभी पीछे हो जाते थे, कभी एक साथ मिल कर चलते थे और कभी कतारसे अलग हो जाते थे । पेर फिसलने पर, गिर पड़ने पर, थक जाने पर, सवार उनको यथा-शक्ति उत्साहित करते थे, शरीर पसीनेम तर होनेसे वे दूर चलनेका खेद प्रकट करते थे, और जल्दी चलनेसे किसी भी भारी कार्यके लिए आनेकी सूचना देते थे । उनको देखते ही चन्द्रापीड़को हृदय हुआ और उसने खबर पूछनेके लिये एक आदमी भेजा । स्वयं भी जाँ तब पहुँचते सिप्राके जलमे होकर उनका हाल जाननेके लिये कान्तिकेयके मन्त्रिम खड़ा रहा ।

२६७—“हाँ मुनूलसे घोड़ोंकी फोजकी तरफ दृष्टि फंक्ता फंक्ता, पास खड़ी हुई पत्रलेखाको हाथसे खींच कर वह कहने लगा—“पत्रलेखा, देरा देग सबसे आगे ही जो सवार आ रहा है उसका मुग्न सूर्यकी किरणोंका गेहनेके लिए फेलाई गई, हिलते हुए लंबे चंचल फुंदनोगली, मोर-पंखमय झुंसीसे ढका है । वह मुझे केयूरक मालूम होता है ।” जब तब इस तरह उसके साथ देखता है तब तक खबर लेनेके लिए भेजे गए आदमीसे चन्द्रापीड़का वार्ता होना सुन कर, निगाह पड़ते ही बोड़े परसे उतर कर, पास आने हुए के पूरकका उसने देखा । दूरसे जल्दी जल्दी आनेके कारण बूलसे उमका शरीर मानव और श्याम हो गया था, इससे ऐसा मालूम होता था मानो उमका प्राण ही बदल गया हो । अग राग और सत्कारक प्रिया मलिन शरीरसे, निगाहा शून्य मुखसे और भीतरके दुःखका भार प्रकट करती दृष्टिमे दूरमे ही वह बिना पृच्छे भी, कादंबरीकी दुःखपूर्ण अग्रन्था, बिना अक्षरात्त म, प्रकाशा

ता था । उसे देखकर प्रीतिमे—आओ, आओ— कह कर, चन्द्रापीड़ने अग्रत पूर्वक प्रणाम करके पास आने ही अपनी नाटुआँसो दूर तक खिंचा तब उमका आनिगन किया, जरा सरक कर उमने फिर नमस्कार किया तब चन्द्रापीड़ने उमके सहायकोंका कुशल प्रश्नमे स्फुर करके, आगे गये हुए के पूरकका मुखसे बार बार देख कर कश—“केयूरक, तुमारे दर्शनसे ही मम पापारके मम देवी कादंबरीकी कुशवता सूचित होती है । मुन्ना तो तब आगत फके

आनेका कारण कहना ।” यों कह कर महाश्वेताके द्वारा एक साथ लाई गई हथिनी पर चढ कर—इस शरीरको सुख कहाँसे ?—यो कहते हुए वैयूरकको अपने पीछे बैठ कर और पत्रलेखाको साथ लेकर चंद्रापीड अपने महलमें गया । वहाँ सब राजा लोगोंसे आनेका निषेध करके बल्लभोग्राममें जाकर परिवार-युक्त वैयूरकके साथ उसने उत्कृष्टित चित्तसे विना जाने ही दिनका सब व्यापार किया । फिर सब परिजनोंको दूर हटा कर, अकेली पत्रलेखाको साथ ले, वैयूरकको बुला कर कहने लगा—वैयूरक, देवी कादंबरी, मदलेखा और महाश्वेताका संदेसा कहो ।

२६८—चन्द्रापीडका यह प्रश्न सुन विनय-पूर्वक सामने बैठ कर वैयूरक कहने लगा—देव, मैं क्या कहूँ ? देवी कादम्बरी, मदलेखाका या महाश्वेता का जरासा भी संदेसा मेरे पास कहने को नहीं है । जब पत्रलेखाको मेघनाद की नुपुर्द करके हेमकूटको लौट कर मैंने आपके उजयिनी जानेका वृत्तांत कहा तब फौगन ऊमरकी ओर देख, लम्बे और गरम निःश्वास छोड़, निर्वंदके साथ—यह यों हुआ—इतना कह, उठ कर महाश्वेता तप करनेके लिए अपने आश्रमको चली आई । देवी कादंबरी भी, तत्काल हृदयमें मानो हथोड़ेकी चोट लगी हो और सिर पर मानो अकस्मात् वज्र-प्रहार हुआ हो इस प्रकार, अन्तर्गत पीड़ासे सञ्चित होनेके कारण मिची हुई आँखोंसे, मूर्च्छित हो, टगी गई हो, परिभूत हो, वंचित हो या अन्त करणसे उन्मुक्त हो, इस तरह महाश्वेताके जानेका हाल न जानती हुई बहुत देर तक वहीं ठहरी, फिर आँखें खोल कर, पवरा गई हों, लजित हों, भूनी हुई हों इस प्रकार विस्मय से निश्चल दृष्टि होकर,—महाश्वेतासे कह—यों मानो ईर्ष्या पूर्वक मुझसे कहने लगीं, फिर मदलेखाकी ओर मुँह फेर कर विलद-स्मित सहित—मदलेखा, कुमार चन्द्रापीडने जैसा किया है वैसा क्या किसी औरने कभी किया या कोई करेगा ?—इतना कह कर, खड़ी हो, सब परिजनोंको आनेका निषेध करके, पलग पर लेट कर, चादरसे सिर ढक कर, समान दुखवाली मदलेखाके साथ भी बोलचाल बन्द करके, उन्होंने सब दिन बिताया । दूसरे दिन प्रातःकाल ही म उनके पास पहुँचा तब—तुम ऐसे अत्यन्त दृढ शरीरवाले भी मानो नरेके समान हो जो न ऐसी अवस्थामा अनुभव करती हूँ—इस प्रकार मानों

हमको ताना देती हों, मुझे तुम्हारे जैसे पाम रहने वालोंसे कुछ काम नहीं है—इस प्रकार मानो तिरस्कार करती हों, क्यों मेरे पास लड़के हो ? इस प्रकार मानो अन्तर्गत दुःखके भारसे फटकारती हो—ऐसे, आँसू छलकनेके कारण कॉपने से आकुल हुई दृष्टिसे, बहुत देर तक मेरे सामने देखाती रही। इस तरह उनके द्वारा देखे जाने पर मैंने समझा कि दुःखित देवीने मुझे जाने ही आज्ञा दे दी है। इसलिए मैं उनसे कहे बिना ही आपके पाम चला गया हूँ। अब—केवल आप ही जिसकी रक्षा कर सकते हैं ऐसे—जनके जीवनकी रक्षाके लिए व्याकुल हुए केयूरककी विज्ञापनाके सुननेमें आपको ध्यान देना ही कृपा करनी चाहिए।

२६६—सुनिए महाराज, सुगंधित मलयपवनके समान आपके पाम आगमनसे जब समस्त कन्या-रूप लता वन चलायमान^१ हुआ तभी सब भुक्तों के मनको अच्छे लगते वसतके समान आपको देख कर लाल अशोक^२ वृक्ष ही लताके समान देवीमें कामदेवने प्रवेश किया। अब तो आपके लिए देवी का कष्ट उठा रही हैं। सूर्यादयसे लेकर, सूर्यमणिकी अग्नि के समान, रात्रि रहित, पवनकी प्रेरणासे हीन, निवृत्त, भस्म रहित, जलती उनकी कामाग्नि का दाह परिजनों के कर-कमलाके द्वारा लीला सहित कोमल पल्लवोंकी दशा होनेस शान्त नहीं होता। छोटा छोटी पवित्रियोंसे उड़नी ठंडे पानी की कणिकाओंकी मिचार्से उमकी निवृत्ति नहीं होती। सरस हरिचंदनकी धार काइनेस उसका नाश नहीं होता। पीसे हुए मोतियोंका बुरादा छिड़कनेसे वह मुझसे नहीं। नीलेसे जड़े हुए यत्र-मय कलहोंकी कतारमें निम्नली लता वारा-वाले वाराणसे उसका शमन नहीं होता। चलते हुए फन्यायमें निकलती तथा अत्यन्त शीतल जलकी कणिकाओंसे आड़े तलवायार्द भी उनके ऊपर गिरती हैं तो क्यों, मिचनीकी अग्निके सरोवरके समान, समान होती जानती है, और शिशिर उपचार करनेमें, कुंदनी कलियोंकी समान, पसीनेकी बुंदों का जाल और भी बढना जाता है। आगमें ही कि सामग्रीमें जलने पर भी नदीमें मार्ग हुए अशुद्धी तरह उनका नाश

१—चंद्रित, व्याकुल।

२—पृथ्वीसे बनी हुई ब्रह्मा मनुमासमें उद्दीपक होती है।

मूत्र निर्मल होता जाता है। मुझे मालूम होता है कि जस जल, स्वभावस मृदु होने पर भी, मोती बन जाता है उसी तरह अबलाओं का हृदय उत्कटा में कठिन हो जाता होगा, क्योंकि इतना सताप होनेसे भी विलीन नहीं होता। प्रियजनोंके समागमकी आशा जुहुत प्रबल होती है, क्योंकि इस तरह सतापकी वेदनासे प्राण विह्वल होने पर भी लोग अत्यन्त कष्टसे जीते हैं। क्या करूँ ? बतलाइये, उनकी प्रबल उत्कठा किस प्रकार करूँ ? किस भाँति उसका वर्णन करूँ ? किस उपायसे उसे दिखलाऊँ ? किस तरहसे समझाऊँ ? किस युक्तिसे प्रमाश्रित करूँ ? कैसे उसका ज्ञान कराऊँ ?

३००—यह स्पष्ट है कि स्वप्नमें प्राणियोंका विषय ग्रहण करने का सामर्थ्य जाता रहता है, इस कारण प्रति दिन स्वप्नमें उनको देखने पर भी आप उनकी ऐसी हालत नहीं देख सकते। हजारों प्रचंड किरणोंका आतप सहनेवाले कमल उनका विछोना बनाए जानेसे मुरझा जाते हैं, इससे मालूम होता है कि उन्होंने अपनी उष्णतासे सूर्यकी मूर्तिको भी जीत लिया है। वह रुद्धा हीन और निःकारण प्रतिकूल कामदेवकी पीड़ाकी अनेक चेष्टाएँ दिखाती हैं, जैसे—कामकी वेदना सहनेवाले अत्यन्त कठिन मनमें आप निवास करते हैं इस कारण फूलोंके कोमल विछोने पर उनको सखियाँ किसी तरह बड़ी कठिनतासे लियाती हैं। फूलोंके विछोने पर सोनेके बाद सतापके कारण परोंसे गिरे अलकः रसकी बूँदोंसे गुलाबी हुए विछोनेके फूलोंसे, मानो हृदयमेंसे गिरे तथा रुधिरमें सने, कामदेवके प्राणोंका भय पैदा करती है। कामदेवके प्राणोंको गोकनेके लिए पढ़ने कवच के समान आपके स्मरणसे उत्पन्न हुआ सगङ्गा-शायी रोमाच धारण करती है। रोमाचित स्तनों पर आसकी हवासे खिसके कवचको रखती ऐसी मालूम होती है मानो आपके प्राण रहणकी तृणासे अपने दक्षिण कर कमलको कंटक शयन रूपी व्रतकी लीलाका अनुभव कराती हो। बायें गालके भागसे जड़ हुई उँगलीवाले, चमकते पञ्चराग-मणिके मङ्गलसे रजित और प्रज्वलित कामाग्निमें मानो जलने बायें हाथको हिलाया करती है। कमलके पत्तोंके पंखेकी हवासे कानमें पढ़ने गील कमलके दल उनके मुख पर हिला करते हैं, उनसे ऐसा मालूम होता है मानो निरन्तर टाकने आँसुआके उरने उनके चञ्चल नेत्र पलायन

करते हैं। क्षण क्षणमें दुर्बल होती हुई वह, गिर जानेके भयसे, मगन बलयको ही नहीं पर दोलायमान हृदयको भी बार बार हस्त-पल्लवमें रोक्षती हैं। लीला कमलोक्षी मालाके समान ठंडे जलकी बूंदें टपकाते सगिरीके शयन शरीर पर रक्खे जानेसे वह थक जाती हैं। और श्रम वह दोनों चरणोंसे तागरी को, चौड़े नितंबसे मध्य-भागको, सगमकी आशासे हृदयको, हृदयसे गायको, छातीसे कमलके पत्तोंके आवरणको, कटसे जीवनको, कर कमलसे गालों, आपकी वातचीतसे श्रुपातको, ललाटमें चंदनलेखाको और रूध्रसे नेगीसे वारण करती हैं। आपके देखनेकी इच्छासे वह चाहती हैं कि हृदय फट जाय। भूलसे प्रियतमका नाम लेनेकी तरह जीवनसे लजित होती हैं। प्रिय मखीके समान मूर्छा बार बार उनके मनका स्पर्श करती है। परिजनके समान उत्कंठा उन—कामपराधीना—को फूनाके पिछाने परसे उठाती है। पाठ चारिकाके समान पीड़ा उन—शियिल अगमाली—को चलाती है। हाने दिलाए गए उत्कंठाके सतापकी शांतिके लिए पखा बनानेके प्रयोजनसे पता तोड़े जानेके भयसे मानो काँपते, लता मउपमें बार बार रहती हैं। मुन्दर मग युक्त कलियोंसे पूर्ण, मृगाल वनय न तोड़े जानेके लिए मानो अजली मानो द्रुए, स्थल कमलिनीके वनमें बार बार सोती है। फौसी लगा लेनेके भय ही मानो पत्तोंसे निरंतर आच्छादित लता-रूपी पाश वाले उपानान में बार बार जाती हैं। निरंतर रोदनसे लाल हुई आँसुओंके प्रतिप्रियमें युक्त, यथा प विद्याए जानेके भयसे ही मानो द्रुते हुए कमलवाले, उपवन के तालाबोंके जलमें बार बार नहाती हैं। वहाँसे निकल कर तमाल वृक्षांनी कुलमानोंके जाते हैं।

००२—वहाँ भुजलताका ऊँची करके, उसमें प्रतीक्षा मढ़ाए नये, उन पर अना मुँह रख कर, आँसु मीन लेनेमें चंपक दलकी मायाकी लाली की शका करती, योत्री देर विधान करके फिर मगीत शालान मान है। वहाँमें, मृदंगके मधुर स्वरके लयसे मनोहर मालूम शैल प्रत्यक्षी माने विन दोहर, मयूरीका तरङ्ग, चकती तन-पराशाल मान-मृदुल मान है।

२—क्योंकि आप हृदयमें रहते हैं। उसके फटनेसे आपके दर्शन से मगन

वहाँसे भी, 'वन' जल-धाराओंकी बूँदोंसे पुलकित^३-शरीर होकर, कदवर्की कलीकी तरह, काँपती काँपती रनवासकी कमलिनीके तीर पर जाती हैं। वहाँसे, पालतू कलहसोंका स्वर असह्य होनेके कारण, फिर चल देती हैं और पायजेय उतर जानेसे कृशता^३ मानो समझदार हो यो उसकी प्रशंसा करती हैं। चलन रचनेसे कम हुए मृणालोंके कारण मानो कुपित हुए गृह-सरोवरके चक्रवाक-मिथुन उनसे अपने शब्दसे खेद पहुँचाते हैं। शंया-विलासमे फूलोंके कुचल जानेके कारण मानो कुपित हुए प्रमदवनके भ्रमर अपनी गुजारसे उनको उद्वेग पहुँचाते हैं। प्रबल उत्कटाके समयके गीतोंसे अपने स्वरके निर्जित होनेके कारण मानो कुपित होकर कोयलोंके झुंड, आँगनके आम्रवृक्षों पर कल-कल करके, उनको व्याकुल करते हैं। काम वेदनाके कारण फीके पड़े गालसे अपने भीतरके पत्तेकी कान्तिका परभाव होनेके कारण ही मानों उद्यानकी केतकियोंने काँटे छेद दिए हों इस प्रकार वे पीडा भोगती हैं। ऐसी ऐसी कामकी दुःखदायक चेष्टाओंमें उनका सब दिन व्यतीत होता है

३०२—चंद्रोदयके समय उनका धैर्य इस तरह दूर भाग जाता है मानो प्रधकार-मय हो, हृदय इस तरह खेद पाता है मानो कमल-मय हो, काम इस तरह विकास पाता है मानो कुमुद-मय हो; नेत्र इस तरह द्रव पाते हैं मानो चन्द्रवान्तमय हो, निश्वास इस तरह वृद्धि पाते हैं मानो समुद्र-जलमय हो और मनोरथ इस तरह वियोग पाते हैं मानो चक्रवाकमय हों। शीतज्वरसे मानो आतुर हों इस तरह मणिभूमिमें पड़े चन्द्रमाके प्रतिविम्ब पर काँपती हुई चंचल उँगलियोंगले अपने हाथोंको पसार कर चुपचाप शशि-सताप प्रकट करती हैं। दंत-किरणोंके बहाने, कामत्राणसे जर्जरित हुए हृदयमे घुसी हुई चन्द्र-किरणोंको मानो खीत्कारोंके द्वारा बाहर निकालती हैं। प्रकण्ठमे केलोंके पत्तोंके खेले कणन मानो उपदेश ग्रहण करती हैं। जँभाई लेतेमें मानो कंठमें

१—(२) मेष ।

२—(२) खिन्न कर ।

३—अगर पायजेय रहते तो उनका शब्द सुन कर हँस दौड़ते और संताप और नी बहना ।

करते हैं। क्षण क्षणमें दुर्बल होती हुई वह, गिर जानेके भयसे, मंगल-वलयको ही नहीं पर दोलायमान हृदयको भी बार बार इन्त-पल्लवसे रोफती है। लीला कमलोक्षी मालाके समान ठंडे जलकी बूँदें टपकाते खरियोके हाथ शरीर पर रखले जानेमें वह थक जाती हैं। और, अब वह दोनों चरणोंसे तागड़ी को, चौड़े नितंबसे मध्य-भागको, सगमकी आशासे हृदयको, हृदयसे आपको, छातीसे कमलके पत्तोंके आवरणको, कटसे जीवनको, कर कमलसे गालका, आपकी बातचीतसे अभ्रुवातको, ललाटमें चंदनलेखाको और कंधसे पेशीमें धारण करती हैं। आपके देखनेकी इच्छासे वह चाहती हैं कि हृदय फट जाय। भूलसे प्रियतमका नाम लेनेकी तरह जीवनसे लज्जित होती हैं। प्रिय मखीके समान मूर्छा बार बार उनके मनका स्पर्श करती है। परिजनके समान उत्कंठा उन—काम-पराधीना—को फूलोंके बिछाने परसे उठाती है। परिचारिकाके समान पीड़ा उन—शिथिल अगवाली—को चलाती है। ह्यामें दिलाए गए उत्कंठाके सतापकी शातिके लिए पत्ता बनानेके प्रयोजनसे पत्ता तोड़े जानेके भयसे मानो काँपते, लता मडपमें बार बार रहती हैं। सुन्दर वाण युक्त कलियोंसे पूर्ण, मृणाल वन्य न तोड़े जानेके लिए मानो अजली बाँधने हुए, स्थल कमलिनीके वनमें बार बार सोती हैं। फाँसी लगा लेनेके भयसे ही मानो पत्तोंसे निरंतर आच्छादित लता-रूपी पाश वाले उद्यानोमें बार बार जाती हैं। निरंतर रोदनसे लाल हुई आँखोंके पतिविवसे युक्त, शंभा र बिछाए जानेके भयसे ही मानो डूबते हुए कमलवाले, उपवनके तालामें जलमें बार बार नहाती हैं। वहाँसे निकल कर तमाल वृक्षोंकी कुंज गलियाम जाती हैं।

३०१—वहाँ भुजलताको ऊँची करके, उससे उालीका सवारा लेकर, उस पर अपना मुँह रख कर, आँखें मींच लेनेसे चाँफ दलकी माचानी फाँसी की शका करती, थोड़ी देर विश्राम करके फिर सगीन-शालामें जाती है। वहाँसे, मृदंगके मधुर स्वरके लयसे मनोहर मालूम होते नृत्यकी लीला खिन्न होकर, मयूरीकी तरह, चञ्चली जल-वारामाले प्राग-गृहमें जाता है।

१—क्योंकि आप हृदयमें रहते हैं। उसके फटनेसे आपके दर्शन हो जायगा।

वहाँसे भी, 'वन' जल धाराओंको बूँदोंसे पुलकित^२-शरीर होकर, रुदबकी कलीकी तरह, काँपती काँपती रनवासकी कमलिनीके तीर पर जाती हैं। वहाँसे, पाजवू कलहसोंका स्वर असह्य होनेके कारण, फिर चल देती हैं और पायजेय उतर जानेके कृशता^३ नानो समझदार हो यों उसकी प्रशंसा करती हैं। वलय रचनेसे कम हुए मृणालोंके कारण मानो कुपित हुए गृह-सरोवरके चक्रवाक-भिद्युन उनका अपने शब्दसे खेद पहुँचाते हैं। शया-विलासमे फूलोंके कुचल जानेके कारण मानो कुपित हुए प्रमदवनके भ्रमर अपनी गुजारसे उनको उद्वेग पहुँचाते हैं। प्रबल उत्कठाके समयके गीतोंसे अपने स्वरके निर्जित होनेके कारण मानो कुपित होकर कोयलोंके झुड, आँगनके आम्रवृक्षों पर कल-कल करके, उनको व्याकुल करते हैं। राम वेदनाके कारण फीके पड़े गालसे अपने भीतरके पत्तेकी कान्तिका परभाव होनेके कारण ही मानों उद्यानकी केतकियोंने काँटे छेद दिए हो इस प्रकार वे पीड़ा भोगती हैं। ऐसी ऐसी कामकी दुःखदायक चेष्टाओंमें उनका सब दिन व्यतीत होता है

३०२—चन्द्रोदयके समय उनका धैर्य इस तरह दूर भाग जाता है मानो प्रथकार-मय हो, हृदय इस तरह खेद पाता है मानो कमल-मय हो; काम इस तरह विवास पाता है मानो कुमुद-मय हो; नेत्र इस तरह द्रव पाते हैं मानो चन्द्रकान्त मय हो, निश्वास इस तरह वृद्धि पाते हैं मानो समुद्र-जल मय हो और मनोरथ इन तरह वियोग पाते हैं मानो चक्रवाक मय हों। शीतज्वरसे मानो आतुर हों इस तरह मणिभूमिमें पड़े चन्द्रमाके प्रतिविम्ब पर काँपती हुई चंचल उँगलियोंगले अपने हाथोंको पसार कर चुपचाप शशि-सताप प्रकट करती हैं। दन-निरणोके बहाने, कामनासे जर्जरित हुए हृदयमे घुसी हुई चन्द्र-निरणोको मानो जीत्कारोंके द्वारा बाहर निकालती हैं। प्रकपमे केलेके पत्तोंके रैन कंपन मानो उपदेश ग्रहण करती हैं। जँभाई लेतेमे मानो कंठमे

१—(२) मेघ ।

२—(२) लिख कर ।

३—जगर पायजेय रहते तो उनका शब्द सुन कर हँस दौड़ते और संताप और तो बहना ।

आए हुए प्राणोंको बाहर जानेका रास्ता दिखलाती हैं। गलतीसे अन्य नाम लेनेके कारण पैदा हुई अस्वाभाविक मुसकुराइयमें, हृदयमें लगे हुए काम-चाहकी पुष्प-रजका मानो वमन करती हैं। गंते रोते बड़े बड़े आँसुआँकी धाराओंके प्रवाहको बहानेसे ऐसा मालूम होता है मानो वे गली जाती हैं। चंद्रामणिके दर्पणोंमें पड़े हुए अनेक प्रतिबिम्बोंके बहाने माना सहस्रधा विभक्त हो जाती है। फूलोंकी शैया पर, परिमलके लोभसे आए भ्रमरांस व्याकुल हुई वह मानो धूम प्रकट करती हैं। निर्मल कमल शैया पर कमल तनुओंके परागसे पीली पीली होकर वह मानो जली जाती हैं। पसीना सुगाने के लिए चुपड़ी हुई स्वच्छ कपूरकी बुकनीसे श्वेत होने पर मानो भस्म रूप बन जाती हैं। नहीं मालूम-मुग्धतासे, या विलाससे, या उन्मादसे, मर्गीतम मृदगका शब्द सुन कर—कहीं मोर न बोलने लगें—इस शकासे वह धाराइके मरकतमणि मय मयूरोंके मुँह टक देती हैं। सव्या-समय, वियोगके भयसे, दीवार पर चित्रित हुए चक्रवाक-युगलको मृणाल-सूत्रसे बाँध देती हैं। कल्पित रति-क्रीड़ाके आरंभमें कर्ण-कमलोंसे मणि प्रदीपोंका ताड़न करती हैं। उत्कटा के लोखोंमें कल्पित समागमके अभिज्ञान लिखती हैं और, दूतियोंके द्वारा, स्वप्नमें किए हुए अपराधके उलाहनेका संदेश भेजती हैं।

३०३—और उनको दक्षिण-पवनके साथ, चदनकी परिमलके समान मूर्च्छा आती है। रात्रिके साथ, चक्रवाकोंके आपके समान, जागरण का भय आ जाता है। भ्रूरोखोंके कवूतरोंके स्वरके साथ, उनके प्रति-शब्दके समान, टुल उन्वन्न हाते हैं। उपवनके फूलोंकी महकके साथ, भ्रमरोंके समान, मरणाभिलाषा आती है और वह जल-कणिकाकी भाँति कमल-पत्र^१ पर झपटी। स्फटिकमें, जलमें, मणि-दर्पणमें और मणि भूमिमें (कृशताके कारण) छार्के समान देख पड़ती हैं। कमलकी भाँति चंद्रमाकी किरणोंके साशमें भ्रान हो जाती हैं। हरीकी तरह सरस मृणालिकाशरके^२ सम्पर्कसे जीती हैं। शरदके समान कुमुद, कुवलय और कमलके स्पर्शसे मनोहर गा वार।

१—कमलका पत्र, कमलके पत्रोंकी शैया।

२ मृणालकी मात्रा, मृणालका आहार।

करती हैं और सकुनुम^१ बाण विजृ भण^२ करती हैं । चद्र मूर्तिके समान कमल समूहमे पाद^३ -पल्लव स्वलित होनेसे फिरतीं फिरतीं रात चिताती हैं । कुमुदिनी-की तरह चद्र-किरणोंसे जागृत रह कर झूठी निद्रामें दिन काटती हैं ।

३०४—विष्णुकी जल-शयन लीलाके समान वह मंदोच्छ्वसितशेष^४ तथा निर्मीलित-लोचन^५ होकर कुछ चिन्तन करता है । मलय-नदीकी तरह वह सरस हरिचदन वृक्षोंके कोमल पत्तोंसे ढके हुए शिलातलो पर पड़ती हैं । कुद कलीके समान तुपागसे^६ गीले पल्लवोंमे रह कर वन^७-पवनसे वह कोंपती हैं । अस्रस^८ सतापके कारण भुजगीके समान चदनका आलिगन^९ करके शिखि शकुन्त^{१०} कुलके कोलाहलसे खेद पाती हैं । हिरनीके समान केसरि^{११} वनको छोड़ देती हैं । कुमुम-^{१२}घटित शिलीमुखोंसे मनोहर लगते कामदेवके धनुषके समान, प्रमद वनमे उन्हें डर लगता है । जानकीकी तरह, पीत^{१३}-रक्त निशाचरोंके समान, चपक और अशोकसे भयभीत होती हैं । उषाकी तरह स्वप्न-समागमसे भी अपनेको कृतार्थ मानती हैं । ग्रीष्म-निशाकी लक्ष्मीके समान प्रतिदिन वह श्रत्यन्त क्षीण होती जाती हैं । सवथा कामकी वेदनासे उनके

१—काम, पुष्प-सहित बाण वृक्षोंसे युक्त ।

२—सुखका विकास करती हैं, सर्वत्र फैलती हैं ।

३—चरण, किरण ।

४—जिनका मद सौंस ही बाकी रह गया है, जिसमे शेष नाग धीरे धीरे सौंस लेते हैं ।

५—आँखें मींच कर, विष्णु योग-निद्रामें आँखें मींच लेते हैं ।

६—बरफ, ओस ।

७—उपवन, धरयय ।

८—विरहका सताप, घातप ।

९—लेप, आदिगन ।

१०—मयूर तथा अन्य पक्षी, मयूर पक्षी ।

११—बकुल वृक्षोंका वन, सिंह-युक्त वन ।

१२—पृष्ठों पर बैठे हुए अमरोंसे. फूलोंके बने हुए बाणोंसे ।

१३—गीले और जाद, लहू पीनेवाले ।

अग, दिनोंसे जीवन धारण करनेकी वस्तुएँ, बलय-रचनासे गृह-कमलिनीके मृणाल, उपदेशोंसे सखियोंके वचन, शैयाओंकी रचनासे उपनोंके फूल और निरंतर प्रहार करनेसे कामदेवके वाण बिलकुल नीण हो गए हैं। 'यादा म्या कहूँ ? अब तो आपके नामसे वह सब सखियोंको पुनाती हैं, आपके सत्रघका वहाँ सब रहस्य होता है, आपके समागमके उपाय मोननेके लिए सब एकत्रित होते हैं, आपके समाचार पानेके सब प्रश्न होते हैं, आपका ही सब हाल परिजन कहा करते हैं; आपकी बातचीतसे ही समा मन बहलता है; आपकी तसवीर बनानेसे ही चित्रकलाका अभ्यास होता है, आपके लिए उलाहनेसे भरे सब मागधियोंके मंगल-गीत होते हैं, अगर आपका दर्शनसे युक्त स्वप्न आते हैं, आपके परिहाससे मुक्त कामदेवके दाहके सब प्रलाप होते हैं, सिर्फ आपका नाम लेनेसे ही जिनमें शेष आ मके ऐसे बड़ी भारी अचेतनताके दौरें होते हैं।

३०५—इस प्रकार कहते हुए केयूरकसे—रहने दे, अधिक मुझसे नहीं सुना जाता—यो मानो आँखें मींच कर इशारा करते हुए चन्द्रापीड़को, कादवरीकी पीड़ा सुननेकी वेदनासे पैदा हुई अनुरूपसे ही मानो, आती हुई मूर्खाने केयूरकका रोक लिया, परन्तु कादवरीका हाल पूरा हो जानेके कारण वह चुप नहीं हुआ।

३०६—इस प्रकार जब कादवरीका ही मानो ध्यान करते चन्द्रापीड़की चेतना मूर्खसे जाती रही तब घबराहटमें केयूरकके सहारा देनेसे, पालेखाके पखा करनेसे और दोनहारका अनुभव करानेमें तत्पर देवके प्रभावमें उसको होश आया। तब स्वयं पहुँचाई हुई पीड़ाके अपराधसे मानो भयभीत हो, लज्जित हो, घबरा गया हो, इस तरह चुपचाप सड़े केयूरकसे, अतएव के कारण गद्गद फटसे, टूटे फूटे अक्षरोंमें, चन्द्रापीड़ बड़े कष्टसे फटसे केयूरक, जिस प्रकार मेरे फिर आने की सम्भावना दूर कर, मुझसे अन्त कठिन-हृदय और अपने ऊपर प्रेम न करनेवाला समझ, देवी माँ, मैं तुम्हें यहाँ आने की आज्ञा नहीं दी, महाश्वेताने कुछ संदेशा नती माँ, तथा दृढ प्रेम छोड़ कर मदलेखाने तेरे मुझसे कुछ नहीं कहलाना—यह माँ पत्रलेखाने मुझसे कहा है। देवी कादवरी कुलीनता, महानुभावता, उदारता, समान-शीलता, दक्षिणता और स्वभावकी अत्यन्त मरुत्वाके कारण...

अपनेको ठीक ठीक नहीं जानती हैं । चन्द्र मूर्तिके दर्शनसे चद्रकान्त नामका निश्चेतन पत्थरका टुकड़ा जल बहा सकता है, पर उसकी किरणोंका आकर्षण नहीं कर सकता । अत्यन्त लोलुप भ्रमर भी फूलके पास ही जा सकता है, पर मकरदका लाभ तो वली खिलने के अधीन है । दिनके सतापसे मलिन हुए कुमुद-समूहको चद्रके सन्मुख होना चाहिए, परन्तु उसका विकास तो चोंदनीसे मनोहर रात्रि ही करती है । भीतर बहुतसी सरसता होने पर भी वसत-लक्ष्मीके परिग्रह बिना वृक्ष लाल लाल पत्ते किस प्रकार प्रकट कर सकता है ? इस कारण देवी कादवरीकी—मेरे काम-ज्वरका आप इलाज कीजिए ऐसी—आज्ञाका ही दोष है, क्योंकि उस (आज्ञा) ने केवल अधर हिलनेकी राह देखनेवाले, पास खड़े दासको भी, निष्कृष्यताके कारण, अपने को नहीं देने दिया । उसने सुखकी शत्रु, केवल दुःख देनेमें निपुण, और दूसरों के हृदयकी पीड़ा की परवा न करनेवाली लज्जाकी अपेक्षा की, परतु देवीके जीवनमें मदेहमें डालनेवाली देवीकी हालत नहीं देखी । अथवा परिजनोंकी भी यह वैसी मूढता थी कि इच्छाके बिना भी इष्ट-पूर्वक उसको आज्ञा देनेके लिए प्रवृत्त नहीं किया । भक्त आज्ञाकारी सेवकसे लज्जा कैसी ? गौरव कैसा ? अनुरोध कैसा ? और चित्तका यह अविश्वास कैसा कि शिरीषके फूलके समान कोमल आत्माके लिए ऐसी अत्यन्त दारुण पीड़ाको अगीकार किया और मेरा मनोरथ पूरा नहीं किया । अथवा अपने मनके भावोंका छिपाना रमणियोंमें परपरासे चला आता है और विशेष कर उन कन्याओंमें जिनमें कुछ बाल-भाव बाकी है और मुग्ध काम-देव बहुत प्रदीप्त नहीं हुआ है । देवी स्वयं तो मेरे सामने लज्जा छोड़नेमें समर्थ न हुई, परन्तु मदलेखा तो उनका दूसरा हृदय है । उसने क्यों इस दुःखत्मा, स्वयंभू कामदेवसे पीड़ा पाती हुई देवीके शरीरकी उपेक्षा की ? समय अभी अराधन धनवाले मुनि भी उससे दूरण किए गए हृदयकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं होते, वह ऐसा चोर है कि उसे दंड नहीं दिया जा सकता, पवित्र जनोंको भी उसका स्वयं अवश्य करना पड़ता है, वह ऐसा चाडाल है कि उससे छूत नहीं रखी जा सकती; असख्य प्राणियोंको उसने भस्म कर दिया है, वह बुझाई न जा सके ऐसी, तमशानकी अग्निके समान है, सब जोरोंसे बरा है, शरीर-रहित व्याधि है, रूपसे आकर्षण करनेवाला अकाल

व्याध है, मर्म छेदनेवाला झूठा घनुर्धर है, तत्काल प्राण हरनेवाली अकाल मृत्यु है; योग्य अथवा अयोग्य स्थान देखे बिना प्रवृत्त होनेवाला है, दूमरके साथ अपकार करनेसे वह कृतार्थ होता है, हृदयमें वास करता है और पराया विश्वास नहीं करता । मैं वहाँ या तभी मेरे कानमें यह बात क्यों नहीं डाल दी ? अब जान कर भी, क्या करूँ ? क्योंकि रातमें ही बहुत दिन लग जायेंगे । देवीका शरीर मलयाचलकी हवासे हिलाई गई लताओंमेंसे गिरने फूलोंको भी सहन करनेके योग्य नहीं है और कामवाण, वज्र सारके समान कठिन हृदयवालोंको भी, दुःसह होते हैं । नहीं मालूम निमेष मान क्या होगा ! देवी भी अकसर इन बातोंको सोचती होगी । और केवल दुःख देनेमें ही निपुण, दुर्घट घटना रचनेमें पंडित, चाहे जो कुछ करनेवाले, निष्कारण कुपित, मरे विधिके ज्यों ज्यों मैं सब जगह उल्टे काम देपता हूँ त्यों त्यों मुझे मालूम होता है कि यह इतनेसे ही नहीं मानेगा । नहीं तो कहीं मेरा निष्प्रयोजन किन्नर-मिथुनका पीछा करते करते अमानुष - भूमिम आना, कहीं वहाँ पिलास लगना और अच्छोदका दृष्टि पढ़ना, कहीं उसके तीर पर आराम करने में अमानुष गीत ध्वनि सुनना, कहीं उसकी जिगासने जाते जाते महा वेताको देखना, कहीं तरलिकाके साथ उस जगह तरे आनेसे मेरे जानेका प्रस्ताव होना, कहीं महारवेताके साथ हेमकूट जाना, कहीं वहाँ कादंबरीके मुखका दर्शन होना, कहीं इस दाम पर देवीके अनुरागका पैदा होना, और कहीं मेरा मनोरथ पूरा न होने पर ही लाटनेके लिए पिताकी अनुल्लवनीय आज्ञाका मिलना ! इसलिए इस अनुचित काम करने वाले, हमारे कर्मोंके अनुसार आज्ञा देनेमें चतुर, जले विधिने बहुत लगे हैं । हमसे पटना है । तो भी मैं देवीकी आराधना करनेका प्रयत्न करता हूँ ।

३०७—चन्द्रापीड़ यो कह रहा था कि इतनेहीमें—कादंबरीके इतिहास ही इसे संताप हो गया है, फिर म कर्मों करने तेजसे अधिक सामान्य - तरह मानो करणा उत्पन्न होनेके कारण भगवान् सूयने, तपे, सु-नुमर्णके द्रवके कणके समान, पीला प्रकाश फैलाती, दिशाग्रामे फल टुप नई देवके जय मडलका अनुकरण करती, अपनी हजारों फिरियोंका मुकाबला सुर्वालके पीछे दिन भी ऊँचे ऊँचे टुपों पर रहे टुप लान सुने दुर्गती।

आकर्षण करता करता चला गया । फिर क्रमसे, मानो उसे कसणा उत्पन्न हुई हो इस प्रकार, मध्या भी जब, गीले कपड़ेके समान, अपना राग-पटल ऊपर फैलाने लगी, अन्य मनस्कतासे विकल हुए इस कुमारका इस दशामे दर्शन होना ठीक न जान कर, प्रियमित्रकी तरह, निशागम भी जब, नीलके पिढके समान, ऊपर लटकती तिमिर लेखाको सर्वत्र फिराने लगा, शोषकारी सताप दुःसह होनेके कारण मानो विछोनेके काममें आनेके भयसे कमल भी जब बढ़ होने लगे, न्वभावसे स्वच्छ होनेके कारण अत्यन्त आर्द्र कुमुद भी विछोनेके काममें आनेकी, मानो, इमाहमीसे जब खिलने लगे, प्रिया-विरहसे खिन्न हुए चक्रवाक भी, मानो कादम्बरीके पास जानेकी सलाह देने हुए, जब ऊँचे त्वरसे बार बार मधुर शब्द करने लगे; समस्त भुवनका एक छत्र, अमृतसे भरा चाँदीका कलश, पूर्व-दिग्बधूके मुखका चदन तिलक, आकाश लक्ष्मीके लावण्यका महा सरोवर, सकल लोकाल्हाटक भगवान् चंद्रमा भी जब अमृत मय किरणोंसे चद्रापीडका मानो स्पर्श करनेको और उल्लास करनेकी हेतु चाँदनी-रूप जल छिड़कनेको उदयाचलके शिखर पर चड गया और प्रदोष समय जब प्रौढ हुआ तब उसी वल्लभोग्राममें चद्रमाकी किण्वोंके स्पर्शसे दीखती हुई निर्मल जलकी बूँदोंसे रमणीय लगते एक चंद्रमणिके चट्टान पर शरीरको डाल कर पर दाबनेके लिए पास आए हुए केयूरकसे वह कहने लगा—केयूरक, क्या सोचता है ? हम वहाँ पहुँचें तब तक क्या कादम्बरी जीती रह सकेगी ? अथवा मदलेखा उनका मन बहला सकेगी ? अथवा उन्हें तसल्ली देनेके लिए महा-बेता फिर आवेंगी ? भरे परिचयसे खिन्न हुई वह शरीर-स्थितिके लिए उसकी विनती मानेंगी ! अथवा मे उनका मुसकराता, चंचल पुतलीवाला तथा—ठरे हुए हिरनके बच्चेके समान—लवे नेत्रवाला मुस फिर भी देख सकेगा ?

३०८—केयूरकने कहा—महाराज, धैर्य रख कर चलनेका वल्लभ जीजिए । पासभी नभिवश वा परिजनोंको रहने दीजिए । देवीको तो आपका दर्शनकी लालसा स्वेच्छासे आँजें भी नहीं मीचने देती । समागमकी आशाहीने टट्टको धारण कर रक्खा है । श्वास ही मुसमें रह गया है । रोमाच ही

उनके शरीरको क्षणभर भी छोड़ता नहीं है। ऑसू ही दिन रात लोचन पथम रहते हैं। जागरण ही रातको भी उन पर निगाह रखता है। अरति ही उनके अकेला नहीं रहने देती और जीवन ही कंठ स्थानके पाससे नहीं रिसकता है।

३०६—इस प्रकार कहते हुए केयूरकको चद्रापीड़ने आराम करनेकी आशा दी और आप भी जाने की फिक्र करने लगा। जो मैं पिता-मातासे कहे बिना, उनके चरणोंमें पड़े बिना, उनको अपना मस्तक सुँघाये बिना, उनका आशीर्वाद लिए बिना, और उनकी अनुमतिके बिना हा एरु साथ चला जाऊँ तो जाने पर भी मुझे सुख कहाँसे मिलेगा? मेरी क्या भलाइ होगी? जाने का फल कैसे मिलेगा? और हृदयमें शान्ति कैसे होगी? अथवा वर्ग पटुन जानेके बादकी चिन्ता करनेमें क्या फायदा? अगर मैं यहाँसे किंगी तरफ निकल भी गया तो जाऊँगा कैसे? पिता का भुज दुस्तर युद्धकी समुद्रके पार जानेके लिये सेतुवर्ग, मर्यादा वाञ्छित फल दायक कल्पवृक्ष, शत्रुओंके पगात्मके यशके निकलनेके दरवाजेका अर्गलाट्ट, ममस्त भुजकी मर्यादा आधार-स्तम्भ है। उस परसे उतार कर उन्हींके सभ रात्रका भार मुझ पर श डाल दिया है। इस कारण, जो मैं कहे बिना एक पर भी रसूँगा तो, असम्य हाथी, गोड़े और रथ चलानेमें पृथ्वीको लुभित करत, फरसती हुई स्वजाओंके वनसे सूर्यकी किरणोंको आकुल करते, ऊँचे उठाए गए मकर छत्रोंके मडलकी छायासे दिनकी धूलको रोकते, चंद्रमागल से उड़ती मृग दृष्टी के विपरीत को निरंतर भाते, आगे दोड़ते वेन पाशाले श्री स्नार और कर आती गजमय सेनावाले गता लोग, यह जाने पर भी श्री भूमे रहने पर भी चलनेमें विलम्ब न करके, समुद्र तक आशा विशा आगे आगे पीछे दीड़ेंगे। सेनामें तस्वर गता लोगोंकी बात रहने दो। मुझे शान्ति सुच भोगनेवाली प्रजा भी, पिताके लोहेके कारण, श्रीपुत्रीका श्री मेरे पीछे लगेगी। और पिताका भी एसा और तो है निम पर तो है रत्न, मेरे अपने जानेके बाद—मद गता तो जाने दो, उमरु अने मान क्या?—इस प्रकार सोच कर, मेरे अनेमने कृपित दो, तबै मरुप करके रद सहे? अन्य किमदा नुद देन, टदरम मुन मरु, मुझे मरु मानेके लिए आर्ष प्रताप कर, नारा सिनाने मरुदुव न होगा। आर भी

पिता मेरे पीछे आए तो अठारह दौड़ोंकी मालामाली पृथ्वी ही पीछे
 प्रावेगी । उस समय मुझे कहाँ जाना ? कहाँ रहना ? कहाँ विश्राम
 लेना ? कहाँ चलना ? कहाँ भोजन करना ? कहाँ दौड़ना ? कहाँ अपनेको
 छिपाना ? और अगर मैं पकड़ा गया तो कैसे मुँह दिखाऊँगा ? पूछने पर
 क्या जवाब दूँगा ? और जो कदाचित् देवयोगसे मैं निकल गया तो भी अखेद-
 नीय पिताको इस प्रकार उड़े दुःखमें, और पिताकी कृपासे जिन्होंने कभी
 दुःख नहीं देखा ऐसी माताको मेरे चले जानेसे उत्पन्न हुए शोकसागरमें
 डालना मुझ पापीका अच्छा काम नहीं होगा । इसके सिवाय बहुत दिनोंके
 प्रवाससे खिन्न हुई मेरी सेना भी अभी तक नहीं आई । उसे मेरे तलाश
 करनेकी दूबरी आजसे आगे रास्तेसे ही पीछे मूड़ कर फिर दौड़ना पड़ेगा ।
 और जो माता पितासे कह कर और उनसे विदा लेकर अच्छी तरह प्रबंध करके
 जाऊँ तो उनसे मुझे क्या कहना चाहिए ? मेरे स्नेहसे दुःखित हुई गधर्व
 राजपुत्री कादंबरी मेरे लिए कामकी पीड़ा भोगती बड़े कष्टमें है . या उस
 पर मेरा प्रेम बढ़ा गहन है—उसके बिना मैं प्राण धारण नहीं कर सकता ,
 या उसके और मेरे—दोनोंके—जीवनोंके वरान ही हेतुभूत महाश्वेताने उसके
 साथ विवाह करनेके लिए मुझे संदेश भेना है , या उसका दुःख सहनेके
 लिए अशक्त होनेके कारण यह केयूरक, उसकी भक्तिसे, मुझे बुलाने आया
 है । अब फिर जानेके लिए कोई भी बहाना नहीं किया जा सकता ।
 अभी मैं सब पृथ्वीको जीत कर तीन वर्षसे भी अधिक समयके बाद लौट
 कर आया हूँ । अभी तक मेरी फौज भी नहीं आई और जानेका सब ब्रताए
 बिना मैं यहाँसे किस प्रकार पीछा छुटा सकता हूँ ? माता पिता मुझे कैसे
 जाने देंगे ? यह ऐसा कार्य है जिसका होना मित्रके अंगीन है । इसमें मैं
 प्रस्ता कष्ट उठा कर भी क्या कर सकता हूँ ? वैशंभयन भी मेरे पास
 नही है । मैं किससे पूछूँ ? किसके साथ विचार करूँ ? कौन मुझे सलाह
 देगा ? और कौन इस बातमा तै करेगा ? और किसकी बुद्धि विवेकयुक्त है ?
 और किसका शास्त्रज्ञान सुननेके लायक है और किसके यथार्थ बात कहना
 आता है ? और किसका मुझ पर असामान्य स्नेह है ? और किसके साथ मैं
 असामान्य दुःखी होऊँ ? और कौनसा मेरा रहस्य बतानेमा स्थान है ? और

किस पर कर्तव्यका भार डाल कर मैं निश्चिन्त होकर रहूँ ? और कौन मेरे कामके लिए व्याकुल होगा ? तथा मुझ पर कुपित हुए माना पिताको ममभक्त कर और कौन मुझे लेजा सकता है ?

३१०—ऐसे ही विचारमें उसकी, दुःखके कारण लगी, रात भी बीत गई। प्रातः काल ही उसने उड़ती हुई खबर सुनी कि सेना दशपुर तक आ पहुँची है। यह सुन हृदयमें हर्षित होकर विचार करने लगा—अहो ! मधुप है ! भगवान् विधिने मुझ पर कृपा की कि मेरे ध्यान करते ही मेरा दूसरा हृदय वैशपायन आ पहुँचा। यो हर्षसे परवश होकर, भीतर आते और दूरसे ही प्रणाम करते केयूरकसे कहने लगा—केयूरक, अब तो सिद्धिको दृश्यली पर आई हुई ममभक्तो ! वैशपायन आ गया है।

३११—यह सुन कर, जानेमें विलम्ब होनेकी चिन्तासे शून्य हृदय होकर, केयूरक कहने लगा—अच्छा हुआ, महाराजके हृदयको चङ्गी तमली हुई। यों कहता कठता ही पास सरक कर और एक ओर बैठ कर, इशामें माँ परिजनोंको हटा कर, वैशपायनके आनेकी गपशपमें ही कहने लगा—महाराज, सर्वत्र चमकती बिजली जैसे बादलके आनेको, माली पड़ी हुई नाली जैसी पानी बरसनेको, सफेद चमक प्रकट करती पूज दिशा जैसे चन्द्रोदयको, परिमल लानेवाली मलय पवनका चलना जैसे वसंत मानस आनेको, कामको बढ़ाती वसंत लक्ष्मी जैसे पत्ते फूटनेको, चमकते हुए रंगमाले पतंग आना जैसे फूल निकलनेको और मिले हुए काश कुसुमोंकी मन्दी पर शब्दके आरंभको सूचित करता है उनी प्रकार यह अवस्था ही निगरह आपसे जानेकी सूचना देती है। महाराजको अवश्य देवीकी प्राप्ति होगी। मैंने चिन्ता चद्रमाका, या मृगालिका या मन्मथिका, या लला या उमा या

किमोने क्या कभी देखा है ? और सब नामोंमें मन्मथी नाम ही आपके हृदयकी मन्त्रीके परिग्रह विना और गणपति मन्त्रके ही शक्ति विना मुद्रावना नहीं लगता। परन्तु वैशपायनके आनेमें श्रीरामके नाम उत्तम युक्ति विचार करनेमें अवश्य विलम्ब होगा। और देवताके अवस्था में विचार करनेके अयोग्य है सो सब नामोंमें आने निश्चय किमोने ही सब नाम आशामें देने हैं, परन्तु देवीके हृदयमें ही, प्राणिक, आरंभ

फिर होनेकी आशा ही नहीं है। तब वे किस अवलंबनके सहारे रहें? मैं जो हाल कहूँगा उसे सुन कर उनके मनमें यह ख्याल होगा कि अपने जीवनसे मुझे काम है इसलिए दुःखोंको सहन करके भी इसे धारण करूँगी। इस धारण में विश्रुति करता हूँ कि हृदयसे तो आप आगे गए ही हैं और शरीरसे भी पीछे पीछे आचेंगे ही। फिर मैं अब यहाँ पड़ा पड़ा क्या करूँगा? इसलिए आपके आगमन-रूपी उत्सवका हाल कहनेके लिए, आपकी प्रीतिके प्रसादके कारण आग्रह-युक्त हुआ, मेरा हृदय यह चाहता है कि इसे अभी जानेकी आज्ञा-रूपी प्रसाद मिले।

३१२—केयूरककी यह विश्रुति सुन कर, अतर्गत तोषके कारण प्रफुल्लित हुई—खिले हुए नीले कमलकी मालाके समान—दृष्टिसे प्रसन्नता प्रकट करके चन्द्रापीड़ने जवाब दिया—मैं क्या कहूँ? हमारे दुःखोंका न सहनेवाला, और अपने शरीरकी शक्तिकी भी परवा न करनेवाला ऐसा उत्साह और किसे है? और कौन इस तरह देश-काल जानता है? और किसकी हम पर ऐसी निरूपट भक्ति है? यह तूने ठीक विचारा है। देवीको प्राण धारण करानेके लिए तू जा और मेरे आनेका विश्वास करानेके लिए पत्रलेखा भी तेरे साथ ही देवीके चरणोंमें जायगी। इस पर भी देवीकी कृपा है। मेरा विचार है कि इसे देख कर भी देवीको अत्रय्य बड़ा घैय होगा। फिर इसका भी तो देवी पर स्नेह और भक्ति है। इतना कह पीछे बैठे हुई पत्रलेखासे उसने पूछा—क्यों ठीक है या नहीं? तब मुँह जरा नीचा करके उसने विनय किया—महाराज, आपकी जो आज्ञा हो, दीजिए। फिर उसके जानेका निश्चय हो जाने पर मघनादको उलानेके लिए एक प्रतीहारीको भेजा। आज्ञा पाते ही मघनाद आकर दूरसे प्रणाम करके आज्ञाकी राह देखने लगा। इतनेमें आप ही उसे बुला कर सादर कहा—मघनाद, जिस जगह मैं पहले तुम्हें पत्रलेखाके लानेके लिए छोड़ आया था उसी जगह पत्रलेखाको लेकर तू केयूरकके साथ आगे जा। मैं भी वरपायनसे मिल कर तेरे पीछे पीछे ही घोड़ोंके साथ आता हूँ। वह सुन—जेनी महाराजकी आज्ञा—थो कह कर, नमस्कार करके, जल्दी जानेकी तैयारी करनेके लिए मघनादके चले जाने पर, केयूरकने कहा—महाराज अब अधिक विलंब क्यों किया जाय? और वह भी मघनादके जानेके

बाद फौरन ही चलनेके समय प्रणाम करनेके लिए उठ खड़ा हुआ । उसे स्नेह-पूर्वक बुला कर, आसू भरी दृष्टिसे बार बार देख कर, रोमांचित बाहुप्रति उसका आर्लिगन कर, अपने कानसे उतार कर—प्रनेक वर्णोंसे^१ कर्त्तव्य हुए मदेसेके समान—कर्ण-भूषण उसके कानमें पहना कर, आसू भर आनेक तापक गद्द कंठमें, दूटे फूटे अक्षरोमें, चन्द्रापीड कहने लगा—कैपूरक, तुम भेजे लिए देवीका कुत्र सदेमा तो लाए ही नहीं हो इसलिए तुम्हारे हाथ में उमक लायक क्या अपूर्व सदेमा भेजू ? देवीको विजयि करनेमें मिथ्या लजाक भारमें तुमको क्यों पीडा दूँ ? पचलेखा देवीके चरणोंमें जाती ही है । य मत्र कह देगी । यों कहते ही एक गा र आण हुए विधोगमें तु गित हुई, प्रमगल ही शहासे यत्न करने पर भी आसुप्रोतो रोकनेमें प्रममर्थ, प्राण कुलफाती प्रार मिना लक्षके शूर्यमें फिगती दृष्टिनाली, पैरा पर गिस्नेहा नकार हुई, पचलेखाके सामने आकर, प्रीति पूर्वक हाथ जोडकर, चन्द्रापीड कहने लगा—

दशाकी मुक्त निष्करणे उपेक्षा नहीं की " क्या उम दशाका कारण में नहीं
 व अथवा इन सब दोषोंका आश्रय होने पर भी मैंने उनकी राजीस चरणा
 की आराधना भी है इस कारण स्वयं सब गुणोंसे हीन होने पर भी मुझे देवीके
 गुणोंका ही सहारा है। यह उनकी प्रकृतिसे सरस सरलता ही है जो दूर दान
 पर भी नामाग्निमें जलने पर मेरी रक्षा करती है। उनका स्नेह भाव बार बार
 मुझे बुलाता ही है। प्रतिज्ञा हट रखनेकी आदत मुझे उनकी ओर खींचे ही ले
 जाती है। दाक्षिण्य पास बुलाता ही है। वत्सलता मेरा अभीमार करती
 ही है। हृदयकी मृदुता चरणोंमें पड़ने पर भी निर्भत्सना नहीं करती है। महा-
 बुभावता मुझे उठा कर समान करती ही है। प्रियवादिता मेरे साथ बातचीत
 करती ही है और अत्यंत उदारता हृदयमें अवकाश देती ही है। यद्यपि यह सब
 मच है तो भी मैं जो निर्लज्ज होकर फिर अपना मुँह दिखानेका साहस अपने ऊपर
 लता हूँ उसमें भी देवीके अच्छे स्वभावके प्रसाद ही कारण है। स्वार्थहीनता,
 उदारता, और सगतिके कारण ये सब प्रसाद क्षणभरका परिचय होने पर भी
 जीवनकी प्रत्याशा देकर कुछ नहीं कराते सो बात नहीं है। देवीकी सेवा करने
 की याद दिलाते हैं। उनके चरणोंकी आराधना करनेके लिए उत्साह देते
 हैं। सेवाका चातुर्य सिखाते हैं। आराधनाके उपायोंका उपदेश देते हैं।
 नीठा बोलनेकी, बार बार, आज्ञा देते हैं। इस तरह रहना—या स्वयं ही
 बतलाते हैं। अयोग्य समयमें किसीके हमारे पास आनेसे मुँह पर प्रकट होते
 कोमल समय हम शान्त करते हैं। पारितोषिके समय गुण कहकर अनुग्रह करते
 हैं। लज्जासे दूर गये हुए को हटसे खींच कर पाम लाते हैं। अन्यत्र क्षण-
 भर भी टहरने नहीं देते। और वे प्रसाद अपनी अनुग्राहक शक्तिके कारण
 अपरिगृह्य हैं। गुणत्वके कारण ही स्थिर हैं। विस्तारके कारण ही अलंघनीय
 हैं और बहुतायतके कारण ही अपरिहार्य हैं। इसलिए मुझे बहुत दूर पहुँच
 जाने पर भी, वे मानो जबरदस्ती खींच कर, आने को आज्ञाके बिना भी, देवी
 के चरणोंमें ले जाते हैं। और जिस वाणीने जानकी आज्ञाकी उपेक्षा न
 करती, और अपनी इच्छासे—मैं जाता हूँ—यों कहा था वही वाणी श्रम कदती
 है। जिससे मेरा आना निष्फल न हो अथवा जगत् शून्य न हो उसी तरह

१— अनुग्रह करनेकी, ग्रहण करनेकी ।

देवीको जीवन धारण करनेके लिए स्वयं यत्न करना चाहिए ।

३१४—इतना सँदेसा कह कर फिर बोला—पत्रलेखा, तुम भी गन्ना चलतेमे मेरे वियोगकी पीड़ाका कुछ खयाल मत करना, शरीरके श्रमकारण अनादर मत करना, भोजनके समयकी पावटी करना, चाहे जिस प्रनाशन रास्तेसे मत जाना, बिना विचारे चाहे जहाँ मत उतरना या रहना, चाहे जिस अनजान ग्रादमीसे अपना रहस्य मत कहना, और सर्वदा शरीरको मभाल रखना । क्या करूँ ? देवीके प्राण मुझे तुमसे भी श्रावक प्रिय हैं इसी कारण तुमको यों अकेला उनकी रक्षाके लिए भेजना पड़ा है, और मेरा जीवा भी तुम्हारे ही हाथमे है इसलिए निःसन्देह तुम यत्न पूर्वक अपनी रक्षा करना । यों कह कर स्नेह पूर्वक आलिगन कर, केयूरक को फिर पत्रलेखाका समाश्रयण करनेके लिए तैयार कर, उससे कहा--महाश्वेताके आश्रम तक तुम इसीक साथ मुझे तिवाने आना—और उनको विदा किया ।

३१५—केयूरकके साथ पत्रलेखाके चले जाने पर उसका हृदयम इस तरह चिन्ता होने लगी—ये जलदी जायँगे या नहीं, रास्ते मे इनकी विलम्ब होना या नहीं, कितने दिनोंमे ये वहाँ पहुँच जायँगे । ऐसी ऐसी चिन्ता प्रासि जय हृदयजाला कुमार योही देर ठहर कर, सेनाकी ठीक ठीक गणना जाननेके लिए एक दूत भेज कर, बहुत दिनसे जिसको नहीं देखा था ऐसे नैर्गपायनका खिवा लानेके लिए आज्ञा लेने स्वयं पिता के पास गया । वहाँ दोना आगमे भट प्रतीहारमडलके दृष्टिगानेके कारण अत्यन्त निस्तीर्ण हुए रास्तेमें पाए कर, दूरमे ही दक्षिण घुटने और कर्तलमे निर्मल मणि-भूमिका नदाम लेनेके कारण पड़ी हुई प्रतिमाने युक्त, प्रतिमाके कारण दुर्गम दीपने लभे प्रश-कलाप सहित, उमने पिताको प्रणाम किया ।

३१६—फिर तारापीठ, इस प्रकार दूरमे ही चद्रापीठका प्रणाम कर देता । स्नेहने भरे, जलक भारमे मद हुए मेवकी अनिक समा, एका गजोचित गोरखक साथ—आआ, आओ—वा उम बुला कर, मन्त्रनमोदक दोउने पर भी शुक्रनामको प्रणाम करके पास आकर भूमि पर बैठना देता हुए कुमारको दृष्टने लेंच कर, कुरनी पर बैठ कर, ॥ उन दक्षिणे पकी ॥ ॥ एने नेत्रमे बहुत दर तक देखा कर, भास के कारण वापस ॥ ॥

होते उसके हर एक अंग पर हाथ फेर कर, शुक्रनासको दिखा कर कहने लगा—शुक्रनास, देखो यह आयुष्मान् चद्रापीड़की डाढी चारों तरफ निकलने लगी है। यह कनकगिरिसे बाहर निकलती महानीलमणियांकी प्रभाके समान, गंधगजके गडस्थल पर शोभायमान मद-लेखाके समान, चद्रमाने कलककी छायाके समान, खिलनेकी राह देखती कमलाकरकी भ्रमरावलीके समान, सौंदर्यका चित्र बनानेकी काले रंगकी कूँची, तारुण्यरूपी मेघका गहरा नीला रंग, जलते हुए वाम-प्रदीप की काजलकी लौ, प्रकाशमान प्रतापाग्निकी धूमराजि, कामोद्यानकी तमालवेल, काम विकाररूपी दोषागम^१की बाल तिमिरोद्गति^२ और विवाह रूप मंगल-कार्यकी मृदुटी का इशारा मालूम होती है। अब चद्रापीड़की अवस्था विवाह-मंगलके योग्य हो गई है। इस कारण देवी विलासवतीके साथ सलाह कर जगत्में कोई सुलीन और सुन्दर कन्या तलाश करो। दुर्लभ दर्शनवाले पुत्रका मुख देखा। अब मूक मुख-कमलके दर्शनसे आनन्दित हों। तारापीड़ के इतना कह चुकने पर शुक्रनासने जवाब दिया—

३१७—महाराजने ठीक विचार किया। इन सहृदय कुमारने हृदयमें सब विद्याआमो स्थान दिया है; सब कला सोख ली हैं, सब प्रजाको वशमें कर लिया है, सब दिग्बुधोंका कर^३ ग्रहण कर लिया है, राजलक्ष्मीको स्थिर कर जुड़भिनीकी जगह स्थापित कर लिया है और चारों समुद्रोंकी मेखलासे भूषित पृथिवीको वर ही लिया है। फिर अब बाकी क्या है जो इनका विवाह न किया जाय ? शुक्रनासके ऐसे वचनसे लज्जित हो, सिर नीचा करके, चद्रापीड़ विचार करने लगा—अहो ! यह कैसा योगमें योग मिल गया कि मैं कादवरी के साथ समागमके उपायकी चिन्ता कर रहा था कि इतनेमें पिताको यह बात सूझी ! यह मेरे लिए वैसा ही हुआ जैसी कहावत है कि अंधेरेमें गए हुएको चाँदना मिले, गहन वनमें खुसे हुएको रास्ता मिले, महासागरमें पड़े हुएको नाव मिले और मरते हुए पर अमृतकी वृष्टि हो। कादवरीकी प्राप्तिमें

१—रात्रि, दोष।

२—प्रकार, रोग।

३—महज्ज हाथ।

अब मुझे केवल वैश्यायनका दर्शन ही प्राप्ति है । वह यों विचार कर रहा था कि इतनेहीमें राजा उठा और उठ कर विनयमें प्रवृत्त पूर्वशरीर वाले चद्रापीडके कंधे पर, समग्र भूमडलभा भार उठानेसे भारो हुए ग्रामे हाथका मृग्य रक्षारे धीरे चलते, पीछेसे आते शुक्रनासके साथ, विलासवतीके महलमें गया । राजा जाकर, सभ्रम-पूर्वक उठ कर अभ्युत्थान देती, चद्रोदयके दर्शनसे चंचल हुई समुद्र-वेलाके समान, विलासवतीसे खड़ा खड़ा ही कहने लगा—मा, तुमको भी बहूका मुँह देखनेके सुखकी उत्सुकता नहीं होती—या मानो नाना देती हो ऐसी, पुत्रक मुँह पर डीखती, यह प्रफुल्ल योभनारंभके सूपातभी रेंगा, मानो तारुण्यके तुर्गिलासकी इच्छामें दूर रहनेको इभाय आजा हो इस प्रकार निकलती मूँछकी शोभा हमें विवाहमगलकी तैयारी करनेकी सूचना देती हैं । तुम और क्या सूचना करती हो यह भी एतना है इसलिए नहीं । या सम्भ्राने पर क्यों तुम आज शरमा कर अपना मुँह फेर लेती हो और पूछने पर—क्या करना चाहिए ?—नो नहीं कहती । तुम तो प्रवृत्त-माता हुई । मे सम्भ्रता हूँ कि चद्रापीड पर तुम्हारी अधीति है । गम तुम इस काममें अनादर दिग्याती हो और इसकी परवा नहीं करते । एतलसे दास्य-पूर्ण वचनोंसे अन्तःकरणमें सुधी होकर और बहुत देर तक इसी टन्त्र कर मानेरीने के लिए यह वर्षसे बाहर गया ।

३१८—चद्रापीडने भी वैश्यायनको लिखा लानेके लिए शुक्रनासके साथ ही अनुमति माँग कर, माताके महलमें ही स्नान भोगनाद कर, वैश्यायनके पास जानेकी तैयारी करनेके विषयमें ही वह दिन प्रिताया ।

३१९—द्वि गत हुई तत्र पलाग पर भी, मित्र-दर्शनशी उत्सुकताके कारण से पहलमें ही अत्रिक देर तक, वह जागता ही रहा । अर्थात् लीला । काशकी नीलिमाका मानो बदल देगी ही, वने वृत्ताको हरिवालीको नाम ही हो, नीचे भी छेद करके मानो प्रवेश करती ही, वृत्ताके चलते गमना मानो निमाल बाहर करती ही, गुहाआ, गायला ओर हुआ कि मोर पुने हुए अंग्रेको भी माना सदन न करके वर्षा पुन पर उगे जन्म । एत ही, विचार प्रवेशके चलते मानो रसाल्लम प्रवेश करना शुद्ध करती ही, नरके नरकीको मानो अन्व प्रवेशके लिए सके करती ही, हूरती वरती ही ।

दिशाओंके मुख भरे डालती हों, गाढे चंदन-रससे रात्रिको मानो लीपती हों, पृथ्वीको मानो ऊँचा उठाती हों, आकाशको मानो पास लाती हों; तारा, ग्रह और नक्षत्र-मण्डलोंको मानो सद्धित कर देती हों, नदियोंके रेतीले किनारोंका मानो विस्तार बढ़ाती हों, कमल-चनको मानो दात्र दात्र कर जुदा जुदा करती हों; प्रफुल्ल पँखड़ीवाले कुमुदाकरोंको मानो इकट्ठा करती हों, पर्वतोंके शिखरों पर मानो बिछी हों, महलोंके ऊपर मानो फैलादी गई हों, इकट्ठी होकर सड़कोंके मुखमें मानो बहती हों, जल-तरंगों पर मानो तैरती हों, रेतीली जगहोंमें मानो फैली हों, हसोंके साथ मानो मिल गई हों; चोंदनीमें सोती हुई अगनाओंके गालोंके लावण्यके साथ मानो मुकाबला करती हों, चंद्रकान्त मणियोंमेंसे भरती हुई हजारों जल-धारोंसे मानो धुल गई हों, बरोंके बीचमें भी बिना रोक टोकके जानेवाली, हाथीशतके भ्रमणोंमें और भी सुंदर मालूम होती; कमलकी पँखड़ोंके टुकड़े पर भी जिनकी सफेदी अस्पष्ट थी, उद्यानोंमें भी जिनसे दिन-सा मालूम होने लगता था; परस्पर मिलनेसे जो सर्वत्र चोंदनोंके प्रवाहका मानो वमन करती थी, उने नीचे फँकती थी; बिछाती थी; बढ़ाती थी; प्रवृत्त करती थी, बर-सार्ती थी, और कादंबरी समागममें जलदी करने के लिए कामके मानो सब त्राण छोड़ती थी, ऐसी चंद्रमाकी किरणोंने जब कामोत्साह दूना कर दिया तब उसने इंचका सनेत करनेवाले शंखके बजानेकी आज्ञा दी ।

३२०.—फिर बड़े जोरसे बहुत देर तक शख-नाद हुआ । वह गगन तलमें फैल गया, दिशा-रूपी कुजोंमें मानो भर गया, आकाश तक पहुँचते नगरीके प्राकार मण्डलके भीतर मानो फिरने लगा, अत्यन्त ऊँचे नगर-द्वारकी अटारियों के शिखरों पर मानो चढ़ने लगा, बड़े बड़े मकानोंके भीतर मानो फिरने लगा, सभा मंडपोंके आँगनमें मानो विकास पाने लगा, राज-भागोंमें मानो फलने लगा, तट्टे मञ्चनोंमें मानो भटकने लगा, उद्यानोंके कृत्रिम पर्वतोंकी गुफाओंमें मानो प्रवेश करने लगा, और महलोंके कोनोंमें मानो फैलने लगा । उसी क्षण जाने गृह-कमलनीके सारसोंका अत्यन्त तीक्ष्ण और ऊँचा स्वर मानो उसका पीछा करता था, पालतू फलहसोंके, स्वभावसे ही गद्गद और नष्ट गन्धने, बार बार मानो वह विच्छेद पाता था और चलनेके समय

प्रणाम करनेके सभ्रममें वेश्याओंके हिलते हुए करण, नपुर और मेराला प्रां का कलकल कानोमे पड़नेसे मानो निश्चित किया जाता था । इसके बाद वहाँ हजारों घोड़े तैयार होकर आए । उनमेंसे कितने ही सड़े किए जाते थे और कितने ही खड़े थे, कितनों ही का आर्कुरण किया जाता था और कितनों ही आकृष्ट थे, कितनों ही पर जीनें रखी जाती थी और कितनों ही पर सदाई गई थी, कितने ही ले जाए जाते थे और कितने ही लाए जाते थे, कितने ही औरोंको दिए जाते थे और कितनोंहीको औरोंने ले लिया था, कितने ही आते थे और कितने ही आ गए थे, कितनोंहीको गढ़ने पहनाए जाते थे और कितने ही पहन चुके थे, कितने ही कतारमें थे और कितनों ही पर सारी से रही थी, कितने ही खड़े थे और कितने ही सह देता रहे थे । राजद्वारका आँगन उनके लिये काफी नहीं था, चौराहा उनके लिये छुटा होता था, गाँव पूरी सड़कका रास्ता रुक जानेसे वे भीतर और बाहर नगरीके विस्तारमें सड़ते थे । उन घोड़ोंसे ऐसा मालूम होने लगा मानो अतर्हित मालाक वनसे व्याप्त हो, पृथ्वी मानो खुरोंसे शब्द मय हो, कानोंके छेद मानो दिन दिनाहटमें भर गये हों, युवराजके महलका चोक मानो फेनेके पिंडांस भर गया हो, दशों दिशाएँ मानो लगामकी रनरानाहटमें भर गई हों और नगरीकी ही स्थिति मानो घोड़ोंके गढ़नों से रत्नकान्ति मय हो गई थी ।

३२१—फिर थोड़ी देरमें सज कर, चौक्रम सड़ ईशायुव पर नगद कर, चाँदगा करनेके लिये ग्राया हुआ मानो दूसरा चंद्रमंडल हो ऐसे तथा तथा नमान शोभायमान मंगल-च्युत्रम अपना बाहर जाना सूचित करते नगरीपाइके दर्शन करते करते हजारों सज पुत्र घोड़ों पर सवार हुए ही श्वर उदरमें प्रणाम करने लगे । नगरनिवासियोंके मोंते रहनेके कारण सजमार्ग पर जोर । पर भी युद्धसवारोंकी फात्रकी चली मर्याके कारण हस्त सज । कर किसी तरह बंद नगरीके बाहर निकला । निकलते ही सड़ सजपाके पर पहुँचा । उसका पानी, चँदिनीके प्रसादके अति शनेस, न-इमका गण्य जाना नहीं जाता था, उस पर चर्राएँ हुए इलाके नुड ३६ ६६ । तो मपुर गुजार करनेमें ही जाने जाते थे, सड़ मानो पुनिनिमा २६ ६६ थी, और सब आंगसे आनी हुई प्रकृत शक्तिन (गणपति) मयों से

मालूम होता था कि उसका जल पास है। सिप्रा नदी पार करके वह दशपुरके रास्तेकी तरफ चला। वह खूब कुड़ा हुआ था और सकट-रहित होनेके कारण जाने के उस्ताहको मानो बढाता था और अत्यन्त चौड़ा होने पर भी चद्रमानी किरणोंसे मानो और भी चौड़ा हो गया था।

३२२—फिर सब दिशाओंमें फैले तथा वेगसे बढ़ते चाँदनी-रूपी जल-प्रवाहके साथ मानो खिंचते—वैशम्पायनको देखनेके लिए उत्सुक हुए चन्द्रापीडके मनके ही, मानो, बग़ावर दौड़ते—इन्द्रायुधकी जंघाओंसे उत्पन्न हुई हयाने मानो खींचे गए घोड़ोंके साथ उतनी ही पिछली रातमें उसने तीन योजना पूरे कर लिए। जब चाँदनी रूपी जलमें यथेच्छ स्नान करनेसे अत्यन्त शीतल स्पर्शयुक्त ओसकी वृद्धीका आकर्षण करनेवाली, फूलोंकी रजसे युक्त—अनेक प्रकारके—चन पल्लवोंसे आती पवनसे प्रेरित, खिली हुई कुमुदिनीकी रगड़ने लगी परिमल लाती, परिमलसे जड़ हुई, रातके वीतनेकी सूचना देती, सुखदायक पवन मानो रास्तेकी यकावट मिटानेके लिए चलने लगा, रात्रिको दुःसह वियोगकी मानो चिन्तासे, आसन्नवर्ता सूर्योदयके मानो दुःखसे, प्रदोष समयसे लेकर कुमुद-समूहोंके द्वारा ऊँचे मुख करके भिए गए अपने तेजके मानो लयसे, गगन-सरोवरका जल पीने को आए हुए मेघों के समान घोड़ोंकी रजके मानो समूहसे, क्रम पूर्वक, पश्चिम विंग्वधूका मुख चुम्बन करता हुआ चन्द्रबिम्ब जब फीका हो गया और प्रभात होने लगा; आकाश लक्ष्मीके नए वियोगके सतापसे उतारे हुए सफेद डुपट्टेके समान, चन्द्रमासे लगा हुआ चाँदनीका प्रकाश जब दूर होने लगा, चाँदनी-रूपी जल प्रवाहके मानो पश्चिम समुद्रमें गिरनेसे, भागके बुदबुदोंकी कतारके समान तारोंकी पंक्तियाँ जब एक साथ नष्ट होने लगीं, गिरते हुए ओसके जलसे, मानो, धूल जानेके कारण दिशाएँ जब धीरे धीरे मोतियोंके बुरादेके समान सफेद चाँदनीके लेपका त्याग करने लगीं; स्वाभाविक श्याम कान्ति फिर दीखनेके कारण वृद्ध, लता और टहनियाँ जब जलमेंसे मानो फिर बाहर निकलने लगीं, पूर्व दिग्बधूके कानमें पहने हुए लाल शशोकके पल्लवके समान, गगन-सरोवरके लाल कमलके समान, प्रभात रूपी हाथीके गडस्थलके सिंदूर-रेणुके समान, तथा पूर्व-रथी लाल वज्राके वज्रके समान, प्रभात संघात

रग जत्र चमकने लगा, प्रातः सध्याका प्रकाश चारों ओर फैलनेसे मानो
 शिवानलसे युक्त ही ऐसे मालूम होने निवास वृक्षोपमेसे पक्षियोंके झुंड कल कल
 करके जत्र निकलने लगे, नींद चाकी रह जागेसे अलस हुए शिरानेके झुंड,
 बहुत देर तक पैला रखनेके कारण अकड़ी हुई जघाओं तथा परोक्ष जोरसे
 खेंच कर लंबे लंबे पैर धरते, जत्र तृष्ण-रहित भूमि पर उठ कर दोड़ने लगे,
 पल्लवोंके किनारे पर उगे हुए नागरमोथेकी गोंडा को उखाड़ कर हाँचुआमे
 काटते बराहोंके झुंड जत्र बनकी गुफाओंकी ओर जाने लगे, रातिके पतम
 चरनेके लिए जाने वाली गायोंके झुंडसे ग्रामकी सीमाके अंतके वन स्थल
 जत्र इधर उधर सफेद दीखने लगे; बाहर आते जाते लोगोंके दीरानेके कारण
 जत्र गाँव मानो नए पैदा हुए मालूम होने लगे, सूर्यकी किरणोंके प्रकाशके
 साथ साथ जत्र पूर्व दिग्भाग मानो ऊँचा हो गया, दिशाएँ मानो आगे बढ़ती गई,
 वन मानो आगे तिसकते गए, ग्रामोंकी सीमाएँ मानो विस्तार पाने लगीं,
 जलाशय मानो विशाल होने लगे, पर्वत मानो अलग अलग भाँड़ दीपन
 लगे, पृथ्वी मानो ऊँची होने लगी, कुमुदिनियों माना अदृश्य होने लगीं,
 गदृश्य करनेवाले नीले पुरेहके समान अथकार मालाकी कणसे दृष्ट कर,
 प्रिरइसे पीड़ित हुई कमलिनीकी माना देखनेके लिए सप्त-लोकोचतु मय
 चान् सूर्य जत्र उदयगिरिके शिखर पर चढ़ गए, गगन तलकी प्रकाशित हो
 मूर्यकी—सारे जगत्मे उजेला करने वाली—किरणें जत्र दिशाओंका चमकाने
 लगीं, और जत्र अरिओंकी पदार्य दीपने लगे, उस समय विद्रापीडन अपनी
 सेनाको देखा । वह एक साथ ही लगभग दा मील आगे गतिम प्रयाण करके
 आई थी । नीतर ज्ञान होनेसे भयभीत हुआ सातल माना उसका सम
 गन था, इन्द्रा नार अस्रव लगनेके कारण पृथ्वी माना उने इत
 फैलती थी, जगद माली न होनेसे दिशाएँ उसका जाना इन्द्रा
 अपरिमित रत्ने वर जानेका मंत्रिक कारण आकाश नाग उभर
 च्वा था, सूर्य-प्रकाशके साथ ही माना उद विन्वा पाना था, उ
 जत्र लम्बा पैला कर अमने देखने पर ना उसका अंत नद दीपन था,
 गत गदृश्य अनुनीती भूवर्गेने स्थि गए अलियनमाना मा ता इन्द्रा

शील भूमडल था, नटियोंके प्रवेश बिना भी गम्भीर मालूम होता मानो प्राणिय, टुस्तर, आठवाँ महामसुद्र था, ऊँची उड़ती हुई रजके ढेरके कागज उमका मत्र वृत्तान्त साफ नहीं दीखता था; तथापि इधर-उधर सफेद ध्वजाओंके फहरानेसे मालूम होता था कि उसमें हजारों हाथियोंके झुंड थे, जिनसे वह ऐसी लगती थी मानो अनगिनती बगलांकी कतारोंसे शोभायमान मेघोंकी घटावाले, मूर्तिमान् मेघ-समयका आरंभ हो; और फिर ठहरनेकी जगह तलाश करनेके सभ्रममें दौड़ते हुए असंख्य हाथी घोड़ोंके सवारोंकी, लहरों के समान, आपसकी टक्करसे ऐसा मालूम होता था मानो मदग-चलके धीरे धीरे छलकनेसे छिन्न भिन्न हुई तरंग-मानाओंसे आकुल हुए महासमुद्रकी लीलासे वह पटाच टालती हो ।

३२३—देख कर उसने विचार किया—जो मैं अचानक ही जाकर वैशम्पायनसे मिलूँ तो ठीक हो । मैं सोच कर छत्र-चमरादि अपने चिन्होंके साथ मत्र राजपुत्रोंको छोड़, अत्यन्त वेगवाले तीन चार घोड़े लेकर, दृपट्टेसे मस्तक टक कर, विशेष वेगसे चलनेवाले इन्द्रायुध पर चैत्र कर, अकस्मात् ही वह अनेक व्यापारोंमें लगे हुए लोगोंसे भगी हुई सेनाके पास आ पहुँचा । घोड़े पर चढा ही हर एक डेरमें जाकर पूछने लगा कि वैशम्पायनका डेरा कहाँ है । तब वहाँ पासकी स्त्रियोंने उसे साधारण मनुष्य जान कर पहचाना नहीं, आर जिन कामोंको आरंभ कर दिया था उनमें व्यग्र रह कर ही, आँसुओंके कारण शून्य हुए मुखसे, कहा—भद्र, क्या पूछते हो ? यहाँ वैशम्पायन कहाँसे आया ? यह सुन कर—अरी पापिनियो, क्या ऐसी असंगत बात कहती हो ?—मैं शून्य-हृदय होकर, उनकी परवा न करके, हृदय भीतरसे भिन्न हो जानेके कारण दूसरी किसी स्त्रीसे पूछे बिना योका था ही—उठे हुए हिरनके बच्चेके समान, यूथमेंसे भटक जानेके कारण घबराते हुए हाथीके बच्चे के समान, गायके विरहसे कान उठाएँ फिरते बड़े-डेके समान—बिना कुछ देखे, बिना कुछ बोले, बिना कुछ बात किये, बिना कुछ सुने, बिना कुछ विचारे, बिना कहीं खड़े हुए, बिना किसीको बुलाए—मैं यहाँ आया हूँ, कहाँ आ निकला हूँ, कहाँ जाता हूँ, क्या देखता हूँ; मैंने क्या आरंभ किया है और मैं क्या करता हूँ ?—इन मत्र बातोंके भान बिना माने

अंधा हो, बहरा हो, गूँगा हो, जड़ हो, आविष्ट हो, यों मेराके बीचमें, जिन तेजीसे आया था उमीसे, चोड़ेको ले गया ।

३२४—फिर इन्द्रायुधको पहचाननेसे और लज्ज सुन कर ही, पीछे मोड़ते राजपुत्रोंके दर्शनसे, देव चन्द्रापीडको आया जान भर चाना आरसे सभ्रम-सहित दौड़ते, दृष्टिके गिरने पर यान न देने, प्रॉसुओंके भारग्य शून्य दृष्टिवाले, दूरसे ही लज्जा और प्रणाम-क्रियाके कारण एकदम डोहरा म होते हजारों क्षत्रिय राजाप्रति मुख देकर चन्द्रापीडने पूछा कि तैयमान कहाँ है ? तब उन सभने आपसमें सलाह कर निवेदन किया—आप इस वृद्धके तले उतरिए, जो बात हुई है, उसे हम निवेदन करेंगे । स्पष्ट भावों भी अधिक कष्ट देनेवाले उनके वचनसे चन्द्रापीडका हृदय इस प्रकार फट गया मानो भीतर बाण लगा हो । स्नेहके कारण उस समय आई के । मूर्खाईने उसे धारण किया । थोड़ेसे उतार, गलीचे पर बिठा, उसका पिताक समान बयवाले, आदरके योग्य, क्षत्रिय राजाप्रति उसके शरीरको महारा दिया, पर उसको इसकी कुछ चान न पड़ी । सवेत होने पर भी प्रेक्षा यनके न देखनेसे और अपनी लिंगिका विचार दानसे—'यह क्या है ?' 'कहाँ हैं ?' 'मने यह क्या किया ?'—इस प्रकार वह मानो भ्रममत्त गया, इन्द्रियों मानो अपनी गति छोड़ने लगी, उसे कुछ नहा सूखा, तब सातके आ जानेसे ही प्रणामयनका प्रभाव देगा और कुछ न विचार कर, निवृत्त प्रणाम पीडा उत्पन्न होनेसे—'क्या म गेऊँ ? क्या हृदयको यह देकर पुनः पुनः देऊँ ? क्या आत्मता कर हृदयका प्राणोस विहीन करूँ ? क्या प्रकृति लगी दिशाही तरफ चला जाऊँ ?'—यह कुछ उसकी ममक म ही आता । मान मानो गला चला, चला जाता ही और दुःखमें सदस्यता दुःख दुःख दुःख हो गया तब, इस प्रकार विचार करने लगा—'प्रश ! यमाए (न) इन रे लिये अस्मगीन हो गया ! लोमाने विधी हुई पुनः भी पुनः नन होने पर भा दिशाएँ श्री ही शमडे ! जिन कुपन उत ही होनी नन विगत गया ! मुक्ति होने पर भी नरे सातका न न पुन । न किमका देई ? किमक माय मल करे ? तब उतव न न नने माय मुने दे ? अत्र नरे होने और सातकीन न न न

वैशम्पायनके लिए कहाँ जाऊँ ? किससे पूछूँ ? किससे प्रार्थना करूँ ? कौन मुझे ऐसा मित्र-रत्न फिर देगा ? वैशम्पायनके बिना मैं अपने पिता और शुक्रनासको कैसे मुँह दिखाऊँगा ? पुत्र-शोकसे विह्वल हुई माता मनोरमाको क्या कह कर धैर्य धारण कराऊँगा ? क्या यों कहूँगा कि एक भूमि मेरे जीतनेसे रह गई है, उसे लेनेके लिए वह पीछे रह गया है ? या एक राजाके साथ सधि नहीं हुई जिसे करनेके लिए उसे पीछे छोड़ दिया है ? या एक विद्या नहीं सीखी है, उसे सीखनेके लिए मैंने अनुमति दे दी है ? ऐमे ऐसे कितने ही विचार बहुत देर तक, मुँह नीचा करके, करनेके पीछे हृदय न फटनेके कारण मानो अपनेको सभ्रान्त, दोषी अथवा महापातकी सम्भ्रता, मुँह दिखाए बिना धीरे धीरे, मानो बड़े कष्टसे, उनसे पूछने लगा—

३२५—मेरे चले आनेके बाद क्या बीचमें ऐसा कोई युद्ध हुआ, या कोई तत्काल चिकित्सा करनेके योग्य व्याधि उत्पन्न हुई, जिससे अचानक ही यह महा वज्रपात हुआ ? ऐसा प्रश्न सुन उन सब ने साथ ही कानों पर दोनों हाथ रख कर निवेदन किया—महाराज, विघ्न सब शान्त हैं । आपके समान वैशम्पायन अभी सौ वर्षसे अधिक जिएगा । यह सुन कर मानो फिर जीवित हुआ हो यों आनन्दके आँसू टपका कर तथा सबको आदर-सहित बंठालिंगन करके वह बोला—वैशम्पायन जीता होता तो उसका क्षण भर भी अन्वय रहना असंभव सम्भ्र कर मैंने आपसे यह पूछा था । अब वह जीता है, ऐसे अक्षर मेरे कानमें पड़े ! पर उसको क्या हो गया जो वह नहीं आया ? वह है कहाँ ? किस प्रसंग से रह गया है ? उसको अकेला छोड़ कर आप सब क्या चले आए ? क्या जबरदस्ती भी आप उसे न ला सके ? यह जाननेके लिये मेरा हृदय व्याकुल हो रहा है । यह सुन कर उन सबने कहा—देव, जो मूढ़ हुआ है, सुनिए—

३२६—मेनाकी देख भाल करके, वैशम्पायनके साथ तुम सब धीरे धीरे पीछे से आना—यह आज्ञा दे कर आपके लौटने पर उस दिन रास, दूधन, आदि सब सामग्री नूच इकट्ठी करनेके कारण सेनाने कूच नहीं किया । दूसरे दिन जम नूचका त्रिगुल नजाया गया और सब सेना तैयार हुई तब प्रातः काल ही वैशम्पायनने हमसे कहा—पुराणोंमें कहा गया है कि अच्छोद

नामका सरोवर बहुत पवित्र है, इसलिए उसमें नहा कर प्रोग उसके ती-
 तीर पर बने हुए मिट्टी स्थानमें भगवान् भवानीपति महेश्वर चन्द्रशेखरमें
 प्रणाम करके चलेंगे। इस—दिन पुण्योत्सि मन्त्रित—भक्ति को मा भद्र कि
 स्वप्नमें भी देखेगा ? यह कह कर पैदल ही वह अञ्चो सरोवरके तीर पर
 गए। वहाँ अत्यन्त रमणीयताके कारण मय और देवते फिरते थे कि उनके
 तट पर उन्होंने एक लता मटप देखा। यह देवतागनाप्राक कर्ताके ऊपर
 रखे जानेके योग्य तथा तरंगपवनके लगनेसे चल ल कमलपत्रों और
 मकरन्दके लोभमें निरंतर भरे हुए मत्त भ्रमरोंकी मधुर गुजारसे माना यम
 ही उनको बुझाता था, मरकतमणिके समान श्याम प्रभासे दगी विशापा
 का एक साथ ही मानो खेल करता था, सूर्यकी किर्णोंका प्रकाश न होने
 कारण दिनमें भी मानो भीतर रातिका भावण करता था, बहुत दिनों
 परिचाय होने पर भी मेराके आनेकी गुंकासे बारम्बार मधुर केश कर्त मिला
 यत्र ऊनी गर्दन करके उसे देख रहे थे, वह सर्पिलका माना था, या
 मय सीतारंका मानो प्रतिपदा था, शतलताका माना प्रावास था, मय सी
 का मानो निर्गम मार्ग था, कामदेवका माना आश्रय था, रत्निका माना, उरु
 के मनन, मन बढ़ाने का त्यल था, मय रमणीयताका माना स्थान था,
 निरंतर बहती सुगन्धित और सीतल—अञ्चो सरोवर की—तरंगपवन
 उनके भीतरके शिलावज उड़ रहे थे ।

३२०—उसे देख, बहुत दिनमें नदी देखे हुए मानो मय सीतल,
 पुत्रकी या मित्रकी देवत था, अनन्य टिप्पण—तन्मय रहित प्रेम—उसकी
 वा देखते देवते लम्बित ही, चित्रित ही, उत्कीर्ण ही, अथवा पलकनी
 ही, इन प्रकार वह बहुत देर तक लड़ रहे, और अगला भाग कर
 के अमन्य ही, नृच्छिने माना आनात ही, तथा इन्द्रमय ना ही
 के प्रकार तुल्य ही, अग शिथिल ही ना ही, मूल ही उड़ ही ना ही
 ही कुच्छ स्मरण करने ही था मान ही ही, ही उड़ ही ही ही ही
 ना नयोनि आनुग्रही न ही जमान, ही ही ना ही ही ही ही ही ही
 उनकी देखे अवन्या देव ही ही ही ही ही ही ही ही ही ही ही ही ही
 वडवाने त्मिक न ही ही ही ही ही ही ही ही ही ही ही ही ही ही ही

जो 'कुतूहलाकीर्ण' प्रथम वयमें वर्तमान हैं उनका तो कहना ही क्या है ? इसलिए निश्चय है कि अत्यन्त मनोहर भूमि देख कर चिन्तन करने से उन्हें यह हृदय विकार हुआ है। फिर थोड़ी देर पीछे हमने उनसे इस प्रकार कहा—दर्शनीय वस्तुओंकी यह सीमा देख ली। इसलिए उठिए। अब नहा-घों लें। बहुत देर हो गई। सब सवारियाँ सज गई हैं। सब सेना कूँच करनेको तैयार है और आपकी राह देख रही है। अब विलम्ब करनेसे क्या लाभ ? हमारे यों कहने पर भी मानो हमारे शब्द न सुने हों, जड़ हों, मूक हों या बोलना न जानते हों यो उन्होंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। निमेष-रहित, निश्चल तथा स्तब्ध पुतलीवाले, आँसुओंकी झड़ी लगाते, माना चित्रित हों ऐसे, नेत्रोंसे केवल उसी लता-मडपको देखते रहे।

३२८—हमने आनेके लिए बार-बार अनुरोध किया तब वहीं दृष्टि स्थिर करके, अपना कर्तव्य निश्चित कर लेनेके कारण निष्ठुर शब्दोंमें, वह हमसे कहने लगे—मैं तो इस जगहसे नहीं सरकूँगा। आप सब सेनाको लेकर जाओ। चंद्रापीड़के भुज-बल से रक्षित महा-सेनाको लेकर, उनके जानेके पीछे इस जगह आपको क्षण भर भी नहीं ठहरना चाहिए। उनके यों कहने पर हमें सदेह हुआ कि क्या उनको दैवयोगसे ही अचानक वैराग्य-कारण उत्पन्न हो गया है ? इस कारण विनय सहित बार-बार हमने उनको आनेके लिए समझाया और, ऐसे असंगत आचरणने दुःखी होकर, हमने निष्ठुर शब्द भी कहे कि हमको तो यों रहना योग्य नहीं है परन्तु महाराज तारपीड़के मुख्य शुरुनासके पुत्र—देवी विलासवतीकी गोदमें पाले गए—देव चंद्रापीड़के साथ ही परवरिश पाए हुए और विद्यालयमें महा यज्ञसे इस प्रकार शिक्षित हुए आपको क्या यह योग्य है कि आपके बड़े भाई, मित्र, वत्सल, स्वामी जगन्नाथ, गुणवान्, चंद्रापीड़ आपको सब सोच कर चले गए उसे त्याग पर आप रंग रहें। अन्य कौन आपकी तरह युक्त अयुक्तका विचार करेगा आपके ऊपर हमारी प्रीति और भक्ति तो दूर रही, इस शून्य वनमें आपका अज्ञेता छोड़ जायँ तो चन्द्रमाके समान शीतल प्रकृतिवाले देव चंद्रापीड़। हमसे क्या करेंगे ? क्या चंद्रापीड़ और आप जुदे जुदे हैं ? २५

मनोर छोड़ दीजिए और चलने का इशारा करिए ।

अपने जीवनसे भी अधिक प्रिय हैं, इस कारण अगर ये मुझे जबरदस्ती भी छोड़ कर जाते हों तो भी इनको धारण करनेके लिए मुझे प्रयत्न करना चाहिए, परन्तु जाते ही नहीं फिर क्या ? मुझे चन्द्रापीड़के दर्शन से ही काम है, मृत्युसे नहीं । इसलिए यहाँ प्रार्थनाकी जरूरत नहीं है । यों कह कर, उठ कर स्नान किया तथा कंद, मूल और फलों से वनवासके योग्य भोजन किया । उनके निवृत्त हो चुकने पर हमने भी शरीर-व्यापार निपटाया । ऐसे ही क्रमसे रात दिन—यह क्या है ?—यों उनके वृत्तान्तका ही चिंतन करते, अंत करणमें विस्मित हो कर, तीन दिन हम वहाँ ठहरे । फिर उनके आनेकी या उनको ले आनेकी कुछ आशा न रहनेसे उनके भाजनादिका ठीक प्रबंध करके तथा उनके नौकर-चाकरोंको वहाँ नियत कर हम यहाँ आ गए । आगेसे जो हमने दूत नहीं भेजा उसका कारण तो यह था कि आपके लोटतेमें रास्तेमें आपके पास तक पहुँच ही नहीं सकता था और दूसरे आप बहुत दिन बाद नगरमें आए थे हमसे आते ही आपको फिर जानेका कष्ट होता ।

३३१—स्वप्नमें भी जिसकी सभावना नहीं थी कि ऐसा वैशम्पयानका वृत्तान्त सुन कर चन्द्रापीड़के हृदयमें उद्वेग और विस्मय भाव ही पैदा हुए और उसने विचार कि सब त्याग कर वनवास का ही आश्रय लेने-वाले वैशम्पयान का कारण होगा ? मुझसे तो कुछ अपराध हुआ नहीं दीपता । पिताकी कृपासे मेरी तरह उसका भी सब राजा चरणाके तलेमें चूजभण्डियों का स्पर्श करके आदर करते ही हैं । मेरी तरह उसको भी हमसे अधिक सब उपभोगोंमें किसी बातकी कमी नहीं रहती । मेरी तरह उसकी आशाका भी कोई चल्लधन नहीं करता । मैं जिस तरह कृपा करता हूँ । उभी तरह वह भी करता ही है । अपराधी जन जिस तरह मुझसे डरते हैं उसी तरह, उसमें भी डरते ही हैं । मेरे समान उसके पास भी सब प्रभारकी सम्पत्ति है । उसको भी देखकर लोगों को ऐसी ही स्तुति होती है जैसे मुझे देख का रोमी तो । क्या प्राते समय पिताने, माताने, आर्य्य शुकनासने या मनोरमाने के स्नेहके योग्य सद्भावसे उसका आदर नहीं किया ? अधिक विनय चाहने-वाले या शुकनासने कुछ ऐसी बात तो नहीं कही जिसे सुन कर उसे

वेश्याओंके हाथोंमें मणि-जटित चामर, पखे, रत्न पाटुका आदि सामग्री थी, मदकी परिमलसे दिशाओंको महकाता गंधमादन नामका राज-दस्ती, उसके एक ओर, चन्दोवेके नीचे खड़ा था, दूसरी तरफ भी इन्द्रा-युधके लिए स्थान बना था, बाहरका आंगन सवारीकी दृष्टिनियोंसे भरा था, सब दरवाजोंके पास बहुतसे छड़ीदार खड़े थे, महत्वसे, गम्भीरतासे ओर अनेक प्राणियोंके एकत्रित होनेसे वह महा-जलनिधिके समान मालूम होता था—क्योंकि प्रत्येक प्रहरमें सेवाके लिए तैयार खड़ी हुई अनेक गज-घटाओंके परिवारसे मानो तटके वनसे युक्त हो, गंधमादनसे मानो अतःप्रविष्ट महापर्वत-सहित हो, सेवकोंके सभ्रम सहित चलने फिरनेसे मानो तरंग-मय हो, पहरेवालोंकी टोलियोंके खड़े रहनेसे मानो भँवर-सहित हो, सुन्दर न्त्रियोंसे मानो लक्ष्मी-सहित हो, महा-पुरुषोंसे मानो रत्न-सहित हो, श्वेत-पद्मोंसे मानो हंसमाला-युक्त हो, फूलोंके ढेरोंसे मानो फेन-पटल-युक्त हो, ऐसा वह विष्णुके समान अन्नत-भोग-परिहर युक्त था ।

३३३—उसके भीतर प्रवेश करते ही, शरीर-संस्कार नहीं करनेके कारण मलिन वेप ओर उद्वेग-युक्त दीन मुखवाली वेश्याएँ, पहरेदार और नौकर-चाकर दृष्ट उधरसे उसको प्रणाम करने लगे, पर वह चुपचाप छड़ी-दारके समान, मदकी मुगधसे बताए गए गंधमादनकी ओर शून्य दृष्टि करके धीरे धीरे अपने रहनेके भवन की ओर चला । वहाँ कपड़े उतार कर पलंग पर लेटते ही शरीर मलनेवाले छोटे छोटे पखोंसे हवा करने लगे और धीरे धीरे यात्राकी थकावट दूर हुई । रात भर जागनेसे खिन्न होने पर भी उसे विद्रा सुख नहीं मिला । एकके बाद दूसरा दुःख पैदा करनेवाली चिन्ता-दीने फिर पड़ा कि जो मैं माता पिताकी आज्ञा विना, उन दोनोंको शोक-भाग्यमें डाल कर, और पुत्र-विरहके शोक्ते विह्वल हुए तात शुकनास और माता मत्तोरभाका इतर्मानान किए विना, इस जगहसे चला जाऊँ तो मेरा भी यह काम वैशम्पायनके समान होगा । यहाँसे पीछे लौटूँ तो मुझे सदेह होता है कि फिर जानेकी आज्ञा नहीं मिलेगी । इसलिए अब क्या करना चाहिए ? प्रपञ्च आज्ञा न मिलनेकी शंका ठीक नहीं है । प्रियमित्रने अपना और मेरा

—भोगकी श्रम व वस्तुओंसे युक्त, शरीरके वेधनसे युक्त ।

परित्याग करके भी अन्य प्रकारसे ही जानेकी आवश्यकता पेश करे, कादंबरीके पास जानेके उपायकी चिन्तामें प्राकुल हुए मेरा उपकार ही किया। इसलिए अत्र वैशम्पायनको लोटा लानेके लिए जानेभ पिता, माता, या आर्य शुक्रनास कोई मुझे नहीं रोकेगा और यहाँसे गया कि पेशम्पायनके साथ उसी तरफ हो कर मैं भागे जाऊंगा। यह निश्चय कर तत्काल हुए वैशम्पायनके वियोगके दुःखको परिणाममें सुटाकारक दागके समान प्रच्छा मान कर, क्षण भर प्राराम करके, शरीर में सुटा पाकर, तृतीय प्रद्वेषामत विगुल बजते ही स्नान-भोजन आदिके लिए उठा।

३१४—उठ कर—जहाँ कादंबरी है, वही वैशम्पायन है—इस प्रकार अपने वैशके प्रबलबनमें हृदयको हट कर, शून्य मन हो कर, फिर सब राजा लोगोंका एकत्रित करके, उसने स्नान भोजनादि किया। आहारके बाद भीतर जलकी कामाग्निको और वैशम्पायनके विरहकी शोकाग्निको बाहर भी सताप देनेमें मानो सश्रुता करनेके लिए जब सूर्य—ऊपर रह कर प्राण दीया प्राम एक साथ किरण फैला कर चिना प्रयत्नके ही अत्यन्त कष्टसापक संताप उत्पन्न करूँगा, था मानो विचार कर—आकाशके नीचम प्राण, जब फिरण-जल धूके बढ़ाने मानो गरम चाँदीका एक जलन लगी, धूमका किनाकिरा जब शरीरको भेद कर माना भीतर पुनर्न लगी, इन्हें हुए प्राणियोंके समूह समेत दुर्गाही छोड़ा जा तलम प्राप्त करके निजुद्धने लगी, दृष्टि जब बाहर देखनेमें भी समय न हुई, दिशाएँ न माना जलने लगी, दृष्टि जब बाहर देखनेमें भी समय न हुई, दिशाएँ न माना जलने लगी, भूमि जब दुःखी हो गई, रात नद श मए, पायक न मन्त्री पाऊती कुटीर भीतर पानी पानेको इन्हें शोने लग, शक्ति प्राण हुए पन्ना जब अपने अपने काजमें पुन गए, नम फैलने के लगे नीचे गए गद, नम के पत्तक टुकड़ोंसे और एकलने विचलने और न-द्वारा दिशा के धारण उचट हुए मृगाव-दक टुकड़ोंमें जैसे नीचे गये। के प्राणियोंके मुँह जब खुलने लगे, शक्तिविशेष करीब नम गले कनक का हो गए, पनानेका कृष्ण अश्विनी नाश जब ही हुए न विचल हुए के नमन शोने लगी, चँदनी ही नद अग्नि लगी, नम के पुनको नमन

होने लगी; वर्षाकालका आना सब चाहने लगे, दिनके अन्तकी इच्छा होने लगी और प्रदोष समयको देखनेके लिए हृदय जत्र उत्सुक होने लगा तत्र चन्द्रापीड उठ कर सरोवरके किनारे बने हुए एक जल-मडपमे गया। वहाँ जलकी धाराओंकी निरंतर चर्पा होनेसे सूर्यकी किरणोंका सताप दूर हो गया था। उसके आसपास, एक ही धारामें, वर्षाके वेगसे बहती नदीके समान, एक नहर थी। भीतर लटकए हुए जल-जम्बुके कोमल पत्तोंसे उसमे अध-कार हो रहा था। उसके सब खंभों पर फूलों और पत्तोंसे युक्त लताएँ लिपटी थीं। गाढे हरिचन्दनके लेपसे वह गीला हो रहा था। समस्त भूतल पर मरकतके समान श्याम कमलके पत्ते बिछे थे। सुगंधित और सरस प्रफुल्लित कमलोंके ढेर बिखरे थे। सरस मृणाल दंड इधर उधर पड़े थे। इधर उधर पानी की वूँदें बरसती शैवलकी प्रवाल-मजरियोंसे वहाँ अकाल मेघ-समयकी रचना की गई थी। तत्काल स्नान करनेके कारण गीले केश पाशवाली बहुतसी वेश्याएँ जलदेवियोंके समान खड़ी थीं। उनके हाथोंमें सुगंधित और कोमल गीले वस्त्र थे। गीले चन्दनके लेपसे वे मनोहर दीखती थीं। उन्होंने केवल हार और ककड़ोंके ही गहने धारण किए थे, कोमल शवल प्रवाल कानमें पहने थे, और मृणाल, ताड़के पखे, कर्पूर पट-वास, हरिचन्दन, चन्द्रकान्त मणि, दर्पण आदि सामान उनके हाथोंमे था। वह मडप उष्ण-कालका मानो परिभव-स्थान था, शीतकालका मानो मूल-धारण गा, मेघोना मानो रहने का स्थान था, रवि किरणोंका मानो तिरस्कार था, सरोवरका मानो हृदय था, हिमाचलका मानो सहोदर था, शीतलताका मानो स्वरूप था, रात्रियों का मानो आवास था और दिनका मानो निराकरण करनेवाला था।

३३५—वहाँ अत्यन्त रम्यताके कारण लुभित^१ हुए मकर ध्वजकी हजारों उज्ज्वलकाश्रोंसे विषम और पानी गिरनेकी टंडकके कारण सधुद्धित^२ मित्र वियोग-रूपी अनिवाले नहासमुद्रके समान गभीर दिन उसने अकेले ही बड़े बड़े कणोंसे

१—कामकी उत्कंठाओंसे दुःसह, नरु-बालन-युक्त तरंगोंसे दुस्तर।

२—उन्नेजित, जिसमें ब्रह्मानल सुलग रही है।

अग्ने भेद रूप नावसे पार किया। फिर जब सध्या हुई थी तो पुन लाल होने लगी तत्र बाहर आकर, मोटे गोबर के लेपसे हरे दीपते और मरु मरु चलती हवासे हिलते सफेद फूलोंसे शोभायमान वास-भवनके प्रांगण में लक्ष्मण, पासके राजाओंके साथ, वैशम्पायनकी बातचीत करनेके बाद—दूसरे ही पहरमें चलना है, 'इसलिए सेना तैयार करो—यों सेनापति तो आज्ञा देकर, तारोंके उदय होते ही सब राजा लोगोंको निश करके वस-भवनमें गया। फिर बहुत दिनसे उजयिनीको न देखनेसे उत्सुक हुए सब मंत्रिक कूचका विगुल राजनेके बिना भी चलनेको तैयार हो गए। प्राण भी निद्राका विनोद न मिलनेसे तीसरे पहरके आरम्भमें ही घोड़ी तथा शिगिर्षाके वाहनवाले बहुतसे राजा लोगोंके साथ, जहाँ सेनापति भीड़ कम भी ऐसे, रास्तेसे चला। फिर मार्गके ही साथ जा रात्रि चौथी हुई, सब वनपुट मानो रसातलमेंमें तेर कर बाहर निकलने लगीं, दृष्टि मानो आकाश पाने लगी, जीव लोक मानो अन्य प्रकारसे तैयार होने लगा, ऊँचे नीचे प्रदेश दूरे दूरे दीपने लगे, गहन वन मानो तिरला होने लगे, तदनन्ता प्राणी नानाधिया मानो निकुड़ने लगीं; आकाशमें चहती हुई दिव्य-गीत, लाजाके रससे लाल हुए, तरण के समान तथा नीदरसे बिचाई होनेके कारण पूर्ण विशाल्य लताके फूटते हुए नये पल्लवके समान, कमलिनिकीको गम देनेवाला सूर्याम्र तत्र स्थितने लगा और प्रभात समय राट होने लगा तत्र तनिकीके साथ ही यह उजयिनी पट्टव गया।

३३७—यह सुन कर उसने विचारा कि बाहरके लोगोकी ऐसी दशा है फिर जिसने उसे गोदमें खिलाया, उसका सर्वजन किया या उसकी बाल्यावस्था की सुन्दर बातें सुनीं, उसका तो कहना ही क्या है ? इस कारण वैशम्पायन के बिना तात शुक्रनास या माता मनोरमासे मिलना मेरे लिए अत्यन्त काट-दायक है । यों विचार करते करते आँसुओंसे भरी दृष्टि नाककी ओर रख कर, सप बृतान्त देखे बिना ही उसने उज्जयिनीमें प्रवेश किया । उतर कर राज-कुलके द्वारमें घुसते ही उसने सुना कि देवी विलासवतीके साथ राजा आर्ष शुक्रनासके महलको गए हैं । यह सुन पीछे मुड कर वह भी वहाँ गया और जाते जाते पास पहुँच जाने पर उसने सुना—हा वत्स वैशम्पायन, अभी तो तू मेरी गोदमें खिलाने योग्य बालक ही है, कैसे तू अकेला जाखों मपाँसे भयकर, निर्जन तथा शून्य घनमें पड़ा है ? वहाँ सब क्रूर प्राणियोंको मार कर किसने तेरे शरीर की रक्षा की होगी ? किसने शीत-चात आदिके सफाई-से बचा कर तेरे शरीरकी सँभाल की होगी ? किसने तेरे लिए निद्रामें सुख देनेवाला बिछौना बिछाया होगा ? कौन तुझे भूखा, प्यासा या सोनेका इच्छुक देव दुःखित हुआ होगा ? वेदा, मेरा उत्सव छोड़ कर तुझे समान सुख दुःख भोगनेवाली बहू भी अभी नहीं मिली है । तेरे आते ही पिताकी आज्ञा लेकर बत्सका मुख देखनेका जो मैंने विचार किया था, वह मुझ मद पुरयवालीका पृग न हुआ, बल्कि तेरे मुखका दर्शन भी दुर्लभ हो गया । वत्स, जहाँ तुझे रहना अच्छा लगे वहाँ तुझे भी अपने पितासे कह कर ले चल । तुझे देखे बिना म न जियूँगी । तात, तूने कभी बालपनमें भी मेरा अपमान नहीं किया । अब एक साथ ही क्यों तू ऐसा निपटुर हो गया ? जन्मसे आज तक जिसका मुख कभी क्रोधित नहीं देखा वह तू कैसे मुझ पर अकस्मात् कुपित हो गया कि तुझे यों छोड़ कर चला गया । चला गया है तो भी आज्ञा । मैं अपनी नासने तुझसे प्रार्थना करती हूँ । और मेरा कौन है ? देशान्तरके परचमके कारण तेरा हमने नम स्नेह जाता रहा । क्षणभर भी जिसे देखे बिना तू नहीं रह सकता था उस चन्द्रापीड पर क्यों ऐसा निःस्नेह हो गया ? एव, भइ इने अच्छा नहीं किया । सुखी रूपने के योग्य सब गुरुजनोंको तूने दुःखने जा ? न गही जानती यों करने से तुझे क्या मिलेगा ? ऐसे ऐसे

अपने धैर्य-रूप नावसे पार किया। फिर तब सध्या हुई और वृष लाल लाल होने लगी तब बाहर आकर, मोटे गोर के लेपसे हरे दीखते और मद मद चलती हवासे हिलते सफेद फूलोंसे शोभायमान वास-भवनके आँगन-में क्षणभर, पासके राजाओंके साथ, वैशम्पायनकी बातचीत करनेके बाद—दूसरे ही पहरमें चलना है, 'इसलिए सेना तैयार करो—यों सेनापतिको आज्ञा देकर, तारोंके उदय होते ही सब राजा लोगोंको विदा करके वह वास-भवनमें गया। फिर बहुत दिनसे उजयिनीमें न देखनेसे उत्सुक हुए सब सैनिक कूचका विगुल बजनेके बिना भी चलनेको तैयार हो गए। आप भी निद्राका विनोद न मिलनेसे तीसरे पहरके आरम्भमें ही घोंड़ों तथा हथिनियोंके वाहनवाले बहुतसे राजा लोगोंके साथ, जहाँ सेनाकी भीड़ कम थी ऐसे, रास्तेसे चला। फिर मार्गके ही साथ जब रात्रि क्षीण हुई, सब वस्तुएँ मानो रसातलमेंसे तैर कर बाहर निकलने लगीं; दृष्टि मानो विक्रास पाने लगी; जीव-लोक मानो अन्य प्रकारसे तैयार होने लगा, ऊँचे नीचे प्रदेश जुदे जुदे दीखने लगे; गहन वन मानो विरल होने लगे; तद-ज्ञताओं की भाङ्गियाँ मानो सिकुड़ने लगीं, आकाशमें चडती हुई दिवस-श्रीके, लान्हाके रससे लाल हुए, चरण के समान तथा नीहारसे सिंचाई होनेके कारण पूर्व दिशा-रूप लताके फूटते हुए नये पल्लवके समान, कमलिनीको राग देनेवाला सूर्य-विम्ब जब दीखने लगा और प्रभात समय स्पष्ट होने लगा तब सैनिकोंके साथ ही वह उजयिनी पहुँच गया।

३२६—वहाँ दूरसे ही अजली बॉबे हुए, इकट्ठे होते और इकट्ठे हुए, झुंड बॉध कर खड़े और बैठे, मुड़ते और कितने ही शून्य पद धरते, पीछे फिरते और आते, ऊँचे मुख और अधो मुपवाले, अभ्रु मय दृष्टिवाले, विवर्ण और दान मुखवाले, महा-कष्ट शब्द बोलते, और अधिक दुःखके कारण मान हुए, नगरीमेंसे आए हुए, मुनियोंको भी, मुमुक्षुओंको भी, विरागियोंको भी, निस्पृहियोंको भी, उदासीनोंको भी, और दुर्जनोंको भी, स्नेहसे परवश हो कर, पिता हों, मित्र हों, और प्यारे बन्धु हों इस प्रकार दुःखसे वैशम्पायन-का ही वृत्तान्त पूछने, कहते, विचारते, और चिन्तन करते उसने चारों ओर देखा।

३३७—वह सुन कर उमने विचारा कि बाहरके लोगोकी ऐसी दशा है फिर जितने उसे गोदमें खिलाया, उसका सर्वर्धन किया या उसकी बाल्यावस्था की सुन्दर बातें सुनीं, उसका तो कड़ना ही क्या है ? इस कारण वैशम्पायन के बिना तात शुक्रनाम या माता मनोरमासे मिलना मेरे लिए अत्यन्त कष्टदायक है । यों विचार करते करते आँसुओंसे भरी दृष्टि नाककी ओर रख कर, मग्न वृत्तान्त देखे बिना ही उसने उजयिनीमें प्रवेश किया । उतर कर राजकुलके द्वारमें घुसते ही उसने सुना कि देवी विलासवतीके साथ राजा आर्य शुक्रनामके महलको गए हैं । यह सुन पीछे मुड़ कर वह भी वहीं गया और जाते जाते पास पहुँच जाने पर उसने सुना—हा वत्स वैशम्पायन, अभी तो तू मेरी गोदमें खिलाने योग्य बालक ही है, कैसे तू अकेला लाखों मर्षोंसे भयकर, निर्जन तथा शून्य वनमें पड़ा है ? वहाँ सब क्रूर प्राणियोंको मार कर किसने तेरे शरीर की रक्षा की होगी ? किसने शीत-वात आदिके सङ्घटसे बचा कर तेरे शरीरकी सँभाल की होगी ? किसने तेरे लिए निद्रामें सुख देनेवाला बिछौना बिछाया होगा ? कौन तुझे भूखा, प्यासा या सोनेका इच्छुक देग दुःखित हुआ होगा ? वेद, मेरा उत्सव छोड़ कर तुझे समान सुख दुःख भोगनेवाली बहू भी अभी नहीं मिली है । तेरे आते ही पिताकी आज्ञा लेकर तूका मुख देखनेका जो मैंने विचार किया था, वह मुझ मद पुरयवालीका पृग न हुआ, बल्कि तेरे मुखका दर्शन भी दुर्लभ हो गया । वत्स, जहाँ तुझे रक्षना प्रच्छा लगे वहीं तुझे भी अपने पितासे कह कर ले चल । तुझे देखे बिना म न जायूँगी । तात, तूने कभी बालपनमें भी मेरा अपमान नहीं किया । अब एक साथ ही क्या तू ऐसा निन्दुर हो गया ? जन्मसे आज तक जितना तुम कभी क्रोधित नहीं देखा वह तू कैसे मुझ पर अकस्मात् कुपित हो गया कि तुझे या छोड़ कर चला गया । चला गया है तो भी आजा । मैं निरीत करते तुझसे प्रार्थना करती हूँ । और मेरा कौन है ? देशान्तरके परचयके कारण तेरा हमसे सब स्नेह जाता रहा । क्षणभर भी जिसे देखे बिना तू नहीं रह सकता या उस चन्द्रापीड़ पर क्यों ऐसा निःस्नेह हो गया ? तूने तूने प्रच्छा नहीं किया । तुझी स्वने के योग्य सब गुरुजनोंमें तूने दुःखों का ? न नश जानती तों करने से तुझे क्या मिलेगा ? ऐसे ऐसे

वचनसे, तत्काल हुए पुत्र-विरहके शोकसे विह्वल होकर भवनके भीतर बैठे बैठे, स्वयं देवी विलामवतीके द्वारा आश्वासन की गई, विलाप करती मनोरमाको उसने सुना ।

३३६—ऐसे उमके अत्यंत करुण विलाप-रूपी विषसे मानो विह्वल हो गया हो, निद्रा आनेसे मानो चक्कर खा गया हो इस प्रकार चन्द्रापीड निश्चैन हो गया । जैसे तैसे स्वाभाविक बलके सहारे अपनेको संभाल कर, भीतर जाकर, पिताको भी मुँह दिग्वानेमें शर्मा कर, सब अंगोंके स्तब्ध हो जानेसे मदगचलके समान शोभायमान शुकनासके साथ मथनके बाद निश्चल हुए महा समुद्रके समान, पिताको नीचे मुग्धसे ही प्रणाम कर दूर बैठ गया । बैठने पर क्षण भर उसे देख गला भर आनेसे गद्गद् हुए स्वरसे, बरसनेके लिए तैयार हुए मेघके समान राजाने उससे कहा—वत्स चन्द्रापीड, मे जानता हूँ कि भाई पर तेरी अपने जीवनसे भी अधिक प्रीति है परन्तु जिनसे केवल सुखकी आशा हो ऐसे बल्लभ जनोंकी ओरसे जो असभव पीडा पहुँचे तो क्या नहीं होता ? इसलिए तेरे भाई और मित्रके जन्म, स्नेह, वय, शील, ज्ञान, गुरुजनोंकी आज्ञा, विनय, सबके प्रतिकूल इस वृत्तान्त को सुन कर मेरे हृदयमें सदेह होता है कि इसमें तेरा कुछ दोष है ।

३३६—यों कहते हुए राजाके वचनको काट कर, शोक और क्रोधसे एक साथ ही जिसके मुँह पर अवकार छा गया था ऐसा शुकनास, बिजलीके कारण जा देखा न जा सके ऐसे वर्णाश्रुतके आरम्भके समान, काँपते अधर सहित माना जा करके बोला—

३४०—महाराज, यदि चन्द्रमामे गरमी हो, अग्निमें ठंडक हो, सूर्यमें अधेरा हो, रात्रिमें दिन हो, महा-समुद्रमें शोष हो, शेषनागमें पृथ्वीके धारण करनेकी अशक्ति हो, सायुजनोंमें दूसरों के लिए अनुद्यम हो या सज्जनके मुखसे अभिय वचन निकलें तो युवराजमें भी दोषकी संभावना हो । इसलिए क्यों इस प्रकार बिना विचारे उस हिताहितसे अनभिज्ञ, मूढ़ प्रकृति वाले, दुरात्मा, राजा का अहित करनेवाले, माता पिताके घाती, भिन-द्रोही, कृतघ्न, कर्म-चाण्डाल, महापातकीके कारण आप सतयुगमें अवतार लेनेके योग्य, गुणवान्, अत्यंत उदार चरितवाले चन्द्रापीडके विषयमें ऐसी शका

करते हो ? गुणवान्में साधारण जन भी दोषकी सभावना करें तो इससे बढ कर अन्य कुछ अधिक कष्टदायक दुःखका कारण नहीं होता । फिर गुरुजन ऐसी सभावना करे तब तो कहना ही क्या है ? जो गुणी हो उसे तो गुणकी प्रशंसासे ही सतुष्ट करना चाहिए । वह अपनी गुण-युक्त आत्मा को आपके श्रलावा अन्य किसको दिखावे ? फिर जन्मसे ही जो महाराजकी और देवी विलासवतीकी गोदमें खिलाए जानेसे भी वशमें न रह सका, उस पवनके समान चंचल स्वभाववालेके लिए चन्द्रापीड भी क्या कर सकता है ? ऐसे— शरीरमेंसे उत्पन्न हुए महा कृमि, सर्व दोषोंसे^१ भरी हुई महा व्याधि, भीतर विपसे^२ युक्त महा सर्प, विनाश करनेवाले महा उत्पात, भुजंग^३-वृत्तिवाले महावातिक^४, वक्रचारी^५ महाग्रह^६, तमोमय^७ प्रदोष, मलिनात्मक कुलागार, निम्नेह^८ खल^९, निर्लज्ज क्षणिक, सञ्चारहित^{१०} पशु और काष्ठ^{११}-रहित अग्नि, गुणरहित^{१२} जालवाले^{१३}, तीर्थ^{१४}-रहित जलाशय^{१५}, गौरव-रहित^{१६}

- १—दुराइयाँ, षाठ, पित्त, कफ ।
- २—कुटिलता, जहर ।
- ३—कामुक-वृत्तिवाले, वक्रगामी ।
- ४—ज्ञान भ्रान्तिसे उन्मत्त, तेज श्रॉधी ।
- ५—कुटिल, अपनी कक्षामें अमण करनेवाले ।
- ६—दुराग्रही; खेचर ।
- ७—तमोगुण मय, अधकार-मय ।
- ८—प्रीति रहित, तैज रहित ।
- ९—पिशुन, धान्य ।
- १०—चेतना-हीन; ज्ञान विकल ।
- ११—ईधन, सीमा ।
- १२—दौदार्य आदि गुणोंसे रहित, बिना डोरीके ।
- १३—कुटिल उपाय करनेमें चतुर, पाशवाले ।
- १४—शास्त्र, ध्वतरण-मार्ग ।
- १५—मद-बुद्धि, सरोवर ।
- १६—महत्त्व-हीन, गुरुता रहित ।

खर^१ प्रकृतिवाले, महा विनायकसे^२ अधिष्ठित अश्वि मूर्ति—अपने आप ही जन्मने हैं। वे सकलक^३ खड्गकी तरह स्नेहसे^४ ही कठिन होते हैं, स्वभावसे मलिन गज गटस्थलकी तरह दानसे^५ ही अधिक मलिन होते हैं, निर्वाण^६ मणि-प्रदीपके समान प्रसादसे^७ प्रज्वलित होते हैं, अगलग्न^८ भुजाके समान दक्षिण-परिग्रहसे ही इतरवाम होते हैं, गुण^९-मुक्त चाणों के समान सपनाश्रय फलहीसे दूर जाते हैं, सराग^{१०} पल्लवके समान दिन^{११} चटने पर ही

१—कठिन स्वभाववाले, गलेक समान स्वभाववाले ।

२—यद्यपि उनकी गोदी में गणेश है तो भी उनका शरीर अश्वि है अर्थात् महादेव का नहीं है, उनका शरीर अकल्याण है और बड़े बड़े समझदार उनके सलाहकार नहीं हैं अर्थात् वे स्वच्छन्द वृत्तिवाले हैं । (पिरोवाभास)

३—जनापचाट, मल ।

४—प्रेम, तैल ।

५—त्याग; मद ।

६—अपने मार्ग से च्युत, बिना बत्ती के ।

७—जैसे बिना बत्तीके मणि प्रदीप अपने तेजसे चमकते हैं उसी तरह वे अपने मार्गसे अष्ट होकर अनुग्रह ही कोप करते हैं ।

८—अगलग्न = शरीर से संपर्क होने पर, शरीर में लगी हुई । दक्षिण परिग्रह = विनय-पूर्वक आचरण, दक्षिण कहलाया जाना । इतर =

३, अदक्षिण । वाम = कुटिल, बायाँ । जैसे शरीर में लगी हुई एक भुजा दक्षिण होने से दूसरी वाम कहाती है उसी तरह ये शरीर से संपर्क होने विनय पूर्वक आचरण से भी शत्रु और कुटिल हो जाते हैं ।

९—गुण मुक्त = गुणों से हीन, धनुष की डोरी से छोड़े गए । सपनाश्रय = स्वजनो का आश्रय, पंख युक्त । फल = मनोरथ, साध्य, बोहे की नोक । जैसे बोहे की नोक से युक्त पुरुष वाले बाण धनुष की डोरी से छोड़े जाने पर दूर चले जाते हैं उसी तरह ये जब स्वजनो की सहायतासे मनोरथ सिद्ध करलेते हैं तब गर्व के मारे फूले नहीं समाते ।

१०—अनुराग-युक्त, लाल रगके ।

११—दिन बीतने पर; दिन चढ़ने पर ।

अपस्तु^१ होते हैं, भूतिसे^२ परामृष्ट दर्पणके समान अभिमुख रह कर सब उलटा ग्रहण करते हैं, मोतरसे अस्वच्छ जलाशयकी तरह गाढ अवगाहनसे^३ क्लुषित^४ होते हैं, स्नेहीके साथ भी वे रूढ़ होते हैं, सीधोके साथ भी वक्र होते हैं, साधुओंके साथ भी असाधु होते हैं, गुणवान्के साथ भी दुष्ट होते हैं, स्वामीके साथ भी सेवक भाव रहित होते हैं, स्नेहालुओंके साथ भी क्रुद्ध होते हैं, तृष्णा-रहित जनने भी कुंछ भ्रपटनेकी इच्छा रखते हैं, मित्रोंके भी द्रोही होते हैं, विद्वन्त जनोका भी घात करते हैं, भयभीत पर प्रहार करते हैं, प्रियजनोंसे भी द्वेष रखते हैं विनीतके साथ भी उद्धत होते हैं, दयालुके साथ भी निर्दय होते हैं, स्त्रियोंके साथ भी शूर होते हैं, सेवकके साथ भी क्रूर होते हैं, और दीनके साथ भी दान्यव होते हैं । फिर इन विपरीत जनोको गुण ही न्योटा, नीच ही ऊँचा, अगन्ध ही गन्ध, कुट्टि ही सददर्शन, अकार्य ही कार्य, अन्धाय ही न्याय, अस्थिति ही स्थिति, अनाचार ही आचार, अयुक्त ही युक्त, अविद्या ही विद्या, अविनय ही विनय, दुष्ट स्वभाव ही सुशीलता, अधर्म ही धर्म और असत्य ही सत्य होता है ।

३०१—ऐसे लुद्रजनोकी बुद्धि दूसरोको धोखा देनेके लिए होती है, ज्ञानके लिए नहीं, उनका शास्त्र ज्ञान माया-जालके लिए है, शान्तिके लिए नहीं; पराक्रम प्राणियोंके घातके लिए है, उपकारके लिए नहीं, उस्ताह धन-प्राप्तिके लिए है, यश के लिए नहीं, स्थिरता व्यसनके साथके लिए है, बहुत काल तक भिन्नताके लिए नहीं, धन-परित्याग कामके लिए है, धर्मके लिए नहीं, अधिक काम वह, सत्र वस्तुएँ उनका दोषके लिए होती हैं, गुणके लिए नहीं । इसलिए यह भी ऐसा कोई प्रपुण्यशाली पेदा हुआ है जिसे ऐसा करतेम यह विचार रहा हुआ कि न च द्रापीडका मित्र हूँ, फिर उसका द्रोही क्या होता हूँ ? या तबसे गट होनेवालेमो दड देनेवाले महाराज तारापीड ऐसा करनेसे हृदयमें दुःख होकर न जाने ताराज होगे—यह शका भी उसने नहीं की ? अकेला

१—अनुराग रहित हो जाते हैं, सुरम्ना जाते हैं ।

२—ऐश्वर्यसे युक्त, रागसे साफ किए गए ।

३—अथ धन परित्यग, अत्यन्त आलोचन ।

४—विद्वन्नी काजिना प्रसूत करते हैं, गदले हो जाते हैं ।

मैं ही माताके जीवनका सहारा हूँ; मेरे बिना उसका क्या हाल होगा ?—यह बात उस नृशसके हृदयमें नहीं आई; अथवा पिंड देनेके लिए पिताने मुझे वंश-वृद्धिके निमित्त उत्पन्न किया और उसकी आज्ञाके बिना क्यों म सका परित्याग करता हूँ ? यह भी उस मूर्खकी बुद्धिको नहीं सूझा । इस प्रकार बुरे रास्ते पर जाते हुए, नष्टात्मा, कुटुम्बवाले उस विमूढने दुर्दर्श अनिष्ट तो देखा ही नहीं । देखा हुआ भी जिसे न दीखा ऐसे अज्ञान रूयी निभिरसे अंधेका क्या करना ? फिर उस पशु-रूपको बड़े यत्नसे देवने तोतेकी तरह पढाया और पाला पोसा है । अथवा, पत्नी भी मन बहलाकर अपने सिखाने का श्रम सफल कर देते हैं, परवरिश करनेसे पोषक पर स्नेह भी रखते हैं, कृतज्ञ भी होते हैं; जाने पहचानेके पीछे भी जाते हैं, उनको माता पिता पर स्वाभाविक स्नेह भी होता है, पर उस, दोनों लोकसे भ्रष्ट हुए, पापी, दुर्जानको तो कुछ भी नहीं है । उसका तो यह सब व्यर्थ है । और जिस दुर्गमाने जन्म लेकर हम सबको केवल सुख नहीं दिया—इतना ही नहीं बल्कि इस तरहके शोक-सागरमें डाला, वह अवश्य ही पशु-पक्षियोंकी किसी योनिमें पड़ेगा । जिसका चित्त स्वस्थ हो वह अपने और पगये हितका खयाल रखता है । परन्तु उसने तो हमें इस प्रकार दुःख देकर न अपना हित किया, न पराया । मुझे नहीं सूझता कि इस आत्म-द्रोहीने यह क्या किया ? सर्वथा, यह पापी, प्रह-गृहीत, हमें दुःख देनेको ही पैदा हुआ । इतना रुढ़ कर, हेमन्त-कालकी कमलिनीके समान, आँसुओंसे भरी दृष्टि तथा अपने-सहित, भीतरसे बाहर नहीं निकलते कोपके प्रवाहसे माना फटा हो इस प्रकार, सँस छोड़ता छोड़ता वह शान्त हुआ ।

३४२—उसे ऐसी श्रवस्थामें देख तारापीड़ने जनाव दिया—आपको हम जैसा का समझाना ऐसा है जैसे प्रदीपसे अग्नि का प्रकाश करना, दिनके चाँदनेसे सूर्यको चमकाना, ओस की बूँदोंसे चन्द्रमाका आल्हादन करना, मेघों जलकी बूँदोंसे समुद्र भरना और पत्थरकी पवनसे वायुका बडाना । तथापि—बुद्धिमान्, बहुश्रुत, विवेकी, धीर, बलवान्—सबका मन, एक साथ दुःख या पड़नेसे, वर्षाके जलसे सरोवरके समान, विशुद्ध होने पर भी अवश्य कलुषण हो जाता है । मन क्लुषित होनेसे—यह क्या है ?—यह देवने भालनेही मन

शक्ति जाती रहती है, चित्त विचार नहीं करता, बुद्धिको बोध नहीं होता और विवेक विवेचन नहीं करता। इस कारण मुझे कहना पड़ा है, नहीं तो लोक-रीति तो हमारी अपेक्षा आप ही अच्छी तरह जानते हैं।

३४३—क्या इस ससारमें कोई ऐसा है जिसका यौवन निर्विकार बीत गया हो ? यौवनके आनेके समय बाल-भावके साथ ही गुरुजन-स्नेह जाता रहता है, तारुण्यके साथ ही नई प्रीति बढ़ती है, वक्ष-स्थलके साथ ही बाछा विस्तार पाती है, बलके साथ ही मद बढ़ता है, दोनों बाहुओंके साथ ही बुद्धि स्थूल होती जाती है, मध्यके साथ ही शास्त्र कृशता पाता जाता है, उरु-युगलके साथ ही हृदय अविनयसे भरता जाता है, मूँछोंके साथ ही मलिन मोह उत्पन्न होता है, आकारके साथ ही हृदयमेंसे विकार प्रकट होते हैं, क्योंकि विकारसे नेत्र, धवल होने पर भी, सराग^१ हो जाते हैं, तथा लम्बे होने पर भी दूर तक नहीं देख सकते। विकारहीन कानोंमें भी गुरुजनोक्ता उपदेश नहीं जा सकता। स्त्रीका अनुरागी हृदय होने पर भी उसमें विद्या रूप स्त्रीको जगह नहीं मिलती। अस्थिर प्रकृतिकी तरलता-में स्थिरता रहती है और छोड़नेके लायक व्यसनोंमें आसक्ति रहती है।

३४४—सब विकारोंका^२ कारण प्रायः सरसता^३ होती है। वह सत्रको जल-^४ प्राय करती वर्षातिवृद्धिसे^५ उत्पन्न होती है। फिर दिनसे^६ दोषागम, दोषागम^७से दृष्टि-निरोध, दृष्टि-निरोधसे अस्तु दर्शन, अस्तु दर्शनसे अविवेक और अविवेकसे बुरे मार्ग में प्रवृत्ति, बुरे मार्गमें प्रवृत्ति होनेसे भ्रान्त हुआ चित्त

१—रगीन, अनुराग-सहित।

२—मनोवृत्ति, रोग।

३—रसिकता, आर्द्रता।

४—विवेक-हीन, जल प्रचुर।

५—अधिक अवस्था, अधिक वर्षा।

६—जैसे दिनके पीछे रात्रि आती है उसी प्रकार प्रति दिन दोष उत्पन्न होते हैं।

७—जैसे रात्रि में कुछ देख नहीं पड़ता उसी तरह दोषोंके कारण भ्रान्त बुरा दीखना भ्रष्ट हो जाता है।

भ्रमण करता करता अवश्य ही अपने मार्गसे भ्रष्ट हो जाता है । चित्तके भ्रष्ट होनेसे उसके साथ लगी हुई लजा भी जाती रहती है और लजाके परदेसे रजित हुए शून्य हृदयमें प्रवेश कर वहाँ पर जमाते, दुर्निवार, सब अविनयोंके हेतु कामदेवको कौन रोक सकता है ? और फिर कामकी वृद्धिके साथ ही सत्यकों नीचे गिराने वाले हजारों छिद्र^१ क्यों न हों ? और सत्यके नीचे गिरने पर शील किसके सहारे स्थिर रहे ? विनयका क्या आघार रहे ? निराघार वेधे फिर क्या करे ? वृद्धि कहाँ स्थिर रहे ? और धैर्यावलम्बनका समाधान कैसे हो ? किसने बलसे रोक कर मनको निश्चल किया ? कुमार्गमें जाती हुई इन्द्रियोंको किमने नियममें रक्खा ? जगत्में निन्दनीय दुश्चरित्रोंको किसने रोक़ा ? तमनी^२ वृद्धि करनेवाले, दृष्टिका^३ नाश करने वाले, दोषाभिप्रायो^४ किमने प्रकाश रूपसे दूर किया ? बहुदर्शित्व न हो तो दीखेगा भी क्या ? और युवावस्थामे बहुदर्शित्व कैसे संभव हो कि जिससे अन्वय-व्यतिरेकसे^५—यह मलिनता है, यह नहीं है—इस बातका निश्चय कर उसका त्याग किया जाय ? फिर वृद्धावस्थामे भी कुछ थोड़े ही पुण्यवानोंके, केशोंके साथ, चरित धवल होते हैं, इसलिए मोह तथा विषय रूप महा-स्पर्वाला, मद विकार-रूप गध-गजवाला, दुश्चरित रूप अद्वितीय राज्यवाला, कामाभिलाषकी निद्राके विलासका महल—अभिनय अनु रागके अक्षुरोंके आविर्भावके विभ्रमके अन्तमें होनेवाले असाधारण दुर्गचरणा का चक्रवर्ती—तादृश्य आने पर अत्यन्त विषम विषय मागमें पड़े मनुष्य अपने पथसे भ्रष्ट हो ही जाते हैं । फिर अपने लाउ करने और पालनेके योग्य लक पर आपने क्यों इतना अधिक शोध किया जिससे पुत्र-स्नेहके अनु ऐसी अक्रोश-युक्त बात कही ? स्वप्नावस्थामे भी गुब-जनके मुखमेंसे जा सी बुरी बात निकलती है वह बालकोंमें फले बिना कदापि नहीं रहती,

८—विवर, दोष ।

९—विवेक विकलता, अथकार ।

१०—विवेक शक्ति, नेत्र ।

११—व्यसनोमें आसक्ति, रात्रिका सम्बन्ध ।

१२—एक वस्तु की सत्ता से दूसरे की सत्ता सिद्ध करना—अन्वय है । एक के अभाव से दूसरे का अभाव दिखाना—व्यतिरेक है ।

कि गुरु उन बालकोंके देवता हैं । जैसे गुरुजनोंका आशीर्वाद वरदान-
 होता है वैसे ही आक्रोश शाप-रूप होता है । इसलिए कोपके आवेशमें
 फिर वैशम्पायनके विषयमें जब आपने ऐसी अत्यन्त कठोर बात कही
 व मेरे मनमें बड़ा भारी दुःख हुआ । अपने आप लगाए हुए वृत्त पर भी
 नेह पैदा हो जाता है, तब फिर अगमसे उत्पन्न हुए बालककी तो बात ही
 क्या है ? इसलिए वैशम्पायन पर क्रोध मत करो । उसने कुछ भी विपरीत
 आचरण नहीं किया है । निर्र्णय छोड़ कर वहाँ रह गया है सो उसका
 कारण जाने बिना उसे क्यों इस तरह दोष दिया जाय ? कदाचित् यह श्रविणयसे
 उत्पन्न हुआ दोष गुण हो । इसलिए उसे बुलाना और जानना चाहिए
 कि यह—उसकी अवस्थाके अनुचित—वैराग्य क्यों उत्पन्न हुआ ? फिर जो
 ठीक होगा किया जायगा ।

३१५—तारापीड़के यों कहने पर शुक्रनासने फिर कहा—महाराज, अत्यन्त
 उदारता और क्लमलताके कारण आप ऐसा कहते हैं । युवराजको छोड़
 कर स्वच्छासे एक क्षण भी अन्यत्र रहनेसे बढकर अन्य क्या विपरीत आचरण
 होगा ? शुक्रनासके यों कहने पर पिताकी इस दोष-मभावनासे हृदयमें
 मानो चायुक्त लगी हो इस प्रकार अश्रु-पूर्ण दृष्टि सदित बैठे बैठे ही पास सरक
 कर चन्द्रपीड धीरे धीरे शुक्रनासमें कहने लगा—आर्य, वैशम्पायनके साधियों-
 के कहनेने तो मैं समझता हूँ कि मेरे दोषसे वैशम्पायन न आया हो सो
 बात नहीं है । तथापि पिताने जो समझा वही और किमने न समझा होगा ?
 लोग, आप उर्ण विशेष करके गुरु लोग, जो समझें उसे ठीक न होने पर भी
 काम ही जानना चाहिए । ज्ञानमत या तो गुण पर या दोष पर अवलम्बित
 बना है । उसीसे इस ससारमें बड़ाई या बुराई पैदा होती है । परलोकमें
 पण्डितके स्वार्थ चरित्रकी यहाँ कोई परवा नहीं करता । इसलिए इस दोष-
 सत्त्वचके प्रायश्चित्तके लिए आप पितासे मुझे वैशम्पायनके लिवा लानेके
 लिए जानकी आना दिला दीजिये । मेरे दोषकी शुद्धि अन्यथा नहीं हागे ।
 वरुण यह है कि वैशम्पायन नहीं आवेगा तो महाराजकी यह सभायना नहीं
 सकेगी । तब मेरे गए बिना वैशम्पायन आवेगा नहीं । यदि अन्य कोई उसे ला
 पाएगा तो—बिना भी जिनके वचनोंका उल्लंघन नहीं करते ऐसे—द्वारों

राजा उसको ले ही आते । इसलिए आप मुझे जानेकी अनुमति दिलानेकी कृपा कीजिए । घोड़े लेकर अपनी देखी हुई भूमिमें जानेसे मुझे जरा भी कष्ट नहीं होगा । इसलिए वैशम्पायनको लेकर मुझे आया ही समझिए । बाहरी खेदकी अपेक्षा उसके वियोगका आन्तरिक खेद ही मुझे अधिक अमह्य है । सेना लेकर मेरे पीछे ही वह आवेगा—यों समझ कर मैं उसके बिना चला आया । नहीं तो जन्म दिनसे आज तक वैशम्पायनके बिना मैं कब गया हूँ ? रहा हूँ ? खेला हूँ ? हँसा हूँ ? मैंने पिया है या खाया है ? मैं सोया हूँ या जगा हूँ ? कब मैंने अकेले साँस भी लिया है ? उसका हाल सुन उसी जगहसे मैं नहीं चला गया—इसका सबब यह था कि कहीं मैं भी उसके बराबर न समझा जाऊँ । इसलिए तत्काल उसके पीछे न जानेके दोषसे आप मुझे बचाइये ।

३४६—चन्द्रापीड़के यों कहने पर, भीतरकी पीड़ासे पैदा हुई रक्ततासे रक्त—लाल कमलके समान दीखते—मुख पर सपत्नपात^१ भ्रमरावलीके समान दृष्टि करके—युवराज जाने की सूचना देते हैं, महाराजकी क्या आज्ञा है ?—इस प्रकार शुकनासने धीरे धीरे राजासे पूछा । शुकनासका यह प्रश्न सुन कर तारापीड़ने कुछ विचार कर जवाब दिया—आर्य, मेरी इच्छा थी कि इन्हीं दिनों सम्पूर्ण मंडल-युक्त चन्द्रमाकी चाँदनीके समान करावलचन करती पुत्रवधुको मैं देखूँगा । इतनेमें ही यह दूसरा आशा^२ यथको रोकनेवाला, मेघ-ममयके समान, विघ्नकारी वैशम्पायनका वृत्तान्त, प्रतिकूल प्रकृतिवाले विधाताने, बीचमें डाल दिया । जैसे आयुष्मान्ने कहा वैसी ही बात है । न तो अन्य कोई बला भक्तता है और न उसके बिना यह यहीं रह सकता है । इसलिए मैं ही व्यमनार्णवको इस पातके द्वाग पार करना चाहिए । वैशम्पायनको जानेके लिए देवी पिलासवती भी इसको भेजेहीगी—यह मेरा निश्चय है । इसलिए इसे जाने दीजिए । परन्तु इसे बहुत दूर जाना होगा, इसलिए ज्योतिषियोंसे आप आदरपूर्वक इसके जानेके लिए दिन और लग्न निश्चय कर और तैयारी करावें ।

३४७—शुकनाससे इतना कहकर विनयमे नम्र हुए चन्द्रापीड़को आँसूभरी

१—चन्द्रापीड़के पत्नपात (= तरफदारी) के साथ, पत्नके पात सहित ।

२—मनोरथ, दिशा ।

श्रॉलोंमें बहुत देर तक देख, पास बुला कर, स्कंध, सिर और दोनों बाहुओं पर हाथ फेर तारापीड़ने कहा—पुत्र, तू ही भीतर जाकर मनोरमा-सहित अपनी मातासे अपने जानेका हाल कह दे । चंद्रापीड़ने यों कहकर राजा शुक्रनासके साथ अपने महल में गया । चंद्रापीड़ने कादम्बरीकी वरमालाके समान सुन्दर वर्ण^१-युक्त जानेकी आज्ञाको हृदयमें धारण कर, मनमें हर्षित होने पर भी हर्ष रहित दृष्टिसे प्रवेश कर, नमस्कार कर, माताके समीप बैठ, अपने दर्शनसे दूने होते वैशम्पायनके विरहके शोकसे विह्वल हुई मनोरमाका आश्वासन कर कहा—

३४८—माता, धीरज रखो । वैशम्पायनको बुलानेके लिए पिताने मुझे जानेकी आज्ञा दे दी है । इसलिए कुछ दिनोंमें होनेवाले वैशम्पायनके मुख-दर्शनके लिए उत्सुक हुए मुझे निःसदेह विदा करो । यह सुनकर उसने जवाब दिया—बेटा, अपने जानेके वचनसे क्यों मेरा आश्वासन करता है ? तुझमें और उसमें मेरे लिए क्या अन्तर है ? प्रथम तो वह कठिन हृदय-वाला मेरे सामने नहीं है । फिर तू चला जायगा तो तेरा दर्शन भी न होगा । उसके अदर्शनमें तू ही मेरे जीवनका आधार है । इसलिए वत्स, तू न जा । तुन दोनोंमें एकसे भी हम दोनों पुत्रवती हैं । वह निष्ठुर हृदय-वाला न आवे तो क्या ठीक ? मनोरमाकी यह बात सुन कर विलासवती वैर्य-पूर्वक बोली—प्रियसखी, तुझे और मुझे तो ऐसा ही है जैसा तूने कहा, परन्तु वैशम्पायन बिना वह किसको देखेगा ? इसलिए यह बात रहने दे । क्या इसको रोकती है ? रोकने पर भी यह नहीं रहेगा और मुझे भावूम होना है कि इसके पिताने भी यही सोचकर इसे जानेकी अनुमति दी होगी । इसलिए इसे जाने दे । हम दोनोंमा, चाहे जितने दिन तक, इन दोनोंके अदर्शनसे क्लेश भोगना ठीक है, परन्तु इसका वैशम्पायनके अदर्शनके दुःखसे दिन हुआ सुग्न प्रति दिन देखना अच्छा नहीं । इसलिए उठ, वत्स चन्द्रानसके जानेकी तैयारी करने चलें ।

३४९—यों कहती कहती विलासवतीने मनोरमाका हाथ पकड़ कर उस उठाना और पीछे आते हुए चन्द्रार्पाड़के साथ वह अपने महल में गई । चन्द्रापीड़नी माताके साथ जानेकी बातें कर अपने महलमें गया । वहीं

कपड़े उतार, जाने को उस्तुक हुए हृदयसे ज्योतिषियोंको बुला कर एकान्तम कहने लगा—आर्य शुम्नास या मेरे पिता आपसे पूछें तब आप ऐसा दिन बताना जिससे मुझे जानेमें विलंब न हो। ऐसी आज्ञा सुन कर उन्होंने निवेदन किया—देव, आज्ञा मत्र ग्रहों की जो स्थिति है उसका यदि विचार किया जाय तो हमारी रायमें हालमें आपका जाना उचित नहीं है। परन्तु जरूरी काम आ पड़ने पर राजाकी इच्छा ही काल है। इसलिए दिन देखनेका कुछ काम नहीं है। राजा कालका कारण होता है। जिस समय चित्त-वृत्ति अनुकूल हो वही समय सब कामोंमें उचित है। ऐसी ज्योतिषियोंकी वाणी सुन चन्द्रापीड़ने फिर उनसे कहा—पिताने आपसे पूछने की आज्ञा दी है इसलिए मेने आपसे कहा है, नहीं तो प्रतिज्ञा उत्पन्न होते आवश्यक कार्योंम कार्यार्था मनुष्योंको मूर्खन दिखलानेकी बात ही नैसी? इसलिए तुम ऐसे बताना जिसमें कल ही मेरा जाना हो जाय। यह सुन कर—देवकी जैसी आज्ञा—यो कह कर वे चले गए। तब आप स्नान भोदनादि करनेके लिए उठा और शरीर स्थित कर चुका सो ही ज्योतिषियोंने फिर आकर धीरेसे कहा—हमने आपकी आज्ञाका पालन किया है और आर्य शुम्नास पुत्र वियोगसे विकल हो गए हैं इस कारण वह मफल भी हो गया है। इसलिए कल रात्रिको आप यहाँसे प्रस्थान करना। यह समाचार सुन कर—अच्छा किया—यो कह कर, आनन्दित हृदयसे उनकी प्रणाम कर, कादचरी तथा बैशम्पाथनको निगाहके सामने आते हुआ ।—पत्रलेखाके प्रवेश करनेके पहले ही म पहुँच जाऊँगा—तो आगे त चित्तसे विचारता और नाग समुद्रके मारनूत इन्द्रायुगके समान ने जानेवाले घोड़ाकी आर घोड़ेकी स्वागीनी यकाउटकी परवा न मगन-वाले तथा उल्हाही अग्निनी राजपुत्राको देवता भालता, यह और कुछ काम न होनेसे एक रात्रि और एक दिन जैसे तसे बढ़ा रहा ।

३५०—फिर, मानो अनुरक्त कमलिनीके साथ समागम न होनेसे मताप पाकर, दिनके साथ, तब सूर्य अस्त हुआ, दिनपतिके पतनसे चित्तान्द्रित ममान म रागमें, पश्चिम दिशाके साथ, तब पश्चिम मगन भागने प्रवेश किया, मन्वाणिके पतंगोंके समान तारोफा तब उत्पन्न होने लगा, मिनता गया होनेसे

मूच्छ्रागमके समान अधकारसे दिशाओंके मुख जब काले पड़ने लगे, अपने-अपने घोंसलोंकी तरफ जानेमें शब्द करते पत्नी मानो गगन वियोगके दुःखसे आर्त स्वरसे प्रलाप करने लगे, प्रकाश उत्पन्न करते जन्मके समान सव्या देख कर जीव-लोकने जत्र प्रकाश रहित गर्भके समान अधकारमें फिर प्रवेश किया, मानो जन्मान्तरमें आया हो ऐसा उदयाचलवती, अपनी अतिशय कान्तिसे नक्षत्रलोकके समान दीखता चन्द्रमा, चौदनीसे पूर्व-दिग्बधूके मुखको प्रशंसित करके, जत्र नक्षत्र समागमके सुखमा चार चार अनुभव करने लगा और जत्र आधी रात हुई तत्र प्रस्थानमगलके लिए प्रणाम करनेके प्रयोजनसे चन्द्रपाद माताके पास गया । पीड़ासे भीतर मानो उबली जाती हो रूप प्रकार, अमगलकी शक्तसे, प्रयत्न करने पर भी, बहुत लंबे नेत्रोंसे भी प्रासुओंके वेगको रोकनेमें असमर्थ हुई विलासवतीने, शोक और स्नेहके आवेगके कारण गद्गद् कटसे, टूटे फूटे अक्षरों में कहा —

३५१—पुत्र, गोदीमें पले हुए अनुभव शून्य नवयुवकके पहले ही पहल जानक समय—गोदीमेंसे जब पहले ही दूर जाय तत्र—हृदयमें बड़ी भारी पीड़ाका होना ठीक है, परन्तु मुझे तो मेरे अत्र जानेसे जो पीड़ा होती है, वह पहले जानके समय भी नहीं हुई । मेरा हृदय मानो फटा जाता है, मर्मस्थान मानो चिरे जाते हैं, शरीर मानो उबला जाता है, चित्त मानो उछला पड़ता है, सधिवचन मानो टूटे जाते हैं, प्राण मानो निकले जाते हैं, बुद्धिसे कुछ समाधान नहीं होता, सब मुझे सूना लगता है, अपनी भाति हृदयको धारण करनेमें भी मैं असमर्थ हूँ, रोकने पर भी आँसू जवर-दस्ती निकले पड़ते हैं, तेरी मगल-क्रिया के लिए चार-चार स्थिर करने पर भी मेरी बुद्धि चलायमान हुई जाती है, मैं नहीं जानती मैं क्या देखती हूँ ? मैं नहीं समझती क्यों मेरे हृदयमें ऐसी पीड़ा होती है ? क्या बहुत दिनोंमें मेरी तब आता मेरा प्यारा पुत्र भट फिर वापिस जाता है इससे, या पशु-पक्षीके पिरागसे उद्विग्न हुआ तू अकेला जाता है यह देख कर, या पशु-पक्षीका वृत्तान्त सुन कर मैं त्वम दुःखित हूँ इस कारण यों होता होगा ? ऐसा पशुके कारण वैशम्पायनको लिवानके लिए जानेसे तुझे रोकनेको मेरे लक्ष्यसे शक नहीं मिलने । परन्तु हृदय नहीं चाहता कि तू जाय । इस

लिए मेरी ऐसी पीड़ाका विचार कर पहलेकी तरह अब किसी जगह तू किसी दृश्यको बहुत दिन तक देखता देखता मत रह जइयो । इसके लिए वत्स, म अजली सहित सिर झुका कर तुम्हसे विनती करती हूँ । यों कहती हुई अपनी मातासे चन्द्रापीड़ने शरीरको अत्यन्त झुका कर निवेदन किया—माता, उस समय तो मैं दिग्विजयके मतलबसे रहा था, परन्तु अब तो उस जगह पहुँचनेकी ही देर है । इसलिए इस समय—तुम्हें आनेमें बहुत दिन लगेंगे— यों समझ कर तुम्हें हृदयमें जरा भी दुःख नहीं करना चाहिए । चन्द्रापीड़की यह बात सुन कर, आँसुओंके वेगको रोक, जैसे तैसे धैर्य धर, जानेक समयकी मंगल-क्रिया कर, छूटती घारासे सींचती, मस्तकको सूँघ कर, बहुत देर तक गाढ आलिंगन कर, माताने, मानो निकले जाते प्राणों सहित, पुत्रको कष्टसे छोड़ा ।

३५२—मातासे विदा होकर वह पिताको प्रणाम करनेके लिए मडलमें गया । वहाँ—महाराज, युवराज जानेके लिए प्रणाम करते हैं—इस प्रकार द्वारपालके कहने पर प्रवेश कर, भूलल पर मस्तक रख, दूरसे ही उसने पलग पर लेटे हुए पिताके चरणोंको प्रणाम किया । इस तरह उसे प्रणाम करते देख, पूर्व-काय जरा ऊँचा उठा कर, लेटे-लेटे ही पिताने उसको बुला कर, नेत्रोंसे मानो पान करते करते, प्रेमसे गाढ आलिंगन कर, बालकके समान सहसा भर आते अविरल आँसुओंके वेगसे आकुल हुए नेत्रों सहित, अतर्गत —-भीमके ग्रावेगके कारण टूटे फूटे अक्षरोंमें कहा—वत्स, पिताने तुम्हें दोषकी

की—यों जान कर मनमें जरा भी दुःख मत पाना । तुम शिद्धित हुए ही हमने तुम्हारी खूब परीक्षा करली है, और परीक्षा करके, जो गुण गण ही प्राप्त हो ऐमा, राज्यभार तुमको सौंपा है, पुत्र-त्नेहसे नहीं । यह राज्य सचमुच पृथ्वीके मानो भार के कारण ही अत्यन्त कष्टसे वहन करनेके योग्य है । महीधरो की मानो सकीर्णतासे ही प्रति सकट है । कुटिल नीतिके प्रचारमें ही मानो कष्टसे व्यवहारके योग्य है । चारों समुद्रों तक भुजनोंकी व्यातिसे मानो बहुत बड़ा है । बड़ी सेनाको बशमें रखना पड़ता है—इसलिए ही मानो दुःसाधन है । अनन्त व्यवहारोंकी चिन्ताके जालसे ही मानो अति गहन है ।

उच्च वश^१ प्रतिष्ठित होनेके कारण ही मानो अत्यन्त दुरारोह है। हजारों शत्रुओंको जड़से उखाड़नेके कारण ही मानो यह अति दुर्घर है और समवृत्तित्ता^२-से ही अति विषम^३ है। अनेक तीर्थों^४की कल्पनासे ही उसका अवतरण हुआ है। कष्टकोंके^५ दूर करनेसे ही वह दुर्ग्रह है। सम्पूर्ण प्रजाके पालन-रूप व्यवहारसे ही दुःख पूर्वक पालनके योग्य है और सब आशाओंकी प्राप्तिसे ही दुःप्राप्य है। जो महा सच्च-रहित हो, अस्थिर प्रकृतिका हो, अदाता हो, महत्वाकान्ता रहित हो, अशुद्ध हो, शौर्यहीन हो, महा उरसाह-रहित हो, अप्रिय वक्ता हो, असत्य सध हो, बुद्धिमान् न हो, अविवेकी हो, अकृतज्ञ हो, उदार व्यवहारका न हो, जो उचित पुरस्कार न देता हो, अन्यायवर्ती हो, धर्ममें अर्त्सच रखता हो, शास्त्रोक्त व्यवहार-रहित हो, शरण न देता हो, भक्ति-हीन हो, कृपालु न हो, मित्र-वत्सल न हो, अपने वशमें न हो, जितेन्द्रिय न हो, वा असेनक हो उसके पास तो वह रहता ही नहीं। परन्तु जो समग्र गुणोंसे^६ आकर्षण कर जबरदस्ती इस चंचल-प्रकृतिका प्रतिबंध करनेको समर्थ हो, उसके पास ही ठहरता है। गुरु भी पूर्वापर विचार कर, स्वलनके डरके बिना, उसे ही राज्यभार सौंपते हैं। इसलिए इससे ही वत्स, तुम्हे जानना चाहिए कि मुझमें दोष नहीं है। फिर अन्न किस पर भार रख कर तू जरासा भी अपराध करेगा ? तुम्हे ही सब लोगोंका रजन करनेके लिए प्रयत्न करना है।

३५३—हमारा तो समय गया। हम धर्म-पथसे ढिगे बिना बहुत वर्षों तक सदाचार में स्थित रहे हैं। लोभसे प्रजाको पीड़ा नहीं दी। अहंकारसे गुरुओं को उद्विग्न नहीं किया। मदसे सत्पुरुषोंको विमुख नहीं किया। क्रोधसे प्राणियों को धास नहीं दी। हर्षसे अपनी हँसी नहीं मराई। नामसे परलोक नहीं खोया। राजधर्मका अनुरोध किया, अपनी रक्षिका नहीं। वृद्धोंकी सेवा की, व्यमनो-

१—कुब, बॉल ।

२—सबके साथ एकसा बर्ताव, एकसी भूमि ।

३—दुष्पर, उँचा नीचा (विरोध)

४—उपाय, सोपान ।

५—बदमाश, काँटे ।

६—औदार्य आदि गुण, बोरी ।

भी नहीं । सजनोंके चरित्रका अनुवर्तन किया, इन्द्रियोक्ता नहीं । वनुरको उन्नमित^१ किया, मनको नहीं । सदाचारकी रत्ताकी, शरीरकी नहीं । जनासपादका डर रखा, मरणका नहीं । सुखलोकको दुर्लभ विषयोपभोगके सत्र सुखोंका उपभोग किया । अकार्य छोड़ कर योवनेच्छानो काफी तृप्त किया और अपना कर्त्तव्य पालन करके परलोकका भी सपादन किया । मेरी समझमें तेरे जन्मसे मैं कृतार्थ हूँ इसलिए मेरा मनोरथ है कि दारपरिग्रहसे तेरे प्रतिष्ठित होने पर सब राज्य भार तुम्हें सौंप कर, जन्म कृतार्थ होनेसे निवृत्त हुए हृदयसे, पूर्व राजपिंयोंके रास्ते पर जाऊँ । पर वैशम्पायन वृत्तान्त-रूप विघ्न एक साथ मुझ पर आ पड़ा, इससे मुझे मालूम होता है कि यह सपना नहीं होगा । नहीं तो कहाँ वैशम्पायन ? और कहाँ ऐसी उसकी—त्वग्रमे भी असम्भव—चेष्टा ? इसलिए वत्स, तू जाकर भी ऐसा करियो कि मेरा मनोरथ बहुत दिनों तक हृदयके भीतर ही न फिरता रहे । इतना कह, जरा ऊँचे उठाये हुए मुझसे दूरी, लपेटे हुए हृदयके समान ताम्बूल दे, उसने चन्द्रापीड़को विदा किया ।

३३४—पिताके इस आदरसे अत्यंत उन्नत होने पर भी अत्यंत नम्र हुआ चन्द्रापीड़ पास जाकर फिर प्रणामसे उन्नत होकर बाहर आया । बाहर निकल कर शुक्रनासके महलको गया । वहाँ पुत्रकी चिन्तासे व्याप्त, इन्द्रियोंसे मानो मुक्त, निरुत्साह शरीरवाले शुक्रनासको और निरंतर अश्रुपातसे मलिन मुखावाली मनोरमाको प्रणाम कर तथा उसी प्रकार उनके द्वारा भी आशीर्वादसे सत्कार किया जाने पर, और—अग्ना दुःख-भार मानो उस पर धरते दो यों—उसे

जब तक पहुँचाने आए हुए, उन दोनोंको लौटानेके लिए बार बार मुँह फेर वह वहाँसे बाहर निकला तथा आगे चलाने पर भी पीछे सरकते, दिनदिना २८ न करते, कान ऊँचे न करते, मुँहमें अन्ध्या शब्द नहीं करते, मिना मनके जाते, गमनोत्साह न दिखाते दीन इन्द्रायुवको देख कर भी—फिर कोई जानेसे रोक न ले—इस शक्तसे, वैशम्पायनको देखनेकी जल्दी तथा कादम्बरीके समागमकी उत्सुकतासे जरा भी विलम्ब किये मिना, सवार हो, जलदी जलदी वह नगरीसे बाहर निकला ।

१—ऊँचा चढ़ाया, मनमें दर्दको स्थान नहीं दिया ।

३५५—निकल कर, सिप्राके तट पर प्रस्थानमगलके प्रयोजनसे रहनेके लिए लगाए गए तबूम प्रवेश किए बिना, बाहरसे ही—युवराज गया—यों कल कल करते, और उस समय उसके एक साथ चले जानेसे संभ्रान्त हुए परिजनों तथा राजपुत्रोंके, इधर उधरसे दौड़ कर, उसके पीछे जाने पर छ. मीन तक जाकर जहाँ घास-पानी सुलभ था ऐसी जगहमें उसने निवास किया । दृश्य तड़फनेके कारण प्रभात होनेके पहले ही उसने रातमें उठ कर। पर चलना शुरू किया और चलते चलते उसी दिनसे वह सोचने लगा कि यों ग्रचानक ही वहाँ पहुँचकर, लज्जासे भागते वैशम्पायनके पीछे जाकर, जगदम्नी कट में लगा—अब भाग कर कहाँ जायगा ?—यों कह कर मैं उमकी व्यग्रता दूर करूँगा, इस भौंति उसके समागमका सुख अनुभव करनेके पाछे, निष्कारण प्रसन्न हुई, दोष गहित, एक साथ मेरे आ जानेसे विशेष दृष्ट हुई महाश्वेतासे आगे जानेकी सिद्धिके लिए फिर मिलूँगा, महाश्वेताके आश्रम के पास सब घोड़ तथा फौज फिर ठहरा कर उसके साथ ही हेमकूट जाऊँगा । वहाँ मुझे पहचान कर सभ्रम सहित दौड़ती हुई कादम्बरीकी दामिनी इधर उधरसे प्रणाम करेंगी । तब मैं प्रवेश करूँगा और उसकी गतिर्था प्रफुल्ल नयनोंसे मेरे आनेकी खबर देकर पूर्ण-पात्र लेंगी । वह कहाँ हैं ? किन्ने कहा ? कितनी दूर हैं ? ऐसे प्रश्न स्वयं करती, उस क्षणमें उत्पन्न हुई ताप शानि तथा लज्जासे छाती पर रखवा हुआ कमलका पत्ता हटा कर उत्तरीयके पल्लेसे अपने स्तन टकती, आभरणके लिये पहने हुए मृणाल उतार कर भूपर्यासे भी अधिक अपने शरीरकी शोभाको ही सब गहनोंके स्थान पर धारण करती, ताप-शान्तिके लिए केवल हारका आभूषण पहने, गाढा हरिचन्दन लगानेसे टमी हुई लास्य शोभावाले ग्रगोको वह अपने हाथसे मर्दन करनेके प्रयाससे अधिक दर्शनीय करती, सेज पर बिछाए हुए कमल, कुमुद तथा तुपतापके पत्ते और बेसरके—अगमें चिपटे हुए—दुसड़ोंको रोमोद्गम से ही दूर करती, गाल पर तित्तर बित्तर होकर आए हुए अपने केश कलाप को नाले दर्शन देख कर हाथसे कंधे पर रखती, आनंदके कारण नेत्र-पुटमें से अपने प्रभुजलसे वह कर्माग्निके सतापको मानो जलाबली देती, खुदा करते ही चचे—शरीरम लगी हुई नभके समान—मुझ सूखे चन्दन-

रसमे ही कामाग्निके बुझने की सूचना देती और अभ्युत्थानके वहानेही फूलोंकी सेजको दूर करती, ऐसी कादम्बरीको देख, दर्शनीयके श्रवणोक्त रूपी फलसे नेत्रोंको म कृतार्थ करूँगा । फिर अत्रलि युक्त प्रणाम और कंठग्रन्थे मदलेखाका सत्कार कर, चरणोंमें पड़ी हुई पत्रलेखाका उठा कर, नेत्ररक्त का वाग-वाग गाढ आलिंगन करूँगा । फिर महाश्वेता मेरे विवाहकी मांगलिक क्रिया करेगी तथा सब सखियाँ जल्दी-जल्दी देवीके वैवाहिक स्नानकी मंगल विधि करेगी । इतनेहीमें, वर्षामे अभिषिक्त पृथ्वीके समान देव का करे ग्रहण करूँगा । फिर बहुतसे कु कुम, फूल, धूप तथा लेपकी महकसे कामोद्दीपन करते महलमें मे सेज पर बैठूँगा । तब मेरे पास बैठ, थोड़ी देर तक हँसी की बातचीत कर मदलेखा बाहर चली जायगी । फिर लजसे नीचा मुख किए, डच्छा नहीं करती कादम्बरीको दोनों हाथोंमें जबरदस्ती सेज पर लाकर, सेजसे उत्सर्गमें और उत्सर्गसे हृदयके पास ले जाऊँगा । फिर बोतीकी टड गॉट पर बहुत मजबूतीसे दोनों हाथ रख कर गरमसे वह अपनी आँवों में धीन लेगी तब उसका चुम्बन कर बहुत दिनमें मैं कृतार्थ हूँगा । उसका देवताओंको भी दुर्लभ अमरामृत, तृप्त होने तक पीकर, अपना जीवन सफल करूँगा । अत्यन्त कोमलताके कारण अन्तर्विलीन होकर मानो अगमे प्रवेश करती हो ऐसी प्रियाके—कामाग्निमें जलनसे बाकी बचे—शरीरको गाढ आलिंगन-सुपने रससे ठंडा करूँगा । यों परवश होने पर भी मानो स्वेच्छानुसार बर्ताव करती हो, प्रयत्न-रहित होने पर भी मानो यत्न करती हो, पीछे हटती हुई भी मानो सरकती हो, सब अगोको निकोड़ती भी मानो अभिप्राय प्रकट करती हो, देवी कादम्बरीके साथ फिर म—सब जनो को मुक्त होने पर भी केवल १^२को ही गम्य, स्पश-विषय होने पर भी हृदय^३ ग्राही, मोहित^४ करनेवाला होने पर भी इन्द्रियोंको प्रसन्न करता, कामाग्निको उदीत^५ करने पर भी निवृत्त

१—हाथ महसूज ।

२—सयोग, चित्त वृत्ति निरोध ।

३—हृदय प्रसन्न करनेवाला, अन्त करणमें आविर्भूत ।

४—मोह-युक्त, अव्यक्त सुधी ।

५—उत्तेजित, प्रकाशित ।

करता, सब अंगा को खिन्न करने पर भी आल्हादन करता, कठिन उच्छ्वासके^१ अमसे म्वेद उत्पन्न करने पर भी सीत्कार सहित रोमाच करता, अनुभूत होने पर भी अनुभव करनेकी स्पृहा उत्पन्न करता, हजारों चार अनुभूत होने पर भी ह्मेशा नया मालूम होता, अत्यन्त स्पष्ट होने पर भी अवर्ण्य स्वरूपवाला, अचिन्त्य, अमम आमग^२वाला, अनुल-स्पर्श, अनुपम रसवाला, अवर्ण्य प्रीति^३ उत्पन्न करता, परम ज्ञान^४से प्राप्त होता, अन्य प्रकारके मोक्ष सुखके समान— मुग्ध नाममा त्रिचित्र सुख भोगूँगा और निमेष मात्र भी वियुक्त रहे बिना उसके साथ ही अनेक रम्य स्थलोंमें क्रीडा करके स्वाभाविक रीतिसे रम्य हुए शोचनका भा आश्रय रमणीय बनाऊँगा। फिर विश्वास उत्पन्न होने पर देवीसे ही प्रार्थना कर मदलेत्वाके साथ वेशम्पायनका भी सन्व कर दूँगा। ऐसे ऐसे तथा अन्य विचारोंमें लुधा, तृषा, श्रम, और जागरणकी व्यथा न गिनता हुआ वह गत-दिन परावर चलता रहा।

२५६—इस प्रकार चलने पर भी अंतर बहुत होनेसे आधा रास्ता कटा था कि इतनेमें मेरुमाल जल्दी जानेमें विघ्नकारी हो गया। जैसे काला साँप रान्ना रोक लेता है उर्मी तरह मेरुकालने उसे आगे न बढ़ने दिया। वह बाल प्रबल पकके समान त्रीष्मश्रुतुको रोक देता है, रात्रि आगमनके समान सूर्याका छिपा देता है, राहुके समान चन्द्रको ग्रस लेता है, वज्रकी प्रानी चमवना, धूमके समान, पहलेसे सूचना दे देता है। उससे हाथीके पदके सपात कामकी वृद्धि होती है, उसके आनेसे विरहातुर मरण-रूपी चार प्रधकारमें प्रवेश करने लगते हैं, जैसे हिरन कालपाशमें खूब फँस कर मरती जाती है उसी तरह वह उत्कटा युक्त कार्मीजनोंको नष्ट करता है। वह १० नजोना प्रभेय लोहमय प्रर्गला-दंड है, क्योंकि उसके आनेसे वे एक जगह पर रहते हैं, घोड़ेको अच्येय पाद-नष्ट लला है, पथिकोंका अत्याज्य शू खला-पग है, प्रीणित जनोंकी अलक्ष्य बन लेखा है, प्राणि-मात्रका लोह पजरमें

१—अमसे तान पूबना, प्राणापानमें श्वासका आना जाना।

२—अतुल हठवाला, अनुरक्ति रहित।

३—सतोष, सुख।

४—इ. इ. ज्ञान, परब्रह्मका मनसे चिन्तन।

बंधन है, प्रमरके झुंटां और जगली महिषोंके समान मलिन—गर्जती हुई—मेघाभी घटाके विस्तारसे वह भयंकर मालूम होता है, विषम ध्वनिमे गड-गड़ाता है, अधिक विषम विद्युत् रूपी गुणसे खेचता, विस्फट इन्द्र-धनुष चढाता, लगातार धारा रूपी बाणोंकी बोलहारकी वर्षासे प्रहार करता है । मानो विरुद्धाचरणशील हो इस प्रकार मुख पर अथकार करके आगेसे मार्ग रोकता है और एक लाख वज्रोंके सतापके समान दुःप्रेक्ष्य होनेसे आँखोंका मानो चाँबिया देता है ।

३५०—वहाँ प्रथम तो उसे अचेतन करनेवाले मूर्खोंके वेगसे दशों दिशा-आम अथकार व्याप्त हो गया, फिर मेघोंसे । आगे उसका तड़फड़ाता हुआ चित्त कहीं गया, फिर हस गये । पहले उसके परिमल-युक्त निश्वाम निकले, पीछे सुगन्धित वायु । पहले उसके नील-कमलके समान दोनों नेत्रोंने जल बरसाया, फिर मेघ वृन्दोंने । पहले हजारों उत्कलिनाओंसे^१ आकुल होता उसका मन उद्वेगसे^२ भरने लगा, फिर नदियोंका पाट । और तुलार नदीके प्रवाहोंके साथही उसकी काम वेदना बढने लगी, वर्षाके जलसे निरंतर-चिन्तन हुए कमलाकरोके साथ ही उसकी कादम्बरी-समागमकी आशा डूब गई, वाराके वेगको सहन करनेमे अशक्त कदलीके अक्षुरोंके साथ ही उसका हृदय फटने लगा, मेघ कालकी पवनसे आहत कदम्ब-कलीके साथ ही उसका कथकित शरीर काँपने लगा, निरंतर जल गिरनेमे जर्जरित पदमवाले^३ केलोंके फूलोंके साथ ही दोनों नेत्र लाल हो गए । तीर पर आने हुए जलसे जड़मेसे सुदृढ नीतटके साथही उसके प्राण गिरने लगे, परिमल-मय मालतीके फूलोंके । ही उसमे उत्कंठा बढी, इसी प्रकार भारी आँसुसे ही उसके मनोरथ भग्न गए, अत्यंत तीक्ष्ण नोकवाले केपड़ेके काँटोंसे ही उसके मर्म छिद्र गये, १२५५ 'ऊँची करते शिखियोंसे'^४ ही उसके अंग जल गये, दिशाओंमे अथकार

१—उत्कंठा, जल तरंग ।

२—खेद, ऊँचा जाता वेग ।

३—पलक, फूलोंकी पँपड़ी ।

४—पक्ष, ज्वाला ।

५—मयूर, अग्नि ।

करते मेघके तिमिरसे ही मोहान्धकार बढ गया, अधकारका तिरस्कार करती विजलीकी चमकसे ही सताप बढ गया, और जलके भारके कारण मानो चार चार लगातार गर्भीर गर्जना करके पृथ्वीके पीठ-ब्रधको कँपाते नए मेघोंसे आकाशमें, मेघ-जल धाराके कारण चोंचसे शब्द करते चातकोंसे अतरिक्षमें, ऊँचे स्वरसे टरटर करते मेंडकोंसे पृथ्वी पर, लगातार झकार शब्दसे धाराके फलको जजरित करती हुई जलद-पवनोंसे दिशाओंमें, मदमत्त हो कर वेकाका कोलाहल करते मयूरोंसे वनोंमें, ऊँचे नीचे शिखरोंमें शिलाओं पर गिरनेसे खनखनाते भरनोसे पर्वतोंमें, और ऊँची उछलती हुई तरगोंकी टक्करसे बडा हुआ विषम निर्घोष करते प्रवाहोंसे नदियोंमें, स्थलापर सर्वत्र विस्तार पाते, गुफाओंमें घन हुए जाते, पहाड़ों पर प्रचंड लगते, जल पर आप्समें मिल जाते, पर्वतोंके तटों पर पट्ट लगते, हरी घासवाली भूमि पर मृदु लगते, पल्लवों पर चारु लगते, वृक्षों पर गंभीर लगते, वृषों पर सूक्ष्म लगते, ताल-वनमें स्पष्ट मालूम होने, जलधाराओंके गिरनेके समय सुनाई देते, सब प्रकार मधुर तथा हृदयम चुभ जानेवाले वारा-स्वरसे राजपुत्रकी उत्कठा अधिक बढती गई। इससे न रातमें, न दिनमें, न गाँवमें, न जगलमें, न भीतर, न बाहर, न वनमें, न उपवनमें, न मार्गमें, न घरमें, न चलनेमें, न ठहरनेमें, न वसाम्पावनके स्मरणमें न वादम्बरी-ममागमके व्यानमें, कभी किसी प्रकार कहीं भी तमल्ली नहीं हुई।

२५८—चित्तको वैश्व न हुआ तब मेघ-ममय-रूपी ईंधनवाली विजलीके रुमान, मानी, भस्म कर डालनेके लिये तैयार हुई कामाग्निके अति दुःसह होनेसे, ध्वन्नाग्नेसे धार होने पर भी उसका स्वाभाविक साहस ही जाता रहा, सब पृथ्वीतलको सराबोर कर डालने धारा-जलसे भी उसको शोष हुआ, दसा दिशाओंको प्रकाशित करती हुई 'विजलीकी चमकसे भी वह जल-पथाम पड़ गया, जगत्ता आल्हादन करती—वर्षा कालकी—पवनसे भी उत द ह हुआ, जल भारते घने दीखते मेघोंसे भी वह क्षीय हो गया, पृथ्वी-वन-पानों तात लाल करती वीर-वधूटिमाने भी वह फीफा पड़ गया, पू. तसे 'बो लो कुट्टसे नी यह गजपथ' हुआ, तथापि सब जगत्के

जीवन हेतु मेघकालसे भी जीवन सदेहके भूलेमें भूलने लगा, उत्कल^१ गमन करते दैवके विलासां और नदीके प्रवाहों पर तेंरने लगा, निरंतर बरसने जलसे उत्पन्न हुईं मूर्छांमें तथा पंक-पटल में गिरने लगा, जलमें रुके मागन तथा नेत्रोंमें खलन करने लगा, विकाश पाती कादम्बरी—समागमकी चिन्ता-श्रोंमें तथा फूले कटव की रजो-वृष्टियोंमें मग्न होने लगा, लगातार आते गमन विघ्नोंसे तथा मेघकी गर्जनाओंसे मोह पाने लगा, दुर्लभ वेगवाली हजारों उत्कटाश्रों को तथा नदियोंको उलाधने लगा, मेघोंके आनेमें वृष्टि पाते कादम्बरी समागमके श्रौत्सुक्यसे तथा जल-प्रवाहके वेगमें खिचने लगा, जीवनकी पर्याप्त करने लोगों तथा घोड़ोंको छोड़ता जाने लगा, प्रियलियों मानो उमकी तर्जना करने लगीं, बादल मानो उसको रोकने लगे, गर्जनाये मानो उमको बस काने लगीं, खड्गके समान निर्दयतामें गिरती जलवारार्थ मानो उसके सेंकड़ी टुकड़े करने लगीं, और जलदकालने, मानो जल्दी जानेंमें प्रिय करनेको, सब दिशाओंका रास्ता रोक दिया, तो भी कादम्बरी-समागमकी आशा तब भी कम न होनेके कारण, समस्त प्राणी जिनमें अपने स्थानमेंसे गिन नहीं सकते थे ऐसी वषाच्छतुमें भी, क्षणभर धिलचलिना वह प्राणों बढता ही गया । जिनके नेत्र जल-वाराश्रोंकी चोटसे आवे मिचे जाते । जो बार बार अपने मुखको मोड़ते तथा नीचे झुकते थे, जिनकी गर्दनके बाज पक्षीनेसे चिपट कर इफ्टे हो गये थे, बार बार कानमें गड़नेसे जिनके गुरु भर गए थे, ऊंची नीची जमीन न नीचनेमें चलनेमें जिनके पर फिमल । ये, जीमके वजन ढीले हो गये थे, बार बार नदियोंके पार करनेमें जिनकी गीली हो गई थी आर जिमका जल, वेग तथा उत्साह पटने लगा था से घोड़ोंकी फान उमके पीछे चलती थी । आदरणीय सात लोगोंके प्राणों करने पर भी, शरीर-संस्कार न करके केवल जीवन बरख करने के लिए तब तक आहार करते हुए, उमने वह सब गिन ही प्रिया दिया ।

३५६—यो चलते चलते रातोंका तामरा हिंसा प्राणी रक्ष था तब उमने मेघनादको लाटना देखा । देवने ही दूरसे मेघनादने नन्दनार किया । क इतनेमें ही चन्द्रापीड उमसे पूछने लगा—प्राणोंका ते जनेम दाव अनी

रहने दो । म पहले वैशम्पायनका हाल पूछता हूँ । क्या तूने वैशम्पायनको अञ्छोद सरोवर पर देखा ? उसके वहाँ ठहरनेका कारण पूछा ? पूछने पर उसने कुछ कहा था नहीं ? हमारे परित्यागसे क्या अब वह पश्चाताप करता है ? हमको याद करता है ? मेरे विषयमें तुझसे उसने कुछ पूछा ? उमका कुछ अभिप्राय मालूम हुआ ? तुम दोनोंमें क्या बातचीत हुई ? माता-पिताको उमने कुछ मदेशा कहलाया ? आनेके लिये तूने उसको कुछ समझाया ? हमारे आनेकी कुछ खबर रही ? वहाँसे वह भाग तो न जायगा ? मुझसे मिलेगा तो सही ? मेरी विनती मानेगा ? क्या मेरे साथ लौट आवेगा ? वह सत्र दिन वहाँ क्या क्रिया करता है ? वहाँ उसका मन कैसे लगता है ?

३६०—एसे प्रश्न सुन कर मेघनादने निवेदन किया—महाराज, वैशम्पायनसे मिल कर पीछे ऋट ही धोड़ों पर मैं आया—यों आपने मुझे राजा देकर भेजा था और—अञ्छोद सरोवरकी तरफ पीछे वैशम्पायन गये होंगे यह तो बात ही न हुई थी । आपके आनेमें विलम्ब हुआ तब पत्रलेखा तथा केयूरकने मुझसे कहा कि मेरा समयका आरम्भ देख कर ऐसे दिनोंमें देव तारापीड, देवी विलासवती तथा आर्य शुक्रनासने युवराजको, प्रयत्न करने पर भी, आज्ञा मदाचित नहीं दी होगी और तुझे अकेले इस भूमिमें रहना नहीं चाहिए इसलिए तू वहाँसे लौट जा । हम तो अब करीब करीब आ पहुँचे हैं । तू कद कर जहाँसे अञ्छोद सरोवर तीन चार पड़ाव दूर था वहाँसे मुझे जरूरदस्ती पीछे लाया दिया । इनका कह कर मेघनाद चुप हुआ तब चण्डीशने फिर पूछा—तू क्या ममन्ता है ? पत्रलेखा आज तक पुरुष नहीं होगी या नहीं । उससे जवाब दिया—देव, मेरी समझमें तू, मन्तन प्रगर कोरे विलम्बकारी विषय न हुआ होगा तब तो, निःसन्देह उसे पुराना ही चाहिए ।

दूतके आलापमे, केतक-सुगध विप परिमलमे, स्वयंत प्रलयाधिके पतंगोमे, भ्रमर वलय कालपाशमे, वगुलीकी पंक्तिर्या यमराजकी पताकामे, नदियो सर्व-क्षयकारी महा प्रवाहके चढावमे, दुर्दिन काल-रात्रिमे, और कुटजवृत्त यमके हास्यमे मानो बदल गए । फिर उसके शरीरमें भी मत्वके बदले कातरता, बलके बदले क्षीणता, कान्तिके बदले विवर्णता, मनिके बदले मोह, वैरके बदले विपाद, हास्यके बदले शोक, नयनोंमें श्रौंमू, आलापमे मोन, अगमें असहनता, इन्द्रियोंमें अपटुता और सबमें अरति दीपने लगी । फिर दिन बीतते बीतते वह मानो चित्र लिखासा हो, दिन गत बहने आसुत्रोंके प्रवादसे मानो गिरा जाता हो, सर्वदा चलती निश्वास-पवनसे मानो द्रुटा जाना हो, निरन्तर पैदा होती काम-सतापकी हजारों उल्कंटाओंसे मानो चारों ओर जर्जरित होता हो, काम बाणोंकी वर्षासे मानो शरीरके साथ ही क्षीण होता हो—यो स्वल्प ही बाकी रह गया और अपनी-सी वृत्तिवाले कादम्बरीके कल्पनामय शरीरके साथ मानो गलेसे चिपटा हुआ अपना जीवन तसे-तैमे धारण करता, अच्छोड मरोवरके पास आ पहुँचा । वहाँ तीरके वृत्तोंके तले बरसातके पानीसे भीग गए थे, तीरके पासकी नवतण मय भूमि पर जल भर गया था, किनारेके लतावन असेव्य थे, किनारों पर जल बाहर निकलनेसे उनके प्रातभाग दूट गए थे, टूटे हुए ऊँचे ढडवाले कुमुदपत्रोंसे वह गहन हो रहा था, कमल समूह द्रव गए थे, कुट्ट सूखे कमल-तन्तु तथा पत्तोंके टुकड़े पानी पर तर रहे थे, कल्हार तथा कुलाय ढाले हो गए थे, भ्रमरोंके कुट्ट उर डर कर चङ्गर लगा रहे थे, रम उड़ रहे थे, शून्य शून्य सारम कदण शब्द कर रहे थे, डरे हुए चक्रमाक-मिथुन गामी अंचे अंचे घुसे जाते थे, काँपते हुए राजहमोंके कुड तीरके पास भागीन रुपे , और जारसे मनोहर शब्द करते मयूरो तथा वगुनोंके कुड लटक दृशा बटे थे । वर्षाऋतुके विकारसे माना अन्य हो इस प्रकार नद दृष्टिपूर्ण हो । भी अदृष्ट पूर्व मा था । उनसे दृष्टिको मुख नहीं मिलता था, दृश्य प्रकाश नहीं होता था, और वह मनमें अच्छा नग मालूम होता था, उसे देना नर दु ख दूना होत था ।

३६२—वहाँ पहुँचते ही उसने रुम मत्तारोंकी श्रावण दी—बनके मर्या

कदाचित् वैशम्पायन हमें देख कर भागने लगेगा, इसलिए तुम सब चारों ओर सावधानीसे रहना। इतना कह कर आप भी, खिन्न होने पर भी मानो अखिन्न हो इस प्रकार, घोड़े पर बैठे बैठे ही, लता, वन, वृक्ष मूल, शिलातल तथा सुन्दर मटपोंमें ढूँढता आसपास घूमने लगा। परन्तु घूमते घूमते जब कहीं भी उसके रहनेका कुछ चिह्न न देख पड़ा तब उसने विचार किया कि पत्रलेखामे मेरे आनेकी खबर पाकर वह पहलेसे ही अवश्य भाग गया होगा, जिमसे यहाँ उसके टहरनेका चिह्न तक नहीं दीखता। किसी गुप्त स्थानमें गया होगा इस कारण इस तरह ढूँढने पर भी वह नहीं मिलता। अत्र तो मदा कष्ट आ पड़ा। वैशम्पायनको देखे बिना इस जगहसे एक कदम भी आगे रखने का उत्साह मेरे चरणोंमें नहीं है और कामदेवके बाणोंसे जर्जरित हुए तथा कादम्बरीके दर्शन मात्रकी आशासे ही टिके हुए मेरे प्राण क्षीणताके कारण क्षणभरमा विलम्ब भी नहीं सह सकते, सो कहीं निरुक्त न जायँ। सर्वथा म पिनष्ट हुआ। देवी कादम्बरीका दर्शन न हुआ, वैशम्पायनका भी न हुआ। ऐसा निश्चय उत्पन्न होने पर भी आशाकी सीमा अनिश्चित होनेसे, उमने मनमें विचारा कि कदाचित् महाश्वेताको भी इस रात की रात्र हो, इस लिए उमने मिलना चाहिए। फिर जो ठीक होगा, करूँगा। यो विचार उसके शत्रुमके पास ही पोंडाकी पौजका डेरा डाल कर, सवारीका वेप उतार कर, सर्प वचुरुके समान मरीन तथा नेत्र-रहित चाँदनीके समान सुन्दर दो कपड़े पहन कर, शीत था ही रखे हुए जीनवाले इन्द्रायुध पर बैठ, आय महाश्वेताके आगमें आया।

जिमसे मेरा आगमन हर्षदायक होने पर भी महाश्वेता ऐसी अवस्थाका अनुभव करती है । इस शकामे भिन्न हृदय होकर, निम्नले जाते प्राणोंसे ही पद पद पर मानो स्वलन करता, गिरता, मोह पाता, पास जाकर उसी शिलातलकी एक ओर बैठ कर, आँसुओंसे दीन बदन होकर, वह तरलिकामे पूछने लगा कि यह क्या बात है ? परन्तु वह तो उस अवस्थाको प्राप्त हुई महाश्वेताके मुखको ही देखने लगे ।

३६४—इतनेमे शोकके वेगके शात हुए बिना भी महाश्वेता ही गद्गद कठसे बोली—महाभाग, यह विचारी क्या कहे ? दुःख मर्ते मर्ते जिसका हृदय कठिन हो गया है और जिसने दुःख सुननेके अयोग्यको भी अपना दुःख सुनाया था वही—मदभागिनी—महाभागके जीवन को सशयमे डालनेवाला यह निर्लज्ज, निर्दय, तथा सुननेके अयोग्य दुःख भी आपको सुनाती है । सुनिए—केयूरकमे आपके जानेका हाल सुन कर मेरा मन विदीर्ण हो गया कि न तो मने चिरस्थका मनोरथ सफल किया, न मंदिराकी प्रार्थना पूरी की, न अपना कुल्य भला किया, न घरमे आए हुए चन्द्रापीडका प्रिय किया और न मने प्रियसखी कादम्बरीको प्राणप्रियके समागमके सुपने युक्त देगा । या अनेक प्रसंगसे वैराग्य उत्पन्न होनेके कारण, कादम्बरीके स्नेहके वह मजबूत बनाने भी तोड़ कर, म फिर कष्टतर तप करनेको यहाँ चली आई । तब मने आपके ही समान आकृतिवाले, मानो सत्य-हृदय, अनुत्साह शरीर, तथा धवराए हुए मुखवाले, एक ब्राह्मण युवकको, आँसुग्रामे मरी लदा रहित दृष्टिसे, मानो किसी कोई हुई मनुको इस उमर दूँउते देगा । परन्तु मैं देखे भी मानो मुझे पहचान लिया हो, अपरिचित होने पर भी मानो परिचरित हो, सभापनाके बिना भी मानो प्रीति प्रेम युक्त हो, अस्मिन् प्रेम पर भी मानो प्रेममे परवश हो, शून्य होने पर भी मानो मद लगा हो, आजारमे दुर्बल होने पर भी मानो सुख पाता हो, चुरा आप भी मानो कुछ करता हो, बिना पूछे भी मानो अपनी प्रपन्थाकी सूचना देता हो, मानो प्रसन्न करता हो, शोक करता हो, हर्ष पाता हो, रोई पाता हो, मना हो, अस्मिन् पाता हो, आकृष्ट हो, आनन्दानुभवता हो, भूते हुए मन्त्रण कर पा हो, निरा रहित, विश्वत तथा मान्य बनना मन्त्र आँसुग्रामे मरे, मनाके शोक हो ।

पहुँचते, मानो विकसित हों ऐसे, खुली हुई पुतली-वाले नेत्रोंसे, मत्त हो, प्राविष्ट हो, वियुक्त हो, पान करता हो, और भीतर प्रवेश करता हो, यों मेरे पान आकर और एकाग्र दृष्टिसे मुझे बहुत देर तक देख कर कहने लगा— सुन्दरी, जगत्मे जन्म, वय और आकृतिके अनुकूल आचरण करनेवालोंकी कोई बुराई नहीं करता । परन्तु तूने अत्यन्त वाम प्रकृतिवाले विधाताकी तरह असदृश अनुष्ठानमें यह कैसा प्रयत्न किया है कि चमेलाके ताजे फूलोंके समान सुकुमार तथा मालाके समान कण्ठ-प्रणयके योग्य शरीरको तू इस अनुचित वायुतपके क्लेशमें मग्न करती है ? सुमनोहारी^१ लताके समान इस शरीर का रूप तथा वयके अनुरूप, रमाश्रयी^२ फलके साथ क्यों तू सयोग नहीं करती ? रूप गुण विहीन प्राणियोंकी भी जन्मसे प्राप्त हुए सासारिक सुखोंका अनुभव करनेके पीछे, परलोकमवधी तपका श्रम अच्छा लगता है । तब फिर रूपवान्नी तो प्राप्त ही क्या है ? इसलिए मृगालिनीके समान स्वभाव सरम तरे शरीर पर हिमपातके समान तप-क्लेश देव कर मुझे पीड़ा होती है । जन्म तरे समान ललनाएँ ससार सुखसे पराङ्मुख होकर तपसे आत्माको कष्ट देना ह तब तान्देव अपना धनुष वृथा चटा रखता है; चन्द्रमाका उदय व्यर्थ होता है, बभ्रुवाम वृथा आता है, कुमुद, कुमलय, महेश तथा कमलके पान तथा मलय हैं, वर्षाकालके आरम्भमा आङ्गुर निष्प्रयोजन है, उपवन मलय हैं जोद हीमा भी क्या काम है, लीला नदियोंके रेतीले किनारोंका भी क्या काम है आर मलय परवता भी क्या प्रयोजन है ?

अवश्य इसका कुछ अनिष्ट होगा । पर उसने तो मना करने पर भी तुर्निनायक वृत्तिवाले मेरे कामदेवके दोषमे या अनर्थकी भवितव्यतासे मेरा पीछा नहा छोडा । कितने ही दिन बाद एक बार, जब रात्रि बहुत बीत गई थी, कामाग्नििका उद्दीपन करनेवाली चन्द्रमाकी किरणें चाँदनीके प्रवाणका मानो खूब वमन कर रही थीं और तरलिका नादमे सो गई थी तब, सतापके कारण निद्राका सुख न मिलनेसे, मे वाहर आकर शिला-तल पर लेट गई । उम समय कल्हारकी सुगंध लाती हुई अञ्जोद सरोवरकी पवन मद मद चल रही थी और चन्द्रमा, चूनेकी कूँचीके समान, किरणोंसे दशों दिशाओंको सफेद कर रहा था । उस पर निगाह डाल कर म—अमृत वरसाती तथा सब जगत्का आल्लादन करती किरणोंसे यह चन्द्रमा मेरे प्राणनाथको भी वरसा दे ।—यों इच्छाके प्रसंगसे सुगृहीत नामा देव पुण्डरीकका स्मरण कर रही थी और विचार कर रही थी कि क्या मुझ पापिनीके अभाग्यसे आकाशमेसे उनरे ऐसे दिव्य आकृतिवाले महा पुरुषका कहना भी असत्य निहला ? अथवा जीवनको प्रिय माननेवाली तपस्विनीका भी ज्यो त्यो जीवित रखनेके अभिप्रायसे अनुष्ण कर उसने आश्रामन दिया जिमसे फिर मुझे उमने दर्शन ही नहीं दिया ? सुगृहीत नामा पु डरीक क्या करें ? उन्हें तो मरते ही उठा ले गए, पर फिर तो जीता जागता उनके पीछे गया है । इतना अधिक समय बीत गया ता भी उम निष्कण्ठने मुझे कुछ समाचार नहीं भेने ? इस प्रकार प्रसन्न निगाह करती तुर्निनायकमे घिरी हुई म जागती ही रही ।

३६६—इतनेमे चन्द्रमाके—दिनके समान—प्रकाशसे दूरसे भी दीगो, आविष्ट हो, मत्त हो, इस प्रकार उन्मादमे पर गीरे वीरे खन पर चलती न आते, उमी पुत्रको मने देखा । चरणों तब कटमित दृष्टा उमका शरीर मा मालूम होता था मानो निरन्तर लगे कामदेवके प्राणाक तीरानी नभय व्याप्त हो । विस्मित केतकी रजके समूहके समान बसव दोनेमे ममा मानन हाता था मानो पहलेसे ही कामाग्निने उमे जला कर मरम कर डाला थे । समारमे जिसके शासनको सब मानते हैं ऐसे कामदेवक द्वारा अरु मरनेके लिए दिया गया मानो तस्मान माननेकी आज्ञाका स्वर हो ऐसा मानूम हा मृगाल-वचन उमने दाथमे पहना था । नव तथा मन्त्र दिनी, स्मानन

चिन्ती, कामदेवके प्रथम सहायक चन्द्रमा की कलाके समान, वेतकीकी बाल—
 प्रपन्न कहाँ जाता है ? मने तेरा घात किया है—यो मानो उसकी तर्जना
 करती थी। उद्वेगमे निरुल्लसते आँसुओंके प्रवाहसे वह मानो अपनेको जल-दान
 करता था, अपनी इच्छासे ही मेरा कर-ग्रहण करनेके लिए वह मानो पसीनेसे
 नहाना था, दूमेके हृदयमा हाल जाने बिना तेरा जाना ठीक नहीं है—यो कह
 कर मानो भारी उरुत्तन्म पद पद पर उसको रोकता था। मुझे आलिंगन
 करनेकी मित्रा आशासे दूरसे ही दोनों भुजा पसारनेसे वह ऐसा मालूम होता
 या मानो हजारों उत्फलिकाओंसे विपन्न हुए अनुगम-सागर पर तैर रहा हो।
 निरन्तर चलने लगे लगे निश्वासोकी पवन मानो उसे आगे खँचती थी।
 निरन्तर दिशाओंमें भरे डालता चोंदनी का प्रवाह मानो उसको उठा कर लिए
 जाता था। कामकी वेदनासे वह शून्य-मनस्क था। उसका मुँह सूख गया था।
 मने उसे छोड़ दिया था। वह देखनेमें अत्यन्त दीन, धैर्यसे तिरस्कृत, तरलता
 से ग्रहीत, लज्जासे विमजित, धृष्टतामे अधिगत, परलोकके भयसे दूर, युक्त-
 प्रयुक्तके विवेकसे विमुक्त, और केवल कामदेवके ही वशमें था।

३६७—प्रमने जीवनकी परवा न होने पर भी उसको इस तरह देख,
 मुझे बड़ा मर हुआ और मैंने विचार किया—अहो ! यह बड़ी आपत्ति
 सामने आई ! यदि उन्मादसे आकर वह हाथसे भी मुझे छू लेगा तो इसके
 होने मात्रसे प्रपुण्य मेरा शरीर त्यागना पड़ेगा और देव पुण्डरीकका दर्शन
 पर होनेकी आशासे बहुत काल तक खूब दुःख भोग कर भी मेरा प्राण
 बरण करता व्यर्थ होगा। इस प्रकार में चिन्ता कर रही थी कि इतनेही-
 ३६७ नरे पास प्राकर कहने लगा—चन्द्रमुनि, यह कामदेवका सहायक
 चन्द्रमा मुझे मारने पर आमादा है इसलिए मे तेरी शरणमें आया हूँ।
 मैं जान हूँ और अपने प्राण उपाय करनेमें अतन्मर्ष हूँ। मुक्त अशरण और
 अज्ञानकी दूरला भरी मेरा जीवन तेरे प्रधीन है। शरणागतकी रक्षा करना
 तेरा स्वर्णतन्म धर्म है। इसलिए जो तू आत्म दानसे मेरी रक्षा नहीं करेगी
 मैं तन्मेव कर चन्द्रमा मेरे मुझे मार डालेगा।

३६८—रुतु कर तेरे मनेसे तो मानो उनी क्षण लपटें निकलने लगीं ।

म को प्रभी अग्निमे मानो उसे जलाने लगी तथा आँसूरूपी चिनगारीवाली दृष्टिसे मानो तर्जना करने लगी । उस समय मेरा शरीर चरणो तक लाने लगा । अविष्टके समान अपने आत्मो भी भूल कर मे को धके अविष्टमे कठोर शब्दोंमें बोली - अरे पानी, मुझसे यो कहतेमे तेरे मागे पर वज्र क्यों न पड़ा ? तेरी जिह्वाके हजारों टुकड़े क्यों न हो गए ? तेरी बाणी बितल क्यों न हुई ? तेरे बोलनेकी शक्तिका नाश क्यों न हुआ ? मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि तेरे शरीरमे समारके धर्म प्रवर्धके देखने वाले पाँच महाभूत नहीं हैं, क्योंकि तुझे यो कहतेमे न तो अग्नि जलाया, न वायु उड़ा ले गई, न जलने हुआ, न पृथ्वीने रसातलमे प्रवेश कराया और न आकाशने इसी क्षण अपना सा ही कर डाला । शास्त्रकी मर्यादाके नियमोंसे जकड़े हुए इस लोकमे तू ऐसा मर्यादाका उल्लंघन करने वाला कहाँसे उत्पन्न हुआ जो, पक्षीके समान काम बगल होकर, कुछ भी नहीं समझता । जिस मरे विधिने तुझे किसी कारणसे तातेभी तरह मुख-राग^१ दिलाते, केवल स्वपक्ष्यात्^२मे प्रवृत्त तथा अनुचित स्थानके विवेकके बिना यो बोलनेके लिए शिक्षित किया उसने ही क्यों तुझे उगी जात मे उत्पन्न नहीं किया ? इस कारण तेरे यो कहने पर भी कैला ही आती है, कोय नहीं आता । तेरे वचनसे पीड़ित हुई मैं इतना मेरा दुःख बँट लेती हूँ कि जिससे तू अपनी वाणीके समान जातिमे पदा होकर मेरी-सी विधोही इच्छा न करे ।

३६८—मेने इतना कह कर चन्द्रमाके सामने देखा, हाथ जोड़ कर, फिर कहा—भगवन्, परमेवर, सकल भुवन चूडामणो, लोकाल, जो मने दे। पुण्ड्रिके दर्शनके पीछे मनमे भी किसी अन्य पुरुषका चिन्तन न किया होना मेरे म सत्य वचनसे यह दृष्टि कामी मेरी नहीं हुई जातिमे पड़ । यह तो मेरे इस वचनके पीछे ही न जाने अगस्त्य नाम वरके वेगसे, या तत्काल फलदायक पापके गोरसे, या मेरे वचनके सामने ही, दिग्भ्रमका दृढता तरह अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा । उसके मर्नेके पीछे मिला जाते हुए उसके परिचयमे मने सुना कि यह आपका ही मित्र था । इला

१ — वाचाक्षता, चोचन्नी बलाते ।

२ — अपना इष्ट कार्य, इवर उर पर कैलाकर पुद्वला ।

पट कर लज्जामें मुँह नीचे झुका कर, चुपचाप बड़े बड़े आँसू डाल कर वह पृथ्वीको भिगोने लगी ।

३००—उह सुन कर, जानोंके छोर तक पहुँचते नेत्रोंके बंद हो जानेसे चन्द्रापीठकी दृष्टि भंग हो गई, वचन-मौढ्य जाता, रहा आँर—भगवति, तुम्हारे प्रपत्न करने पर भी मुझ पुण्य हीनको इस जन्ममें देवी कादम्बरीकी चरण मेघामें सुख न मिला इसलिए जन्मान्तरमें भी तुम उसकी सहायित्री रहना—इतना करते ही, कादम्बरीके साथ समागम न होनेके दुःखसे ही विदीर्ण होने पर उतारू हुआ उसका—स्वभावसे ही सरस—हृदय, भ्रमरक आपातसे क्लीके समान, फट गया ।

फही थी ? उम समय मेने जरा हस कर तेरे सामने देख लिया था इस कारण तूने ही उनको खूब ठीक जवाब दिया था । इसलिए मेरे मर जाने पर भी वे तो मेरे ऐसी अवस्था पर विश्वास न करेंगे । नहीं तो—मेरे कारण यह इस प्रकार दुःख पानी है—एसा उनको खयाल होता तो वे यो जाते ही नहीं । इसलिए अगर वे आए होंगे तो जो कुछ बातचीत होगी तुझे ही करनी पड़ेगी । म तो देखूंगी तो भी न बोलूंगी, न उलाहना दूँगी । चरणामें पड़ने पर भी मिनती खीभार न करूँगी, तू मुझे मत मनइयो ।

३७३—वहाँ आकर अमृत-रहित सागरके समान, चन्द्र-रहित निशा-समयके समान, तारा-गण-रहित आकाशके समान, कुसुम-शोभा-रहित उपवनके समान, उखाड़ी हुई कण्ठवाले कमलके समान, रंजित अकुरवाले मृणालके समान, मय्य-मणि विहीन हारके समान, प्राण-रहित चन्द्रापीड़को उसने देखा । देखते ही एक साथ—हैं यह क्या ? - यों कह कर ओंवे मुँहसे अमितल पर गिरती हुई कादम्बरीको रोती चिल्लाती मदलेखाने यों त्यों करक सदास दिया, परन्तु पत्रलेखा तो कादम्बरीका हाथ छोड़ अचेतन तार भूम पर गिर पड़ी । बहुत देरमें होश आने पर भी कादम्बरी, योंकी रा ही, मूडके समान निश्चल तथा स्तब्ध दृष्टि-सहित मानो आविष्ट हो, स्तम्भित हो थी, निःप्रयत्न रह, साँस लेना भी भूल कर, अन्तर्गत शोकके नारसे मानो गिरचल बन कर, चन्द्रापीड़के मुख पर ही नेत्रोंको स्थिर कर, श्याम और लाल चेहरेसे, राहुसे ग्रस्त हुए चन्द्र-त्रिंवाली पूर्णिमाको रात्रिके समाप्त, काँपते अधर-पल्लवसे तीक्ष्ण परशुकी चोटसे काँपती हुई लताके समान, स्त्री-स्वभावके विरुद्ध चित्तको स्थिर कर, चित्रितकी तरह खड़ी रही । तो उसको खड़ी देख कर आतत्परसे मदलेखा पैरो पर गिर कर कहने लगी—प्रियतम, मुझ करने इन शोकके भारको रदनसे दूर करो । अश्रु-पतते होते शुरू करते अत्यन्त भारसे पीड़ासे, छोटेसे तालावके समान, पतले तम हुँ तुम्हारा रूप अवश्य ही सहस्रधा विभक्त हो जायगा ।

१—तुम्हारा भार, जल-प्रवाह ।

२—तुम्हारा अज्ञ रहित ।

३—जो नरक, जिज्ञासे तुम्होंने रहित विनाजा ।

यह सोच कर चित्ररथ और मदिराकी अपेक्षा करो। तुम्हारे बिना माता-पिता दोनोंके कुल नष्ट हो जायेंगे।

३७४—ऐसे कहती हुई मदलेखासे कादम्बरीने हँस कर कहा—अग्री पगली, यह मेरा वज्रसारके समान कठिन, मेरा हृदय तो यह देख कर ही सहस्र घा विदीर्ण न हुआ, फिर फट कैसे सकता है ? और जो जीवित हो उमके माता, पिता, बन्धु, आत्मीय, सखियों, परिजन आदि सब हैं परन्तु म तो मरती थी कि इतनेमें ज्यों त्यों कर मुझे यह—जीवनका हेतु—प्रियतम शरीर मिला है जो जीतेमें सभोगसे और मरतेमें अनुमरणसे दोनों प्रकारमें, मेरे मन दुःख दूर कर सकता है। इसलिए मेरे लिए आकर तथा प्राण त्याग कर मुझे देवने उच्च पद पर चढाया और गौरव दिया है। फिर अपनेको के ल आँसू बहानेसे हलका बना कर मे क्यो पतित करूँ ? रुदनसे मे स्वर्गम जाते हुए देवका अमंगल क्यो करूँ ? चण्डीकी धूलके समान उनके चरणोंका अनुगमन करनेको तत्पर हुईं में, हर्षके स्थान पर भी रुदन करूँ—ऐसा मुके क्या दुःख है ? अब तो मेरे सभी दुःख दूर हो गए। अब भी म क्या शर्ज ? जिसके लिए कुलकी मर्यादा नहीं गिनी, गुफजनोंकी अपेक्षा नहीं भी, धर्मका अनुरोध न किया, जनापवादका भय न किया लज्जाका त्याग किया, मदनोंपचार करा कर सखीजनोंको खेद दिया, अपनी प्रियसखी महा देता को दुःखित किया और उसके साथ जो प्रतिज्ञा की थी उगके अन्यथा होनेका भी विचार न किया, उस मेरे प्राणनायने मेरे लिए ही प्राण त्याग किए।

प्राणोंके जानेकी राह देखती हुई मुझसे तुने यह क्या कहा ? इस तो मरना ही जीना और जीना ही मरना है। इसलिए जो मुक्त पर लोड है और तू मेरा प्रिय अथवा हित चाहती है तो, लोड-बन्ड देने पर भी, प्रियसखी, तुके ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि पिता-माता कोई मेरे शोकसे प्राणोंका त्याग न करें और मुझसे बाधित मनोरथ तुझसे पूर्ण करें जिसमें मैं परलोक जाने पर भी तेरे अश्लि देनेवाला पुत्र उत्पन्न हो। मेरी सखियों या मेरे परिजन तिसमें मेरी प्राद न करें या महल रह्य देना कर नाम न ले वेना ही करियो। मदरके आगमने लगे हुए—मेरे पुत्रके मना—अपेक्ष आनेके बादका, तैना मने विचार या उमा ही, मान लील प्रादे गय १२००

विवाह करिषा । मेरे चरण-तलके स्पर्शसे बड़े हुए अशोक वृक्षमेंसे वर्षा-पूगके लिए भी पत्ता मन तोड़ियो । मेरी बढाई हुई मालतीके फूल देवताओंकी पूजाके लिए ही तोड़ियो । मेरे महलमें सिरहानेकी तरफ रक्खा कामदेव-मठ फाड़ टालियो । मेरे लगाए हुए ग्रामके वृक्षोंमें जिस तरह फल आये उभी तरह उनका सवर्धन करियो । विचारी कालिंदी मैना तथा परिहास नोनमो निजरेमें रहनेके दुःखसे छुड़ा दीजियो । मेरी गोदमें सोनेवाली नकुलिमायो तू अपनी ही गोदमें सुलइयो । मेरे पुत्र—बाल हिरन—तरलकनी कियी तपोवनमें भिजया दीजो । मेरे हाथोंसे पाला हुआ चकोरोंका जोड़ा क्रीड़ा-पर्यंत पर जिसमें मर न जाय ऐसा कीजियो । चरणोंके साथ चलनेवाले हंसको जिनमें कोई मार न डाले उस तरह रखियो । जिसे घरमें रहनेकी आदत नहीं है ए ही जगदस्ती लाई गई विचारी वनमानुषीको वनमें ही छोड़ा दीजियो । राजा पर्यंत किसी शान्त तपस्वीको दे दीजियो । मेरे वस्त्र तथा भूषण आदिका प्राजणामो दात कर दीजियो, परन्तु वीणाको तो अपने ही उत्सवमें प्रेमसे रगियो और जो कुछ तुम्हें अच्छा लगे ले लीजियो । मैं तो अब चन्द्र-किरणोंसे, गीले चन्द्रापी चर्चसे, धारा गृहकी निरंतर वर्षासे, चारों ओर फैलती हुई चन्द्र-निरखसे, चमकते हुए उज्वल हारोंके पहननेसे, मणि दर्पण रखनेसे, चंद्र जलने दुआए हुए कमलके पत्तोंके आस्तरणसे, कमलके सरस डठलों तथा पद्मोंके चित्रोंसे, मोमल मृणालोभी सेज रचनेसे, तथा विकसित कमल, कुमुद, दुर्गादेवकी चित्रोंसे जलनेसे मार्की प्रचे, इस शरीरको देवके कड से लग कर उज्वल विजयी प्रज्वलित ग्रथिमें शीतल करती हूँ । यों कदती कहती वह, उज्वलके रोवती हुई मदलेजाको छोड़ कर, महाबेताके पास आकर, उस के गलेसे चिपट कर, विविधर मुखसे ही फिर उससे बोली—

रूपी पवनमे आइत, उका ली तरगमे लुडकती, आनके आँसु प्राँके वेग-
रूप लहरसे चचल, टपकते हुए स्वेद-रूपी मकरदकी बूँदें बरसाती, भिन्नने
हुए नेत्र रूपी कुमुदवाली, चन्द्रापीड-रूपी चन्द्रमाके अन्तसे शोकग्रन्थ हुड
कुमुदिनीके समान कादम्बरी हृदय-वल्लभके ऐसी अवस्थामे होने पर भी,
मानो समागमका सुय भोगती हो इस प्रकार, एक साथ ऊपर पड़ते पेश
कलापमेसे गिरते फूँनोवाले मस्तकसे चन्द्रापीडके चरणोंकी पूजा कर, निरुलते
स्वेदामृतसे गीले हाथोंमे उसको उठा कर गोदमे ले कर बैठ गई।

३७६—इतनेमे उसके स्पर्शसे मानो सजीवन होते चन्द्रापीडके शरीरमेसे,
उस सब प्रदेशको मानो हिममय करता, अस्पष्ट रूपका, चन्द्रमाके समान
धवल, कुछ ज्योति-सा भूट प्रकट हुआ और तत्काल ही अन्तरिक्षमे, माना,
अमृत बरसाती हो ऐसी, शरीररहित वाणी सुनाई दी—तसे महा ते, फिर
भी मैं तेरा आश्रासन करता हूँ। तेरे पुण्डरीकका शरीर मेरे लोहमे, मेरे
तेजसे पुष्ट होता हुआ, तेरे साथ समागमके लिए विनाशरहित दियत
है। यह दूसरा मेरे तेजसे युक्त, स्वयं ही विनाशरहित, और विशेष कर
कादम्बरीके कर-स्पर्शसे पुष्ट होता हुआ चन्द्रापीडका शरीर, शाप दापमे युक्त
होने पर भी, आत्मासे दूसरेके शरीरमे प्रवेश करनेवाले योगीके गणरुक्त
समान, यही तुम्हारे दोनोंके विश्वासके लिए, शाप क्षय तक भले ही रहे।
न इसका अग्नि सस्कार करना, न इसे जलमें डालना, और न इसे फेंकना,
परन्तु जब तक समागम न हो तब तक अन्तमे रचना।

३७७—इसे वचन सुन कर—यह क्या है?—यो हृदयमे निम्न शक्ति
पत्रलेखाके सिवाय सब परितन आकाशकी और निमेष रहित दृष्ट करके। न
निये मे लड़े रहे। परन्तु पत्रलेखा उम ज्योतिक—गुणरुक्त माना शीतल
तथा आल्हादक—स्पर्शसे सचेतन हो, उठ कर, माना आकाश ही इस प्रकार,
जल्दी दौड़ सड़के हाथोंसे चन्द्रापीडका शरीरमे पुष्ट कर—इसके
जनाका तो जो रीना होगा सो रोना ही, परन्तु मानी विना कपल अन्त
कर चले गए इनसे तेरा जग नर भी यहाँ दृष्टना अन्त ही गया—
तो रहती हुई उनके साथ ही अन्तमे मरे मन में लगी।

३७८—उन दोनोंके उभरते आकाश में इतने जगल ही के जगल

प्राकारका एक तापस कुमार एक साथ बाहर निकला । जिसमे मानो शैवल-
ममू चिपट गया था ऐसे शिर में से वह पानीकी बूँदें टपकाता था, उसकी
लम्बी शिखा इधर इधर लटक रही थी, और मुँह पर बाल उलझ जाने
तथा सस्कार न करने से मलिन होने के कारण जो बहुत दिन से ऊपर नहीं
बँधा गया था ऐसा जटा-कलाप धारण करता था । जो मानो मृणाल-
तन्तुओंका बना मालूम होता था ऐसा जनेऊ उसके गीले शरीरसे चिपट रहा
था, बसन्त कमलिनीके उलटे पत्तेके समान सफेद—जीर्ण मदारवृक्षके—बल्कलका
उमने परिधर बाँध रक्खा था । वह मुँह पर गिरती हुई जटाको हाथसे हटा
रहा था और आँसुओंके बहाने भीतर प्रविष्ट हुए अञ्छोदके जलको मानो
लाल लाल नेत्रोंमें धारण कर रहा था । वह मुनिकुमार पानीमेंसे निकल कर
दूरसे ही, वेग पूर्वक आँसू ग्रा जानेसे आकुल होने पर भी एकाग्र दृष्टिसे
दगती हुई, महाश्वेताके पास आकर शोकके कारण गद्गद् कठसे बोला—
गर्धराजपुत्री, जन्मान्तरमें मानो आए हुए इस जनको पहचाना या नहीं ?
यह प्रश्न सुन कर शोक तथा आनन्द दोनोंका एक साथ अनुभव करती हुई
महाश्वेता सभ्रम-पूर्वक उठी तथा उसके चरणोंकी वदना करके बोली—भगवन्
कीजल, क्या मैं ऐसी पापिन हूँ कि आपको न पहचानूँ ? अथवा मैं
आत्मज्ञानसे शून्य हूँ इस कारण मुझमें यह सभावना ठीक भी है, क्योंकि
दर पुण्डरीकमा स्वर्गास होने पर भी मैं अज्ञानसे अत्यन्त उपहत होकर
गीत धारण करती हूँ । कहिए तो उनमें कौन उठा ले गया ? क्यों ले
गया ? उठा क्या हुआ ? वे क्यों हैं ? आपको क्या हुआ था कि इतना समय
तन पर नीं चुड़चुर न भेची ? देवके बिना अकेले कहाँसे आए ? महाश्वेता
य प्रश्न तन पर कीजल उत्तर देने लगा और वित्मपसे ऊँचा मुँह करके
तन ऊपर पड़ते पाद-दरोंके परिजन तथा चन्द्रापीडके अनुगामी राजपुत्र उसकी
आरसे लगे ।

आँखें खोल खोल कर उसे देखने लगे, घुँघटसे मुँह ढकने वाली दिव्या-
 गना अभिमार्किाँ उसे आकाशमें रास्ता देने लगीं, प्रीर चंचल पुाली युक्त
 नेत्रोंवाली तारिकाँ इधर उधरसे प्रणाम करने लगीं, ऐसे देताप्रोक्त गन्तेमें
 होकर, आकाश-सरोवरके कुमुदाकरके समान, तारागणोंका अतिक्रमण कर
 वह चन्द्र लोकमें गया । उसके सब लोक चाँदनीसे रमणीय लगते थे । वहाँ
 महोदया नामकी सभामें एक बड़े चन्द्रकातमय पलंग पर पुडरीकके शरीर
 को रख कर वह मुझसे कहने लगा—कपिजल, मुझे चन्द्रमा जान । ममारके
 हितके लिए उदय होकर मैं अपना काम करता था उस समय कामपरासे
 प्राण छोड़ते हुए तेरे इस भियमित्रने मुझ निर्दोषको आप दिया कि दुर्गात्मन्,
 दुष्ट चन्द्र, जैसे किरणोंसे सताप देकर प्रीर अनुराग उत्पन्न करके तूने मुझे
 प्राणप्रियाके समागमसुरके बिना प्राणोंसे वियुक्त किया है उभी तरह तू
 भी—जिसमें कर्मके अनुसार फल मिलता है ऐसे—इस भारतवर्षमें जन्म
 जन्ममें अनुरागी हो, समागमसुरके बिना, अत्यंत तीव्र हृदय रोशनाका
 प्रनुभा कर प्राण छोड़ेगा । यह सुन उसके शापही प्रभ्रिसे मानो भ भट्टाष्ट
 प्रजलित हो गया प्रीर—अपने दोषका फल भुगतनेवाले इस त्रिकशीने
 मुझ निर्दोषको क्यों आप दिया ?—इस विचारसे मोव आ जाने पर—तू भी
 मेरी तरह सुखदुःख भोगेगा—यह आप मने भी इसे दिया । परन्तु मोष
 शान्त होने पर स्वस्थ बुद्धिसे मने विचारार् तब मुझे मातूम हुआ कि शशा
 महाश्वेताके साथ सब है । पुत्री महाश्वेता तो मेरी किरणोंमें उत्पन्न हुए
 अप्सराओंके कुलमें गौरीसे उत्पन्न हुई है प्रीर इस मतीका उगने का प्रण
 ॥ है । परन्तु अब तो इसे अपने दोषसे ही मेरे साथ मृत्युनोक्तम दा पर
 अवश्य जन्म लेना पड़ेगा, नहीं तो—जन्म जन्ममें—यह इच्छाके निर्विक
 हो जायगी । इसलिए अब तक यह आपके दोषमें लूटे तब तक इसका आशा
 रहित शरीर विनाष्ट न हो इस कारण मैं उठा लाया हूँ प्रीर पुत्री महाश्वेताका
 नने आधावन कर दिया है । इच्छे पर यहाँ मेरे । नि पुष्ट शाप हुआ
 आपके क्षीण होने तक रहेगा । अब तू जान्य यह मृता श्वेताको ही है ।
 उक्त महा प्रभाव है । कर्मात्मा ने नहीं कुछ उगा है । इसका पर
 उसने मुझे विदा किया ।

३८०—मित्रके बिना शोकके वेगसे अघा होकर देवताओंके रास्तेमें
 ढोड़तेमें मने एक अत्यंत क्रोधी वैमानिकको उलॉप दिया । क्रोधकी अग्निसे
 मानो भस्म करता हो इस प्रकार भृङ्गुटीसे विकराल हुए नेत्रोंसे मुझे देखकर
 उसने कहा—दुर्ग मन्, मिथ्या तपोबल-गर्वित, आकाशके इतने चौड़े रास्तेमें,
 बाइकी तरह उन्मत्त होकर चलतेमें तूने मेरा उल्लंघन किया इसलिए घोड़ा
 होकर ही तू मृत्युलोकमें जन्म ले । यह सुन आँखोंमें आँसू भर कर और हाथ
 जोड़कर मने उनसे कहा—भगवन्, मित्रके शोकसे अघा होनेके कारण मुझसे
 तुम्हारा उल्लंघन हो गया, अवज्ञासे नहीं । इस कारण कृपा कर इस आपकी
 शीघ्र दूर कीजिए । उसने कहा—मेरा कहना अन्यथा न होगा, परन्तु इतना
 मैं करता हूँ कि थोड़े काल तक भी तू जिसका वाहन होगा उसके मरने पर ही
 नदा कर आपसे छूट जायगा । तब मने फिर उससे कहा—भगवन्, जो यह
 बात है तो मैं इतनी प्रार्थना करता हूँ कि मेरा प्रियमित्र पुण्डरीक भी चन्द्रनाके
 साथ, आपके कारण, मृत्युलोकमें ही जन्म लेनेवाला है इसलिए आप दिव्य
 दाय त देख कर इतनी भी कृपा करिए कि जिसमें घोड़ा होकर भी मेरा उठी
 मित्रके साथ अभियोगमें समय निकले । यह सुनकर, क्षणभर ध्यान कर, उसने
 कहा—तेरे स्नेहसे हृदय आर्द्र हो जानेके कारण मैंने देखा तो मालूम हुआ
 कि उज्जयिनीमें पुत्रके लिए तप करते हुए राजा तारादीर्घके यहाँ, स्वप्नमें
 पत्नी सचवा दे, चन्द्रमा पुत्ररूपसे पैदा होगा । तेरा मित्र पुण्डरीकभी
 उठी राजा के शुभनास नामक मंत्रीका पुत्र होगा और तू उस महोपकारी
 चन्द्रात्मक राजकुमारका वाहन होगा । उसका वचन सुनतेही मैं नीचेके महा-
 सागरमें जा पड़ा शर बरोंसे घोड़ा होकर निकला । घोड़ा बन कर भी मेरी
 पेटना नही गई, जिससे मैं इसी प्रयोजनसे मित्र-मियुनके पीछे लगे हुए
 चन्द्रमाके अन्तर्गत चन्द्रापीड़की इस जगह ले आया और पदलेके अनुरागके
 कारण ते अभिलाषा करते हुए जिस युवकको तुमने बिना जाने आपापिते
 मने भर उठाया, पर नी नेरे प्यारे मित्र पुण्डरीकका अन्तार था ।

मव लोकमें मुझे ही देखनेवाले, लोकान्तरमें जाने पर आपके विनाशके लिये
 में ही गन्तसी उत्पन्न हुई ! जले प्रजापति का मुझे पैदा करने और पत्नी आप
 देनेका क्या यही प्रयोजन था कि बार बार मेरे सचसे आपका मरण हो !
 आपकी हत्या करके मैं पापिन भिसे उलाहना दूँ ? क्या रहूँ ? क्या विलाप
 करूँ ? किसकी शरण जाऊँ ? कौन मुझ पर दया करेगा ? अब मैं अपने प्राण
 प्रार्थना करती हूँ कि देव, प्रसन्न होकर दया करो । मुझे उत्तर दो । इन
 अक्षरोंके कहनेमें भी मुझे शरम लगती है । मेरा खयाल है कि आपको भी
 मुझ मदभागिनी पर विराग उत्पन्न हो गया है जिससे इतना विलाप करने पर
 भी मुझे उत्तर नहीं देते हो । हा ! अपने इस जीवन पर ग्लानि न होनेसे दो
 मेरा इनन हुआ ! यों कहती कहती महाश्वेता भूमि पर गिर पड़ी ।

३२२—उसे इस तरह विलाप करती देरा कर्पिजल अनुकम्पासहित
 बोला—गंधर्व-राजपुत्री, इसमें तुम्हारा क्या दोष है जो तुम अपनी अनिन्दनीय
 आत्मा ही निन्दा करती हो ? अब केवल सुप्त-मय परिणामक अनुभव करनेके
 समय दुःख का क्या अवसर है जो तुम शोकसे अपनेको पीड़ित करती हो ? जो
 अत्यन्त असह्य था उसे तो तुमने समागमकी आशासे हृदयको रुद्ध करके सह्य
 कर लिया है । जिस प्रकार आप देखते हैं तुम दोनोंको यह दुःख मिला सो सब
 मने तुममें कहा ही है और चन्द्रमा ही भी पाणी तुमने सुनी ही है । इसलिए
 तुम्हारी तथा मेरे मित्र ही जिससे भलाउ न हो उसे शोकके वेगको छोड़ दो ।
 दोनोंही भलाईके लिए तब प्रहृष्ट करके जा योग्य था तुम हसने लगी हो उम
 गयी रसो । भली भाँति तब करनेसे असाध्य कुछ नहीं रहता । पापिणीने भी
 प्रभावसे महादेवका अत्यन्त दुर्लभ देश विपद प्राप्त किया था । इसी प्रकार
 भी थोड़े ही दिनोंमें, उसी भाँति तबके प्रभावसे, मेरा मित्रक उन्मत्त
 योनाचमान होगी । इस तरह उसने महाश्वेताको समझाया ।

३२३—फिर महाश्वेताके शोकका भार शाल्य होने पर विषादमें दोन
 नानी नन्दचरीने कणव्रतने पृष्टा—नगवन्, तुम आर पत्नीका जानना था
 सरोवरके जलम प्रवेश किया था । इसलिए उसका तब दुःख भी का
 कष्ट है । उसने उत्तर दिया—राजपुत्री, पाता है तुमने कष्ट दुःख भी उगा
 शक्ति नगे नहीं जाना । इसलिए चन्द्रमक चन्द्रापीडना था । तुमने

पशुभावनाका जन्म कहाँ हुआ, और पत्रलेखाको क्या हुआ—यह सब वृत्तांत जाननेके लिए मैं, लोकत्रय जिनको प्रत्यक्ष हैं ऐसे, तात श्वेतकेतुके चरणोंमें जाता हूँ । यो कहता कढ़ता ही वह आकाशमें उड़ गया ।

३२४—उत्तके जानेके पीछे मादम्यरी विस्मयके कारण सब शोक भूल गइ । चन्द्रादीडो देव उनकी आँखोंमेंसे आँसू टपकने लगे । जब राजपुत्र पारजन-नहित अपने अपने स्थानको चले गए तब वह महाश्वेतासे कहने लगी—प्रियसखी, तेरे साथ एक ही दुखिया बना कर भगवान् दैवने मुझको सुख दीन नहीं किया है । आज मेरा सिर ऊँचा हुआ । अब तुझे मुँह दिखाते हैं तथा प्रियसखी कह कर बोलतेमें मुझे शरम नहीं लगती है । आज ही मैं तेरी प्रियसखी हुई । अब मुझे जीने अथवा मरनेका कुछ दुःख नहीं होगा । मुझे और किससे पूछना है ? अन्य कौन मुझे सलाह देगा ? इस लिए अब इस समय जो करने योग्य हो वह तू मुझसे कह । मैं स्वयं कुछ नही जानती कि क्या करनेसे भलाई होगी । यह सुन महाश्वेताने कहा—प्रियसखी, प्रश्नका या उपदेशका यहाँ क्या प्रयोजन है । जो अलघनीय प्रसन्नरूपगामवी प्राशा तुझसे करावे वही करना चाहिए । पुंडरीकना वृत्तान्त आज भविष्यके मुखसे ठीक ठीक सुन ही लिया है । तब तो केवल प्राशासे ही आशवासित होकर मैं और कुछ नहीं कर सकी थी । परन्तु तुझे यह बात बताना है, यामकि तब तो यह विश्रान्त-दायक चन्द्रापीडना शरीर में ही है । अगर यह बात न होती तो कुछ चिंता बरतने की जाती । परन्तु अब तब यह बात बताना है तब तक इसकी सँभाल करनेके विषय और बात बताना है । प्रत्यक्ष देवता-प्रोती निन्दी, पत्थर आर कठकी प्रतिमाओंका, कल्पित लिए, पूजा तथा सत्कारसे उन्चार किया जाता है, तब फिर प्रत्यक्ष देव धारण कर प्राण हुए, प्रत्यक्ष देव चन्द्रमानी, निना आराधनाके रूप में हुए, वे ही जाना जाते हैं ।

सब लोकोंमें मुझे ही देखनेवाले, लोकान्तरमें जाने पर आपके बिनाशके लिये मैं ही राक्षसी उत्पन्न हुई ! जले प्रजापति का मुझे पैदा करने और बड़ी आयु देनेका क्या यही प्रयोजन था कि बारबार मेरे सबसे आपका मरण हो ! आपकी हत्या करके मैं पापिन बिसे उलाहना दूँ ? क्या बहूँ ? क्या विलाप करूँ ? किसकी शरण जाऊँ ? कौन मुझ पर दया करेगा ? अब मैं अपने आप प्रार्थना करती हूँ कि देव, प्रसन्न होकर दया करो । मुझे उत्तर दो । इन अक्षरोंके कहनेमें भी मुझे शरम लगती है । मेरा खयाल है कि आपको भी मुझ मंदभागिनी पर विराग उत्पन्न हो गया है जिससे इतना विलाप करने पर भी मुझे उत्तर नहीं देते हो । हा ! अपने इस जीवन पर ग्लानि न होनेसे ही मेरा हनन हुआ ! यों कहती कहती महाश्वेता भूमि पर गिर पड़ी ।

३८२—उसे इस तरह विलाप करती देख कपिजल अनुकम्पा सहित बोला—गंधर्व-राजपुत्री, इसमें तुम्हाग क्या दोष है जो तुम अपनी अनिन्दनीय आत्माकी निन्दा करती हो ? अब केवल सुख-मय परिणामक अनुभव करनेके समय दुःखका क्या अवसर है जो तुम शोकसे अपनेको पीड़ित करती हो ? जो अत्यंत असह्य था उसे तो तुमने समागमकी आशासे हृदयको दृढ करके सहन कर लिया है । जिस प्रकार आप देवसे तुम दोनोंको यह दुःख मिला सो मैंने तुमसे कहा ही है और चन्द्रमाकी भी वाणी तुमने सुनी ही है । इसलिए तुम्हारी तथा मेरे मित्रकी जिससे भलाई न हो ऐसे शोकके वेगको छोड़ दो । दोनोंकी भलाईके लिए व्रत ग्रहण करके जो योग्य तप तुम करने लगी हो उसे जारी रखो । भली भाँति तप करनेसे असाध्य कुछ नहीं रहता । पार्वतीने भी प्रभावसे महादेवका अत्यंत दुर्लभ देहार्चन प्राप्त किया था । इसी प्रकार भी थोड़े ही दिनोंमें, उसी भाँति तपके प्रभावसे, मेरे मित्रके उत्सवमें भाग्यमानी होगी । इस तरह उसने महाश्वेताको समझाया ।

३८३—फिर महाश्वेताके शोकका भार शान्त होने पर विषादमें दीन सुखवाली कादम्बरीने कपिजलसे पूछा—भगवन्, तुम और पत्रलोका दोनोंने इस सरोवरके जलमें प्रवेश किया था । इसलिए उसका न्या टूटा सो कृपा कर कहिए । उसने उत्तर दिया—राजपुत्री, पानीमें घुमनेके पीछे कुछ भी उषमा हाल मैंने नहीं जाना । इसलिए चन्द्रात्मक चन्द्रापीडना तथा पृथ्वीरत्न

पशुभायनका जन्म कहाँ हुआ, और पत्रलेखाको क्या हुआ—यह सब वृत्तांत जाननेके लिए मैं, लोकत्रय जिनको प्रत्यक्ष हैं ऐसे, तात श्वेतकेतुके चरणोंमें जाता हूँ। यों कहता कहता ही वह आकाशमें उड़ गया।

३८४—उत्तके जानेके पीछे ऋद्धमरी विस्मयके कारण सब शोक भूल गइ। चन्द्रादीहको देव उसकी आँखोंमेंसे आँसू टपकने लगे। जब राजपुत्र परिजन-महित अपने अपने स्थानको चले गए तब वह महाश्वेतासे कहने लगी—प्रियसखी, तेरे साथ एक ही दुखिया बना कर भगवान् दैवने मुझको गुण दीन नहीं किया है। आज मेरा सिर ऊँचा हुआ। अब तुझे मुँह दिखाते में तथा प्रियसखी कह कर बोलतेमें मुझे शर्म नहीं लगती है। आज ही मैं तेरी प्रियसखी हुई। अब मुझे जीने अथवा मरनेका कुछ दुःख नहीं होगा। मुझे और निरासे पृथुना है? अन्य कौन मुझे सलाह देगा? इस लिए अब इस समय जो करने योग्य हो वह तू मुझसे कह। मैं स्वयं कुछ नहीं जानती कि क्या करनेसे भलाई होगी। यह सुन महाश्वेताने कहा—प्रियसखी, प्रश्नका या उपदेशका यहाँ क्या प्रयोजन है। जो अलघनीय प्रमाण समागमकी आशा तुझसे करावे वही करना चाहिए। पुडरीकना वृत्तान्त प्राज कभिजलके मुखसे टीक टीक सुन ही लिया है। तब तो केवल जगतीसे ही आराधित होकर मैं और कुछ नहीं कर सकी थी। परन्तु तुझे मरना पड़ा है, मरनेके तो यह विश्वास-दायक चन्द्रापीड़ना शरीर गोमे हो है। अगर यह बात न होती तो कुछ चिंता बराबर की जाती। परन्तु अब तब यह बातनाशा है तब तक इसकी सनाल करनेके सिवाय और क्या करता है? प्रत्यक्ष देवताओंकी निन्दा, पत्थर आर कठकी प्रतिमाओंका, भलाईके लिए, पूजा तथा सत्कारसे उन्चार निरा जाता है, तब फिर प्रतीक जाननेके लिए पर प्राण हुर, प्रत्यक्ष देव चन्द्रमानी, निना आराधनाके नरक हुआ। तैसी बात नत है।

मणि जटित करुणको छोड़ सब शृंगार-वेष तथा गहने उतार डाले । फिर स्नान करके शुद्ध हो, धुले हुए दो माफ कपड़े पहने और अदर पर लगे हुए ताम्बूलके रंगको बार बार धोया । रोकने पर भी बराबर चले आते आसुओंके वेगसे उसके नेत्र चंचल हो गए और दुष्ट प्रकृतिवाले, अकार्य-कुशल, दग्ध विधिके प्रभावसे वह विचारी बाला उस समय कुछ और ही अचिन्तित, अनुत्प्रेक्षित, अशिक्षित, अनभ्यस्त, अनुचित और अपूर्व आचरण करने लगी । जो सुगन्धित फूल, धूप, लेप आदि सुतोपभोगके लिए लाई थी उनसे ही उसने चन्द्रापीड़की मूर्तिकी देवताओंके योग्य पूजा की । देवघारिणी शोरु-वृत्ति मानो आर्त रूपसे हो, उसी क्षण मानो उमका रूप बदल गया हो, और शून्य-मुखी होनेसे मानो प्राण-विहीन हो ऐसी कादम्बरी चन्द्रापीड़के मुखकी ओर देखती, दुःखसे हृदय भर जाने पर भी आसुओंको रोकने लगी और अत्यन्त प्रबल शोकके कारण मरणसे भी अधिक कष्ट-दायक अवस्थाका अनुभव करने लगी । चन्द्रापीड़के चरणोंको योका यों ही अपनी गोदमें रख कर उसने, दूरसे आनेके कारण खिन्न तथा लुभावतुर और स्नान, पान, भोजन न करते हुए, दुःखाकुल होनेसे जिनको अपने आपकी भी सुब नहीं थी ऐसे, राजपुत्रोंके तथा अपने परिजनोके साथ निरादार रह कर वह दिन बिताया ।

३६६ - जिस तरह सब दिन उसी प्रकार रात्रि बिताई । वह रात्रि गभीर सघोंके छा जानेसे भयानक मालूम होती थी, निरन्तर गर्जनासे हृदयको कँपाती थी, मयूरोंकी मधुर केकाके कोलाहलसे चित्तको व्याकुल करती थी, करते मेंडकोंके शब्दसे कानोंको मुन्न करती थी, जो देती न जा ऐसी त्रिजलीभी चमकसे नेत्रोंका पीड़ा देती थी, प्रचंड गर्जनासे पेदा भयसे भुमनोंको ज्वर उत्पन्न करती थी और चमकते हुए बहुतेसे सपनोंसे जर्जरित हुए—वृद्धोंकी घटाओंके तलेके—अवसरसे अधिक भयंकर लगती थी । उस रात्रिको स्त्रियोंका स्वाभाविक भय दूर कर, चन्द्रापीड़के चरण-कमलोंका परित्याग न कर, अपने शरीरके खेदकी परवा न कर, जागते जागते ही मानो एक क्षण हो यों, बैठ कर उसने बिताया । प्रातःकाल चन्द्रापीड़का शरीर चित्रके समान उन्मीलित हुआ देखा पर, धीरे धीरे उसे

हाथने तर्पण करके वह पास बैठी हुई मदलेखासे कहने लगी—प्रियसखी मदलेखा, न जाने प्रणयके या निर्विकारताके कारण हो परन्तु मुझे तो यह शरीर धेड़का वैसा मालूम होता है। इसलिए तू भी जरा मावधानतासे देख। यह मुन कर मदलेखाने उत्तर दिया—प्रियसखी, इसमें देखना क्या है ? अन्तरात्माके वियोगसे इसके केवल व्यापार ही शान्त हो गए हैं; नहीं तो, मिले हुए कमलके समान, लक्ष्मीसे जग भी उन्मुक्त न हुआ यह मुँह उमेका वैसा हो है। चंचल अग्रभागवाला यह स्निग्ध केश-कलाप वैसा ही है। चन्द्रमालाके समान ललाटकी शोभा वैसीकी वैसा है। थोड़े मुँदे नीले कमलके समान दक्षिण, कानोंके छोर तक पहुँचते, दोनों नेत्र भी वैसे ही हैं। शम्भु त्रिना भी मानो हँसते हो ऐसे गालोंकी शोभा देते मुखके प्रान्तभाग वस ही हैं। नये पल्लवकी छुट्टियाला अर वैमेका वैसा ही है। प्रवालके समान लाल नख, उगलिर्वा तथा तलुवेवाले हाथपैर वैमे ही हैं और सहज लावण्य तथा सुकुमारतासे युक्त अग्रयर्वाका सौन्दर्य भी वैसा ही है। इसलिए मेरी यामे हमारा सुती हुई वाणी तम वरिजलके वदे हुए श्रावका वृत्तान्त सचा है। मदलेखाने यो वहा तम ग्रानदसे प्रफुलित होकर वादरगीने महाश्वेता य वह शरीर दिखामा अर चन्द्रापीडके चरण-तलके अधीन जीवनवाले राजपुत्रों भी दिखामा ।

खाने-पीनेकी आज्ञा दी । उनके स्नान-भोजन कर चुकने पर आपने भी महाश्वेताके तथा परिवारके साथ उन्हींके लिए हुए फल खाए और आहारके बाद फिर उसी तरह चन्द्रापीड़के चरणोंको गोदमें लेकर वह दिन भी बिताया ।

३८८—दूसरे दिन चन्द्रापीड़के शरीरके प्रविष्ट रहनेका अधिक विश्वास होने पर वह मदलेखासे कहने लगी—प्रियसखी, प्राणनाथके शरीरकी सेवामें आप तब तक अवश्य हमको सहो रहना पड़ेगा । इसलिए तू जाकर माता-पितासे अत्यंत अद्भुत वृत्तान्त कह आ जिससे मेरे विषयमें वे ग्रन्थया विचार न करें अथवा दुःखी न हों । तू ऐसा करियो जिसमें वे मुझ दुःखिनीको आकर न देखें । माता-पिताको देख कर मुझमें शोकका वेग रोकना नहीं सकेगा । देवको प्राणरहित देख कर तो मैं रोई नहीं थी । अत्र मैं उनका जीवन निःसंशय होने पर व्रताचरण करती हुई क्यों रोऊँ ? इतना कह कर उसको विदा किया ।

३८९—वहाँसे वापिस आकर मदलेखाने कहा—प्रियसखी, आपकी अभिलाषा पूरी हुई । चित्ररथ तथा मदिराने यह संदेसा भेजा है कि बार बार गाढ आलिगन कर, मस्तरु सूँघ कर, हमारी ओरने पुत्रीसे कहियो कि वस्से, अत्र तरु हमारे मनमें भी यह बात नहीं थी कि तुम्हें जामाता सहित देखेंगे । इसलिए आज हमको परम आनंद है कि तूने अपने आप वर हूँद लिया और वह भी भगवान् लोकपाल चन्द्रमाका अवतार है । इसलिए थोड़े ही दिनोंमें आपका अंत होने पर, कल्याणसे युक्त हम जामाताके साथ ही तेरा आनंदके आँसू छलकाता सुग-कमल देखेंगे । यह सुन कर शान्त चित्तसे चन्द्रापीड़के देवताके समान, सेवा करती करती वह वहीं रहीं ।

०—जब वर्षाऋतु बीत गई, बादलोंके कारण अपने स्थानमें ही रहने

बधन था उससे सत्र जीव-लोकका छुटकारा हो गया, दिशाएँ मानो

सत र पाने लगी, फलोंके भारसे झुके शालिके वनोसे प्राणोंकी सीमाएँ

पीली पीली दीखने लगी, काशके कुसुमोंसे वनद्वलियाँ सफेद हो गई,

प्रासादकी छतर्न काममें आने लगी, रुद्धारके कुनोंमें पल्लव मनोहर लगने,

फूलोंकी सुगंधसे रात्रि ठंडी हुई, प्रभातकी पवन निर्गुंडीके फूलाँकी परिमल-

सहित चलने लगी, चोंदनीसे प्रदोष-उमय रमणीय हुआ, गुन गाँवों हुए

कमलोंके परागकी महकसे दिन सुगन्धित हुए, तट पर कोमल रेतीकी रेखायें, चलेके लौट जानेके क्रमके अनुसार, तरंगोंके समान दीखने लगीं, नदियाँ सुखसे न न लायक हुई, बीचड़से आभावसे पगडटियाँ सूख गईं, वे पैरोंसे नहीं दबनेके कारण घाससे टक गईं और उनमें कहीं कहीं जरा जरा सूखी बीचड़में नए नए पत्र पड़े दखने लगे, उनका लोग फिर उपयोग करने लगे और कहीं बीचड़ न रहनेके कारण पृथ्वी पर घाड़ोंके खुर फिसलना बंद हो गया तब एक सम्प्रदायीके चरणोंके पास बैठे हुए कादम्बरीके निकट आकर मेघनादने विनय किया—देवी, युवराजको बहुत दिन हो जानेसे हृदयमें पत्र हुए देव तारापीड़, देवी विलासवती, और आर्य शुभनासने दूत भेजे हैं। उनसे हमने आपका शोक गल्य दूर करनेके लिए जेमे बना वैसे सब गुणामा कह दिया है कि न तो तुम्हारे साथ देव चन्द्रापीड़को कुछ संदेसा जाता है, न देवी कादम्बरीको। इसलिए बलम्व किए बिना ही वापिस जायें तुम प्रजाकी पीड़ा हरनेवाले देव तारापीड़से यह सब हाल कह दो। जब हमने दो बरत तब वे कुपित होकर बोले कि आपने कहा सो ठीक है। हमारा परागसे चला आया स्नेह, भक्ति और आज्ञाकारिता रहने दो, तो भी संदेसा ले जानेके कारणसे उत्पन्न हुआ सुतूहल ही हमको देवका दर्शन करनेके लिए प्रेरणा करता है। जो तुमने भी यह वृत्तांत कैवल सुना ही हो तब भी प्रतीति तब ही हमारा वापिस जाना ठीक है। पर जो तुमने उनके दर्शन किए तो उनसे तो हम भी कुछ जेमे अप्रपूरणशील नहीं हैं कि देवको न देखें। तब ही बहुत समय तब देवके चरणोंकी सेवा करके आत्माको पवित्र किया

३६१— इतना कह कर मेघनाद चुप हुआ तब उस द्रुण, जिसका आवासन न हो सके ऐसी सुमंगलकी भिकलनाकी तर्कना कर, मानो शोकसे उबली जाती हो इस प्रकार भीतर भरे आँसुग्रांथ, आमुल तथा तरल पुतलीवाले नेत्रोंमें, पान करती करती कादम्बरीने गद्गद् कण्ठसे बहुत देरमें जैसे जैसे उत्तर दिया - उन्होंने जानेसे इन्कार किया सो ठीक है । जो वे देवका दर्शन किए बिना यो ही लोट जायेंगे तो वहाँ जाकर क्या करेंगे ? फिर यह वृत्तांत भी ऐसा अलौकिक है कि देखनेसे भी इस पर विश्वास नहीं होता । फिर देखे बिना क्या ? जब केवल रूपसे प्रेमका ग्रंथुर दिखलानेवाले, जीवनको अतिग्ल्भ माननेवाले हम भी देवको देखते हैं, तब स्नेहकी सद्भावनासे प्राणोंकी परवा न करनेवाले नौकर चाकर न देखें - यह असम्भव है । इसलिए बिना विलम्ब उनको यहाँ आने दो, और देवको देखाने दो । वे आगमन परिश्रमके साथ नेत्र सफल करके फिर वापिस जायें । यह आज्ञा पाते ही मेघनादने उनको भीतर भेजा । दूरसे ही आँसू गिरा कर तथा पाँचों ओरोंसे भूतलको स्पर्श कर, चन्द्रापीड़के चरण कमलोंको वन्दना करनेके प्रेमसे पलक खोल कर वे निश्चल दृष्टिसे देखते रहे । चन्द्रापीड़को इस तरह देखते हुए उनको, अनन्य दृष्टिसे बहुत देर तक देख कर, कादम्बरी आप ही कहने लगी—

३६२— भद्रजन, कमागत स्नेह तथा सद्भावसे उत्पन्न हुए शोकका वेग छोड़ दो । जिसकी अवधि नहीं दीखती और जिसका अन्तमें सबल हुआ हो ऐसी चित्ते तो सचसुच मरनेसे डरनेवालोंको शोक होता है । परन्तु जिसके सुख है ऐसी आपदाको तो सामने दीखती सुखभी आशा ही रोक कर स्वयं प्रवेश नहीं करने देती । यह वृत्तान्त ऐसा है कि इसमें केवल शोकके लिए प्रवकाश ही नहीं है बल्कि बड़े भारी निश्चयका अपसर है । इस विषय में अधिक कहनेसे क्या प्रयोजन ? मनुष्योंमें पहले अन्यत्र नहीं देखा गया यह वृत्तान्त प्रत्यक्ष देखा और तुमने भी पहलेकी तरह विचारहीन शरीरवाले देवका मुख देखा और जो सभाषण देवके बिना नहीं हो सकता उसे भी भविष्यमें समझ जाना । इसलिए अब तुम समाचार सुननेमें उत्सुक हो तापपीड़के पास जाओ । परन्तु प्रत्यक्ष देखने पर भी इस मृत शरीरके विनाश

हीन होनेका हाल मत कहना । केवल इतना कहना कि हमने देवको अच्छीद मरीच पर देखा है, कारण यह है कि प्राणियोंका मरण तो अवश्य होता है । इसलिए इसका तो किमी भौति विश्वास हो भी जाय, परन्तु प्राणरहित जनके शरीरका अविनाश, देखने पर भी, विश्वासके अयोग्य होगा । इसलिए यह बात कह कर दू द्विमत गुरुजनोंको मरण सशयमे डालनेसे क्या प्रयोजन ? जब प्राणनाथ फिर जी उठेंगे तब यह अत्यंत अद्भुत बात गुरुजनोंको स्वय ही मालूम हो जायगी ।

३६३—यह श्रान्त सुन कर वे गोल देवी, हम क्या कहें ? इस बातका श्रान्त दा बतासे ही हो सक्ता है - या तो हमारे न जानेसे अथवा न कहनेसे । परन्तु ये दोनों बातें हमारे हाथमे नहीं हैं । युवराज तथा परमभयानके समाचार न मिलनेसे दु खित हुए देव तागपीड़, देवी प्रजापति प्रार श्रायं शुम्भनाशने हमको सम्मान पूर्वक यहाँ भेजा है । इसलिए जब तक हम जीवत हैं, न जानकी बात तो दूर रही, और जाने पर अत्यंत प्रय पुत्रके समाचार सुननेके उत्सुक गता, रानी तथा श्रायं शुम्भनास व—दु गने कारण श्रांसुश्रीमे दूवे नेत्रोवाले—मुखमी देख कर, हमारा गिनार मुगसे बाड़ा रहना असभव है । यह सुन कर तुमने ठीक कहा— तब त बादमन्त्रीने मेघनादसे कहा—मेघनाद, म जानती हूँ कि परिचित गीत लिए तद ठीक गता है, तथापि गुरुजनोंके चित्तमे पीड़ा न हो इस- लिए जने तब त था । सामान्य दु ख नी नना होता है ? फिर इस महा वरमर संगत दु खमे तो क्या ही क्या है ? इसलिए इतना करना तब त था । इसमीगानके लिए किनी ऐसे प्राद्वनीमे भेज दा जिसके कहने पर मरनास त प्रार । जने तद सन वृत्तान्त प्रत्यक्ष देखा हो ।

भी अनुराग न छोड़ें, फटकारने पर सामना न करे, सलाह पूछने पर हितकर तथा प्रिय बात कहे, कहे बिना अपना काम करे, काम करके कहते न फिर, पराक्रम करके अपनी तारीफ न करें, उनकी प्रशंसा की जाय तो शरमा जायें, बड़े बड़े युद्धोंमें, ब्रजोंके समान, आगे दीखें, दानके समय भाग कर पीछे छुप जायें, धनकी अपेक्षा स्नेह अधिक चाहे, जीनेसे पहले मरनेकी इच्छा कर, घरकी अपेक्षा स्वामीके पास सुखसे रहें, जिनको स्वामीकी चरण-सेवा करनेकी सदा तृष्णा रहे, स्वामीका अक्षत प्रसन्न करनेसे अभी सतृष्ट न हो, स्वामीके मुख दर्शनके शौकीन हों, गुण-वर्णनमें उत्साह हो, स्वामीको नहीं छोड़नेमें कृपणता हो, आत्मा होने पर भी जिनकी सत्र इन्द्रिय वृत्तियों अपने अधीन न होकर स्वामीके अधीन हो, स्वामीकी आज्ञा बिना कुछ न देखनेसे जो दृष्टि होने पर भी अवेके समान हो, सुनते हुए भी बहरेके समान हो, वाचाल होने पर भी मूकके समान हों, ज्ञान होने पर भी जड़के समान हों, हाथ पैर अखण्डित होने पर भी अपंगके समान हों, नपुसककी तरह आप कुछ न करते हो परन्तु स्वामीके चित्त-रूपी दर्पणमें प्रतिबिम्बके समान हो। इसलिए इन सब सेवकोंका तो यह हाल है और देवके स्थान पर आप हैं। इसलिए अन्न जो आज्ञा हो उसका पालन हुआ समझिए। इतना कह कर चन्द्रापीड़के बालकपनके सेवक त्वरितकमो बुला कर उनके साथ कर दिया।

३६५—बहुत दिनसे खर न पानेके कारण दुःखित हुई विलासवती, चन्द्रापीड़के आनेके लिए अवनतीके देवताओंकी मानता माननेको, जब वर्षाकी । । के मंदिरमें गई तब एक साथ ही उसने जल्दी जल्दी दौड़ते परि जनोसे सुना—देवी, आपके भाग्यकी वृद्धि हो। अवनतीकी माताएं आपके ऊपर प्रसन्न हैं। युवराजका समाचार लेनेके लिए भेजे गये दूत लौट आए हैं। यह सुन कर आनन्दके आँसू झलकाती, पानीमें भीगी हुई नील कमल-न्दकी मालाके समान, दूर तक फैलानेसे लंबी हुई दृष्टिसे मानो अर्चन करती हो यों बहुत देर तक दिशाओंको देख, अपने पच्चेसे मियुक्त हुई हिरनीके समान, जरा शांति पूर्वक साँस ले, प्राकृत क्रियोंके समान आर्त हो कर, विलासवती पूछने लगी—आर्णिके बहाने किसने मुझ पर अमृत प्रमाया ? किसने मुझ पर कृपा की ? किमने उनको देगा ? वे कितनी दूर हैं ? एत

उन्होंने मेरे बच्चेकी कुशलताका समाचार कहा ? वह इस तरह पूछती थी कि हमनेहीमे दूरसे त्वरितकके साथ दूतोंको आता देख कर, राजाकी सेवाके तथा बाहरके भी उजायनीके निवासी इधर उबरसे मुंडके मुंड दौड़ कर उनसे पूछने लगे—क्या ? युवराज आए हैं क्या ? तुम उनको कितनी दूर छोड़ आए दो ? इन दिनों वे कहाँ होंगे ? तुम उनसे कहाँ जाकर मिले थे ? साधनमें फेरल वाहन-सहित राजकुमारने अत्यंत कष्टदायक वर्षाऋतु कहाँ तिराई ? पोंडे पर गए थे हमसे मालूम होता है कि वह चलते चलते ही बीत गई होगी । त्वरितकों इसकी खबर होगी, पर यह बात जाननेसे भी क्या होगा ? हमलिए यह मतलाओ कि जिनके लिए युवराजने इतना कष्ट उठाया उन वैशम्पायनको तुमने देखा या नहीं ? उनको वापिस ले आए या नहीं ? पन्द्रहवाके साथ मेघनाद उनको मिला था क्या ? क्यों ? क्या देववर्धनने युद्ध सँदेसा नहीं बदलाया ? क्या वह अत्र तरु मुझे मित्र नहीं समझते ? सहसा जीवन सरायमें डाल कर जबरदस्ती गए मेरे पुत्र बालघर्माके समाचार पृथ्वीमें भी मुझे तो भय मालूम होता है । युवराजने प्रसन्न होकर जो घोड़ा उसे दिया था वह जीवित है या नहीं ? कृपा कर सवारोंमें प्रथम पृथुर्मा नामके मेरे मामाके समाचार सुनाओ । हमारा खयाल है कि सवारोंको बना कष्ट हुआ होगा । क्या महान् अश्वपति अश्वतेन कुशल पूर्वक है ? वे हमारे समुद्र हैं । यह अत्यन्त आश्चर्य है कि हमारे पिताने भी तुम्हारे साथ कुछ चिह्न नहीं भेजा । युवराजके भवनमें मेरे भाई भरतसेनको क्या तुमने देखा था ? वह बाली जिग्नेशरी के पद पर है । क्या सेनापति भद्रसेन परिजन सहित युवराज पूर्वक है ? क्या मेरा सेवा-चपसनी पुत्र सुनाग्धर्मा वहाँ है ? सेनाके अधिकारी अत्राणु के नाम क्या खबर है ? प्राण जानेके कारण युवराज उससे कुछ नाराज

जीवित रहेगी । ऐसे तथा ऐसे ऐसे अन्य प्रश्न पद पद पर किए जाने पर भी दूत, उच्चर दिए बिना, शोक-पूर्ण दृष्टिको नासिकाके अग्रभागमें स्थिर करके, आविष्ट हो इस प्रकार, रास्तेकी थकावटसे अग शिथिल होने पर भी बड़ी बड़ी छल्लोंमें मार कर, उत्साह दिखानेसे खिन्न हुई गतिसे चलते थे, उनके फटे वस्त्र अत्यंत मलिन हो गए थे, सस्कारके बिना शरीर भी मलिन हो गए थे; बार बार रास्तेकी धूल पड़नेसे उनके बाल कर्कश हो गए थे; मार्गच्छेदके वे मानो चिह्न थे, श्रमके मानो आश्रय थे, अन्य मनस्कुताके मानो पद न्यास थे, प्रवासके मानो आवास थे, और सब दुःखोंके मानो समूह थे । उनको देख कर मानाके मंदिरके आँगनमें ठहर कर विलासवतीने उनको बुलानेकी आज्ञा दी ।

३६६—तब अचानक रानीका दर्शन होनेसे उनके दुःखका आवेग दूना हो गया और मानो उनका उत्साह छिन गया हो, इन्द्रियाँ उन्हें छोड़ गई हों और मानो काष्ठ मय हों इस प्रकार शून्य शरीरवाले वे दूत, निजापके समान, आगे आए । वे प्रणाम भी न करने पाए थे कि इतनेमें ही विलासवतीने आँसुओंके कारण, अधी होकर गिरती हो इस प्रकार, भयसे स्पष्ट चरण कमलोंसे फितने ही पद आगे चल कर गद्गद् स्वरसे चिल्ला कर कहा—भद्रजनो, मेरे बेटेका जो समाचार हो वह मुझसे झटपट कहो । मेरा हृदय तो कुछ अन्यथा ही कहता है । उसको विश्वास नहीं होता । मेरे पुत्रको तुमने देखा या नहीं ? यह प्रश्न सुन कर एक साथ भर प्रातें आँसुओंको, भूतल पर मस्तक रख कर, प्रणाम करनेके बहानेसे गिरा कर, मश-से सामने मुँह उठा कर, उन्होंने विनय किया—देवी, अच्छोद सरोवरके तीर पर हमने युवाजको देखा है । बाकीका हाल यह त्वरितक निवेदन करेगा । उनके इतना कहते ही आँसुप्रति छाप हुए मुग्धसे विलासवती बोली—यह विचारा और क्या रहेगा ? दूरसे ही बिना दर्पके पाम आनेसे, हमारे पत्रोंके उत्तरसे रहित मस्तकोंसे, विगादसे दीन मुखोंसे, यत्न पूर्वक रोते हुए आँसुओंसे, दुःखी हुए नेत्रोंसे, और मेरे मुँहके सामने दृष्टि न करनेमें, जो कहनेको था वह तुमने ही कह दिया । हा वत्स ! जगदेकचन्द्र ! चन्द्रानन ? चन्द्र-शीतल-प्रज्ञने ! चन्द्राभिरामगुण ! लोचनानददायक ! तुम्हें । ॥

हुआ कि तू नहीं आया ! तात चन्द्रापीड ! मैं दुःखित होकर कहती हूँ; कोसे उलाहना नहीं देती । माता, मैं जराभी विलंब नहीं करूँगा—यों मुझने प्रतिज्ञा करके अन्यत्र रहना तुझे उचित नहीं है । पुत्र ! तू जाता था तभी मने अपने हृदयकी शकासे जान लिया था कि फिर तेरा मुख देखना दुर्लभ है । तू जबरदस्ती गया है । अब क्या करूँ ? अथवा इसमें तेरा क्या दोष है । यह मुझ मदभागिनीके अपुण्योकी चेष्टा है । लोकमें अपुण्यवती भी होती हैं, परन्तु मेरी सी कोई पापिन नहीं होगी जिसके एक ही पुत्रको यों अममयमें ही बल-पूर्वक पकड़कर विधाता नहीं ले गया ! जले विधिने मेरे साथ छल किया ! बेटा, तेरे दूर होने पर भी मैं तेरे पैरों पड़ती हूँ । एक बार वापिस चला आ । तेरे—माता—कहते हुए मुखको देखनेके लिए मेरा हृदय उत्कटित हो रहा है । दुर्लभ पुत्र ! मैं नहीं जानती कि जन्मके बाद तेरे बालकपनको याद करके शोक करूँ, या यौवनका विस्तार करती वर्तमान रूप-शोभाको, या तेर अलमनसे आगे स्थिर होनेवाली प्रभुताको विचार कर ? मुझे विलाप पसंदी देख पर, हृदयस्थित पुत्र, यों मत विचारियो कि मेरे बिना भी विलासवती जीती है । बेटा, तेरे बिना जीने पर भी मैं तेरे पिताको अब कैसे मुँह दिखाऊँगी ? नहीं मालूम तू प्यारा है इससे या तेरी श्राद्धति पर विश्वास होनेसे, या स्त्रीजनोकी स्वाभाविक भूटताहीसे अब तक मेरा हृदय तेरे आगष्ट पर विश्वास नहीं करता और इती कारण सहस्र-धा नहीं पड़ता । मैं उरती हूँ, त्वरितकसे तेरा वृत्तान्त स्पष्ट करना नहीं चाहती । नहीं जानने लायक बात सुननेके पहले ही मर जाऊँ तो अच्छा हो ! पुत्र, क्या तू भी पड़ता है कि पुत्ररत्नके अपोग्य लोकलज्जा कर, विकलतासे क्या पान ? ले देज, तेरे करनेसे मैं चुन ही गई । अब नहीं रोऊँगी । पासक साथ तेरे साथ । तारा लेकर वह जो कर रही थी कि उसे मूछ

का पान करता हो इस प्रकार बाहर निकला । क्या हुआ, क्या हुआ—
 यों आर्तस्वरसे कल कल करके सब ओरसे दौड़ते नगर निवासियोंके फुडसे
 ऐसा मालूम होता था मानो वह नगर द्वार, चौवारे, कोट, मंदिर तथा तोरण-
 सहित उजयिनीका पीछेसे आकर्षण करता हो अथवा उनको बाहर निम्नलता
 हो । वह अवंती माताके मंदिरके पास आकर उतरा तो उसने क्या देखा
 कि अपने आँसू भरे शोकातुर मुखों को मोड़ कर दासियाँ आवे खुले नेत्रवाली,
 उष्ण कालकी कमलिनी समान, विलासवती पर चन्दनजल छिड़क रही
 हूँ, केलेके पत्तों से हवा कर रही हैं और गीले हाथोंसे दान दान कर जैसे
 जैसे उसे सचेतन कर रही हैं । यह देख कर एक साथ बहती आँसुप्रोंकी
 धारासे बाकी बची मूर्च्छाको दूर करनेके लिए मानो सिंचाई करता करता
 पास बैठकर, स्पर्शरूपी अमृत बरसाते हाथ उसके ललाट पर, नेत्रों पर,
 गालों पर, छाती पर, तथा हाथों पर धीरे धीरे फेर कर, आँसुप्रोंके कारण
 गद्गद् हुए स्वरसे वह कहने लगा—देवी, अगर वत्स चन्द्रापीड़का
 वयार्थमे कुछ अनिष्ट हुआ होगा तब तो जियेंगे नहीं । इसलिए पुत्रके लिए
 साधारण लोगोंके योग्य विकलता दिखा कर क्यों अपनेको तुच्छ बनाती हो ?
 अपने अच्छे कर्म इतने ही होंगे । और क्या करें ? हम अधिक सुखके भाजन
 नहीं हैं । छाती कूटनेसे भी अप्राप्य वस्तु इच्छाके अनुसार प्राप्त नहीं हो
 सकती । यहाँ एक कोई विधि है, वह जो चाहे सो करता दे । वह किसीके
 न आधीन नहीं है । इस तरह जब सब पराधीन हैं तब हमको क्या नहीं

वत्सका अत्यंत दुर्लभ जन्मात्सव किया, गोदमें बैठा कर उसका मुँह

चित्त लेटे हुएका चुम्बन करके मस्तक पर चरण रखे, घुटनोंके बल

व, धूलसे धुसर हुए, शरीरको गोदमें खिलानेके सुपन्न अनुभव किया,

वत्सके अस्पष्ट तथा मनोहर बोल सुने; खेलतेमें उसकी माल लीला

दखी; विद्या पढ़ कर गुणवान् होने पर हृदयमें आनंद पाया, यौवन आने पर

उसकी अमानुषी रूप-शोभा तथा शक्तिको प्रत्यक्ष देखा, यौवराज्याभिषेकके बाद

मस्तकको सूँवा, दिग्विजयसे आकर प्रणाम करने पर उसके आर्गोहा आलिगन

किया; मनोचान्छित वस्तुओंमे केवल इतना ही माँगी है कि उसको नष्ट

भयसे अपने पद पर प्रतिष्ठित करके तपोधनमें न जा सके । सब इच्छाओंका

प्राप्ति तो महापुरुष करनेसे ही हो सकती है। और पुत्रको हुआ क्या?—यह तो अभी तक किसीने स्पष्ट कहा नहीं। इतना तो मैंने आज परिजनोंकी बातचीत में अल्पष्ट सुना था कि हमने जो दूत भेजे थे उनके साथ पुत्रका एक बाल सेवक त्वरितक आया है। वह सब हाल जानता है। उससे भी तो तुमने नहीं पूछा। इसलिए पहले उससे तो पूछ देवें। फिर जीने वा मरने का निश्चय किया जायगा। राजाके इस प्रकार कहने पर परिजनोंके पीछे बैठ त्वरितकको बुला कर और उसे दिखा कर प्रतीहारने कहा—महाराज, देखिए, दूरसे पृथ्वी पर मस्तक रख कर त्वरितक प्रणाम करता है।

१२८—राजाने उसको इस तरह देख, चन्द्रापीड़के लोह के कारण—आओ आओ—बढ़ कर तथा उसके माथे पर हाथ फेर कर कहा—कहो, त्वरितक, कुमारको क्या हुआ कि वह मेरे, अपनी माताके और मंत्रीके लिखने पर भी नहीं आया? न उसने नहीं आनेका कुछ कारण लिखा। ऐसा राजाका प्रश्न सुन वह प्रस्थानसे लेकर जो जो हुआ सब कहने लगा। परन्तु चन्द्रापीड़के दृश्य पढ़नेका हाल सुन कर राजा अत्यंत क्षुभित शोकसागर के आक्रमण से विद्वल हो गया और उसने हाथ लगा कर आर्तस्वरसे त्वरितकसे कहा—गार्ह, अब बस करो। जो बहनेका भासा तुमने कहा। मैंने भी जो सुननेका भासा सुना। मेरी जिज्ञासा पूर्ण हुई; सुननेका शौक जाता रहा; कान कृतार्थ हुए, हृदय आनादित हुआ, प्रीति उत्पन्न हुई; सुख भी हुआ। हा वत्स, तूने प्रेमसे ही हृदय पढ़नेकी वेदनाका अनुभव किया! वैशम्पायन पर तूने पूरी प्राप्ति की है! हम तुलिया दूर तथा कर्मचाडाल हैं कि तेरा हृदय पढ़ने का भी विचार है! देखी, हमारा हृदय बहवारसे भी अधिक कठिन है, जगत की भाव उससे हारो डकड़े नहीं होते। मरनेके दुखते भयभीत हुए भाव भी अभी भाव कर्तके पाड़े नहीं जायेंगे। इसलिए उठो; पुत्र को बुलाओ। तुम दूर न सुने तब तक ही उसके पीछे जानेका प्रयत्न करो। उसे तुमने प्रणय का जोरके जोरने ही खड़े हो? यही तो लोह के कारण है। लोहको, महामृतके मरिचके साथ, जल्दी चिता में डालनेका आलाप। लोहको, महामृत काउ इन्डा करो। कञ्चुकिनी,

क्यों इस तरह सिकुड़ कर लड़े हो ? जा कर अग्नि-प्रवेशके साधन चाहर लाओ । अब वेफायदा रोनेसे क्या होगा ? देवी, देर करनेसे विघ्न होगा इसलिए जल्दी सब खजाना ब्राह्मणोंको दिला दो । अब किसके लिए उसकी रक्षा करें । मुक्त पुण्य हीनको खजानेकी रखवालीसे अब कुछ काम नहीं रहा । राजा-लोगो, जहाँ जाना हो वहाँ जाओ । अब तुम स्वतंत्र हो । प्रजाको आज ही इसका दुःख न मालूम हो यों करना । मेरे पुत्रकी तो अब केवल कहानी रह गई । और किसको राज्य सौंप कर मैं जाऊँ ? यों आर्तस्वरसे प्रलाप करता हुआ-तारापीड़ अपनी पीड़ाकी परवा न करती हुई निलासवतीको पकड़ रहा था । उसे देख अत्यंत दीन त्वरितरुने विनय किया—महाराज, हृदय फटने पर भी युवराज अभी शरीरसे जीवित हैं, उनका तथा आप-दोषसे जिन प्रकार वैशम्पायनका जन्म हुआ उसका सब वृत्तान्त आप सुनिए ।

३६६—यह अद्भुत बात सुन कौतुकके कारण तारापीड़ अपना शोक भूल गया । उसने निमेषरहित नेत्रोंसे, मानो आविष्ट हो इस प्रकार ध्यान दे कर, जो जो त्वरितरुने देखा था, सुना था या अनुभव किया था, सब सुना । श्रनेत्र चिह्नोंसे विश्वास उत्पन्न कराने पर भी श्रद्धाके अयोग्य, अत्यंत शोक जनक तथा वित्तमयोत्सादक, दुःखसे सुननेके योग्य तथा कुतूहल पैदा करने वाला युवराज तथा वैशम्पायनका हाल सुन कर, जरा मुँद मोड़, उसने पित्रारसे निश्चय हुई पुनर्जीवाली दृष्टि शुकनासके—अपनेसे ही—मुँद पर डाली । मैत्र तो आप दुःखी होने पर भी अपना दुःख छिपाकर मित्रका दुःख दूर ही यह करते हैं; इसी कारण शुकनासने ऐसी अवस्थामें भी शुकनासके ; जे कहा—

०—महाराज, जिसमें देवता, पशु-पत्नी तथा मनुष्य भ्रमण करते हैं, सब दुःखमय तथा विचित्र संसारमें त्रिगुणात्मक^१ मूल-प्रकृतिमें उत्पन्न होनेसे, परमाणुसे लेकर प्रकाण्ड तककी उत्पत्ति, स्थिति तथा संशय-रूपी ईश्वरकी^२ इच्छासे, अथवा घर्माघर्मके साधन—इष्ट अग्निष्ट फलकी

१—सारय मंत्र ।

२—नैयायिक-मत ।

प्राप्ति करानेवाले—शुभाशुभ^१ कर्मोंके—फल देनेके—स्वभावसे, अथवा^२ अपने आप ही अनेक प्रकारसे उत्पन्न होते, स्थित रहते या नाशपाते—नियत व्यवस्थावाले—स्थावर-जगमोंकी कदाचित् कोई ऐसी अवस्था नहीं है जो संभव न हो । इसलिए क्यों आप इस बातके सत्यासत्यके विषयमें विचार करते हैं ? यदि आप इसमें युक्ति ढूँढते हैं तो यहाँ किननी ही युक्तिरहित बातें हैं जो विलकुल ठीक हैं और शास्त्रके प्रमाणसे ही समझी जा सकती हैं । मुद्रावध^३ अथवा गानने विषये नूर्द्धित हुए आदमीका विषय उतारनेमें क्या युक्ति है ? लोह-चुम्बकने लोहके आकर्षण अथवा भ्रमणमें क्या है ? वैदिक अथवा अश्वेदिक मंत्रसे अनेक प्रकारके कर्मोंकी सिद्धि होनेमें क्या है ? अनेक प्रकारके द्रव्योंके मयोगसे मरण, काम आदिनी उत्पत्ति, अपहरण, वशीकरण तथा विद्वेषणकी शक्ति उत्पन्न होती है । अन्य ऐसी ऐसी बहुतसी बातोंमें शास्त्रका ही प्रमाण है, और पुराण, रामायण, महाभारत आदि सब शास्त्रोंमें तो अनेक प्रकारके आपकी वृत्तान्त दिए ही गए हैं—जैसे महेन्द्र-पद प्राप्त करनेवाला राजर्षि नहुष, अमृतस्यके आपसे, अजगर हो गया था, पसिष्ठ-पुत्रके आपसे सौदास^४

१—मीमांसक मत ।

२—शून्यवाद ।

३—तत्र शास्त्रके धनुस्तार मंत्र पढ़कर उँगलियोंसे काटना ।

क्यों इस तरह मिकुड़ कर खड़े हो ? जा कर अग्नि-प्रवेशके साधन बाहर लाओ । अब वेकापदा रोनेसे क्या होगा ? देवी, देर करनेसे बिज्र होगा इसलिए जल्दी सब खजाना ब्राह्मणोंको दिला दो । अब किसके लिए उसकी रत्ना करें । मुझ पुण्य हीनको खजानेकी रखवालीने अब कुछ काम नहीं रहा । राजालोगो, जहाँ जाना हो वहाँ जाओ । अब तुम स्वतन्त्र हो । प्रजाको आज ही इसका दुःख न मालूम हो यों करना । मेरे पुत्रकी तो अब केवल कहानी रह गई । और किसको राज्य सौंप कर मैं जाऊँ ? यों आर्तस्वरसे प्रलाप करता हुआ-तारापीड़ अपनी पीडाकी परवा न करनी हुई निलारावतीको पम्प रहा था । उसे देख अत्यन्त दीन स्वरितकरने विनय किया—महाराज, हृदय पट्टने पर भी युवराज अभी शरीरमें जीवित हैं, उनका तथा आप दोषसे जित प्रहार वैशम्पायनका बन्ध हुआ उसका सब गृतान्त आप सुनिए ।

३६६—एक अद्भुत रात सुन कौतुकके कारण तारापीड़ अपना शोक भूत गया । उसने निमेषरहित नेत्रोंमें, मानो आविष्ट हो इस प्रकार ध्यान दे कर, जो जो लगितकरने देगा था, सुना था था अनुभव किया था, सब सुना । अनेक चिह्नोंमें विश्राम उत्पन्न कराने पर भी श्रद्धाके अयोग्य, अत्यन्त शोक-तनक तथा विम्बयोत्पादक, दुःख रागे सुननेके योग्य तथा कुतूहल पैदा करने वाला युवराज तथा वैशम्पायनका हाल सुन कर, जरा मुँह मोड़, उसने विचारमें निमग्न हुई पुनर्जीवाली दृष्टि शुकनासके—अपनेमें ही—मुँह पर डाली । नेत्र तो आप दुःखी होने पर भी अपना दुःख छिपाकर मित्रका दुःख दूर करनेमें ही यत्न करते हैं; इसी कारण शुकनासने ऐसी आस्थामें भी स्पर्शक
ने कहा—

महाराज, जिसमें देवता, पशु-पत्नी तथा मनुष्य भ्रमण करते हैं
उप-दुःखमय तथा विचित्र समारम्भे विगुणामक^१ मूल-प्रकृति
दोनेने, परमाणुने लेकर प्रजापति तककी उत्पत्ति, स्थिति तथा संश
ने देवकी^२ इच्छाने, अथवा घर्मायनके साधन—दृष्ट अग्नि पत्नी

प्राग्नि कानेवाले—शुभाशुभ^१ कर्मोंके—फल देनेके—स्वभावसे, अथवा^२ अपने प्राप ही अनेक प्रकारसे उत्पन्न होते, स्थित रहते या नाशपाते—नियत व्यवस्थावाले—स्थाय-जगमोमी कदाचित् कोई ऐसी अवस्था नहीं है जो सम्भव न हो । इगलिश् क्यों प्राग्नि हम घातके सत्यासत्यके विषयमें विचार करते हैं ? यदि प्राग्नि हममें युक्ति द्रष्टे हैं तो यहाँ किननी ही युक्ति-रहित बातें हैं जो बिलकुल शीर हैं और शास्त्रके प्रमाणसे ही समझी जा सकती हैं । मुद्राबंध^३ अथवा यानमें विषम मूर्च्छित हुए प्रादमीका विष उतारनेमें क्या युक्ति है ? लोह-जगमोमी लाहक आकर्षण अथवा भ्रमणमें क्या है ? वैदिक अथवा प्रवैदिक मंत्रोंमें अनेक प्रकारके कर्मोंकी मिला होनेमें क्या है ? अनेक प्रकारके द्रव्योंके उपयोगस मरण, काम प्रादिनी उत्पत्ति, अपहरण, वशीकरण तथा विद्वेषणकी शक्ति उत्पन्न होती है । अन्य ऐसी ऐसी बहुतसी बातोंमें शास्त्रका ही प्रमाण है और एगण, रामायण, महाभारत आदि सब शास्त्रोंमें तो अनेक प्रकारके यथाक हृत्तान्त दिए ही गए हैं—जैसे महेन्द्र पद प्राप्त करनेवाला राजर्षि तदुप, अगस्त्यके पापसे, अजगर हो गया था, वसिष्ठ पुत्रके धापने सोदाय^४

१—गोर्मासव मत ।

२—अन्य दाद ।

राक्षस हो गया था; शुक्राचार्यके श्रापसे ययाति^१ जवानीमें ही बूढ़ हो गया था, पिताके श्रापसे विश्वकु चाडाल हो गया था, सुना जाता है कि स्वर्गासी महाभिय^२ नामका राजा इस लोकमें शातनुके रूपमें पैदा हुआ था। उगके पत्नीत्वकी प्राप्त हुई गगाके आठों बसु श्रापदोसे मनुष्य होकर पैदा हुए थे। औरको रहनेदो। यह प्रादिदेव भगवान् अज स्वय ही जमदगिके पुत्र हुए थे, और सुना जाता है कि अपने चार भाग करके दशरथ राजपिके यहाँ पैदा हुए थे, इसी तरह मथुरामें बसुदेवके यहाँ भी। इसलिए मनुष्य लोकमें देवताओंका पैदा होना जरा भी असंभव नहीं है और जिनका हाल ऊपर कहा गया है उन मनुष्योंसे आप गुणोंमें कुछ कम नहीं हैं, और चन्द्रमा भगवान् नारायणसे बढ कर नहीं है। तो अब हममें असंभवा क्या है? और गर्भ रहनेकोथा तब आपने देवीके मुरामें चन्द्रमाको प्रवेश करते देखा ही था। इसी तरह मैंने स्वप्नमें पु ढरीकको देखा था। इसलिए इन दोनोंही उत्पत्तिके विषयमें तो कुछ संदेह ही नहीं है। विनष्ट होनेके अनंतर शरीरका अग्निनाश कैसे हुगा अथवा पुनरुत्थान कैसे होगा—इसमें सब लोकोंमें विदित प्रभावताला केवल अमृत ही कारण है, और चन्द्रमामें अमृतका होना कहा ही जाता है, इस लिए यह सब बात जैसे कही गई वैसी ही आपको माननी चाहिए। फिर ऐसे सब लोकोंके आलशदायक, उसके जैसे आकार तथा कालिमाके अन्व होना संभव ही नहीं है। इसलिए थोड़ा ही समयमें, श्रापका अंत होने पर, मंगलाने पूर्ण, गंवर्य पुत्रीके साथ विवाह होनेके बाद, बहूके साथ आगू मिया

१—ययाति शुक्राचार्यकी पुत्री देवयानीको छोड़कर अगुर कन्या शमिष्ठा

१) करने लगा। श्रम पर शुक्राचार्यने शाप देकर उसे बूढ़ बना दिया।

२—राजा महाभियने एक हजार अश्वमेध तथा सौ राजसूय यज्ञ किए।

३) एक बड़ मित्रा कि मृत्युके बाद उसने देवताओंके बीचमें स्थान प्राप्त किया। एक दिन देवता महाभियके साथ ब्रह्माके पास आगू और चर्चा गगा भी आई। हवासे गगाका बस उड़ गया तब सब देवताओंने तो अपने अपने नीचे कर द्विये पर महाभिय उसे देवता रहा। सब ब्रह्माने उसे शाप दिया कि दु छि मनुष्य होकर जन्म लेगा तथा गगा तेरी पत्नी होगी। तब महाभियने शापवजु होकर जन्म लिया।

कः पैरो पढ़ने, चंद्रापीड नाम धारण करके पुत्रके रूपमें आण हुए लोकपाल चन्द्रमाके दर्शनमें ही जन्ममें हुआ आपका मन संताप दूर हो जायगा । उनका यह आप हमको तो बर ही हुआ । इसलिए हम विषय में आप या मदागनी जरा भी शोक न करें, बल्कि मंगल-क्रियाओं का आरंभ करें; इष्ट देवताओंकी आराधना तथा द्रव्यके दानसे अन्य जन्ममें उपाजित पुण्यकी वृद्धि का, अपुण्यका भी यम, नियम, कष्ट देनेवाले व्रत, तथा उपवासादि तप उलेशसे नाश करें और जो कुछ हम समय और भी अच्छा काम सुना जाता हो या जाना गया हो उसे भी आजमें ही आरंभ कर दें तथा करा दें । वैदिक यज्ञ अथवा अर्धैदिक कर्मोंके लिए असाध्य कुछ भी नहीं है । महाकष्टसे प्राप्त हुए इन दोनोंकी उत्पत्ति भी इसी तरह हुई थी ।

४०१—शुक्रात्मके यों कहने पर राजाने दुःखित अवस्थामें ही उत्तर दिया—आपने जो कुछ पढ़ा उसे अन्य कौन समझ सकता है, तथा अन्य कौन हमको समझा सकता है, अन्य किसका वचन हमको मानना चाहिए । परन्तु दीशामयनवा दृश्य देख कर मेरे पुत्रका हृदय फट गया—यह घटना नदी तटके सामने फिर रही है । इसके सम्मुख और सब घटनाएँ तुच्छ मालूम होती हैं । मुझको वही दीखता है, वही सुनाई देता है, उसीकी तर्कना करता हूँ । इसलिए जब तक पुत्रका मुख प्रत्यक्ष नहीं दीखेगा तब तक मैं अज्ञाना समाधान नहीं कर सकूँगा । जहाँ मेरी ऐसी अवस्था है वहाँ देवीको समझानेकी जो बात ही दूर रही । इसलिए जीवन धारण करना है तो वहाँ अपने सिवाय अन्य उपाय नहीं है । यह बात निश्चय समझना ।

फिर चन्द्रापीडके दर्शनकी आशाका प्रबलवन करते, सर्वनाशके निवारणके साधन, पुत्र-मुत्र देखनेके उत्सुक इस हृदयको गमनमे विनोद होने दो । उसके यों कहते ही शुकनामके एक अत्यंत विवस्त्र वृद्ध ब्राह्मणने पास आकर आशीर्वाद-पूर्वक कहा—देवी, सब योगसे इस अस्पष्ट बातका कल-कल सुन कर हृदयमें व्याकुल हुई मनोरमा आप ही दोड़ती दोड़ती आ गई हैं, परन्तु राजकी लज्जासे यहाँ नहीं आईं । माताके मदिरके पीछे गड़ी हैं और आपमें पृच्छती हैं कि इन लोगोंने क्या कहा ? क्या मेरा पुत्र वैशम्पायन जीता जागता है ? क्या वह शरीरसे स्वस्थ है ? गुराजसे क्या वह फिर मिला था ? क्यों है ? कितने दिन पीछे दोनों आवेंगे ? उसके, मृत्युके समाचारसे भी अधिक कष्ट-दायक, उस प्रश्नको सुन राजा, शोकसे मानो पिदीर्ण हो गया तो इस तरह, सोगुने बड़े हुए शोकसे रोती गिलागवतीमे कहने लगा देवी, तुम्हारी प्रियमगीने दोनों पुत्रोंके सर्वभ्रमे कुल्य भी नहीं सुना है, और तब तुम्हेंगी तो मग्नचित् प्राण ही छोड़ बैठेगी । इसलिए उठो, तुम आप ही, भोग पराई, सब दान रहकर इस प्रकार अपनी प्रियमगीका आश्रासन करना, कि आर्य मुग्धागमे साथ वह भी चल । या रहकर उमने परिचार महित गिलागवतीको उठाकर वहाँ भेजा और आपने भी शुकनामके साथ जानेकी सामग्री तैयार कराई ।

१०३—फिर इस तरह राजाके चलन पर उमके अनुगमने, चन्द्रापीडके मनेमे, आश्वर्य देखनेके कृतकल्प तथा आगे गए पिता, पुत्र, भाउ, भिन्न अत्र गजनान भिन्ननेके लिए, गृह-गच्छमके मित्रात्र उन्नयिनीके सब लोग तैयार हो गए । मनक ले जानेमे जानेम भिन्न होगा—यह सोच कर उमने कृत, यों ही परिचार महित, मार्गज्ञ मानो पाव किया हा । यह, एक दिनमें ही पहुँच जाया नाश्या, यात्रा गन्ता चलनके पीछे गेडे का बैठे हुए स्वगितम पुत्रा मुत्रा पर—अप इन लोग अहाँ तब का पहुँचे हैं, कितने दिनमें पहुँच जाये—उप प्रकार त कठित हृदयों का अत्र पृच्छता, लगभग उच मनमे बोझ ही दिनाम अ-शुद्धके पाप अ-पुत्रा । वहाँ आकर समझी दिव्य नि-सद्वर्य अन्वय रूप । यों ही दूर ही दूर न-पाने उमने अपने अ-वचन दिव्यम-पत्र सातोंका परिचार पाप-वचन कहेके लिये गेडा ।

४०४—पिर जब मस्जानका त्याग करनेसे मलिन तथा कृश शरीरवाले, पृथी पर माथा नगते, आँसुओंके कारण दीन दृष्टिवाले, जीवित रहनेकी लज्जासे मानो ग्यातलमे प्रवेश करना चाहते, आरसमें एक दूसरेकी श्रोतमें होनेकी हमारहीमे अरना अपना मुँह छिपाते,—अच्छत होने पर भी मानो हत हुए हाँ, पत्रादि पाम होने पर भी मानो लुट गए हों, जीते हुए भी मानो नष्ट हुए हाँ और अधम-पूर्वक आते हुए भी मानो चरण पीछेकी तरफ रखते हैं। अपने—अगोंके साथ ही गले हुए उत्साहवाले, आँसुओंके साथ ही मुक्त हुए आत्मावाते, विमलताके साथ ही आगे बटते, चन्द्रापीड़के आश्रयसे ध्याननिगह करनेवाले, आगे आते मेघनाद-सहित सब राजकुमारोंको अपना दिग्गज आता देखा तब, पुत्र-शोक-रूपी तरंगके उछलनेके वेगसे दुःखी होने पर भी मानो पिर सँभल कर, चन्द्रापीड़के शरीरके अविनाशके विषयमें अपने एक विश्वास हो जानेके कारण पीछे मुड़ कर, उसने परदेदार जीन पर भी गिलासपीसी कहा—देवि, तुम्हारे भाग्यकी बद्धि हो। पुत्रका शरीर मजबूत अविनष्ट है। देखो, ये सब उसके चरण-यमलके आधारसे निर्गह उभरेवाले राजपुमार उसके चरणोंके पाससे आते हैं। यह सुन कर उसने अपने हासों ही परदेवा पहा कर हाट कर, निश्चल दृष्टिसे, पुत्रके समान अपने गौरव साधने बहुत देर तक देखा। पिर निरंतर अश्रुधारा बहानी हुई गलासपीसी भँवें हाँड व उँचे स्वरसे चिह्ना कर गौर कि आरे पुत्र, तेरे साथ अपने सँभलने तले रहने राजपुत्रोंके बीचसे केवल तू ही क्यों नहीं दीख

४०५—इतनेमें, चन्द्रापीड के मुखजनों का पाना एक साथ सुन कर आगे फैलते हुए बड़े बड़े मोतियोंके समान आँसू गिरती हुई महाशेता—रा ! मैं पागिनी, दुःखभागिनी विनष्ट हुई, केवल अराकार करनेमें चार जला विधि जाने कब तक मुझ—मरण भूली हुई—को अपने क प्रहारसे जलाया ही करेगा—यों कहती हुई दौड़ कर लज्जासे मुझके भीतर चली गई ! कादंबरी भी यह सुन सत्वर दौड़ती हुई सखियोंके शरीरमा राशय लेती लेती चुपचाप मून्हाके अघकारमें जा गिरी । उन दोनोंकी ऐसी आस्था हो रही थी ता शुक्नामका सहारा ले कर राजा आश्रममें आया । उसके पीछे मनोरमाके सहारे चलती, आँसू भरी अत्यंत लंबी दृष्टि आगे दौड़ाती—मेरा पुत्र कहीं है ?— यों पूछती पूछती विलासवती आई । आकर, माता निद्रानश हो यां सद्गज पानिमें युक्त तथा देहकी सब चेष्टाओंमें रहित अपने पुत्रको देव पुत्र तत्पता विनामस्की, तारापीड आया न था तब तक ही, सहारा देती मनोरमाको छोड़ कर दूरमें ही दोनों हाथ पसार कर, वेगसे गिरनेके कारण जर्जर हुए आँसूयामे तथा स्तन प्रत्ययमें पृथ्वीको भिगोती—आ, दुर्लभ पुत्र, बहुत दिनों तेरा दर्शन हुआ है, मुझे उत्तर दे, एक बार तो मुझे देव, वेद्य, तुझे यों कहा नहीं सुनाया, उठ कर, गोदमें आकर पुत्रके योग्य स्नेह गिवा, ताल हावम सी तूने कभी मेरा वचन नहीं आला, फिर आज क्यों मुझ विलाप करती हुईसो भी तू नहीं सुनता ? वेद्य, फिरने तुझे सुख्या दिलाया है ? मैं पैरा चट कर तुझे मनानी हूँ, पुत्र चन्द्रापीड, तेरे स्नेहके कारण ही इतनी दूर

पीड़ा का आलिङ्गन किए बिना ही अपने—सब प्रजाकी पीड़ा हरनेमें समर्थ—
 हा मेंने मदाना देकर कहा—देवी, यद्यपि हमारे पुत्र्यसे पुत्र रूपमें प्राप्त हुए हैं
 तो भी यह देवता-मूर्ति हैं, इसलिए इनका सोच नहीं करना चाहिए । इस
 धारण मनुष्योत्प्रे योग्य शोक करना छोड़ दो । शोक करनेसे कुछ नहीं होता ।
 नेने पीड़नमें केवल गला ही फटेगा, हृदय नहीं । निरर्थक^१ प्रलाप ही मुखमेंसे
 निकलेगा, प्राण नहीं; निरामग^२ नयन-जल ही गिरेगा, शरीर नहीं । फिर पुत्रका
 केवल अदर्शन ही हमको पीड़ा देता था सो तो मुख देखनेसे दूर हुआ । दूसरे,
 ऐसी अग्रथामे हम दोनोंको भी बड़ा धैर्य रख कर मनोरमा तथा शुकनासको
 अपने अधिना चाहिए, क्योंकि उनका वैशम्पायन तो परलोकवासी हो गया ।
 उन्हें भी रहने दो, पर जिनके प्रभावसे पुत्रके फिर जीवन-प्राप्ति-रूप अभ्युदयका
 महोत्सव मिया जायगा वही यह गधर्व-राजपुत्री—तुम्हारी बहू—हमारे
 पान से शोक-तरंगमें दृष्ट कर मूर्च्छित हो गई है और नाम ले ले कर रोती
 पाती प्रिय सपियोंसे चेतना ग्रहण कराने पर भी होशमें नहीं आई है ।
 पर लिए उसे तो उठा पर गोदमें बैठा लो और सचेतन करो । फिर चारों
 चित्तना से लेना ।

वह उमे न सूझ पड़ा । मानो लज्जाके वश हो इस प्रकार उमे मन्हेगागे गोदमेमे उतार कर गुरुजनोको क्रम पूर्वक वन्दना कराई । उस समय उन्होंने आशीर्वाद दिया—आयुष्मती, बहुत काल तक सेवामगनी गये ! इस प्रकार आशीर्वाद दे कर, वीरसे उसे उठा कर विलासनीके पीछे गहुत ही पाय निज कर पकड़ रक्ता । कादम्बरीको सचेतन देग, चन्द्रापीडको ही फिर जीता हुआ मान, राजाने उसके चमका गाढ अगलिनन किया तथा चुम्बन करता, देखा, स्पश करता राजा बहुत देर ठहर कर, मन्हेराको बुला कर कन्हे लगा—रमे केवल दर्शनोंका सुग ही प्राप्त करना था सो मिल गया, इसका निम तरह इतने दिनसे बहू पुनके शरीरका उपचार करती थी उमे, हमारे चनेही रुकावट या लज्जासे, जरा भी मत लेंग । हम तो केवल निप्रयोजन देगनेवाले ही हैं । यहाँ हमारे रनेसे क्या और जानेसे भी क्या ? जिसके हाथके हाथमे पुष्ट होकर यह अति पशी बना हुआ है वही चढ़ इसके पास चनी रहे । या कह कर उर वहाँगे बाहर आया ।

४०८—बाहर आकर, तैयार किए गए अपने डरेमे न जाकर, लपकी गये योग्य, आशमके पास ही, एक शुद्ध शिलातल युक्त तटलता-मडम जाकर, अपने समान टःगवाले सब राजा लोगों को बुला कर, उर चर्चा सम्मानपूर्वक करने लगा—आप यर न समझना कि शोकके आसक्त पाया दे मे आज उमे अगीमार करना ह । पहले ही मने यर निज निजा या कि चन्द्रापीड चन्द्रापीडका मुग देगने पर राजा का भाग उगे राँ कर, निजी अरमे लस् वृटाया धनीत करूँगा । सो तो भगवान यमने या पाल निज हृद दिवनीत कर्नेने यो विगाह आना । अ ।

ते जाना है इसलिए किसी सुगात्रको निज पद देकर, जिनकी बाकी श्रवण वृद्धन्वके श्रयित हो गई है ऐसे, निष्प्रयोजन स्थितिवाले, सब सुप्त रहित, मांस विद्यमे जो परलोकके सुखका उपार्जन हो तो वह लाभ ही है । इसलिए इस नियममें आपसे प्रार्थना करता हूँ । इतना कह सब अपने श्रयित उचित सुगोंमा भी परित्याग कर, वनवामके अनुचित दुःखको श्रगीसार कर, वृद्धोंके तलेसी महल मान कर, रनिवासनी स्त्रियोंकी प्रीतिको लताग्राम लाकर, परिचित जनामा स्नेह दिग्गों पर, बल्लोंसी रुचि चीर-तपलोमि, पेश रचनाराम प्रयत्न जयाम, आहारका म्याद कट-भूल-कलोमें, शम्भु शरण करनेमा व्यसन रुद्राक्ष-मालामे, प्रजा-पालन-शक्ति समित्, कुण्ड तथा पुत्रोमि, परिहार-युक्त आलाप धर्म-कथामे, युद्ध-रस शान्तिमे, जयकी हन्ता परलोमि, स्वजानेवी स्पृहा तपमे, आज्ञा मीनमे, सब उपभोगोंमा प्रेम शम्यम, शीघ्र पुत्र-स्नेह सुदाम रस, तपस्वियोंके योग्य क्रियाएँ करता हुआ, मातृवर्दी तथा माताश्वेताके द्वारा किसी तरहके लज्जा होऊ कर प्रति दिन किए गए शभर्व लोवके योग्य उपचारको स्वीकार किए जिना, निरंतर नापगल तथा प्रायः पाल चन्द्रापीडके दर्शनका सुप्त भागता, वह राजा, दुःखनी परवा किए । ना. विलास ती, सुखनास तथा परिवार-रहित बही रहा ।

विषयमें विनान तथा स्मरण हुआ । अधिक कहनेमें क्या ? मनुष्य शरीरमें विना उन जग ही मुझ वैशम्पायनको और सब उत्पन्न हो गया । वही चन्द्रापीडसे स्नेह, वही काम-पराधीनता, वही महाश्वेताका श्रुति, और वही उसके प्राप्त करनेकी उत्सुकता ! पर पल नहीं आनेके कारण मुझमें उस समय पूर्व जन्मकी शरीर-चेष्टा ही खेल नहीं आई ।

४११—इस तरह अपने जन्मका सब वृत्तान्त बुद्धिमें उपस्थित होनेके कारण उत्सुक निश्चये—माता पिताका क्या हुआ होगा ? तात चाणपीड तथा पितासखतीका क्या हुआ होगा ? मिन चन्द्रापीडका क्या हुआ होगा ? पहले जन्ममें मिन कबिजलका अथवा महाश्वेताका क्या हुआ होगा ?—या मिन मिनका कैसे कैसे मुझे स्मरण हुआ यह समझमें नहीं आया । इस तरह उत्पन्न-विना होकर, भूतल पर मिन रण, प्रकृत देर पीछे, माता गोपासके प्रतिपन्न अपने आचरणके सुननेमें उत्पन्न हुई लजामे मिलीन होता होकर पतागामे मृगा जाता होकर, इस तरह मैंने जैसे जैसे भीरे भीरे भगवान् जागलिय मिनय मिया—भगवान् आपकी कृपासे मुझे अब जानका उत्पन्न हो गया है । पर जन्मके सब बाधमें मुझे याद आ गण हैं । मैं अज्ञान था तब जैसे मुझे उनकी याद नहीं थी वैसी ही सिद्धही पीड़ा भी नहीं थी । पर आता उनकी दण्ड करके संग हृदय माना फटा जाता है । उनमेंमें जिनका हृदय मेरी मृगुता हुआ ही फट गया उस चन्द्रापीडकी याद आनेमें कितना दुःख मुझमें होता है । उनका अन्य किसीके स्मरणमें नहीं होता । इसलिए उनमें जन्मका क्या है

प्रश्न नून दर भगवान् जायालि, निर्मल दन्त-किरण-रूपी जल-धारसे पापका
 गना मानो रोते रोते बोले—वत्स, इसका कारण स्पष्ट है। यह केवल सुरत
 की अभिन्नापात्र मोहके विनाशके कारण अल्प-सार स्त्री-वीर्यसे ही उत्पन्न हुआ
 है। श्रीर अुनिम कहा है कि जन्मेने प्राणी उत्पन्न होता है वैसा ही होता
 है। लावम भी प्रायः कारणके गुणके अनुसार ही कार्य होते देखते हैं,
 प्रायः प्रायःवर्गम भी कहा है कि जो जन्तु केवल अल्प सार स्त्री-वीर्यसे ही
 उत्पन्न होता है वह सार नून, स्थिरता-दायक, पुरुष-वीर्यके अभावके कारण,
 स्त्री-वीर्यके अल्पके अनुसार या तो गर्भमें विचलित हो जाता है, या मरा हुआ
 पटा जाता है अथवा पैदा होकर बहुत काल तक जीता नहीं है। इसलिए
 यह एसा ही पटा हुआ है जिनसे हमें एसी काम परता हुईं श्रीर मरण तो
 नामके चेसने पैदा हुए परवा न सान कर सकनेसे इस तरह हुआ। अत्र
 भी यह एसा ही एल्पायु है परन्तु नामकी अवधिके पीछे इसकी आयु
 एका एसी।

प्रवेश करने लगे हैं । परमा सरोवरके पास मोए हुए पक्षि गुरु जगनेकी सूचना देता बट—कानोंको मजुर मालूम होता—सालाहल मुनाडे देने लगा है, पाम गरिके सर्कमे डंडी तथा चंचल वन-हुमुमोही परिमल लाती प्रभात यन्त्र पवन चलने लगी है । पत्र हवन करनेका समय हुआ । वा इव कदा ही लभाका विसर्जन कर वे स्वय उठे ।

११३—किर भगवान् जात्रालिके उठने पर गत तानी—विद्या, निःसाधु तथा भोज मार्गमे स्थित होने पर भी—कथाम सा लगनेसे गुरुके सांग सेवा भूल कर अभी मानो सुनते हो इस प्रकार रोमांसात शरीर तथा विष्णुमे प्रभुता मुगचले, शोक तथा आनन्दके आँसू एक साथ गढ़ाते,—
 दा कर्ण ! हा कर्ण !—एमे शां कइने कहते, मानो उस जगह भीलसि ज
 दा कर्ण ! हा कर्ण ! प्रसार चहुत देर तक ठहर कर अपनी अपनी जगह गए;
 और शरीर, यन्त्र मुनिगुमार पास होने पर भी, अपने हाथमे ही मुझे उडा
 पर और अपनी पर्णालामे शैयाके एक भागमे भीरमे स्पर्कर, प्राभातिक
 वि ३, मनेके लिए जाडर गया । उगके जाने पर मुझे—गत्र काय करनम
 प्रसन्न ।—निर्दिष्ट जातिम पडजस हृदयम चय दृष्ट हूआ आर म निता
 मन लगा—उस संस्कार्य अनेक जन्मास किए हवागे पुण्योमे मिलनसाला
 मजुर शरीर कवम है, उसमे फिर यत्र जातियांग उडकर प्राणमत्ता, एमे भी
 उडकर म, उडकर पास पचचानेसाला मनिव, और उसमे भी हृद आरक
 उडकर निवास ! उमादा विगने जाने ऊा स्थानय, नित्र दोषाके साप

भगवान् स्वतन्त्रके पासमें कबिजल नुम्हें दूँ देता दूँ देता यहाँ आया है ।

११८—१८ सुनकर उगी जग मानो पर निकले हों इस प्रकार उड कर उसके पास मानेया उच्च प्रार ऊँची गर्दन करके देखते हुए मने उसमें पढ़ा कि का क्या है ? उसने कहा—पिताजीके पास है । तब मने फिर उससे कहा—तो यह गत है नो मुझे बता लो चलिये, उसे देखनेके लिए मेरा हृदय तड़प रहा है । ये यों कह रहा था कि इतनेमें ही आकाशमें उतरनेके पक्षे कारण जिसकी जटा निरग बिनग हो गई थी वायु मार्गमें चलनेसे जिसमें पक्षेया एक पल्लवा गिराय गया था, बलकलमें परिकर दृढ बंधा हुआ था, जिसकी निमास छाती आव दृष्टे जनेऊमें युक्त थी, देवताओंके गस्तेमें उत नेवी श्वायटके काग जो हाँफने लगा था, त्राने सुखाया जाने पर भी मने पक्षपा उल्लसन परनते उत्पन्न हुए रोदने व्यास, मानो आकाश-गंगाके जलम प्रदशय कारण मुग्धने पसीना तथा नेत्रोंमेंसे मुझे देखनेके दृ उमे पैदा हुए श्वासश्वी साथ ही टपवाता, गुमुक्त होने पर भी मुझमें स्नेह करता, तिरक होने पर भी मेरे प्रिय तथा हितमें अनुरक्त, निःस्वर्गे होने पर भी मेरे श्वासमक्षे लिए उत्सुव, निरफर होने पर भी मेरा काम पूरा करनेको ताल, ममता रहित होने पर भी स्नेह युक्त, निरहकार होने पर भी मुझे श्वायट ही मानता, शेष होदने पर भी मेरे लिए झेग सहन करता-

अब मैं तुम्हें आसन पर बिठाऊँगा ? क्या—जब तू मुझसे बैठेगा तब—मेरे सर्गोक्तो कात्र कर मे भक्तवट दूर कल्लंगा ? इस तरह मैं अपने पिपपमें लिता कर रहा था कि इतनेमें ही मुझे दोनों हाथोंमें उठा कर तथा मेरे पिपपके दुःखने दुर्वल हुई जातीमें लगा कर बहुत देर तक, मानो भीतर प्रवेश करता हो इस तरह, मेरे आलिंगनके सुखाका अनुभव करके मेरे चरण मलक पर रत्न कर्मजल, जोरुके बड़े घेगके कारण, सावागण मनुष्यही तरह रोने लगा ।

४२५—मैं तो केवल वाणीसे ही प्रतीकार कर सकता था इगलिय, उम्को रत्न देग फिर रुझने लगा मित कर्मजल, जो तून आरभ किया है तू सा ज्ञेशोमें परिभत दृष्ट मुक्त पापात्माके योग्य है । परन्तु तू बाल है तो भी इन मगारसे बाँधनेवाले तथा मोक्षमार्गको रोझनेवाले दोषिन त्वा मर्ग नहीं किया है । तब तू क्या मडजनाके सम्वे चलता है ? वेग कर सा ज्ञान जैसी हुई है वेगी कट । तब तो कुशली है ? क्या मुक्त याद करते ? क्या मेरे मर्गसे कुशली है ? मग हाल सुन कर उन्होंने क्या कहा ? मुझ दृष्ट या नडा ? या मैंन कहा तब हागीतके शिष्यही लाई हुई पचाही पाव नयाई पर नट कर, मभके माटीमें ले, हागतक लाग दृष्ट जचमे मुद धोकर बट रुझन लगा—

जानि में पड़ा हुआ है इसलिए जाकर भी तु उसे अभी पहचान न
 सकेगा, न वह तुके पहचानेगा । इसलिए वहीं रह । फिर आज प्रातः-
 फाला ही उन्होंने नम्के बुला कर कहा—वत्स कर्मिजल, तेरा मित्र जात्रालि
 महानि के आश्रममें पहुँच गया है और उसे जन्मान्तरका स्मरण हो
 गया है । इसलिए अब तू उसमें मिलने भले ही चला जा । मेरे आशीर्वादके
 साथ उसमें पहियो मि पुत्र, जब तक यह कर्म समाप्त हो तब
 तब तब, जात्रालिके कर्णोम ही रहना चाहिए । तेरे दुखमें दुखी हुई तेरी
 माता लक्ष्मी भी उगी कर्मम सहायता कर रही है । उसने भी मस्तकको
 सृष्ट कर यह समाचार ही बार बार बहलाया है । इतना कह, कोमल शिरीषके
 फूलकी गलने, समान पदम गमनाले मेरे अंग पर बार बार हाथ फेर
 कर यह हृदयम तब पाने लगा । यो उसको मित्र होने देव कर मैंने कहा—
 कर्मि कर्मिजल, तू क्यों मित्र होता है ? तूने भी मुझ पुण्य हीनके कारण
 भोहा बन कर पराधीन वृत्तिये बड़े बड़े दुःख भोगे हैं । सोमपानके योग्य
 भूमते फलन्तहित रुधिर नदा कर तीक्ष्ण लगामकी रगड़ कैसे सहन की
 होगी ? कोमल पत्नीने पर मोनेते सुकुमार हुई पीठ पर सटा लीन
 ५. १ रहनेते कर भावल हुए बिना कैसे रही होगी ? फूल तोड़तेमें गिरती
 जल ५. १० वाघाका रक्ष भी सह सबने के अचोप इन अगोंने चाटुमेंकी मार
 ५. ११ ५. १२ की होगी ? और दलएत पहननेजाले इस शरीरने चमड़ेके तसमोते
 ५. १३ ५. १४ पी ५. १५ कैसे भोगी होगी ? ऐसी तथा अन्य पूर्व वृत्तान्तकी अतर्चित
 ५. १६ ५. १७ ५. १८ ५. १९ ५. २० ५. २१ ५. २२ ५. २३ ५. २४ ५. २५ ५. २६ ५. २७ ५. २८ ५. २९ ५. ३० ५. ३१ ५. ३२ ५. ३३ ५. ३४ ५. ३५ ५. ३६ ५. ३७ ५. ३८ ५. ३९ ५. ४० ५. ४१ ५. ४२ ५. ४३ ५. ४४ ५. ४५ ५. ४६ ५. ४७ ५. ४८ ५. ४९ ५. ५० ५. ५१ ५. ५२ ५. ५३ ५. ५४ ५. ५५ ५. ५६ ५. ५७ ५. ५८ ५. ५९ ५. ६० ५. ६१ ५. ६२ ५. ६३ ५. ६४ ५. ६५ ५. ६६ ५. ६७ ५. ६८ ५. ६९ ५. ७० ५. ७१ ५. ७२ ५. ७३ ५. ७४ ५. ७५ ५. ७६ ५. ७७ ५. ७८ ५. ७९ ५. ८० ५. ८१ ५. ८२ ५. ८३ ५. ८४ ५. ८५ ५. ८६ ५. ८७ ५. ८८ ५. ८९ ५. ९० ५. ९१ ५. ९२ ५. ९३ ५. ९४ ५. ९५ ५. ९६ ५. ९७ ५. ९८ ५. ९९ ५. १००

होनेके कारण मानो केवल लोह-परमाणुओंसे बनाया गया दूसरा यम हो, पुण्य-राशिका मानो प्रतिपक्ष हो, पापका भटार हो, क्रोधके कारणके बिना भी भीषण मृकृटी चटनेके कारण अत्यंत भयानक दीखते मुख से तथा अत्यंत ताल और टेटी पुतलीवाले नेत्रोंमें—सबके चित्तमें भय पैदा करनेवाले—भगवान यमको भी मानो टगानेवाला, अभिप्रायमें तथा केशोंमें अस्तिग्घ^१, मुखमें तथा ज्ञानमें प्रधकार-युक्त^२, वर्णसे तथा चरितसे कृष्ण^३, बन्धों तथा कार्योंसे मलिन, शरीरसे तथा वाणीसे कठोर पुरुष खड़ा था जिसकी क्रूरताका अनुमान पहले देग्वं या मुने बिना भी आकारसे ही हो सकता था । उसको देख सब प्राणा छोट कर मने पृछा—भद्र, तू कौन है ? क्यों तूने मुझे पकड़ा है ? जो मामकी तृष्णासे पकड़ा है तो मुझे सोनेमें ही क्यों न मार डाला ? मुझ निरपराधीको बांध कर क्यों दुःख देता है ? जो केवल कौतुकसे ही बाँधा हो तो अब रहन हुआ, भद्र मुप, अब मुझे छोड़ दे । बल्लभ जनोंकी उत्कण्ठासे मेरे हृदय जाना है और मेरा हृदय विलय सहन नहीं कर सकता । तू भी प्राणियोंके भय जानता है ।

विजली गिरी हो स्योर में हृदयमें भयसे वाकुल हो विचार करने लगा—
 'अहो ! मुझ पुरपहीनके कर्मोंका परिणाम अत्यन्त दारुण है ! येद पानर
 जिनके चरण कमलोंमें मोलि मुकुटोंने प्रणाम करते हैं ऐसी तन्त्री तो मैं
 उत्पन्न हुआ, तीनों जगत्के नमस्कार करनेके योग्य महाभूति शीतकेरने आगे
 हाथोंने मेरा सर्वधर्म किया, स्योर दिव्य लोकके आश्रयमें भ रहा । आ मुझे,
 स्तेन्द्र भी जिनका दूरसे आग करते हैं ऐसे चाडालाके पापेय जाना पड़ेगा !
 चाडालोंके साथ एक जगह रहना पड़ेगा ! वृद्धी चाडालिणोंके हाथोंसे भिन्न
 गण नामोंने निर्वाह करना पड़ेगा ! चाडाल बालकका भिलोना चाना पड़ेगा !
 दुःखमय पानी पूषणरीह ! भिन्नकार है तेरे जन्म ग्रहणको ! तरे कर्मात्मा मेरा
 पदगाम दृष्टा ! पहले गर्भमें ही तेरे हजारों दुःखों का त हो गए ? डेवी स-
 न्याये शरण देनेवाले चरण-कमलवाली लक्ष्मी माता, इस अत्यन्त गढ़ा
 लक्ष्मी भ्रातर गढ़ा नरकपाल में मझे गया ! तात, आध विभुजनकी रत्ना फलेय
 रत्ना है, अपने फवकी एक सतानकी रत्ना करिए, आने ही सय सवर्ण
 मि रत्ना । भिन्न कविजल, अगार वृ दीड कर मुझे, इस पापसे त च पायेगा
 त त मन्तरम भी तरे मेर समागमरी आशा मत करियो । यह तथा एय पय
 अन्त विचार अन्त करणम करु, भिन्न मने दीन स्वर्गे प्रा र्ण की —

दिपुर हो गया और कौनसे कमोका मुझे वह फल मिला ?—यों मनमें विचारने विचारने मने प्राण त्याग करनेका निश्चय कर लिया । जब वह मने, तो चला तब उम्मेने छुटकारा पानेकी आशाने ही आगे दृष्टि फेंकने पर, मानो केवल पापका बाजार हो ऐसा चांडालोंका घेग मैंने देखा । वह दूरसे ही भागूम पड़ जाना था कि चांडालोंका घेग है, क्योंकि वहाँ चांडालोंके बालक, भाग पिशाच वगैरे हो इस प्रकार वर रचना कर रहे थे, मृगयसे लौट कर भटकी परइनक लिए जलके भँवरमे जाल फिरानेमे लगे थे, मृगोंमे फाड़े गए तीर्ण पालके मृगनेम व्यय हो रहे थे, चूहेदान आदिमे वेधे हुए चमड़ेके टूटे तमसारी रोहनवत मांभन कर रहे थे, उनके हाथामे वनुपगण थे, गजरोसे उनके हाथ भयान लगते थे, व भाल धारण करते । अन्य पक्षियोंके पम्डने-बाले गनर प्रारण बाज आदि पक्षियोंका वाचाल करनेमे कुशल थे, कुत्तोंमे रोषने तथा चतानम चतुर । और टोली बना बना कर प्रत्येक दिशामे मृगया रेल । । इधर उधरसे वरच भासती दुर्गंधि फैलाते धूमसे ऐग अनुमान । । भा भा सि बरा -हुदसे मान बने हैं जो वोंसोके घने वनके जीचमें आ जाते गीगत नही है । उमके शरते प्रायः कणलोंसे दफे धः गतिदोमे दृष्टिों मिले हुए । इधर उधर परे धः गोंसोंके चौकमे प्रायः काटे हुए मास चानी, लपकाने । । पीचर । । री । ।, वराके लोग प्रायः मृगयामे श्रमन

वद कभी मुझे न छोड़ेगी । मैं दिव्य लोकमेंसे भ्रष्ट हुआ, मृत्युलोकमें पैदा हुआ, नियंत्रण जानिमें पडा, चाटालके हाथमें गया, और अब धिक्करमें बद होकर इस प्रकारका दुःख भोग रहा हूँ । यह सब इन्द्रियोंको नहीं रोकनेका दोष है । इसलिए कमल दागीशो ही नहीं पर सब इन्द्रियोंको मुझे नियममें रखना चाहिए । यह नियंत्रण कर मं चुर रहा । बह बातचीत करने, तर्जना करने, माने, तथा जबरदस्ती मरे पत्र तोड़ने लगी तो भी मैं कुछ न बोला । केवल ऊँच स्वयंसे स्वीकार करने लगा । अज्ञानी ले जाने पर भी मैं उस दिन विवश रहा ।

२२ — दूसरे दिन मेरे खाने का समय बीत जाने पर, हृदयमें खिन्नता भर, वह क्या अपने हाथमें अनेक प्रकारके पक्के तथा कच्चे फल और सुगन्धित उष्ण पानी ले कर आई । परन्तु जब मैंने उनका ग्रहण नहीं किया तब भी सामने देखकर, मानो खेतसे, कहने लगी—'तुम्हारे अयोग्यके विचारमें अज्ञान विचार इतना बुरा तथा भ्रष्टपिलाससे व्याकुल हुए पशुपक्षियोंके लिए सामने लाए गए आहारका उपयोग न करना प्रसन्न है । अगर तू कोई जानागी तथा विषय परनेवाला है, तुम्हें पूर्ण जानकारी मरण है और तू व्याज माना नहीं होता है तो भी भद्राभद्र विवेक रहित पक्षिजातिमें अज्ञान हीमें तूके लिए प्रसन्न क्या है जो तू भक्षण नहीं करता ? जिने अज्ञान हीमें पदा होकर खाए ही ऐसा कम कि पक्षियोंकी जातिमें अज्ञान हीमें तूके विचार करता है ? पहले ही तुम्हें विवेकके अनुसार

जान का मैं उसे आपके पास लाई हूँ । मने जो अपनी चाडाल जाति बतलाई थी वह केवल लोक-संघने इच्छनेके प्रयोजनने । इसलिए अब आप और या दोनों साथ ही जन्म-जायाधिमरण आदि दुःखोंने पूर्ण शरीर छोड़ कर प्रियजनोंके समागमका सुत्र भोगिए । इस तरह कहती कहती वह, भनभनाने गहनाका रंगमें अन्तारक्षणी सुत्र करनी, पृथ्वीमें भूट आसक्तमें उड़ गई और काश आँसू पाड़ पाड़ कर स्वप्नी तर्फ देखने लगे ।

१०६— लक्ष्मीका यह वचन सुनते ही राजाको पूर्व जन्मकी याद आगई और वह बोल उठा— भिन्न वैशम्पायनात्म्य पुच्छीर, अच्छा हुआ कि इस दोषीक भावका अत एव साथ ही हुआ । या कहते ही उसके अतःकरणमें, यान तब धनुष तान कर, काटम्बरीरूप परम अस्त्र प्राणे कर, प्राण लेनेके लिए, लुत्तरेके समान सब प्राणाओंका रोक कर, कामदेवने स्थान प्राप्त किया । कामदेवक पीर खननेसे ही मानो निवाला गया हृदय काटम्बरीकी गरणमें गया, उसके बाणोंका चोटके मानो भयसे ही शरीर छोड़ कर स्वाम्नी गरम पत्तन पार पान लगी, उसके बाणोंके पत्तोंकी पवनसे मानो ताड़ित हुआ मानो शरीर तापन लगा उसके बाणोंसे बाँटेसे मानो प्लात हुआ शरीर समाहित ही गया, उसके बाणोंकी रजसे मानो टके हुए नेत्र प्रान्त् वहाने लगे लगे लक्ष्मीकी बात एक भाव पीवी पद गई, उसके धनुषकी टकारका शक्ति पर मानो गरभीर हुए दोनों नेत्र हृदय वेदनाके कारण तिहाई पलक में पीक चलती हु- कामादिने भूमते मानो पीडित होकर कौरवा हुआ । कामदेव २१ गता कामने तापसे किसे हुआ, मानो निर्भीडित ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००

आगे करके कामदेव जो पीड़ा देने लगा उसे ताप हरनेवाली वस्तुएँ भी शान्त करनेमें समर्थ नहीं हुईं, क्योंकि कादंबरीके अवयवोंके रूपकी शांतिने उनको जीत लिया था—जैसे कमलके कोमल पत्तोंको हाथ पैरोंसे, कुनजय दलकी मालाओंको दृष्टिसे, मणि दर्पणोंको गालसे, मृगालोंको बाहु-लतासे, चन्द्रकिरणोंको नखकिरणोंसे, कपूरके चूरेको स्मित-प्रभासे, मुक्ताहारोंको दंतकिरणोंसे, चन्द्र-चिम्बको मुखसे, चॉदनीको लावण्यसे और मणि वेष्टिकाके फर्शको नितम्बसे। इस तरह सब बाहरी उपाय निष्फल हो गए और हृदयमें भी अन्य किसी विनोदसे सुख नहीं हुआ। वह केवल उसीका ध्यान करने लगा, उसीकी उत्प्रेक्षा करने लगा, उसीकी अभिलाषा करने लगा, उसीमें देखने लगा उसीके साथ बातचीत करने लगा, उसीका आलिगन करने लगा, उसीके साथ रहने लगा, उसीको गुप्ता टिलाने लगा, उसीसे विनय करने लगा, उसीके पैरों पर गिरने लगा, उसीके साथ लीला करने लगा, और उसीके साथ रमण करने लगा, अन्य सब व्यापार उसने छोड़ दिए। दिनमें वह आँस नहीं खोलता, रातको सोता नहीं, मित्रोंके साथ बात नहीं करता, कार्यके लिए आए हुआओंकी परवा नहीं करता, गुरुओंको नमस्कार नहीं करता, धर्म-क्रिया तब नहीं करता, सुखकी इच्छा नहीं करता, दुःखसे उद्वेग नहीं पाता, मरनेसे डरता नहीं, गुन-श्रींकी लज्जा नहीं करता, अपनेसे भी स्नेह नहीं करता—साराश यह है कि कादंबरीके समागमके लिए भी वह उद्यम नहीं करता था। परन्तु वह अपनी मूर्च्छाके ब्रह्मने, केवल, शरीरके त्यागनेका अभ्यास करता था।

१—होने पर भी अनेक प्रकारके उपकरण धारण करते, नयनोंमें आँसू आने पर भी शुक^२ मुख वाले, आग बोलने का अपकाश न पाने पर भी शेषपायनकी निन्दा^३ करते इसके प्रिय पण्डित निरंतर चरणों तब चन्दन लगाते, चरण-तल पर कमलके गीले पत्ते रखते, हाथों पर कर्पूरके चूरेमें गन्ने हुए मक्के के दुग्ड़े रखते, हृदय पर वर्षाके समान मुक्ताहार रखते, गालों पर मर्माद्रक

१—हस्त रहित, व्याकुल ।

२—जल-शून्य, फीका ।

३—क्योंकि वैशम्पायनकी कहानी मुन कर ही राताकी यह दशा हुई थी ।

४३१—कामदेवके परम अन्व—वसन समय—के कारण हृदयमें वगाकुल हुई कादंबरीने भगवान् कामदेवके महोत्सवके आने पर बड़ी कठिनतासे जातों कर दिन बिताया । जब दशों दिशाएँ श्याम हुई तब सायकालके समय नश कर, कामदेवकी पूजा कर, उसके आगे अत्यंत सुगंधित ठंडे जलसे चन्द्रापीड़को स्नान कगया, कस्तूरीकी महक फैलाता हरिचन्दन उसके चरणों तक लगाया, सुगंधित फूलोंके हार उसके केश-कलापमें गूँथे, सुन्दर किसलय गुक्त अशोकके फूलोंके गुच्छेका कर्णपूर एक कानमें पहनाया, कपूर तथा पुष्प आदिके गहने पहनाये और निमेष-रहित तथा प्रेमसे स्निग्ध हुई दृष्टिसे उसका मानो पान करती हो यों बहुत देर तक देख कर, उत्कंठासे बार बार साँस लेकर काँपती काँपती, महाश्वेता कहीं देग न ले इस भयसे बार बार दिशाओंमें नकित दृष्टि फेंकती, बार बार उसके पास जाकर, मानो आविष्ट हो यों पगधीन होकर बहुत देर तक राड़ी रही, त्रिभुवनको उन्मत्त करनेवाले भगवान् कामदेवने बलपूर्वक लज्जाके साथ अगला जनोका स्वाभाविक भय छुड़ा दिया । इस कारण अपनेको धारण करनेमें असमर्थ होकर, एकांतमें अपने चित्तके भावोंको रोफनेमें अशक्त हुई कादंबरी एक साथ उसके ऊपर गिरकर, आँसु मीच कर, मानो वह जीवित हो इस प्रसंग, गलेसे लिपट गई ।

४३२—अमृत-रससे आल्हादन करते कादंबरीके आलिंगनसे चन्द्रापीड़के तो दूर गए हुए प्राण भी कंठमें फिर शीघ्र आ गये । तिनके तापमें बंद हुआ कुसुद जैसे शङ्खमालकी चाँदनीमें प्रफुल्लित हो उसी तरह चन्द्रापीड़के अपने सौम्य चलने लगा । प्रातःकाल कमलकी कली मिलनेकी लीलासे वह तब पहुँचते नेत्र मुल गए और कमलकी लीलासे मुग्ध प्रफुलित हो । इस तरह माना साफ उठा हो यों फिर मग्न अंग-चेष्टा प्राप्त कर, आसिद्ध, कंठमें लगी हुई कादंबरीको बहुत दिनोंके विरहमें दुर्बल हुई आँसुओंसे न गलेने चिपटा कर, पवनमें हिली हुई बाल बदली की तरह भयमें शरीर काती, आँसु मीचती, हृदयमें ही प्रवेश करना चाहती, अपने आप न छोड़नेको और न पर देनेको समर्थ हुई, उगे जनोका अच्छा लगनेवाले, हृदयानंदक, पन्ने अनुभव मिला स्वर्गमें दर्शित करना करने लगा—

उत्तमार्ग ।

१००—भीन, भय दूर करो । तुम्हारे ही कठालिगनसे मैं फिर जीवित हुआ हूँ । तुम तो अमृतमेसे उत्पन्न हुए अम्बराश्री के कुलमें पैदा हुई हो । पर तुम्हारा मेरा वचन याद नहीं है कि उसी तेजका बना हुआ यह शरीर मैंने आप ही अविनाशी है; फिर विशेष करके काटम्बरीके वर-स्पर्शसे निर्मित होगा । इतने दिन तक तुम्हारे हाथका स्पर्श होनेसे मेरे फिर जीवित न होनेसे आपका दोष था । आज तुम्हारे लिए ही दुःमह कामज्वरके गहरी वेदनासे अत्यन्त दुःखी हुए मेरा वह आप दूमरी बार नष्ट हुआ । अपने विरहका दुःख देनेवाला शूद्रक नामका अपना मानुषी शरीर मैंने बना लिया है । तुमको इसमें अनुराग हो गया देख तुम्हारी प्रीतिके कारण इस शरीरको अच्छी तरह रक्खा है तथा इसका पालन किया है । इसलिए चन्द्रलोक और चन्द्रलोक दोनों सर्वथा सेवनीय हैं । तुम्हारी प्रियसखी मदा सम्पत्तियों की प्रियतम मेरे साथ ही आपसे छूटा है ।

१०४—इस तरह, चन्द्रापीठके शरीरमें स्थित चन्द्रके बहते ही चन्द्रलोकमें चन्द्रके प्रगमे लगी हुई वेवल अमृतकी परिमल ही अधिक पैलाता, जिस वेदने परसपाधी उत्पन्नमें मरण पाया था उसीको धारण करता, उसी तरह चन्द्रके शरीरकी माला धारण करता, वैसे ही दुर्बल और शिथिल अगवाला, वैसे ही चन्द्रके निर्माण कपोल-युक्त मुखवाला पुंडरीक, कपिजलका हाथ पञ्च

१०५—आपसे उत्तरता जनको देख पटा ।

कर कहने लगी—महाराज, देवीके साग आपको बनाई है! सुराज नेशभावनके साथ फिर जीवित हुए हैं! राजा तो यह सुन कर, शरीर-मन्कार न होनेसे उगे हुए अकिरल, लम्बे तथा रूढ़ सफेद बालोंसे ढके हुए प्रकोष्ठवाली भुजाओंमें उमका आलिगन कर, फिर हर्षमें निमग्न हो, विलासवतीको कटमें बचलमान कर, बुढापेकी मिलवटोंसे शिथिल हुई बाहुसे डुपट्टेके पल्लेको ऊँचा करने, लयकी शिखा न मिलनेसे इधर उधर पडते चरणोंसे मानो नृत्य कर्ता, प्रकृतित मुखवाले हजारों राजाओंके साथ, मलयभवनसे हिलाए जानेके कारण चलायमान हुए कमलाकरके समान, वह कहाँ हैं? कहाँ हैं?—यों बार बार मदलोगासे पूछता पूछता, अपनी ही तरह हर्षमें मग्न हुए शुकनासका आलिगन करता करता वहाँ आया। चन्द्रापीड़को उसी तरह पुडरीकके गलेमें लगा हुआ देग वह अत्यंत आनंदसे शुकनाससे कहने लगा—यह भाग्यकी बात है कि पुत्रके फिर जीवित होनेके उत्सवका सुख मेने अकेले ही नहीं भोगा। याँ हर्षमें निमग्न हुए पिताको देख कर तथा संभ्रम सहित पुडरीकको छोड़ कर चन्द्रापीड़, पहले के समान ही भूतल पर मस्तक रख, चरणोंमें गिर पड़ा।

४३७—उस समय भट पास जाकर, प्रणत हुए चन्द्रापीड़को उठा कर, गपीड़ बोला—पुत्र, या तो आप दापसे या अपन पुण्यमें मैं तेग पिता के ता भी तू तो जगद्वदनीय लोरुपाल है और मुझमें भी जो अश नमन्कारके योग्य था वह भी मैंने तुझमें सक्रान्त कर दिया है। इसलिए दोनों तरह तू ही नमन्कारके योग्य है। यों कहते ही हजारों राजपुत्रों सहित वह उठ्या उमके स्थानमें गिर पड़ा। विलासवती, जो पिताके प्रणाम करने पर परिभाष्य करने अगमें नहीं समानी, बार बार मस्तक, ललाट, और गानध उना कर, बहुत देर तक गाठ आलिगन करनी रही। माताके पासमें मुँह होने पर शुकनासके पास जाकर चन्द्रापीड़ने बार बार नमन्कार करके उगे प्रणाम किया। शुकनासने उसे बहुतसे आशीर्वाद टिण तत्र क्रमसे पास जाकर उमने—यह तुम्हारा वैशम्पायन है—यों कह, विनयके कारण ललाटपुत्र तथा नय मुखवाले पुडरीकको माता पिता, शुकनास और मनोगमाका दियाथा।

१३८—इसी समय अर्जुनने पास आकर शुकनासमें उठा—भगवान् श्वेतकेतुने आपको यह सँदेसा भेजा है कि मैंने तो पुडरीकके देवत मारा

अनुरूप पतिव्रते लाभ मात्रसे ही कुनार्थ होकर और कुछ स्वीकार नहीं किया ।

४४०—एक समय, जन्मसे ही जिमकी अभिलाषा थी ऐसे हृदय-वल्लभके मिलनेसे आनन्दित हुई और सब स्वजनोके बीचमें पहुँच कर सुगी हुई भी कादम्बरी, आँखोंमें आँसू भर कर, दीन मुखसे चन्द्रापीड-रूप चन्द्रमासे महलमें पूजने लगी—आर्यपुत्र, हम सब मर कर फिर जी उठे और परम्पर सयुक्त हुए, परन्तु वह विचारी पत्रलेखा हमारे बीचमें नहीं दीसती । उम अकेलीका क्या हुआ सो नहीं मालूम ? यह सुन चन्द्रापीड-मूर्ति चन्द्रमाने हृदयमें प्रसन्न हो उत्तर दिया—प्रिये, यहाँ वह कहाँ ? वह तो मेरे दुःखसे दुःखित हुई रोहिणी थी । जब मुझे आपसे प्रस्तुत हुआ सुना तब उसने विचार कि मैं अकेला मृत्युलोकमें रहनेका दुःख कैसे भोग सकूँगा ? वह सोच कर, मेरे मना करने पर भी, उसने पहलेसे ही मेरे चरणोंकी सेवा करनेके विषय मृत्युलोकमें जन्म ले लिया था । मेरा जन्मान्तर होने पर मेरी मृत्युके साथ ही शरीर त्याग कर वह फिर मृत्युलोकमें जन्म लेनेवाली थी, पर मैंने हृदय प्रसन्न उसे रोक कर चन्द्रलोकमें भेज दिया । इस कारण तुम उसे पश देखोगी । यह सुन कादम्बरी रोहिणीकी उदारता, स्नेहालुता, मदानुभावता, अतिप्रिय और दक्षतासे हृदयमें प्रसन्न होकर बहुत लजित हुई और कुछ कह न सकी ।

४४१—इतनेमें समयके विधाता चन्द्रमाको मानो दो जन्मोंमें आकाशित, कादम्बरी सभोग सुख देनेके लिए दिन टरक गया । प्रकाशित होती हुई पश्चिम सूर्य-रूप बृहती लज्जाको मानो टरनेके लिए अनुगम पता साके समान गति चिन्त्यार पाने लगी । सब जगत चन्द्रादयमें रमणीय हो गया । इस प्रकार जब गति पूरा हो गई तब चन्द्रापीडने कपड़े की गाँठ ढीली करने के लिए लंबे लिए हाथका गेम्बी कादम्बरीका—चिरकालमें वाद्वि, विरहित नेत्र-व्यमल युक्त, प्रवालमय मुखके अनुभवमें युक्त, सुगन्धी मन्नादि चादनेकी लज्जामें रमणीय—प्रथम सुख-सुखका अनुभव किया, और मान एक दिन रहा हो यो उस दिन पर, हृदयमें मन्तुष्ट हुए मग मन्तुष्टे मिया है, उद विना के मग आ गया ।

सुँह के बल लथड़ा जाता था । बार-बार जब मैं तिरछा होकर गिरनेको होता था तब एक करवटसे अपनेको संभाल लेता था । भूमि पर चलनेसे थक जाता था । अभ्यास न होने के कारण एक एक पद रख कर फिर भी बार-बार ऊपरकी ओर देखता था । मेरा साँस फूलने लगा था । शरीर धूलसे मटियाला हो गया था । इस प्रकार चलते चलते मैंने सोचा—ससारमें अत्यंत कष्ट पाने पर भी प्राणी जीवनकी आशा नहीं छोड़ते, ससारमें सब जंतुओंको जीवनसे अधिक प्रिय अन्य कुछ नहीं है, क्योंकि जिसका नाम याद करनेसे सुख हो ऐसे पिताके यों मरने पर भी मैं अब तक अच्छी तरह जीता हूँ । विकार है मुक्त करुणा हीन, कठिन और कृतघ्नको । पिता की मृत्युके शोकसे दुःखी होकर भी मैं प्राण धारण करता हूँ और उपकार नहीं मानता । मेरा हृदय सच्चमुच्च दुष्ट है । मेरी माताके मरने पर पिताने अपने शोकका वेग रोमा । स्वयं वृद्ध होने पर भी जन्मसे मैं पैदा हुआ तबसे लेकर वे जीते रहे तब तक, उन्होंने त्वेहसे मेरा पालन किया और श्रमकी कुछ परवा नहीं की, उन्होंने बहुतसे उपायोंसे मेरा सन्तर्धान किया । यह सब मैं एक साथ भूल गया । ठीक है, ये प्राण प्रत्यन्त क्लृप्त हैं, क्योंकि ऐसे उपकारी पिताके कहीं चले जाने पर अब भी उनके पीछे नहीं जाते । जीवनकी तृष्णा सर्वथा सबको दुष्ट बना देती है, क्योंकि मैं ऐसी दशामें हूँ तो भी प्यास मुझे सताती है । पितृ-मरणके शोककी ता मुझे कुछ परवा नहीं, पर जल पीनेकी इच्छा है । यह सब केवल निर्दयता है, इसमें सदेह नहीं । अभी तालाबका किनारा तो दूर मालूम होता है, क्योंकि जलदेवीके पायजेरोमी भ्रम-भ्रमनाटके समान कलहमोमी ध्वनि बहुत दूर सुनाई देती है । सारसोमी आवाज साफ नहीं सुन पड़ती है, अन्तर बहुत दानेसे मिशा प्राणें भ्रम जानेके कारण कमलोमी गंध भी कम आती है; और दिनका यह समय प्रत्यंत कष्टदायक है, क्योंकि आकाशके बीचमें आया सूर्य अपनी निरखोसे-अरिरी रज्जे सप्तम भनकती-धूम सब जगह निरन्तर बिछा रहा है, धूल धूपसे गरम हो गई है, जमीन गरम हो रही रक्ता जाता, प्यास और भी अधिक लगती है । मेरे जो भी प्राणें मेरे पित्त हो गये हैं । मेरे हाथ पर अब जरा भी सरकनेके तापक नहीं है । आत्मा बराने नहीं है । दृश्य कष्ट जाता है । आँवोंके सामने अंधेरा छा रहा है । अच्छा हो कि किनारा मेरी इच्छाने बिना ही इस समय मेरे प्राण लेले !

४४—म इस भाँति विचार कर रहा था कि इतनेहीमें कमल सरोवरसे थोड़ी दूर तपोवनमें रहते महा तपस्वी जात्रालिका पुत्र हारीत उगी तालावमें नहाने के लिये आया। उमीकी उम्रके ग्रन्थ ऋषि कुमार भी उमी रास्तेमें उसके पीछे पीछे आ रहे थे। उमका अतः फरण, सनत्कुमारकी भाँति, मग विद्याग्रोके पढनेसे शुद्ध हो गया था। अत्यंत तेजके कारण उमकी मूर्ति देखी नहीं जा सकती थी। वह ऐसा मालूम होता था मानो दूसरा अग्नि हो। उदय होते सूर्य मडलमेंसे वह मानो निकाला गया था, विजलीसि मानो उमके अत्रयव बनाए गए थे, तपे हुए सोनेके रसका मानो उसके शरीर पर झोल फेरा गया था। उमकी देह प्रभा जरा पीली और निर्मल चमकती थी। उमसे वह ऐसा मालूम होता था जैसे नई धूपसे दिन और दावानलसे वन प्रकाशमान हो। तपाए हुए लोहेके समान लाल और अनेक तीर्थोंके स्नानसे पवित्र हुई उसकी जटा कंधे पर लटक रही थी, चोटीको उसने बाँध रक्खा था। खाडव वन जलानेकी इच्छासे कपट पूर्वक ब्राह्मणका रूप धरनेवाले अग्निके ममान वह देख पड़ता था। तपोवनकी देवीके नूपुर और वर्मोंरदेशोकी राशिके समान स्फटिक रुद्राक्षकी माला उसके दाहिने कानमें लटक रही थी, मायेमें भस्मका त्रिपुड ऐसा मालूम होता था मानो सत्र सासारिक भोगोंसे निवृत्ति पानेके लिये उसने कायिक, वाचिक तथा मानसिक सत्यका चिन्ह बना लिया हो, ग्रामाशमे उड़नेके लिये ऊपर देखते बगुलेके समान उसकी गर्दन उठी हुई थी, जिससे वह ऐसा मालूम होता था मानो स्वर्गका रास्ता देखता हो। स्फटिकमणिका कमडल उसके बायें हाथमें था, कंधे पर पड़ा हुआ काला मृग-चर्म ऐसा लगता

१—महाभारतमें लिखा है कि राजा श्वेताकर्षेण बारह वर्ष तक यज्ञ । उसमें निरन्तर धीकी आहुति दी गई जिससे अग्निके उठरमें विकार । इस विकारके दूर करनेके लिए ब्रह्मने अग्निको साडव वन जलाने का २ दी। पर इन्द्रने साडव वन नहीं जलाने दिया और आँच बुझाने के ५ खूब वर्षा की। तब अग्निने ब्राह्मणका रूप धर कर कृष्ण और अर्जुनकी ५० माँगी। उन्होंने साडव वनके ऊपर तीरोंका एक वितान बना दिया जिससे वर्षाका जल साडव वनमें नहीं पहुँच सका और अग्निने उसे जला डाला।

या मानो तप करतेमें पिये हुए तपके धूमने बाहर निकल कर उसके शरीरको घेर लिया हो, उमके बायें कंधे पर जनेऊ पड़ा था जो हवासे हिल रहा था, निर्मास पार्श्वकी आस्थियोंको मानो अलग-अलग गिन रहा था और इतना महीन था कि नये मृणाल सूत्रका बना मालूम होता था। पूजाके लिए इकट्ठे किये बनलताओंके फूलोंसे भरे पत्तोंके दोनेको पलाशके दंडकी नोक पर बाँध कर उसने दाहिने हाथमें धाम लिया था। उसके पीछे-पीछे चंचल नेत्रोंवाला तपोवनका हिला हुआ हिरन दर्भ, लता और फूलोंको देखता देखता आ रहा था। हिरनके सींग पर खोदी हुई स्नान-मृत्तिमा लग रही थी और मुट्टी मुट्टीभर नीवारसे उसका पालन किया गया था। वृद्धकी तरह मुनि-कुमारका शरीर कोमल बल्कलसे^१ आच्छादित था। पर्वतके समान वह मेखला^२ युक्त था। राहुके समान वह चार चार ओभरसका^३ स्वाद लेता था। कमल-समूहकी तरह वह सूर्य किरणोंको^४ पीता था। नदी-तटके वृद्धोंके समान उसकी जटा^५ सदा जलमें धुलनेसे निर्मल हो गई थी। हाथीके बच्चेके समान उसके दाँत विक्रमिणित कुमुद पत्रके टुकड़ेके सदृश श्वेत थे। अश्वत्थामाकी तरह वह कृपानु-^६ गत था। नक्षत्र राशिनी तरह वह चित्र-मृग^७ कृत्तिका-श्लेषसे शोभित था। ग्रीष्मके^८ दिनकी भाँति वह क्षयित बहुदोष था। वर्षाकालकी तरह उसमें

१—वृद्ध बालसे ढका होता है, हारीतके पास बालके बन्ध थे।

२—पर्वत अग्नि-नितबसे युक्त होता है, हारीत कटि-सूत्र युक्त था।

३—राहु चद्रका स्वाद लेता है, हारीत सोमलताका रस पीता था।

४—कोमल सूर्यकी किरणोंका ग्रहण करते हैं, हारीत पञ्चाग्नि-साधन यज्ञमें सूर्य किरणों पीता था।

५—वृद्धकी लट्टें धुल जाती हैं, हारीतकी लट्टें।

६—अश्वत्थामा कुपके साथ था, हारीत कृपालु था।

७—नक्षत्रोंमें चित्रा, राग, कृत्तिका और आश्लेषा नक्षत्र हैं हारीत पितृवरे हिरनसी साख पहन रहा था।

८—गर्मीने रात छोटी हो जाती हैं, हारीतने बहुतसे दोषोंको दूर कर दिया था।

४४—मे इस भाँति विचार कर रहा था कि इतनेहीमें कमल सरोवरसे थोड़ी दूर तपोवनमें रहते महा तपस्वी जात्रालिका पुत्र हारीत उसी तालावम नहाने के लिये आया। उमीकी उम्रके अन्य ऋषि जुमार भी उसी रास्तेमें उसके पीछे पीछे आ रहे थे। उमका अतःकरण, सनत्कुमारकी भाँति, सब विद्याओंके पढनेसे शुद्ध हो गया था। अत्यंत तेजके कारण उमकी मूर्ति देखी नहीं जा सकती थी। वह ऐसा मालूम होता था मानो दूमरा अग्नि हो। उदय होते सूर्य-मडलमेंसे वह मानो निकाला गया था, विजलीसे मानो उमके अवयव बनाए गए थे, तपे हुए सोनेके रसका मानो उसके शरीर पर झोल फेरा गया था। उसकी देह प्रभा जरा पीली और निर्मल चमकती थी। उमसे वह ऐसा मालूम होता था जैसे नई वृषसे दिन आर ढानानलसे वन प्रकाशमान हो। तपाए हुए लोहेके समान लाल और अनेक तीर्थोंके स्नानसे पवित्र हुई उसकी जटा कंधे पर लटक रही थी, चोटीको उसने बाँध रक्खा था। खाटव-वन जलानेकी इच्छासे कपट पूर्वक ब्राह्मणका रूप बनेवाले अग्निके समान वह देख पड़ता था। तपोवनकी देवीके नूपुर और धर्मोन्देशोकी राशिके समान स्फटिक रुद्राक्षकी माला उसके दाहिने कानमें लटक रही थी, माथेमें भस्मना त्रिपुंड ऐसा मालूम होता था मानो सब सासारिक भोगोंसे निवृत्ति पानेके लिये उसने कायिक, वाचिक तथा मानसिक सत्यका चिन्ह बना लिया हो, आशयमें उड़नेके लिये ऊपर देखते बगुलेके समान उसकी गर्दन उठी हुई थी, जिससे वह ऐसा मालूम होता था मानो स्वर्गका रास्ता देखता हो। स्फटिकमणिका कमंडल उसके बायें हाथमें था, कंधे पर पड़ा हुआ काला मृग-चर्म ऐसा लगता

✓ १—महाभारतमें लिखा है कि राजा श्वेताकर्णे बारह वर्ष तक यज्ञ किया। उसमें निरन्तर घीकी आहुति दी गई जिससे अग्निके उदरमें विकार होगया। इस विकारके दूर करनेके लिए ब्रह्माने अग्निको साडव वन जलाने की सलाह दी। पर इन्द्रने साडव वन नहीं जलाने दिया और आँच बुझानेके लिए खूब वर्षा की। तब अग्निने ब्राह्मणका रूप धर कर कृष्ण और अर्जुनकी सहायता माँगी। उन्होने साडव वनके ऊपर तीरोंका एक चितान बना दिया जिससे वर्षाका जल साडव वनमें नहीं पहुँच सका और अग्निने उसे जला डाला।

या मानो तप करतेमें पिये हुए तपके धूमने बाहर निकल कर उसके शरीरको बेर लिया हो, उसके बायें कंधे पर जनेऊ पड़ा था जो हवासे हिल रहा था, निर्मास पार्श्वकी अस्थियोंको मानो अलग-अलग गिन रहा था और इतना महीन था कि नये मृणाल सूत्रका बना मालूम होता था। पूजाके लिए इकट्ठे किये वनलताओंके फूलोंसे भरे पत्तोंके दोनेहो पलाशके दंडकी नोक पर बाँध कर उसने दाहिने हाथमें धाम लिया था। उसके पीछे-पीछे चंचल नेत्रोंवाला तपोवनका हिला हुआ हिरन दर्भ, लता और फूलोंमें देखता देखता आ रहा था। हिरनके सींग पर खोदी हुई स्नान-मृत्तिमा लग रही थी और मुट्ठी मुट्ठीभर नीवारसे उमका पालन किया गया था। वृक्षकी तरह मुनि-कुमारका शरीर कोमल बल्कलसे^१ आच्छादित था। पर्वतके समान वह मेखला^२-युक्त था। राहुके समान वह बार-बार सोमरसका^३ स्वाद लेता था। कमल-समूहकी तरह वह सूर्य किरणोंमें^४ पीता था। नदीतटके वृक्षोंके समान उसकी जटा^५ सदा जलमें धुलनेसे निर्मल हो गई थी। हाथीके बच्चेके समान उसके दाँत विकसित कुमुद पत्रके टुकड़ोंके सदृश श्वेत थे। अश्वत्थामाकी तरह वह कृपानु-^६ गत था। नक्षत्र राशिमें तरह वह चित्र-भृगु^७ कृत्तिका-श्लेषसे शोभित था। ग्रीष्मके^८ दिनकी भाँति वह क्षयित बहुदोष था। वर्षाकालकी तरह उसमें

१—वृद्ध छालसे ढका होता है, हारीतके पास छालके वस्त्र थे।

२—पर्वत अट्टि-नितंबसे युक्त होता है, हारीत कटि-सूत्र युक्त था।

३—राहु चंद्रका स्वाद लेता है, हारीत सोमलताका रस पीता था।

४—कमल सूर्यकी किरणोंका ग्रहण करते हैं; हारीत पञ्चाग्नि-साधन यज्ञमें सूर्य किरणें पीता था।

५—वृक्षकी जड़ें बुल जाती हैं, हारीतकी जड़ें।

६—अश्वत्थामा कृपके साथ था, हारीत कृपालु था।

७—नक्षत्रोंमें चित्रा, भृगु, कृत्तिका और श्लेषा नक्षत्र हैं हारीत चितकवरे हिरनकी खाल पहन रहा था।

८—गरमीसे रात छोटी हो जाती है, हारीतने बहुतसे दोषोंको दूर कर दिया था।

रजःप्रसर^१ नहीं होता था । वरुणकी तरह वह उद्वास^२ करता था । विष्णुकी तरह उसने नरक^३-भयका निवारण किया था । निशाके आरभकी तरह उसके तारे^४ सध्या-पिंगल थे । प्रभातके समान वह बालातप^५ कपिल था । सूर्यरथ की तरह उसका अक्ष-चक्र^६ नियमित था । बुद्धिमान् राजाके समान उसने गूढ मन्त्र^७-साधनसे विग्रहका क्षय किया था । समुद्रकी तरह वह विराल^८-शख-मडल आवर्त गर्त था । भगीरथकी तरह उसने गंगावतारका^९ दर्शन किया था । भ्रमरोंकी तरह वह बार बार पुष्कर^{१०} वनमें वास करता था । वनचर होने पर भी उसने महालयमें^{११} प्रवेश किया था । असयन^{१२} होने पर भी वह मोक्षकी इच्छा रखता था । सामका^{१३} प्रयोग करता हुआ भी सदा दंड ग्रहण

१—वर्षाकालमें धूल नहीं उड़ती, हारीतमें रजोगुण नहीं था ।

२—वरुण जलमें वास करता है, हारीत व्रत करता था ।

३—विष्णुने नरकासुरसे जो भय था उसे दूर किया था, हारीतने नरकका ।

४—निशाके आरभमें तारे सध्यासे पिंगल होते हैं, हारीतके नेत्रोंकी पुतलियाँ सध्याके समान पिंगल थीं ।

५—प्रभात नई धूपसे कपिल होता है, हारीत बालातपके समान था ।

६—सूर्यके रथके पहिये और चक्र दंड हैं, हारीतकी इन्द्रियाँ वशमें थीं ।

७—राजा गुप्त सलाहोंसे लड़ाई नहीं होने देता है, हारीत गुप्त मन्त्रोंके द्वारा शरीरका क्षय करता है ।

८—समुद्र बहुतसे शख तथा जल भ्रमरसे युक्त गड्ढोंवाला है, हारीतके और भालके मध्यकी जगह बीचमें नीची तथा चारों ओर उठी हुई थी ।

९—भगीरथने गंगाका उतरना देखा था, हारीतने गंगावतार तीर्थ देखा था ।

१०—भ्रमर कमल-वनमें रहते हैं, हारीत जल-युक्त वनमें रहता था ।

११—महल, ब्रह्म-समाधि ।

१२—सयम-हीन, सत्कारमें विरक्त ।

१३—साम उपाय, साम-वेद । दंड उपाय, लकड़ी ।

करता था । निद्रा वश होने पर भी वह प्रबुद्ध^१ रहता था और दो नेत्र होने पर भी उसने वामलोचनमा^२ परित्यग किया था ।

४५—सज्जनोंमा चित्त प्रायः त्रिना कारण प्रीति करनेवाला आर कल्याणसे आर्द्र होता है क्योंकि जब मुनि कुमारने मुझे ऐसी दशामे देखा तब उसे दया आई और उसने अपने पास खड़े एक ऋषि कुमारसे कहा—इस तोतेके बच्चेके पख तो अनी निकले नहीं हैं, पर न जाने यह कैसे इस वृक्षकी चोटी परसे या बाजके मुँहमेसे नीचे गिर पडा है क्योंकि दूरसे गिरनेके कारण इसमे अब थोड़ी ही जान बाकी है, आँचे बंद हो गयी हैं, साँस फूल रहा है, बार-बार मुँह पर लयडाता है, चोंच फाटना है और इसमें अपनी गर्दन उठानेकी भी तात्न नहीं है, इसलिए, प्रायो, जब तक इसके प्राण न निकले तब तक इसे उठा कर जलके पास पहुँचा दें । यों कह कर उसने ऋषि कुमारके द्वारा मुझे तालाबके किनारे पहुँचा दिया । फिर जलके पास जाकर, अपना दड और कमडल एक किनारे रख, वह आप ही मुझे उठा लाया और मेरे सब आशा छोड देने पर भी नारा मुँह ऊँचा नर, अपनी उँगलियोंसे उसने कितनी ही पानीकी बूँदें मुझे पलाई छींटने मुझे निलयाया और जब मुझमे फिर जान आ गई तब किनारेके पास लगे कमलके पत्तोंकी-जलसे ठण्डी छायामे मुझे रख कर उसने यथोचित स्नान किया । नहानेके बाद अनेक प्राणायाम करके, शुद्ध हो, पवित्र अवमर्पणका जप कर, ऊँचा मुँह करके, नलिनीके पत्तोंके दोनेके द्वारा, तत्काल तोड़े हुए लाल कमलोंसे सूर्यको ग्रह देकर वह खडा हो गया । फिर धुले हुए सफेद बल्कल पहननेसे वह चद्रिका-युक्त सध्यातपके समान शोभायमान हुआ । उसने अपनी हथेलीसे जटाको फटकार कर साफ किया, कमडलमें तालाबका पवित्र जल भरा, तथा वह मुझे लेकर तपोवनकी ओर धीरे-धीरे चलने लगा और तत्काल नहानेके कारण गीली जटावाले ऋषि कुमारोका झुण्ड उसके पीछे हो लिया ।

४६—सरोवरसे हम बहुत दूर न पहुँचे थे कि इतनेमें मेने एक अत्यन्त रमणीक आश्रम देखा । वह मानो दूसरा ब्रह्मलोक था । उसके चारो ओर वन

१—जागता, ज्ञानी ।

२—वाम नेत्र; स्त्री ।

थे । उनमें बहुतसे वृक्ष लगे थे । वे फल-फूलोंसे लद रहे थे वहाँ ताड़, तिलक, तमाल, हिलाल और मोलसिरीके वृक्ष बहुत थे । नारियलों पर इलायचीकी बेल चढ रही थी । लोध्र, लवली और लौंगके पत्ते हिल रहे थे । आमकी मंजरीकी रज ऊँची उड़ रही थी । भ्रमरगौरी भनकरसे आमके वृक्षोंमें शब्द हो रहा था । उन्मत्त कोकिलाओंका समूह कोलाहल कर रहा था । फूले हुए केवड़ेकी रजके ढेरसे वहाँके वन पीले दीखते थे । सुपारीके लता-रूपी हिंडोलेमें वनदेवियाँ भूलती थीं । पवनसे हिलाए हुए बहुत से सफेद फूल, आधर्म^१-विनाश-सूचक उल्कापातके समान, बार बार वृक्षोंसे गिरते थे । दडकारणकी भूमिसे उस आश्रमका पिछला भाग मुहावना लगता था । वह भूमि निर्भय होकर दौड़ते सैकड़ों काल मृगोंके कारण विचित्र थी । खिली हुई कमलिनियोंसे लाल लाल थी । कपटमृगका रूप बर कर मारीचने बड़ी बड़ी लताओंके पत्ते काट लिये थे । राम-लक्ष्मणने धनुषकी नोकसे वहाँ कंद उखाड़ा था । इससे भूमितल ऊँचा नीचा हो गया था । लकड़ी, कुशा और मट्टी लेकर सब दिशाओंसे आते तथा ऊँचे स्वरसे पाठ याद करते शिष्योंके आगे आगे चलते हुए मुनि उसके पास ही दिखाई देते थे । पानीका कलमा भरनेमें । ध्वनिको मेघकी गर्जना समझ वहाँके मोर गर्दन उठा कर सुनते थे । दिन-पड़ती घीकी आहुतिसे सतुष्ट हुए अग्निने, सब मुनियोंको शरीर सहित स्वर्ग जानेकी इच्छासे, उंची चढती धूम-लेखाके बहाने मानो मार्गमें सीड़ियोंका बाँधा हो—ऐसा दिखाई देता था ।

४७—आश्रमके पास ही चारों ओर बावलियाँ थीं । उनकी मलिनता मानो ये संसर्गसे जाती रही थी । तरंग-मालामें सूर्यका प्रतिबिम्ब पड़नेसे ऐसा शू होता था मानो मुनियोंके दर्शनोंके लिये आए सात ऋषि उनमें न्दान हैं । उनमें फूले हुए कुमुद ऐसे देख पड़ते थे मानो गनिमें ऋषियोंकी सेवा करनेके लिये नीचे उतरे तारे हों । हवासे झुकी चोटियोंसे बनलताएँ मानो उसे प्रणाम करती थीं । दिन-रात फूल गिरा-गिरा कर सब वृक्ष मानो उसकी पूजा करते थे । पल्लवोंकी अजलि बना कर डालियाँ मानो उसकी सेवा करती

१—उल्कापात धर्म विनाश-सूचक होता है; पुष्प-वृष्टि अधर्म विनाश सूचक थी ।

थीं । मुनियोंके आँगनोंमें, सूखनेके लिये, श्यामाक घान बिछा था । इमली, लवली, बेर, केले, लकुट, कटहर, आम और तालके फल इकट्ठे रखे थे । बालक स्वरसे पाठ पढते थे । बार-बार सुने हुए वपट्कार शब्दका उच्चारण करनेसे तोते वाचाल हो रहे थे । असख्य मैना वेदका घोष कर रही थीं । जगली मुर्गे बैरवदेवमें दिया हुआ पलि खाते थे । पासकी बावलीमें रहते कल-हसके त्रचे नीवारकी बलिका आहार करते थे । हिरनियाँ अपनी-पल्लवके समान कोमल-जिह्वा-प्रतिसे मुनियोंके गाल-मोंको चाटती थीं । हवनमें अधजले कुश, समिध और फूल चड़चड़ाते थे । पत्थरसे तोड़े गये नारियलके पानीसे शिला-तल गीले हो रहे थे । हाल ही निचोड़े गये बल्बल्लोंके जलसे भूतल लाल हो गया था । लाल चंदनसे चिन्तित सूर्य मंडल पर कनेरके फूल चढाए गए थे । इधर उधर रास बिद्धा कर मुनियोंके भोजन-स्थलोमी आठ बाँध दी गई थी । हिले हुए बंदर बर्राँके बूढे और अघे तपस्वियोंको अपने हाथसे पकड़ कर बाहर ले जाते और भीतर ले आते थे । राथीके बच्चोंने मृगालके टुकड़े आघे चवा-चवा कर छोड़ दिये थे । वे सरस्वतीमी मुज-लतामेंसे निकले शंखोंके कण्ठके समान लगते थे और उनसे आश्रम चित्रित हो रहा था । हिरन अपने साँगोंसे ऋणियोंके लिये कदमूल खोद देते थे । हाथी अपनी सूँड़ोंमें जल भर कर बृह्नों-की क्यारियों भर देते थे । जगली शूकरोंके दाँतोंके बीच-बीचमें भरे कमलकंदको ऋषि-कुमार खँच लेते थे । पालतू मोर अपने पंखोंसे हवा करके मुनियोंकी होमाग्नि सुलगाते थे । अमृतके समान चक्की मनोहर सुगंध फैल रही थी । आघे पके पुरोडाशकी पवित्र परिमलसे वह आश्रम सुगंधित हो रहा था । अग्निमें निरंतर वीकी आहुति दी जा रही थी । उसकी सनसनाहट सुनाई देती थी ।

४८—वहाँ अतिथियोंकी सेवा की जाती थी, पितृ-देवताओंकी पूजा होती थी, ब्रह्मा, विष्णु, महेशका अर्चन होता था, आद्रका उपदेश होता था, यज्ञ विद्या पर व्याख्यान दिया जाता था; धर्मशास्त्रकी आलोचना होती थी, अनेक पुस्तकोंका पाठ होता था, सब शास्त्रोंके अर्थका विचार होता था, पत्तोंकी कुटियाँ बनाई जाती थीं, आँगन लीपे जाते थे, मुनियोंके घर भीतरसे साफ किये जाते थे, ध्यान होता था, मंत्रोंका साधन होता था, योगका अभ्यास होता था, वन-देवियोंको बलि दिये जाते थे, मूँजकी मेखला बनाई

जाती थी, ब्रह्मकल धोए जाते थे, समिधका सग्रह होता था, कृष्ण मृगचर्म साफ किये जाते थे, पशुग्राके खानेकी वाम ली जाती थी, कमल-बीज सुखाए जाते थे, अक्षमाला गूथी जाती थी, व्रेतके टड रक्खे जाते थे, परिव्राजकोका सत्कार किया जाता था, क्रमडलुमें जल भरा जाता था । कलिकालने उस आश्रमको कभी देखा नहीं था । असत्यका उमने परिचय नहीं था । कामदेवने उसका नाम भी नहीं सुना था । ब्रह्मार्थी तरह वह त्रिभुवन-वदित था । विष्णुके समान उसने १ नृसिंह-वाराह रूपा प्रकृत किया था । साख्यकी तरह वह २ कपिलाधिष्ठित था । मथुराके उपवनकी तरह वह ३ चलाव-लीढ दर्पित धेनुक था । उदयनकी तरह वह वत्स-कुलको ४ आनन्द देता था । किम्पुरुष राज्यके समान वहाँ जल-कलश लेकर मुनि द्रुमाभिषेक ५ करते थे । ग्रीष्म ऋतुके अतकी तरह ६ जल-प्रपात पास ही था । वर्षाकालकी तरह वहाँ ७ वन-गहनके बीचमें हरि आरामसे सोते थे । हनूमान्के समान वहाँ पत्थरोके टुकड़ोंकी चोटीसे अन्नके ८ अस्थि-सचयका चूरा किया जाता था । खाडव-वन

१—विष्णुने नृसिंह तथा वाराह अवतार लिया था, आश्रममें मनुष्य, सिंह, शूकर तथा अन्य पशु थे ।

२—कपिल मुनिने साठव्य शास्त्रका प्रवर्तन किया था, आश्रम कपिला युक्त था ।

३—मथुरामें बलरामने उद्धत धेनुकको मारा था, आश्रममें बल युक्त दर्पित हथिनियाँ थीं ।

४—उदयनने अपने वत्स-कुलको आनन्द दिया था, आश्रममें बड़ड़ोंको होता था ।

५—राज्यमें द्रुम राजाका अभिषेक हुआ था, आश्रममें मुनि वृक्ष सोते थे ।

६—ग्रीष्मके अतमें वर्षा होती है, आश्रमके पास ही पानीका झरना था ।

७—वर्षाऋतुमें समुद्रमें विष्णु सोते हैं, आश्रमके वनमें सिंह सोते थे ।

८—हनूमान्ने रावणके पुत्र अचयकुमारकी हड्डियाँ तोड़ी थी, आश्रममें बहेबेकी गुठलियाँ तोड़ी जाती थीं ।

जलानेमें तत्पर हुए अर्जुनके समान वहाँ अग्नि-कार्यका^१ आरम्भ हुआ था । सुगभि त्रिलेपनके^२ होने पर भी वहाँ सदा धूमकी गंध निकलती थी । मातंग-^३ कुलका वास होने पर भी वह पवित्र था । सैकड़ों धूमेकतु^४ वहाँ दीखते थे तथापि उपद्रव कुछ भी नहीं होता था । द्विजपतिका^५ सत्र मडल वहाँ होने पर भी पासके वृद्धोकी भाङ्गीमें सदा अघेरा ही रहता था ।

/ ४६—वहाँ मलिनता^६ केवल यज्ञधूममें थी, चरित्रमें नहीं, मुख-राग^७ तोतोंहीमें था, कोपमें नहीं, तीक्ष्णता^८ दर्भाग्रमें ही थी, स्वभावमें नहीं, चचलता^९ केलेके पत्तोंमें ही थी, मनमें नहीं, चक्षू-राग^{१०} कोकिलोंमें ही था, पर स्त्रियोंमें नहीं, कठग्रह^{११} कमडलहीमें था, रति विलासमें नहीं, मेखलाबन्ध^{१२} ब्रतहीमें था, ईर्ष्याकलहमें नहीं, होमकी गायोंके स्तनका ही स्पर्श होता था, स्त्रियोंके नहीं, सुगोंहीका पक्षपात^{१३} होता था, विद्या विवादमें नहीं, अग्निकी

१—वनमें अर्जुनने अग्निको जलानेमें मदद दी थी, आश्रममें होम आरम्भ हुआ था ।

२—सुगंधित लेप, गोवर ।

३—चाडाल, हाथी ।

४—केतु, अग्नि ।

५—चक्र, श्रेष्ठ ब्राह्मण ।

६—मलिनता = कालोच, दोष । वहाँ धूममें ही कालोंच थी, किसीके चरित्रमें दोष नहीं था ।

७—तोतोंके मुँह पर ललाई थी, क्रोधसे मुँह लाल नहीं होता था ।

८—दर्भाग्र ही तेज थे, किसीके स्वभावमें सत्ती नहीं थी ।

९—तरलता, अस्थिरता ।

१०—नेत्रोंमें ललाई, नयन-प्रीति ।

११—गर्दन पकड़ना, कंठालिंगन ।

१२—मोजी-बधन, जंजीर बाँधना ।

१३—पक्षोका गिराना, तरफदारी ।

लक्ष्मीके समान मालूम होती है । एक तोतेको मिजरेमें रख कर लाई है और महाराजसे प्रार्थना करती है कि पृथ्वीतल पर, महागज, समुद्रके समान सब रत्नोंके आकर हैं और मेरा आश्चर्य-जनक तोता भी सब भुवनोका एक रत्न है । यह समझ महाराजके दर्शन सुखकी अभिलाषासे मे उमे लेकर महाराजके चरणोंमें आई हूँ । महाराजकी क्या आज्ञा है ?

८—प्रतीहारीके इतना कह चुकने पर राजाको भी उसके देखनेकी लालसा हुई और आस-पास बैठे सब राजा लोगोंके मुद्रकी ओर देख उसने आज्ञा दी—कुछ दोर नहीं, भीतर आने दो ।

९—राजाका वचन सुनते ही प्रतीहारी उठ कर चाटाल कन्याको भीतर ले आई । आते ही कन्याने हजारों नृत्योंके मध्यमें विराजमान राजा शूद्रकको देखा । वह ऐसा लगता था मानो वज्रके भयमें एकत्रित हुए कुल-पर्वतोंके बीचमें सुमेरु बैठा हो । अनेक रत्नाभूषणोंके किरण जालमें ग्रवयवोंके टक जानेसे वह ऐसा शोभायमान लगता था मानो हजारों इन्द्र-धनुषसे व्याप्त आठ दिशावाला वर्षा ऋतुका दिन हो । वह चन्द्रकान्त मणिके सिंहासन पर विराजमान था । उसमें बड़े-बड़े मोतियोंकी झालर लटक रही थी और उसके चारों मणि-टण्ड सोनेकी जजीरोसे बंधे थे । उसके ऊपर मदाकिनीके भागके समान सफेद महीन वस्त्रका चदोवा टँग रहा था । राजा शूद्रक पर सोनेकी टडीके चमर झल रहे थे और स्फटिक-मणिके पायदान पर उसका त्रायो चरण रखवा था । वह पायदान ऐसा लगता था मानो उसके चारों ओर फैलती हुई किरणोमाले-मुपकी कान्तिसे पराभव पाकर नम्र हुआ चन्द्रमा

नहीं आये । विश्वामित्रने क्रोध करके उसे अपने बलसे स्वर्ग भेजा । इन्द्रने उसे स्वर्ग में न घुसने दिया । तब उसे नीचे गिरतेमें विश्वामित्रने अन्तरालमें स्थिर किया ।

१—पहले पर्वतोंके पद्व थे । इनसे वे चाहे जहाँ चले जाते थे तथा मनुष्योंको और ऋषियों को कष्ट देते थे । तब मनुष्यों और ऋषियोंने इस भयसे पीछा छुड़ाने के लिए इन्द्रसे प्रार्थना की । इन्द्रने अपने वज्रसे उनके पक्ष काटकर उन्हें अपने स्थानों से हटने लायक नहीं रखा ।

हो। उसके चरण नवोक्ती किरणों नीलमके फर्शकी प्रभाके सपर्शसे कुछ श्याम हो गई थी। वे ऐसी लगती थी मानो वशीभूत शत्रुओंके निश्वामसे मलीन हो गई हो। मिहाननमसे फैलती हुई मानककी किरणोंसे उसकी दोनों जघाएँ लाल-लाल हो गई थी, जिनसे वह—कुछ समय पहले मारे गण मनुष्यमके रुधिरने लाल हुई जघाओंवाले—विष्णुके समान लगता था। वह अमृतके भागके समान सफेद दो वस्त्र पहन रहा था। उनकी कार पर गोगेचनने हसोके जोड़े चित्रित थे और उनके पल्ले चमरकी हवासे उड़ रहे थे। अत्यन्त सुगन्धित चदन रमके लेपसे उसकी छाती गोरी हो गई थी और उन पर उसने केशर छिड़क ली थी जिनसे—प्रातःकालकी धूप जिस पर कहीं का पड़ी हो ऐंसे—कैनाम पर्वतके समान वह शोभायमान लगता था। मोतियाकी मालाने उसके मुखके इधर उधर परिवेश कर रक्खा था। वह ऐसी लगती थी मानो उसके मुखको दृसग चन्द्र समझ कर नक्षत्रमाला प्राई था। दो इन्द्रनील मणि जटित वाजूद उमकी मुजाग्रामे धड़े थे। वे चन्द्रनरमकी सुगंधके लाभसे आए दो सपौंके समान लगते थे और उन्हे देखकर प्राणा चञ्चल राज-लक्ष्मीको शोधनेकी जड़ीरोकी शका होती थी। उसका वर्ण काला कुछ लटक रहा था नाक ऊँची थी, खिले हुए सफेद कमलके समान नेत्र, चन्द्रमाके आदे टाड़ने प्राकारका ललाट था—वह निर्मल सुवर्ण चट्टी समान विशाल था प्राग स्र मुखनोके राज्याभिषेकके जलसे पवित्र हुए, शोभाओंके शीचमें रोनाका मर था। उसने सुगन्धित चमेरी के फूलाने सुदृढ पहन रक्खा था, जिनसे वह शिखर पर प्रातःकाल एकत्रित हुए तारान्वित अस्ताचलके समान शोभायमान लगता था। गहनाके प्रकाशने उन्हे स्वयं प्रग पीले हो रहे थे, जिनसे वह—महादेवके तीसरे नेत्रने निकली हुई प्रतिमे जलते हुए—धामदेव के समान देव पड़ता था। उन्हे प्रतपन, दिशारूप गियोंके समान, देवार्थे सेजाने लिए उत्कथित थी। निर्मल मोतिल पर्वत उमका प्रतिविम्ब पड़नेसे ऐसा मालूम होता था मतो कृती सती पतिको प्रेमपूर्ण हृत्तासे लगा लिखा हो। उमका नेत्र प्रत्यक्ष शरीरके मन्त्र काधारण नहीं था, इस कारण—प्रत्येक जगता नेत्रा हुए होते करना—अकाधारण राजलक्ष्मीने उन्हे धारणा प्रशंसित किया था।

१०—परिवार अमख्य होने पर भी वह अद्वितीय^१ था । अगणित हार्थी-घोड़ोंका सामन होने पर भी केवल उन्नत उमरका महायुध था । एक ही जगह बैठ रहने पर भी सत्र पृथ्वी उमसे^२ व्याप्त थी । आसन-स्थित होने पर भी वह धनुषमं^३ स्थित रहता था । सत्र शत्रु-रूपी ईवनमो भन्म सर डालने पर भी उसके प्रतापकी अग्नि जला ही करती थी । नेत्र बड़े होने पर भी वह सूक्ष्मदर्शन^४ था । महादोष^५ होने पर भी वह सत्र गुणोपा ग्राहक था । कुपति^६ होने पर भी वह सत्र स्त्रियोंका प्रिय था । निरन्तर दानसे^७ भी उसमें मद्-विकार नहीं था । स्वभाव अत्यन्त शुद्ध होने पर भी वह कृष्ण चरित^८ करता था और स^९ विना भी सत्र पृथ्वी उसके हाथमें थी ।

११—दूरसे राजाको देखते ही चाडाल कन्याने, लाल कमलके पत्तोंके समान कामल हाथमें फटे बाँसकी छड़ी ले कर, राजाकी दृष्टि अपनी ओर फेरनेकी इच्छासे, फर्श पर एक बार शब्द किया—जितसे उसका गज कर्ण हिलने लगा । जगलमें ताल-शब्द दानसे जैसे सत्र हार्थी उमकी ओर देखने लगते हैं उसी भाँति बाँसकी छड़ीका शब्द सुन कर सत्र भूपाल एक माथ राजाकी तरफसे अचानक दृष्टि फेर कर उमीकी ओर देखने लगे ।

१२—प्रतीहारीने दूरसे 'देखो' कह कर उसे राजाको दिग्बलाया । राजा ने

१—अद्वितीय=जिसका कोई अन्य साथी न हो, अप्रतिम । यहाँ विरोधा- है । असरय परिवार होना और अद्वितीय (अर्थात् विना किसीके)

—इन दोनों में विरोध है पर अद्वितीयका यह अर्थ करनेसे कि—उसकी बराबरीका कोई नहीं था—विरोध जाता रहता है ।

२—अर्थात् उसके प्रताप से ।

३—अर्थात् धनुष पर उसका आवार था ।

४—छोटी आँसोंजाला, तीक्ष्ण दृष्टिवाला ।

५—बड़े-बड़े अवगुण, बड़ी भुजा-युद्ध ।

६—बुरा पति, शिवकी पति ।

७—मद्-जल, त्याग ।

८—श्याम (बुरे), कृष्ण के समान ।

९—हाथ, महत्त्व ।

नव यौवनमें भरी हुई, परम सुन्दर आकारवाली उस कन्या को टकटकी बाँध कर बड़े ध्यानसे देखा । उसके आगे—आर्ष—वैशम—चक्रद कपड़े पहने एक आदमी था । उसके निरके बाल बुडापेके कारण सफेद हो गए थे, आँगोंके कोने लाल कमल के समान थे, शरीरके बय, तादृश्य न रहने पर भी, बार बार कमरत करने के कारण शिथिल नहीं पड़े थे और चाटाल होने पर भी उसका आकार मूर नहीं था । उसके पीछे चाटाल-जातिका एक लडका था, जिसकी बुद्धि बिलकुल अन्तव्यस्त थी । उसके हाथमें एक पित्रग था । वह सुवर्ण की सलाहों में बना था, पर भीतर बैठे तोतेकी झलकने पन्ने का बना हुआ था—कुछ श्याम—देव पड़ता था । वह कन्या गमन शक्तिवाली नीलमयी पुतली सी लगती थी । उसका भग श्याम था, इस कारण वह—देवोंमें लिये गए अमृतको हरण करनेके लिये मायासे माहिनी रूप धारण करनेवाले—विष्णु का मानो अनुकरण करती थी । परकी गाठ तक पहुँचते नीले लहरंगेने उसका परम दृका हुआ था और ऊपर उसने लाल डुपट्टा थोड़ लिया था । उस पर ऐसी लगती थी मानो—सूर्य की किरणें जिस पर पड़ी हो ऐसी—नील कमलोंका एक भूमि हा । एक वानसे पहने हुए कर्ण भूषणकी प्रभासे उसके गाल गोरे हुए होते देते थे, इस कारण वह मानो—उदय होते हुए चंद्र-किरणोंमें जलन मुखवाली—रात्रि थी । कुछ कुछ पीले रंगके गोरोचनसे उसने तिलक लगा । तीसरा नेत्र बना लिया था, जिसमें मानो वह—महादेवके वेपने समान ही भीलनीका वेप धारण करनेवाली—पार्श्वी था । नारायणके वलकलन विनय करनेसे लगी—उनकी देह—प्रभाके कारण काली पड़ी—मानो वह साक्षात् लक्ष्मी थी । कुम्भित हुए महादेवको आँसु से जलते कामदेवके धुंगेने मलान हुई मानो वह गते थी । मातापैशम प्राण प्रयोगके हलसे विष जलनेके लक्षण करके भागी हुई मानो वह प्रमुखा थी । उसके चरण कमला पर बहुत पाटा लगा लासन रंगसे फूटपसे बनाए गए थे । दाहिने पर—वचन मरे, बाँधे—महिषासुरके दक्षिण लाल चरणमाला—दुपट्टा के समान लगा था । लाल

१—वल्ग्व ने जल-दीप्ता क तिए यदुना को बुलाया । यदुना उठके वासव का धनादर करके नहीं आई तब उ होने कुम्भित होकर उस हल से लोच सिखा ।

उँगलियोंकी प्रभासे उसकी नख किरणें गुलाबी हो गई थीं। उसके चरणोंमें जो फूल-पत्ते कढ रहे थे उनकी परछाईं जमीन पर पडती थी। इससे ऐसा लगता था मानो बहुत कठिन मणि मय भूमिका स्वर्ग अथवा होनेके कारण वह फूल-पत्ते बिछाती हुई उन पर चलती है। नूपुर-मणियोंसे फैलते हुए कुछ पीले रंगके प्रकाशसे उसका शरीर रंग गया था—जिससे ऐसा लगता था मानो भगवान् अग्निने, केवल उसकी कान्तिका पक्षपात कर और प्रजापतिकी आज्ञाका लोप कर, उस जातिको पवित्र करनेके लिए, उसके शरीरका आर्लिंगन किया है। उसकी कमरमें तागड़ीकी लड़ पड़ी थी। वह कामदेव-रूपी हाथीके मस्तकके ऊपरकी मोतियोंकी माला और रोमावली रूप लताकी क्यारीके समान लगती थी। बड़े-बड़े मोतियोंकी स्वच्छ माला उसने गलेमें पहन रखी थी। वह ऐसी लगती थी मानो उसे यमुना जानकर गगा मिलनेके लिए आई हो।

१३—शरदके समान उसके कमल नयन^१ प्रफुल्ल थे, वर्षाऋतुकी भाँति उसके केश^२ घन थे, मलयाचलके मध्यभागके समान वह चदनपल्लवोंसे^३ भूषित थी, नक्षत्र-मालाके समान वह चित्र-श्रवणाभरणसे^४ अलंकृत थी, लक्ष्मीकी भाँति वह हस्त-स्थित^५ कमल-शोभा थी, मूर्च्छाके समान वह मनको^६ लेती थी, वन-भूमिके समान वह अक्षतरु^७ समान थी, देवाङ्गनाके समान

१—शरदमें कमलरूपी नेत्र खिले होते हैं, कन्याके बड़े-बड़े नेत्र खिले कमलके समान थे।

२—वर्षा ऋतुके मेघ रूपी केश होते हैं, कन्या के घने केश थे।

३—मलयाचलका मध्यभाग चदनके पत्तोंसे शोभित है, कन्या चदनके पत्तोंके गहनोसे युक्त थी।

४—नक्षत्र-मालामें चित्रा, श्रवण तथा भरणी नक्षत्र होते हैं, कन्या कानोंके विचित्र गहनोसे युक्त थी।

५—लक्ष्मी हाथमें लिए कमलकी शोभासे युक्त है, कन्याके हाथोंमें कमलकी शोभा थी।

६—मूर्च्छा चेतनाको हर लेती है, कन्या चित्तको हर लेती थी।

७—वनभूमि अक्षरके वृत्तोंसे युक्त होती है, कन्या निर्दोष सौन्दर्य युक्त थी।

अकुलीन^१ थी, निद्राकी भाँति वह नेत्र^२-प्राहिणी थी, वन-कमलिनीकी भाँति वह^३ मातंग कुनसे दूषित थी, उसका दर्श^४ नहीं किया जा सकता था, इस कारण वह मानो निराकार थी, उसका केवल दर्शन ही हो सकता था, इस कारण वह मानो तस्वीर थी, चैतमासकी पुष्प-समृद्धिकी तरह वह विजानि^५ थी, कामदेवके पुष्प-वनुकी डोरीके समान उसकी कमर मुट्टीमें ग्रानेके योग्य थी और कुवेरकी लक्ष्मीके समान वह अलमोद्गामिनी^६ थी ।

१५—उसे देखकर राजा बड़ा विस्मित हुआ और मनमें विचार करने लगा—ग्रहो ! रूप निर्माण करनेका विधाताका प्रयत्न कैसे अयोग्य स्थान पर है ! यदि उसने इसे अपने रूपसे मंत्र मनोहर वस्तुगोका उपहार करने लायक बनाया तो—जिसने स्पर्श तथा सभोगका सुख न मिले—ऐसे कुलमें क्यों उत्पन्न किया ! मंग यह ब्याल है कि चाटाल जातिके स्पर्श-दोषने भयसे ब्रह्माने इसे छुए बना ही बनाया है, नहीं तो इतना पिदाप लावण्य कैसे हो सकता है ? तावक स्पर्शसे दूषित अक्षयवोकी ऐसी शक्ति कभी नहीं हो सकती । प्रजापतिगो स्पर्श विधा है जिसने ऐसा अघटित सभोग किया और ऐसी मनोहर मुट्टीका ना दुष्ट कुलमें उत्पन्न किया, जिससे यह—असुर-प्रीके समान अत्यन्त रमणीय होने पर भी—निर्दित सुरता^७ हानेक कारण खेद उत्पन्न करती है ।

१—दवागना पृथ्वीकी नहीं—स्वर्गाय-होती है, कन्या नीच कुलकी थी ।

२—निद्रा नेत्रोको बंद करती है, कन्या नेत्रोका आस्पर्श करती थी ।

३—वन कमलिनीको हाथियोंके यथ मसल, डालते हैं, कन्या चाटाल-कुलमें जन्म होनेसे दोष युक्त थी ।

४—निराकारका स्पर्श नहीं किया जा सकता, कन्याके साथ स्पर्श नहीं किया जा सकता ।

५—चैतमें चमेती नहीं खिलती इस कारण चैतकी पुष्प-समृद्धि चनेकी रहित होती है, कन्या हीन जातिकी थी ।

६—कुवेरकी लक्ष्मी उसकी राजधानी अलकासे मोनाचमान है कन्या अलको अर्थात् लटेसे मोनाचमान थी ।

७—असुर थी दयावालीकी निद्रा करती है, चाटाल-व-जैसे तावक सभोग विहित है ।

१५—राजा इस भाँति क्लेशना कर ही रहा था कि उसी समय कन्यानि प्रगल्भ स्त्रीके समान प्रणाम किया, जिसमे उसके कानका पल्लवाभूषण जरा लचका । प्रणाम करके मणिमय फर्श पर उसके बैठते ही आदर्शनी तोतेके पिंजरेको लाकर, जरा ग्रागे ग्राकर आर राजाको दिखाला कर कहा—महागज, यह तोता सब शास्त्रों का अर्थ जानता है, राजनीति के प्रयोग में कुशल है, पुराण इतिहास आदि की कथा कहने में बड़ा निपुण है, गान-विद्या के स्वर समझता है, काव्य, नाटक, प्राचीन और अर्वाचीन कथा आदि अनन्त सुभाषित पडा हुआ है और स्वयं बनाता है, परिहास करने में पक्का है, वीणा, वेणु, मृदङ्ग आदि वाजो का अद्वितीय श्रोता है, नाच देखने में निपुण है, चित्र के काम में चतुर है, जुआ खेलने में प्रवीण है, प्रेम कलह से अप्रसन्न हुई स्त्री को मनानेके अनेक उपाय जानता है, हाथी, घोड़े, पुरुष और स्त्री—इनके लक्षण समझता है, सब भूतलका यह एक रत्न है और इसका नाम वैराग्यन है । आप, समुद्रके समान, सब रत्नोंके ग्राहक हैं—यह जानकर मेरे स्वामी की कन्या इसे लेकर आपके चरणोंमें उपस्थित हुई है । अतः आप इसे स्वीकार करनेका अनुग्रह करें । इतना कह राजाके सामने पिंजरा रखकर वह दूर हट गया ।

उसके हट जाने पर तातेने गजाकी ओर देख, दाहिना चरण उठा, अन्त स्पष्ट वर्ण स्वर युक्त वाणीसे “नमः” कहकर, राजाकीके मध्यमे इस की छन्दसा उच्चारण किया—

१ मन्तयुगमश्रुन्नात ममीपतरवर्ति हृद्यशोकाने ।

चरति विमुक्ताहार त्रतमिव भक्तो रिपुस्त्रीणाम् ॥

१६—यह सुन राजा बड़ा विस्मित हुआ और एक बहुमूल्य आम्रन पर पास ही बैठे हुए—वृहस्पतिके समान मन्त्र नीति-शास्त्रमें प्रवीण और सब

१—जब कोई मनुष्य व्रत करता है तब वह बार बार नहाता है, (हवन करनेके लिए) अग्निके पास बैठता है । और विमुक्ताहार रहता है अर्थात् कुछ खाता-पीता नहीं है । इसी भाँति आपके शत्रुओं की स्त्रियोंके स्तनोने मानो व्रत किया है क्योंकि वे बारबार आँसुओंसे नहाते हैं, हृद्यशोकाने शोकान्गिके निकटवर्ती है और विमुक्ताहार है अर्थात् उनका मुक्ताहार उतार लिया गया है ।

मंत्रियम प्रधान—कुमारपाल नामक वृद्ध ब्राह्मण से नहर्ष कहने लगा—इस पत्नी की वर्णाचार्य की स्पष्टता और स्वर की मधुरता सुनी ! प्रथम तो वही एक बड़ा आश्चर्य है कि यह ताता अलग अलग वर्ण विभाग, मात्रा, अनुस्वार और शब्द शुद्धि रहित, अलभार युक्त, अत्यन्त स्पष्ट वाणी बोल सकता है, और दूसरा यह कि अभिमत विषय में, शिक्षित मनुष्यों की भाँति, पत्नियों की प्रवृत्ति भी बुद्धि पूर्वक होती है क्योंकि इसने अपने दाहिने चरण को ऊँचा उठाकर जय जय शब्द कहकर, मेरे सबधमें ही इस आर्या को अत्यन्त स्पष्ट अन्नगंध गाया। प्रायः पशु पक्षियों को कल भय, आहार, मैथुन और विद्रोह संकेताना ही जान होता है। यह तो बहुत ही अद्भुत है। राजाके वचन सुनकर कुमारपाल मंत्री जरा मुमकराकर बोला—महाराज, इसमें विचित्रता क्या है? आसन सुना होगा कि ताता मेरा आदि भित्तने ही पत्नी सुने हुए शब्दों को बोल सकते हैं। फिर पूर्वजन्मके स्मरणसे अपना मनुष्यके यत्नसे उत्तम प्रतिक्रिया प्राप्त हो जाय तो क्या आश्चर्य है? पशु पत्निया की वाणी भी, मनुष्यों की भाँति, अत्यन्त एसी थी कि वे अत्यन्त स्पष्ट उच्चारण कर सकते थे परन्तु प्रगिनक जानने वालों का वाणी की स्पष्टता जाती रही और तापियों की जीन उलटी फिर गई। यह बात हा रही थी कि इतने में आकाशक बीचमें सूर्यके आ पहुँचने की सूचना देनेके लिए दास्यरका राज बजा और पहरके अन्न की नौबत भी उन्नीके साथ बजा। उन्ने सुनकर स्वानता मनः प्रायः जान, सब तरफतियों को निरा कर, राजा शूद्रक मनो-मडामस उठा।

पीनेसे मत्त हुए वृद्ध कलहसो की ध्वनि सुनाई दे रही थी। चलती हुई वेश्याओं की जाँघो पर टकरानेसे व्रजतीं मणि-जटित मेखलाओंका मनोहर झुंकार हो रहा था। पायजेवोकी झनझनाहट सुनकर गृह मरोवरके कल-हम ढोड आए थे। वे सभामण्डपकी सीड़ियों पर बैठ कर कोलाहल कर रहे थे। उनके बैठनेसे नीड़ियाँ सफेद हो गई थी। तागडीकी झनकारसे उत्सुक हुए पालतू सारस बहुत ऊँचा शब्द कर रहे थे जो घिसे हुए कोंसेके शब्दके समान था। जल्दीमें चलते सैकड़ों सामन्तोंके चरणोंसे ताड़न किये गये सभामण्डपकी, पृथ्वीको कँपा देनेवाली, ध्वनि हो रही थी। वह वज्र-घोषके समान गम्भीर लगती थी। खेल करते और चिल्ला कर—देखो, देखो—कहते प्रतिहारियोंका तीक्ष्ण शब्द हो रहा था। वे हाथमें छुडी लेकर आगे रास्तेमेंसे एकदम लोगोको हटाते थे। उनके शब्दके साथ ही, महलकी कुञ्जोंमेंसे निकलते प्रतिशब्दके साथ दीर्घ हुआ—देखो, देखो—शब्द सुनाई देता था। प्रणाम करनेके सभ्रममें सिर झुकानेसे कुछ नरपतियोंके चूड़ामणि हिलने लगे थे और उनके मुकुट निर्मल मणियोंकी पैनी नोकोंसे दन्तुर हो रहे थे। उनके मुकुटोंसे घिनी गई मणिभूमिका शब्द हो रहा था। प्रणाम करनेमें अत्यन्त व्यस्त हुए मणि-कर्णपूर—अत्यन्त कठिन रत्न भूमि पर पडनेके कारण—शब्द कर रहे थे। मंगल-पाठक—जय-चिरजीव इत्यादि—मधुर वचन कहते-कहते आगे चल रहे थे। उनकी कल कल ५ दिशाओं में व्याप्त हो रही थी। चलते हुए मनुष्योंके सैकड़ों पैरोंके तलेमें कुचल जानेके डरके कारण फूनोंके ढेगोंमें भ्रमर उड़ रहे थे। उनका गुञ्जार हो रहा था। नरपति सभ्रममें बहुत जलदी जलदी पैर रखते थे। उनके वाज्रदोरी रगडसे रत्नहार-युत मणि-स्तम्भ रणत्कार कर रहे थे।

१८—सब राजाओंको विदा करने के बाद राजा शूद्रकने चाटाल-कन्यासे आराम करनेको कहा और ताम्बूलवाहिनीको वैश्यायनके भीतर ले जानेकी आज्ञा दी। फिर वह फितने ही अत्यन्त प्रिय राजकुमारके साथ भीतर गया। वहाँ सब गहने उतार कर अखाड़ेमें गया। उसमें कसरत करनेका सब सामान रक्खा था। गहने उतार देनेमें राजा शूद्रक फिर ५ हीन सूर्यचन्द्र तथा तारा-गण रहित आकाशके समान लगने लगा। वहाँ आने बराबरवाले राजकुमारोंके साथ उसने कुछ कसरत की। मिहनतके कारण उसका शरीर

पसीने में तर हो गया । पसीनेकी बूँदें उसके गालों पर कुछ कुछ लिखे हुए सफेद सिन्धुवारके फलभी मजरीके समान शोभायमान थी, छाती पर फाटन श्रमके कारण टूटे हारमेसे गिरे मोतियोंके गुच्छेके समान दिग्गलाई देती थी और ललाटमें अष्टमीभी चन्द्रकला पर शोभायमान अमृतकी बूँदोंका मान करती थी । फिर स्नानकी सामग्री तैयार करनेकी जलदीमें इधर उधर दौड़ते सेपकोंके साथ वह स्नान भूमिमें गया । उन समय महलमें आदमी कम होने पर भी छुडीदार भीड़ हटानेका काम उचित रीतिसे कर रहे थे । उन्होंने उस मार्ग चलाया । स्नान भूमिमें सफेद स्पडेका एक चँदोरा बंधा था, असम्भ्र चागा टोली बाँध बाँध कर बैठे थे, बीचमें सुगन्धित जलसे भरी एक नौनेकी नाँद रखी थी, पास ही स्फटिकमणिभी एक स्नान करनेकी चाँभी रखी थी, उनके एक ओर स्नान-कलश रखे थे, उनमें अत्यन्त सुगन्धित जल भरा था । सुगन्धित कारण प्राण भरोसे उनका मुँह माला हो रहा था । वे ऐसे लगते थे भाग्यो पानी गरम हो जानेके डरसे उन पर माले कपड बाँध दिये हो ।

१६—जब राजा पानीकी नाँद पर पहुँचा तब पेशवा प्राणों प्राने लगे सुगन्धित आमले लगा कर उसके सिर पर लेप किया । फिर पित्तोरा पेशवा उनके आम पास रखी हो गई । वे स्नान करानेके लिए आई हुई चण्डिका देवियोंके समान लगती थी । उन्होंने अपने स्तन प्रार कमर मजबूत बाँध लिए थे हाथोंके कारण बहुत ऊँचे चढ़ा लिए थे, कानोंके गहने उतार दिये थे, कपाल पर पड़े हुए बालोंकी लट्टियों काभी तरक भोज दिया था और हाथोंमें पाणियोंकासे उठा लिये थे । उठे हुए कुछ हुआलो चिन्तोंके मन्त्रने, पानी में तुम्हा हुआ राजा ऐसा लगता था भाग्य हथिपिण्डोंके नीचेपे जाना हुआ हो । जलभी तारसे उठ कर वह स्वच्छ स्फटिकमणिभी स्नान करनेका चाँभी कर बैठे, उस पर वह ऐसा लगता था भाग्यो श्वेत राजहंस तर बद्ध चढ़ा हो । पत्तों पित्तोरी ही पेशवाएँ—उन पर पाणियोंका आलने—नास्तिकि-वदित वलशाभी प्रभुके कारण जरा शर्मा हो गई थी । वे ऐसे ही भाग्यो प्रत्यक्ष कमलिपित्तोरा लहर लगे पत्तोंके साथ काल हो । जल पेशवाएँ पत्तोंके पत्तोंके लहर लगे पत्तोंके लहर लगे पत्तोंके लहर लगे भाग्यो पूर्णचन्द्रमंडलके लिये प्रभापेशवा लगे पत्तोंके लहर लगे

ही वेश्यायें कलश उठानेके श्रमसे पसीनेमें तर हो गई थीं। वे जलदेवियोंके समान लगती थीं। उन्होंने स्फटिकमणिके कलश लेकर तीर्थोदरसे स्नान कराया। मलयाचलकी नदियोंके समान कितनी ही वेश्याओंने चदन रत्न मिले जलसे स्नान कराया। कितनी ही वेश्याओंने कलसे उठा कर उन्हें अपने दोनों हाथोंसे थाम लिया था। उनके हस्त पल्लवोंके नखोंमेंसे किरणें फैल रही थीं। वे ऐसी लगती थीं मानो प्रत्येक उँगलीके छिद्रोंमेंसे निकलती जलधारा वाली जलयंत्र देवियाँ हों। कितनी ही वेश्याएँ सुगर्गके कलश हाथमें लेकर केसरिया पानी छिड़कती थीं। वे ऐसी लगती थीं मानो सरटी दर करनेके लिए दिवस-श्री लाल लाल सूर्यकी धूर छिड़क रही हो। इन सबने उमका क्रम क्रममें अभिषेक किया। उसी समय बहुतसे स्नान शब्दोंकी गर्जना इत प्रकार सब भुवनोमें व्याप्त हो गई मानो कान फोड़ें डालती हो। उसीके साथ बहुतसे नक्कारे, भौंभ, मृदंग, वेणु और वीणाका शब्द और बंदीजनोंका कोलाहल सुनाई देने लगा।

२०—इस भौंति स्नान कर चुकनेके बाद पानीमें बुल जानेके कारण राजाका शरीर निर्मल हो गया। वह ऐसा दीखने लगा जैसे शरद ऋतुमें आकाशका एक भाग हो। साँझकी कौचलीके समान महीन और ध्वच्छ दो वस्त्र उसने पहन लिये और अत्यन्त सफेद—बादलके टुकड़ोंके समान स्पर्च्छ—रेशमी वस्त्रका साफा सिर पर बाँध लिया। इससे वह ऐसा शोभित हुआ जैसे पाकिनीके प्रवाहसे हिमाचल शोभायमान हो। फिर पितृ नमण कर तथा न सहित पवित्र जलकी अंजलिमें सूर्यको नमस्कार करके वह देवालयमें गया। वहाँ महादेवका पूजन कर, मंदिरसे निकल, होम आदि करके वट विलेपन भजनमें गया। वहाँ उसने सब शरीरमें चंदनका लेप किया। वह चदन, मन्त्री, मयूर और केसरसे सुगन्धित था और परिमलक कारण भ्रमर उमके चारों ओर गुजार कर रहे थे। फिर सुगन्धित चमेलीके फूलोंका मुकुट पहन, वटा बदल कर उसने गहनोंमेंसे केवल रत्नोंका मण्य-पूर धारण किया। तब जिन राजाओंको भोजन कराना योग्य था उनको भी अपने साथ बैठा लिया और उमने अभीष्ट रसके स्वादसे आनंदित होकर भोजन किया।

२१—भोजनके पीछे मंह दोर, सुगन्धित सिंगार पीर, ता लेर, चमरने हुए भण्डियोंके करीने उठ कर रत्न सजा मटाको गार चला। उमके

चलते ही थोड़ी दूर सड़ी हुई प्रतीहारी सभ्रमसे दौड़ी और उसने अपना हाथ आगे बढ़ा दिया। राजाने उसके हाथका सहारा ले लिया। भीतर प्रवेग करने लायक परिजन राजाके पीछे पीछे चलने लगे। उनके हाथकी हथेली निरन्तर छुड़ी पकड़नेके कारण बहुत कटोर पत्तेके समान हो गई थी। मना-मनके चागे और सफेद कपड़ोंके परदे लगे थे, जिनसे वह स्फटिकमण्डिपी दीवाराका बना हुआ लगता था। चन्द्रकान्तमणिके फर्श पर अत्यन्त सुगन्धित—कन्दूयुक्त—चटन जल छिड़का गया था। आसपास फर्शके टेर फेंके हुए थे। वे ऐसे लगते थे जैसे आकाश में तारागण ह। मनेके चम सुगन्धित जलसे धोए गये थे। उनमें खुड़ी हुई पुतलियाँ गृह देविताके समान लगती थीं। अगवत्तीकी धूमका बुझा बहो भरा रहा था। चबूतरों पर पितावत् शिलातलके समान एक पलंग बिछा था। वह ऐसा लगता था मानो मर-वत् चर्म जानेके कारण सफेद हुआ शकलका टुकड़ा हो। उन पर फर्शकी सुगन्धिमें बसी एक चादर बिछी थी। महीन कपड़का एक तलिया पितावत् रखी था। पार्श्वकी तरफ मणि मय खडक रखी थी। दोनों ओर रत्नकी चौकियाँ बनी थीं।

जातिसे प्रीतिके कारण वहाँ आया हो। उसने फर्श पर अपना हाथ टेक राजासे निवेदन किया—महाराज, रानियाने कहलाया है कि वैश्यायनको आजानुमार स्नान-भोजन करा दिया और प्रतीहारीके साथ आपके पास भेजा है। इतना कह कर कचुकी चल दिया। फिर राजाने तोतेसे पूछा कि क्या अन्त पुरमे अभीष्ट भोजन मिले ? तोतेने उत्तर दिया कि महाराज, मने क्या नहीं खाया ? मत्त कोकिलके नेत्रोंके समान नीली और गुलाबी जामनोंका खट मिट्टा रस खूप पिया। सिंहके पजेसे तोड़े गये मत्त हाथी के कुभ-स्थलोंमेंसे निकले—हरिमें भीगे—मोतियोंके समान चमकते अनारके दाने कुतरे। कमलके पत्तेके समान हरे और दाखके समान मीठे पुरानी इमलीके फल इच्छानुसार खाये। अधिक कहनेसे क्या मतलब—रानियोंने जो जो चीज अपने हाथसे दी वह अमृतके समान लगी। तोतेके इस वचन पर कुछ ध्यान न देकर राजाने कहा कि यह तो सब हुआ। पर अब तुम हमारा कुतूहल दूर करनेके लिए पहले शुरूसे ही सविस्तर यह बताओ कि तुम्हारा जन्म किस देशमें और किस प्रकारसे हुआ ? किसने तुम्हारा नाम रक्खा ? तुम्हारे माता-पिता कोन हैं ? तुमने वैश्यायन कैसे किया ? तुम शास्त्रमें किस रीतिसे प्रमाण हुए ? कहाँ तुमने सब कवाये सोखा ? क्या तुम्हें पूर्व-जन्मका स्मरण है या किमोका वर-दान है ? क्या तुम पत्नीके गुप्त रहते हो ? पहले तुम कहाँ रहते थे ? तुम्हारी उम्र कितनी है ? किस चाडालके हाथमें पड़ कर तुम विजरेमें बंद हुए ? यहाँ किस मतलबसे आना हुआ ? जब राजाने इस प्रकार स्वयं कुतूहलसे सम्मान-पूर्वक पूछा तब जरा सोच कर वैश्यायन ने सादर कहा—महाराज, यह क्या बहुत लची है बापि जो आपको बड़ा कुतूहल है तो सुनिये—

२५—विश्याचनकी वन भूमि पूर्वीय और पश्चिमीय समुद्रके किनारे तक चली गई है। वह नव्य देशका आभूषण है और पृथ्वीकी मानो मेखला है। उसमें जगली हाथियोंके मद-जलके सिचनसे वृक्षोंका सर्व्वन हुआ है। वृक्षोंकी चोटियों पर अत्यन्त प्रफुल्लित सफेद फूलोंके गुच्छे लग रहे हैं जो ऊँचाई अधिक होनेके कारण तारगणके समान देख पड़ते हैं। वहाँ मद मत्त कुरर पत्नी मिर्चके पत्तोंको कुतरते हैं, हाथीके बर्चीकी सूँठमें मसले गए तमाकोंके पत्तोंकी मुगव फैल रही है और मदिपके मरने नाम हुए मनामारनी निपातके

गालके समान कोमल ज्ञान्तिवाले पत्तोंसे वहाँकी भूमि आच्छादित है। वे पत्ते भ्रमण करती हुई वन देवियोंके पैरोंकी महावरसे रंगे हुए से मालूम होते हैं। वह भूमि तोतासे काटे गये अनारोंके रमसे गीली रहती है तथा कूदते पाँदने बद्रोंसे हिलाए गए कोश फल वृत्तोंसे गिरे पत्तों और फलोंके मरग रंग विरगी दिखाई देती है। दिन रात उडती कृत्तोंकी रजमे वहाँके लता मटप मलिन हो गए हैं। वे वन लक्ष्मीके रहनेके महलोंके समान मालूम होते हैं। उनमें सुपारीके वृत्तों पर पानकी बेलें चढ़ रही हैं, यात्रियोंने लोगोंके पत्ताय पित्रोंने पिछाए हैं और उनके सिरे पर बहुत पुराने नारियल, जेतकी, क्री और वक्रुल लग रहे हैं।

२५—उम वनमें इलायचीकी लताग्रासे अवेरा हो रहा है या मःने मनान सुगव निक्लनेके कारण ऐसा मालूम होता है मानो उन्नत यत्रियों गठ स्थलमेसे भरते हुए मट जलने निचन हुआ हो। यत्रियोंके नोंके प्रदना।। टायियोंके कुभ-स्थलमेसे निक्ले मोतियोंके दाने लगे रहते हैं। उन्ने जा मे भील सेनापति वहाँ सिद्धो का शिमार करते हैं। सदा निमट रहती कुत्तोंके नगर और महिपयुक्त वह मानो प्रेतराजकी नगरी है। युद्धमे सजी हुई नेगाके ग वहाँ प्राणामना^२ पर शिलीसुग स्थित है और सिद्धनाद स्वष्ट सुताई दे। वह दुर्गाके समान चलने लड़ोते^३ नमाना प्रार रक्त चदनने चतुर्ण है। अर्णानुनकी न गके समान वह पिपुलाचल^४ युक्त है और वहाँ पापना प्रचार है।

१—नगरोमे यम और यमका जाहन महिप रहता है, वनमे सर्व सिद्ध प्राप्ति हित्र पशु और नैसे रहते है।

२—युद्धमे धनुषो पर तीर चढ़ रहते है, वनमे पाण तथा आसन दुर्गो पर अमर बैठे रहते है। वहा पीर योजाओडा नाद होता है, वहाँ सिद्धोकी गर्जना।

३—दुर्गा तजवारो कारण नवानर है और उसके तज चक्रा जगत है वनमे गंडे फिरते है और तज चदनके वृत्त है।

४—विपुल और प्रवत अर्णितुके नित्र दे और उर उर उर उर उर उर उर वनमे विशाल पर्वत है और उर-ओश पुनते है।

महा प्रलय कालकी मध्याके समान वहाँ नीलकण्ठ^१ नाचते हैं और वह पल्लव-रक्त है। अमृत मथन बेलाके समान वह श्री द्रुमोंसे^२ सुशोभित है और वारुणी युक्त है। वर्षाऋतुके समान वह धनश्याम^३ है और अनेक शतह्रदोंसे प्रलकृत है। चंद्रमूर्तिकी भाँति वह ऋद्धगणानुगत^४ है और वहाँ हिरनया वाम है। राजस्थितके समान वह चमरमृगके^५ बाल-व्यजनसे शोभित है और मदमत्त गजघटा उमपी रक्षा करती है। पार्वतीके समान वह स्थाणु^६-महित है और मृगपति सेवित है। सीताकी भाँति उसने कुश^७ लवणो जन्म दिया है और वह निशाचर गृहीत है। कामिनीकी तरह वह चंदन और कस्तूरीकी सुगंधसे युक्त है और सुंदर अग्ररु^८-तिलकसे अलकृत है। काम-वश स्त्रीकी भाँति वह विविध पल्लव-पवनसे शीतल और मदन^९ युक्त है। बालकी श्रीयाके समान वह

१—सभ्याको महादेव नाचते है और वह (सभ्या) पल्लवोंके समान लाल है, वनमें मोर नाचते है और वह पल्लवोंसे लाल है।

२—बेला लक्ष्मी, पारिजात और मदिरासे युक्त थी, वनमें नारियलके वृक्ष और वरुण वृक्षोंकी कतार है।

३—वर्षा मेघोंसे श्याम होती है और उसमें विजलीकी चमक होती है, वन बहुत श्याम है और उसमें सैकड़ों तालाब है।

४—मूर्तिके साथ बहुतसे नक्षत्र हैं और उसमें लाइन हैं, वनमें बहुतसे और मृग है।

५—राज्यमें चमर-मृगोंके बालोंकी बनी चौरियाँ होती हैं, वनमें चमर-मृगोंके बालरूपी पत्ते हैं।

६—पार्वतीके साथ महादेव और उनका वाहन सिंह है, वनमें हूँद हैं और बहुतसे सिंह हैं।

७—सीताके दो पुत्र कुश-लवण हुए थे और राक्षस उसे हर ले गया था, वनमें बहुतसे कुराह पौधे और उलूक हैं।

८—कामिनी मलयगिरिके तिलकसे युक्त है, वनमें अग्र तथा तिलक वृक्ष हैं।

९—श्री काम-युक्त है, वनमें मदनके वृक्ष हैं।

वायव्य^१-पक्षसे शोभित और गटकसे अलंकृत है। पान भूमिभी तरह वहाँ मैकडो मधु कोश^२ दिखाई पड़ते हैं और भौति भौतिके पुप चिह्न हैं। कहीं कहीं महावराहकी^३ दृष्टाने समुन्वात भूमिके कारण वह प्रलयवेलाके समान दीपती है। कहीं कहीं रावणकी नगरीके समान वह कूदते फाँदने दृग्गणे सुटने तोड़े गये शिखरसे युक्त शालसे^४ व्याप्त है। विवाह कार्य मानो थोड़ा ही समय पहले समाप्त हुआ हो इस भौति वह कहीं कहीं हरे दर्भ, समिध, फूल, जमी और पलाशसे सुशोभित है। उन्मत्त सिंहके नादसे मानो भीत हुई वह कहीं कहीं कटकित^५ हुई है। मद्य मत्त स्त्रीभी तरह कहीं कहीं वह कोकिलानुसार^६ प्रवृत्त करती है। उन्मत्त स्त्रीभी तरह कहीं कहीं वह वायुके^७ वेगसे ताल गाय करती है। विधवा स्त्रीभी तरह कहीं कहीं वह ताल-पत्र-विहीन है। रगभूमिके समान कहीं कहीं वह मैकडों शरोत्ते^८ निरन्तर व्याप्त है। इन्द्रके मरीचके समान कहीं कहीं उसके हजार^९ नेत्र हैं। विष्णुकी मृतिके समान कहीं कहीं

१—पालकके गलेमें बाघके नख और गडक नामक धानूपण परनाया जाता है, वनमें बाघके नख पड़े हैं और गोंड़ घूमते हैं।

२—पान-भूमिसे शराय पीनेके गिलास होते हैं, वनमें मन्दिपयोके उभे।

३—प्रलय-वेलामे वाराणासिारकी दृष्टासे पृथ्वी उठाई गई थी वहाँ बड़े बड़े शूकरोकी दृष्टामे पृथ्वी खोदी गई है।

४—रावणकी नगरीमें शहर पताह तोड़ी गई थी, वनमें शालयुक्त।

५—उन्मत्त सिंहसे भीत होने पर अनुपय रोमाचित हो जाता है, वन कौटोसे युक्त है।

६—स्त्री कोकिलसे समान शब्द करती है, वनमें कोकिल शब्द करती है।

७—स्त्री वायुके जोरसे ताजियाँ उजाती है, वनमें हवाके जोरसे ताजियाँ उजाती शब्द होता है।

तमाल^१ श्याम है । अर्जुनके रथकी ध्वजाके समान कहीं कहीं वह वानरान्त^२ है । राजद्वारकी झ्योडीके समान कहीं कहीं सैकड़ों वेत्र लताओंके^३ कारण प्रवेश-दुर्लभ है । विराट् नगरीकी तरह कहीं कहीं सैकड़ा कीचक^४ देग्न पड़ते हैं । आकाश-लक्ष्मीकी तरह वहाँ कहीं कहीं तरल तारक^५ मृगके पीछे व्याव फिरता है । व्रत करनेवाली स्त्रीके समान कहीं कहीं वह दर्भ, चीर^६, जटा और बल्कल धारण करती है । असख्य काले पत्ते होने पर भी वह सप्त पत्रोंमें^७ शोभित है । क्रूर सत्व^८ होने पर भी मुनिजन सेवित है और पुष्पवती^९ होने पर भी पवित्र मानी जाती है ।

२६—उसमें दडकारण्यके भीतर अगस्त्यका एक आश्रम था । वह सब पृथ्वी पर विख्यात था और भगवान् बर्मके उत्पत्ति-स्थानके समान मालूम होता

रहा था कि इतनेमें गौतम आगये । उन्होंने इन्द्रको श्राप दिया कि तेरे सहस्र भग हो । फिर जब इन्द्रने सुशामठ करी तब उन्होंने अपने श्रापको सहस्र नेत्रोंमें बदल दिया ।

१—विष्णु तमालके समान श्याम है, वन तमालोंसे श्याम है ।

२—ध्वजामें हनुमान बने हुए है, वनमें बंदर है ।

३—झ्योडी पर द्वारपाल हाथोंमें बेलकी छड़ी रखते हैं, वनमें बेल हुए हैं ।

४—विराट् नगरीमें राजाका साला कीचक था, वहाँ पोते पास है ।

५—आकाशमें तरल तारोंमें युक्त मृगशिर नक्षत्रके पीछे व्यावका रूप जाकरके महादेव गये थे, वनमें चंचल आगों वाले मृगोंके पीछे बहेलिया फिरता है ।

६—ची दर्भ, चीर, लटे और बल्कल धारण करती है, वनमें दर्भ, वाम, लटे और बल्कल है ।

७—सात पत्तोंसे, सप्तपत्र पत्रोंसे ।

८—दूर प्राणियोंने युक्त, क्रूर स्वभाव ।

९—रान्वजा, पृजोने युक्त ।

था। विध्याचलने मेरु^१ पर्वतकी ईर्ष्यासे अपने हजारे विकट शिखर आकाश तरु फेला दिये थे। वह सूयके रथका रास्ता रोकनेको तैयार हो गया था, आर उमने सप्त देवता प्रोक्तो भी कुछ नहीं गिना था। वह भी अगस्त्यजी आजा नहा दाल सहा था। अगस्त्यने ही इन्द्रकी प्रार्थनासे समुद्रका^२ पानी पी लिया था। उन्हींकी जटराग्निने वातापि^३ नामक असुर भूम कर डाला था। देवदानवोंके मुकुटोंके मङ्कतमणि मग्न पत्र उनके चरणोंकी रजका चुवन करने थे। वह दक्षिण दिशाके मुखका तिलक थे आर उन्होंने एक ही हुंकारसे नहुप्रका स्वर्गमग्न पृथ्वी पर गिरा कर अपना प्रभाव प्रकट किया था। ऐसे मन्त्रमुनिकी वा लापामुद्राने अपने मनसे ही स्थायित्व बनाई थी, अपने ही हाथसे पानी समुद्रको सगर्वन किया था आर उनका वह पुत्रके समान मानती थी। मग्न

१—एक बार विध्यपर्वत मेरुपर्वतसे ईर्ष्या करने लगा और उमने नृपन कहा कि जिस तरह वह मेरुके चारो ओर चक्कर लगाता है उसी तरह मेरे ओर लगावे। सूर्यने मना कर दिया तब विध्यने अपनेको देवता के साथ लिया कि जिनसे सूर्यका रास्ता रुक गया। तब तो सप्त समारसे परकार होगया। देवताओंने विध्यसे नहुत कहा पर उसने नहीं माना। तब देवताओं ने अगस्त्यसे कहा कि विध्यका ऊंचा चढ़ना रोक तो। अगस्त्यने अपनेको कहा कि जबतक उनका दक्षिणरो लौटना न हो तबतक वह नीचा रहे। विध्यने उनका कहना मान लिया पर अगस्त्य फिर वापिस नहीं आये।

२—एक बार जब इन्द्रने वृत्रको मार दिया तब उनके जजुजीवी-नामके देवताओंकी पकड़से बचनेके लिए समुद्रमें जा लुपे। वहाँसे रातको निश्चिन्त वे अग्नि-मुनियोंको मारने गये। तब देवता प्रोक्तो प्रार्थनासे अगस्त्यने समुद्रका जल पी लिया और देवताओंने दैत्योंको मार दिया।

३—वातापि और इत्वल दो राजसूय थे। इत्वल प्राणस्थिता रूप रखे थे। वा और वातापि ईर्ष्या बल जाता था। इत्वल सदैवो मारकर उल्लास न न पकाता था और उनसे प्राणस्थियों नोजन कराता था। शङ्कने वह वातापिसे उताता था और वातापि वातापिसे शोक पेट पाकर निश्चिन्त जाता था। उन तरह इस दोनोने हजारे प्राण मार डाले। एक बार अगस्त्यने वृत्रके नोजन की दक्षिणसे वातापिमा नोजन किया और उसे बेटने बचा लिया

दृढदस्यु नामक पुत्रमे वह स्थान पवित्र हुआ था । उसने वन ग्रहण किया था, पलाशका दण्ड वारण किया था, पवित्र भस्मसे त्रिपुडका आभूषण बनाया था, दर्भका वस्त्र पहना था, सूजनी मेखला कमरमें बाँधी थी और वह हरे पत्तोंवा दाना लेकर भीख माँगनेके लिये भौंभडी भौंभडी फिरता था तथा अधिक ई वन लानेके कारण पिताने उसका दूसरा नाम इ मवाह रख दिया था । उस आश्रमके चारों ओरकी भूमि सब दिगाग्रान फैले हुए-तोते के समान हरे रंगके-केलिके वनसे जरा काली पड़ गई थी । गोदावरी नदी उस आश्रमके आस-पास बह रही थी । वह ऐसी मालूम होती थी मानो अगस्त्यसे आचमन किये गये समुद्रके पीछे पीछे वेणी^१ बाँध कर जाती हो ।

२७—वहाँ राजा दशरथके वचनका पालन करते हुए, राज्यका त्याग कर, रावणकी लक्ष्मीके विलासका अंत करनेवाले रामचंद्र, महामुनि अगस्त्यकी सेवा करते, सीताके साथ, पचवटीमें लक्ष्मणकी बनाई हुई कुटीमें कुछ समय तक आरामसे रहे थे । बहुत कालसे उजड़े हुए उस प्रदेशमें आज भी शाखाग्राम चुपचाप बसे हुए कबूतरोंकी पंक्तियोंसे वृद्ध ऐसे दीपते हैं मानो तपस्वियोंके आश्रमके धूमकी बदासे युक्त हो । वहाँ पूजाके लिये फूल तोडनी हुई सीताके हाथामें मानो लगा हुआ लाल रंग लता और पत्तोंमें चमकता है । पीकर फिर मिथिला हुआ मानो समुद्रका ही जल अगस्त्यने अपने आश्रमक आसपासक

रोपराम बाँट दिया है । वहाँका वन ऐसा दीपता है मानो रामचंद्रक बाणोंके प्रहारसे मरे हुए राक्षसोंके गाँडे कपिरसे जड़की भिंछाई होनेके वन भी उसमें उमी रंगके पत्ते फूटत हो । सीताके पाले हुए पुगने नोके सींगोंकी नोक बुडापेके कारण जर्जरित हो गई है । वे जब वर्षासमय में नहीं गनीर गर्जना सुनते हैं तब भगवान रामचंद्रके त्रिभुवन व्यापी अनुप-दशरथ आज भी नम्रण करते हैं, पर दिन रात बढ़ती अथवा रागमें व्याप्त तीन नेत्रोंसे दशों दिशाएँ शन्य देव कर प्रामकी एक मुट्टी भी नहीं प्यते हैं । वर्षा रामचंद्रने बार बार आखेट करने कर चगनक हारणाही विलम्ब निमूल कर

१—वेणी = पट्टि, विजया चियाँकी एक ही लटमें गूँधी हुई चोटी ।

समुद्ररूपी भवाके नष्ट हो जानेसे गोदावरी-रूप विजयाने मानो चोटी बाँधी थी अर्थात् वह बड़े वेगसे एक शरामें बहती थी ।

दिया था, इमसे ही मानो उत्तेजित होकर सुवर्णके मृगने सीताको पोसा दिया था वह रामको बहुत दूर ले गया । वहाँ सीताके विवाहसे टुपी, गवण्ड विनाशभी नूचना देते हुए तथा नर्प चद्रमी^१ तरह कपधने पिये हुए राम कन्मण ने तीनों भुवनाओ भयभीत कर दिया था । रामचद्रके वाणने कट कर गिरे हुए योजन^२-बाहुती अत्यन्त लम्बी बाहुको देव्य कर ऋषियोओ ऐसी शक्ता होती थी मानो अगत्पको प्रमन्न करनेके लिये प्रजगर शरार पारी नहुय आया था । वहाँ रामचद्रने त्रियोग समयने मनोरजनके लिये पर्णकुटीके भीतर सीताका चन्द्र चन्द्र लिखा था । उसे बनचर लोग अत्र तक इत नालि देवने हैं मानो रामके विवाह को देवनेभी उत्कटासे सीता फिर पृथ्वीमेसे निकल आई हा ।

कमला के बने वीचमे विचरते और समान रगक कारण केवल स्वरसे ही पहचाने जाते कलहसे वह खूब व्याप्त है, नहानेके लिए उतरी हुई किरातराजकी सुन्दरियोके स्तनोके चंदनकी रजसे उमकी तरंगें मफेद हो गई हैं, पासही उगे हुए केपड़ेके परागसे उसके तीर रेतीले हो रहे हैं, पासके आश्रममसे आए हुए तपस्वियोंके बल्कलोके धुलनेसे उसके तीरका जल मैला और गुलाबी हो गया है, तटके पास उगे हुए वृद्धोके पत्तोमे हाकर आती हुई हवाके कारण उमका जल स्थिर नहीं रहता है, उसके तीर पर वृद्धोकी कुजें लगाता वनी हुई हैं, उनमे तमाल-वृद्धोकी कतारोसे अवेरा हो रहा है, वाली द्वारा निकाले जाकर फिरते हुए ऋषयमूकवासी सुग्रीवके प्रति दिन फल तोड़नेके कारण उनमें डालियां बहुत हलकी हो गई हैं, जलमें खड़े होकर तप करते हुए तपस्वी उनका फूलोंमें देव पूजाके काममें जाते हैं, उड़ते हुए जलचर पक्षियोंके फोंमेसे अगरती हुई पानीभी बू दें पडनेसे उनकी छोटी छोटी टहनियां नरम हो गई हैं, लता-मण्डपोंके नीचे मोरोंके भुगड नाच रहे हैं, और असंख्य फूलोंकी सुगंध निफलनेके कारण वे ऐसे मालूम होते हैं मानो वनदेवियोंके नाममें सुगंधित हुए हो । उम सरोवरोंका दूसरा समुद्र जान कर पानी लेनेके लिए आए हुए मेघक समान, वनी बीचडसे मलिन हुए जगली हाथी उमका पानी दिन रात पीते हैं । वहाँ बीच बीचमें चकवा चकवी घूमते हैं । सिले हुए काले कमलाकी प्रभामें के पख कालेमें हो जाते हैं । वे ऐसे मालूम होते हैं मानो अम भी मान्दाल न आपसे प्रसन्न हो ।

२६—उम पन्न सरोवरके पश्चिम किनारे पर—रामके वाणामें जर्जरित हुए पुराने तालवृद्धोकी कुजके पास—एक बड़ा जीर्ण सेमरका वृद्ध है । उमकी तट त ग्राम-पाम एक बूडा—दिग्गजकी सूँठक समान—अचगर सदा लिपटा रहता है, जिससे ऐसा मालूम होता है मानो एक बड़ा अँभला बनाया गया हो । ऊँचे गुहा पर लटकती आर पवनने हलती माँप ही कर्पणितारा मानो उमने दुःखी कारण किया है । उमकी डालियां अन्तर्निर्मित फल रची हैं । वे माना

७७—एक बार रामचन्द्र सीताके प्रियोग में प्रियाप कर रहे थे तब चन्द्र-वाक उन पर हँसे । रामचन्द्रने क्रुद्ध होकर उनको शाप दिया कि मेरे समान तुमको भी प्रियाके प्रियोगका दुःख होगा ।

बीचमे, गुदोकी सवियोमे और पुरानी छालके छेदोमे, स्थान अधिक होनेके कारण, वेखटके हजारों घांसले बना कर देश-देशसे आए हुए तोते आदि पक्षियोंके भुङ रहते थे । उस पर किमीका चढना अत्यंत कठिन था, इस कारण उनको अपने विनाशका डर नहीं था । उनके दिन-रात वहाँ रहनेसे वह वनस्पति, जीर्णवस्थाके कारण थोड़े पत्ते रह जाने पर भी, बहुतसे पत्तेसे श्याम सा देख पड़ता था । वे उसमे बनाए हुए अपने अपने घोंसलोमे रात काट कर, प्रति दिन उठ कर, आहारकी तलाशमे, आकाशमे गोल बाँध कर उड़ा करते थे और ऐसे मालूम होते थे जैसे उन्मत्त बलरामके हलके अग्रभागसे ऊपर फेंकी गई यमुना आकाशमे बहुतसे प्रवाहोमे बहती हों, ऐरावतके उखाड़ डालनेसे गिरी हुई मदाकिनीकी कमलिनियाँ हों, और गगन-रत्नको सूर्य-रथके घोडोंकी प्रभासे लीम दिया हो, वे चलती हुई मरकतमणिकी भूमिका मानो तिरस्कार करते थे, शैवलके पत्तोकी पक्ति मानो आकाशरूपी सरोवरमे फैलाते थे, केलेके पत्तोंके समान अपने पत्तोंको आकाशमे फैलानेसे वे ऐसे लगते थे मानो सूर्यकी गरम किरणोंसे खिन्न हुए दिशाओंके मुग्धका पंखा कर रहे हो । वे उड़तेमे ऐसे दीप्तते थे मानो आकाशमे कोई दूधका खेत उड़ा चला जाता हो और अतिरिक्त मानो इन्द्र-धनुष पड़ रहे हो । मारे हुए हिरनके कधिरसे लाल हुए सिंह नखोंके भागके समान उनकी चोंचें लाल थीं । सब पक्षी चुगनेके बाद लॉट लोट करने मोटरामें बैठे हुए बच्चोंको भाँति भाँतिके फलोंके रस और बानबो खेती की मिनी बार बार खिला कर, सब स्नेहोमे श्रेष्ठ, अमावास्या पक्ष-स्नेहसे उनको पत्तोंके नीचे रख उसी वृद्ध में रात काटते थे ।

३१—मेरे बूढ़े पिता मेरी माताके साथ बड़ा एक जीर्ण मोटरामें रहते थे । देवभोगसे मे ही अकेला उनका पुत्र था । मेरे जन्म-समय बहुत प्रसन्न वेना होनेके कारण मेरी माताका देहान्त हो गया था । अपनी प्यारी स्त्रीके मरनेके शोकसे मेरे पिता बहुत दुःखी हुए तो भी पुत्र-स्नेहके सामने शोकके फलने हुए तीव्र वेगको भीतर दायर रक्खा और वे केवल मेरे पालनेका ही मन धरने लग । उनके दर्भ-चौरके समान पंख, बहुत बोट बच रहनेके कारण तारिया, पार कवेके नीचे झुक जानेके कारण शिथिल हो गये थे तथा उम्र जरा भी उठनेका शक्ति नहीं रही थी । बहुत वृद्ध हो जानेके कारण उन्होंने उनका शरीर पालने

लगता था, जिससे मालूम होता था मानो वे शरीरमें व्याप्त होकर सताप देने वाली वृद्धावस्थाको ही कँपाते हों। उनकी चोच क्रोमन निगुण्डीके फूलके डठलके समान पीली थी और उनका बीचमेंसे चिरा हुआ अग्रभाग धनकी मजरी काटनेके कारण चिकना और घिमा हुआ था। वे अपनी चोंचसे दूसरोंके बोंसलोमेंसे नीचे गिरी हुई धानकी लतामेंसे चावलोंकी किनकी ब्रीन कर और वृद्धकी जड़के आगे पड़े, तोतोंके कुन्ने, फलोंके टुकड़े इकट्ठे कर मुँके खिलाने थे, क्योंकि उनमें ग्रामशमे उड़नेकी शक्ति नहीं रही थी। इस रीतिमें प्रति दिन मुँके गिला कर बचा-खुचा वे आर राते थे।

३२—एक दिन मैंने उस महा वनमें सहसा शिकारियोंका मोलाटल सुना। उस समय प्रभात-संध्याके रंगसे लाल हुआ चन्द्रमा मन्दाकिनीके किनारे पश्चिमीय समुद्रके तट पर उतर रहा था। वह आकाशरूपी पभतितीके समान लाल पङ्क्तियोंवाले वृद्ध हनुके समान मालूम होता था। वृद्ध रकु गृहके समान समान धेत दिशाआगम डडल विशाल होता जाता था, सूर्यकी लम्बी लम्बी भिरखे हाथियोंके बधिरसे लाल हुए सिद्धी गर्दनके बालोंके समान लाल और तपाई हुई लाखके तारके समान गुत्ताकी मालूम होता था—य प्राशशमेन ताराको दूर कर रही थी, जिससे ऐसा मालूम होता था मानो पद्मगग मणिकी सीमोंवाली बुहारियों पर्थ पर चिन्ने हुए फूल उदार कर रही हैं, सात ऋषियोंके सात तारे उत्तर दिशाकी ओर जाते हुए ऐसे नानूम होते थे मानो संध्या करनेके लिए भानसरोवरके किनारे पर उतर रहे हैं, किनारे पर आकर फटे हुए सात सपुत्रोंके तड़क कर गिरे हुए बटुके मोलि मेंसे पश्चिमीय समुद्रका किनारा संकेत हो जाता था—वे मोनों तर्क निरखे जा प्रेरणसे नीचे गिरे हुए तारोंके समान मालूम होते थे, बालेनी जूड़े टुकड़का

हिरनोंकी जुगालीसे गिरे हुए भागोंका ढेर, यहाँ सुगंधित मदवाले उन्मत्त हाथियोंके गडस्थल घिसनेसे निकली हुई गन्ध पर लट्टू हुए वाचाल भोंगोंका गुजार सुनाई देता है, देखो, यह टपकी हुई रुधिरकी बूँदोंसे भीगे हुए पत्तोंमे लाल हुआ रुग्णमृगका मार्ग है, यह रहा, हाथियोंके नीचे कुचले हुए वृत्तोंके पत्तोंका बड़ा ढेर, इस जगह गेंडों ने खेल किया है, यह रहा, सिंह का मार्ग— इसमें नखोंके अग्रभागसे त्रिकुट चिन्ह बन गए हैं, यह गजमुक्ताओंके टुकड़ोंसे ऊँचा नीचा और रुधिरमे लाल है । देखो, यह अभी व्याई हुई हिरनीके गभमेंसे बहते रुधिरसे लाल हुई भूमि, यह रही—वनभूमिकी चोटीके समान लगती—पूथमे विच्छेद गजगतिकी मदसे मलीन हुई पद-पत्ति, हिरनियोंके पैरोंकी इस पत्ति पर चलो, हिरनोंकी सूची हुई मेगनीकी धूचवाली इस वनस्थली पर जलदी बैठ जाओ, वृत्तकी चोटी पर चढ जाओ, दृष्टिसे इस दिशामे फेंको, इस शब्द को सुनो, धनुष लो, सागवान दोऊर खड़े रशे, कुत्तोंको छोड़ दो । इस कोजाहलसे सब वन लुभित हो गया ।

३५—इतनेहीन वनमें अनेक प्रकारके शब्द होने लगे । भीजाके बाणोंसे घायल हुए सिंहोंका नाद होने लगा । वह लेप करनेसे ग्राह्य हुए मृदगकी धनिके समान धीर था और पर्वतोंकी गुफामेसे उठते हुए प्रतिशब्दसे भीर हो गया था । त्रास पाये हुए कुत्तोंमे विच्छेद हुए अनेके भटकते गायोंकी कठगर्जना हो रही थी । वर मेघनिर्वाणके समान थी । उसीके १५ बार-बार ताड़ना की गई सूँडों का शब्द सुनाई दे रहा था । हिरनोंके २७ शान्त चीकार हो रहे थे । इन हिरनोंके अग्रयव लहनाए गए कुत्तोंके काट डाले थे और इनकी ग्राँथोनी पुतलियाँ चञ्चल, कातर और तुन्ध थीं । मार गए हाथियोंकी त्रियोगिनी हथिनियोंका चिन्ना हो रहा था । २९ पति-पिनाशके ताजे शोकसे बढ गया था । ये हथिनियाँ इतर उतर घूमती थीं, इनके कान खड़े हो गये थे और मोताहन करते हुए कच्चे इतके पीछे पीछे चले आते थे । गद्गद् कडते कदवापूरुंके चीपे मारनी हुई गंभीर त्रिभोज विज्ञाप हो रहा था । ये दस्ते बरसाए हुए और था ३१ शी दिता पड़ते वैश हुर अने बच्चोंको डूँड रही था । वृत्तकी चोटीके उर पर भा कुज दित्ते पत्रिमात्र कोनादन हो रहा था । ३४ गुप्तक तरे दसो भागक

चरणोंका शब्द हो रहा था। वह उड़े वेगसे ताड़ना की गई भूमिसे मनो कँपा देता था। कानो तरु खेंची हुई प्रत्यचावाले धनुषोका शब्द हो रहा था। धनुष प्राणोकी वर्षा कर रहे थे और इनका शब्द मडमत्त कुर्बानि कंठ-स्वरसे मिलता था। पवनकी ताड़नासे खडखडाती धारवाली ग्रीक नौसेके कठिन कधो पर गिरती हुई तलवारोका रणत्कार हो रहा था। जोरसे नौसेके कुत्तोका शब्द सब वनमें व्याप्त हो रहा था। ऐसे शब्दाके मोंकाहनेसे वह वन मानो थरथरा गया।

३६—थोड़ी देर पीछे शिकारियोंका मोलाहल जाता रहा और वनकी शान्त हो गया। वह वर्षाके बाद शांत हुए नैव क समान, तस समान अतमे स्थिर जलवाले समुद्रके समान मालूम होने लगा। तब पैसा नव कु कम हुआ और बालरूपन के कारण कुतूहल पैदा होनेने मुझे प्रार र्ण हुआ कि वह क्या है ? उसे देखनेके लिये यातुर दोसर न विताता मोडन न या दादर निकला और घोसलोमेंसे ही प्रपनी गर्दन प्रागे वय पर उनी न न और देखने लगा।

हिरनोंकी जुगालीसे गिरे हुए भागोंका ढेर, यहाँ सुगन्धित मदवाले उन्मत्त हाथियोंके गंडस्थल घिसनेसे निकली हुई गन्ध पर लटपट्ट हुए वाचाल भौरोंका गुजार सुनाई देता है, देखो, यह टपकी हुई रुधिरकी बूँदोंसे भीगे हुए पत्तोंने लाल हुआ रुग्णका मार्ग है, यह रहा, हाथियोंके नीचे कुचले हुए वृत्तोंके पत्तोंका बड़ा ढेर, इस जगह गेंडों ने खेल किया है, यह रहा, सिंह का मार्ग— इसमें नखोंके अग्रभागसे विकृत चिन्ह बन गए हैं, यह गजमुक्ताओंके टुकड़ोंसे ऊँचा नीचा और रुधिरमें लाल है । देखो, यह अभी व्वाई हुई हिरनीके गभमेंसे बहते रुधिरसे लाल हुई भूमि, यह रही—वनभूमिकी चोटीके समान लगती—यूथसे विछड़े गजगतिकी मदसे मलीन हुई पद-पक्ति, हिरनोंके पैरोंकी इस पक्ति पर चलो, हिरनोंकी सूखी हुई मेंगनीकी धूजगाली इस वनस्थली पर जलदी बैठ जाओ, वृद्धकी चोटी पर चढ़ जाओ, दृष्टिसे इस दिशामें फँको, इस शब्द को सुनो, धनुष लो; सावधान होकर खड़े रहो, कुत्तोंको छोड़ दो । इस कोलाहलसे स्रन वन क्षुभित हो गया ।

३५—इतनेहीमें वनमें अनेक प्रकारके शब्द होने लगे । भीलोंके वाणोंसे घायल हुए सिंहोंका नाद होने लगा । वह लेप करनेसे आर्द्र हुए मृदगकी धनिके समान धीर था और पर्वतोंकी गुफामेंसे उठते हुए प्रतिशब्दसे गंभीर हो गया था । त्रास पाये हुए झुंडोंसे विछड़े हुए अनेके भटकते गजपतियोंकी कठगर्जना हो रही थी । वह मेघ-निर्घोषके समान थी । उसीके साथ त्रास-त्रास ताड़ना की गई सूँडों का शब्द सुनाई दे रहा था । हिरनोंके करुणामय चीत्कार हो रहे थे । इन हिरनोंके अवयव लहकाए गए कुत्तोंने डाले थे और इनकी आँसुओंकी पुतलियाँ चंचल, कातर और क्षुब्ध थीं ।

। गए हाथियोंकी त्रियोगिनी हथिनियोंका चिंघाड़ हो रहा था । यह पति-विनाशके ताजे शोरसे बढ गया था । ये हथिनियाँ इधर उधर घूमती थीं, इनके कान खड़े हो गये थे और कोलाहल करते हुए बच्चे इनके पीछे पीछे चले आते थे । गद्गद् कठसे करुणापूर्वक चीखें मारनी हुई गेंडोंकी स्त्रियोंका विलाप हो रहा था । ये डरसे बचराए हुए और थोड़े ही दिना पड़ते पैरा हुए अपने बच्चोंको ढूँड रही थीं । वृत्तोंकी चोटियोंसे उड़ कर व्याकुल फिरते पत्तियोंका कोलाहल हो रहा था । पशुत्राक पोछे दोड़ते व्यापक

चरणोंका शब्द हो रहा था । वह बड़े वेगसे ताड़ना की गई भूमिको मानो ढँपा देता था । कानों तक खेंची हुई प्रत्यचावाले धनुषोंका शब्द हो रहा था । धनुष बाणोंकी वर्षा कर रहे थे और इनका शब्द मदमत्त कुररीके कठ-स्वरसे मिलता था । पवनकी ताड़नासे खड़खड़ाती धारवाली और मैंसेके कठिन कर्धों पर गिरती हुई तलवारोंका रणत्कार हो रहा था । जोरसे भोंकते कुत्तोंका शब्द सब वनमें व्याप्त हो रहा था । ऐसे शब्दोंके कोलाहलसे वह वन मानो धरधरा गया ।

३६—थोड़ी देर पीछे शिकारियोंका कोलाहल जाता रहा और वन भी शान्त हो गया । वह वर्षाके बाद शांत हुए मेव के समान, तथा मथनके अंतमें स्थिर जलवाले समुद्रके समान मालूम होने लगा । तब मेरा भय कुछ कम हुआ और बालरूपन के कारण कुवहल पैदा होनेसे मुझे आश्चर्य हुआ कि वह क्या है ? उसे देखनेके लिये आतुर होकर मैं पिताकी गोदमेंसे जरा बाहर निकला और घोंसलोमेंसे ही अपनी गर्दन आगे बढ़ा कर उसी दिशाकी ओर देखने लगा । उस समय मेरी आँखोंकी पुतलियाँ डरसे चकित हो गई थी । मैंने दूसरे वनमेंसे सामने आती हुई हजारों भीलोंकी एक सेना देखी । यह मार्तवीर्यके सख्त हाथोंसे छिन भिन्न हुए नर्मदा-प्रवाहके समान, पवनसे श्वर उबर उठाए गए तमाल वनके समान, बाल रात्रियोंके प्रहरोंके एकत्र हुए समुद्रके समान, भूकंपसे टिले हुए फजल शिलाके स्तभोंके सचयके समान, सूर्यकी किरणोंसे व्याकुल हुए अधरेके पुत्रके समान, यमके भयक्ते हुए परिवार के मरण, पाताल फाड़ कर बाहर निकले हुए दानवोंके समान, एक जगह इम्डे हुए प्रभुम कर्मोंके समुद्रके समान, वंडकारणमें बसते हुए सब ऋषियोंके भावोंसे विचरते हुए सपके समान, बार बार बाणोंकी वर्षासे रामके द्वारा मारे गए अर दूषणती—रामकी अनिष्ट चिन्ताके कारण पिशाचताको प्राप्त हुई—सेना के समान, बलिसुगके इम्डे हुए वधुवर्गके समान, स्नान करनेके लिए निकले हुए ब्राह्मी नैतोंके झुटके समान, पर्वतके शिखर पर खड़े हुए सिंहके पंजों द्वारा जीवनेने छिन भिन्न हुए बाल नेयोंके पटलके समान, सब रूपका विनाश

१—भूमिमेंसे सृष्टि विनाश होता है, जीवोंके द्वारा पशुओंका नाश होता है ।

करनेको आए हुए धूमकेतुओंके मथके समान और प्रलय-कालके वैताल वृन्दके समान सत्र वनमें अंधकार और अत्यंत भय उत्पन्न करती थी ।

३७—उस बहुत बड़ी शत्रु-सेनाके बीचमें मने तरुण भील सेनापतिको देखा । उसका नाम मातंग था और आकार भयकर था । नाम तो उसका मने पीछे सुना था । वह अत्यंत कठोरताके कारण ऐसा मालूम होता था मानो लोहेका बना हो । वह दूसरा जन्म लेकर आए एकलव्यके समान देख पड़ता था । उसके दाढी मूँछ निकलने लगी थी, जिनके कारण वह, पहली मट रेखासे शोभित गडस्थलवाले, गज-कुमारके समान लगता था, काले कमलके समान श्याम देह-प्रभाके प्रवाहसे वह मानो यमुनाका जल सत्र वनमें भरे देता था, सिर पर कुछ मुँड़े तथा कंधे पर पड़े घूंघरवाले बालोंसे वह ऐसा दीखता था मानो गज-मदसे मलीन केसरवाला सिंह हो, उसका ललाट चौड़ा था, नाक ऊँची और डरावनी थी, एक कानमें पहनी हुई नागमणिभी झलकती किण्वसे उसका वाम भाग लाल हो गया था, जिसके कारण वह ऐसा मालूम होता था मानो पत्तों पर लेटनेसे उनका रंग लग गया हो, थोड़ी देर पहले मार गये हाथी के गडस्थलमेंसे निकले मदका उसने लेप किया था । इस मदमेंसे सत्-पत्रभी परिमल निकलती थी और यह मद काले अंगरके लेपके समान सुगंधित था, इसके परिमलसे अंधे होकर ऊपर घूमते भ्रमर मोरखके समान मालूम होते थे—उन्होंने सेनापति पर तमालके पत्तोंकी मानो छाया कर दी थी । उसके गडस्थलकी पसीनेकी रेखा हिलते हुए कर्ण-पल्लवसे पुँछ जाती थी, जिससे ऐसा मालूम होता था मानो भुजबलसे जीती गई और भयसे सेवा करने आई थी अपने हाथसे उसका पसीना पोछ रही हो, हिरनोंके बंधकी सूत्रक और रुधिरसे ही मानो गीली दृष्टिसे वह दिशाओंके सत्र भागोंको रंग देता था—उने तक पहुँचतीं और चंडिकाको रुधिरका बलि देनेके लिये बार बार ८ गए पैसे शस्त्रोंके चिन्हसे विषम कंधेवाली उसकी दोनों मुजाएँ ऐसी गायमान लगती थी मानो हाथीकी सूँड़की नाप लेकर बनाई गई हो । उसकी छाती विंध्य-शिलातलके समान विशाल दीखती थी । वह पसीनेकी बूँदोंसे तर

१—एक निषाद जिसने द्रोणाचार्य की मूर्तिको गुरु मान उसके सामने शस्त्राभ्यास किया था ।

हो रही थी और उममे बीचबीचमे कुछ कुछ गाढे हरिण रुधिरकी बूँदें लग रही थी, जिनसे ऐसा मालूम होता था मानो उसने चिरमिठी-महित गज-कुम्भस्थलके मोतिनाम आभूषण पहना हो, दिन रात कसरत करनेसे उसका उदर बहुत कृश हो गया था, अपनी जाँघोंसे वह हाथियोंके बाँधनेके—गज मदसे मलिन हुए—दा चमोड़ी, मानो, हँसी करता था, उसने लाखके समान लाल रेशमी वस्त्र पहन रखा था, अकारण क्रूर होनेके कारण उसका माथा ऊँची भ्रुकुटीसे विकृगल था और उम पर तीन सिलवटें थी, वह ऐसा मालूम होता था मानो दृढ़ भक्तिये प्रसन्न हुई दुर्गाने उसे अपना भक्त जान विश्रुलका चिन्ह बना दिया हो। उसके पीछे दौड़े हुए रंग विरगे कुत्ते चने आते थे, वे श्रमके कारण नाट्य निकली जिद्धाओमे अपना खेद प्रकट करते थे। यद्यपि उनकी जिद्धाएँ उम समग्र सूत्री थी तथापि जन्मसे ही लाल होनेके कारण ऐसी मालूम होती थी मानो हिरनाके रुधिरकी बूँदें टपकाती हो, मुँह खुले होनेसे दाँतोंकी किरणें साफ दिग्गई देती थी, श्रोत्रोंके दोना हिस्सेसे ऐसा मालूम होता था मानो उनमें दाँतोंके बीच बीचमे सिंहकी मग्न भर गई हो। उनके गलेमे बड़ी बड़ी कौड़ियाके कटे पड़े थे वे कुत्ते बड़े बड़े शूफरोमी दृष्टाकी चोटोंसे जर्जरित हो गए थे, शरीर तो उनका छोटा था परन्तु सामर्थ्य अधिक होनेसे वे केसर-विहीन सिंहके पक्षोंके समान दिखलाई देते थे, वे हिरनाका मारकर हिरनिशोक विववा बनानेमे कुशल थे, उनके पीछे पीछे बड़े शरीरवाली कितनी ही कुतियों भी आ रही थीं। वे सिंहके लिए अनपनी चार्पना करने आई हुई गिहनियोंके समान मालूम होती थीं।

३—नेनापतिके ग्राम-वास बहुतसे भीलोंके झुंड चल रहे थे, उनमेंसे कितनों कीके पास चमर मृगके बाल और हाथीदाँतकी गटरियाँ थी, किसीने छिद्र-रहित पत्थर मनु भर लिया था, कितनोंने हाथीके कुम्भस्थलमेंसे निकले मोती अपने हाथोंके रखे थे, कितनोंने राक्षसोंके तरह मांस ले रखा था, कितनोंने मत्तदेन के गणों की तरह मिर चर्म ले रखे थे, किसीने बाद्ध-भिक्षुओं की भाँति मोरनाम ले रखे थे, कोई कोई मलकोपी तरह काक-पक्षधारी थे, कई कोई गजको मारकर प्रार उनके अंग लेकर मानो कृष्ण-चर्चित दिखाते थे, कोई कोई बर्षा

१—बाजोंके पूँधरवाले बाल होते हैं, भीलोंके पास दाँतोंके पर थे।

२—दन्त-पथके लक्षण पुष्पने भी हाथीका दाँत उखाड़ लिया था।

ऋतुके दिनोंकी तरह मेघ मलिन^१ अम्बर थे, अरण्यके समान, सेनापति खड्ग-धनुज^२ सहित था, नये वादलके समान वह मयूर^३-विच्छेदचित्र धनुष धारी था, बक राक्षसकी तरह उसने एक चक्र^४ लिया था, गरुड़की तरह उसने अनेक बड़े बड़े नागोंके^५ दाँत तोड़ दिये थे, भीष्मके समान वह शिखंडि-शत्रु^६ था, गरमीके दिनकी तरह वह हमेशा मृगतृष्णा^७ प्रकट करता था, त्रिवावरोंके समान उसे मानसवेग^८ था, पराशरकी तरह वह योजनगंधाका^९ अनुसरण करता था, घटोत्कचके समान उसने भीनरूप^{१०} धारण किया था, पार्वतीके केशपाशके समान वह नीलकण्ठ^{११} चंद्रकाभरण था, हिरण्याक्षके समान महावारह^{१२}-दंष्ट्रासे उसकी छाती भिन्न हुई थी, विषयासक्त पुरुषके समान उसने ब्रह्ममी वंदियोंका^{१३}

१—वर्षा ऋतुमें अंधकाश मेघोंसे मलिन हो जाता है, भीष्मोंके वस्त्र मेघोंके समान मलिन थे ।

२—वनमें गँडे और हथनियाँ होती हैं, सेनापतिके पास खजर था ।

३—मेघ मोरपंखके समान विचित्र धनुष धारण करते हैं, भीष्मके पास मोरपंखसे अलंकृत धनुष था ।

४—बक राक्षसने एकचक्रा नगरी जीत ली थी, भीष्मके पास एक चक्र था ।

५—गरुड़ने साँपोंके दाँत तोड़े थे, भीष्मने हाथियोंके ।

६—भीष्म द्रुपदके पुत्र शिखंडीका शत्रु था, भीष्म मोरों का शत्रु था ।

७—गरमीमें मरीचिका दीखती है, भीष्मको मृगोंकी तृष्णा रहती थी ।

८—विद्याधर मानसरोवरकी ओर शीघ्र जाते हैं, भीष्मको गर्व था ।

९—पराशर योजनगंधाके पीछे प्रेमसे दौड़े थे, भीष्म कस्तूरी मृगोंके पीछे था ।

१०—घटोत्कचने अपने पिता भीष्मका रूप धारण किया था, क्योंकि पुत्र ताका रूप होता है, भीष्मने भयंकर रूप धारण किया था ।

११—पार्वतीके केशोंमें शिवका चंद्रमा गहनेका काम देता था, भीष्म मोर पंखोंके चंद्रकोके अलंकार धारण करता था ।

१२—बाराहावतारकी दंष्ट्रासे हिरण्याक्षकी छाती विदीर्ण हुई थी, बड़े बड़े शूकरोंकी दंष्ट्रासे भीष्मकी छाती ब्रण युक्त हुई थी ।

१३—पुरुषके पास बाँदियाँ होती हैं, भीष्मके पास जजीरें थीं ।

प्रहण किया था, राजसके समान वह रक्त-लुम्भक^१ था, सगीत-कलाके विलासकी तरह उसके साथ निपाद^२ थे, अम्बिकाके त्रिशूलके समान उमका शरीर महिष^३-रधिरसे भीगा हुआ था, नवयौवनमे होने पर भी उमने बहुत वयस्का^४ क्षय किया था, सारमेय^५ सत्रह करने पर भी वह स्वयं फल-मूलका ही भक्षण करता था, वह कृष्ण^६ था तथापि सुदर्शन-विहीन था, स्वच्छंदचारी होने पर भी वह दुर्गके^७ शरण था, क्षितिधरके^८ पादका अनुसरण करता था तथापि राजसेनासे अनभिज्ञ था, विद्याचलका मानो वह पुत्र था, यमका अश लेकर मानो उसने अवतार लिया था, पापमा मानो वह सहोदर था, कलियुगमा मानो सर्वेश्व था और भयंकर होने पर भी अत्यन्त बलके कारण वह गभीर सा दीखता था ।

३६—मेरे मनमे त्वचार हुआ—ग्रहो । इन लोगोंका जीवन अज्ञानसे पूर्ण है और इनके कर्म साधुजनोंसे निन्दित हैं, क्योंकि ये मासकी बलि देना धर्म समझते हैं, पण्डितोंसे निंदा किए गए मधुमासादिका आहार करते हैं, मृगमा गो व्याघ्रम समझते हैं, शृगालोंके रोदनसे प्रातःकाल जागते हैं, उल्लू इनके भले बुरेके उपदेशक हैं, क्योंकि उनसे ही ये शकुन निचरते हैं, पक्षिभोग जान ही इनकी बुद्धिमानी है, कुत्तोंके साथ मेल है, खाली वनोंमे इनका राज्य है, मय्र पानकी गोठी इनका उत्सव है, क्रूर कर्म करनेवाले धनुष हाके मित्र हैं, पिपिले सगोत्रे समान वायु इनके सहायक हैं, मुग्ध मृगमा नाशक इनका गान है, दृष्टसे पकड़ कर लाई गई पर-स्त्रियाँ क्लृप्त हैं, क्रूर

१—राजस रधिरका लोभी होता है, भीलसे व्याघ्र अनुराग करते थे ।

२—सगीतमे निपाद स्वर होते हैं, भीलके साथ निपाद (एक प्रकारके गीत) थे ।

३—त्रिशूल महिरामुरके रधिरसे भीगा गया था, भीलका शरीर भैंसोंके रधिरसे भीला हो गया था ।

४—अरुंधा, पक्षी ।

५—धन, धान्य, कुत्ते ।

६—वानुदेव, वुरूप । सुदर्शन चक्र रहित देवनेमें सुन्दर नहीं ।

७—झिलेमें शरण लेनेवाला, डेवल दुर्गाका नर ।

८—राजा, पदत ।

व्याघ्रोंके साथ इनकी रहन-सहन है, पशुओंके नखिसे ये देवताओंकी पूजा करते हैं, मासभी बलि देते हैं, चोरीसे गुजाग करते हैं, सर्पमणिके गहने पहनते हैं, वन गजके मदका शरीरम लेप करते हैं और वनमें रहते हैं उसे ही निर्मूल कर देते हैं । इस तरह म विचार कर ही रहा था कि इतनेमें वह सेनापति वनमें फिरनेकी थकावट दूर करनेकी इच्छासे उसी सेमरके वृद्धकी छाया में आया और अपनी वनपु नीचे रग्य, परिजनोसे शीघ्र लाई गई तत्तोंकी चटाई पर बैठ गया । एक तरफ़ भीलने उस तालाबमें झूटपट उतर अपनी दोनो हाथोंसे कमलकी कलियोंकी रससे सुगन्धित हुए टण्डे जलको सूत्र हिलोड़ा । वह जल वैद्यमणिके रसके समान, प्रलय—कालके सूर्यकी किरणोंके तापसे गल कर गिरे आकाशके टुकड़ेके समान, और चंद्रमण्डलमेंसे टपके मौक्तिक रसके समान इतना निर्मल था कि छूनेसे ही पहचाना जाता था । उसे कमलके पत्तोंके दोनेमें भर कर और तुरन्त चूटी हुई कमलकी नरम नरम जडोंको, कीचड़ धोकर, वह साथ ले आया । पानी पीनेके बाद सेनापतिने इस प्रकार उस मृणालिकाको धीरे धीरे खाया जैसे राहु चन्द्रकलाका आस करता हो । फिर जब वह सुस्ता चुका तब उठ कर चल दिया और सब सेना भी जल पीकर उसके पीछे धीरे-धीरे अभीष्ट दिशामें गई ।

४०—परन्तु चाडालोंके उस झुंडमें एक बूढ़ा भील था । वह राजमके समान अत्यंत भयंकर देख पड़ता था । उसे हिरोको माम नहीं मिला था, इसलिए वह मास लेनेके इरादेसे उसी वृद्धके नीचे थोड़ी देर तक खड़ा रहा । जब सेनापति दृष्टिके बाहर हो गया तब—पद्मियोंका मास खानेके लालची समान—उस बूढ़े भीलने ऊपर चढनेके इरादेसे बहुत देर तक उस जड़से देखा । रुधिरकी बूँदके समान उसकी गुलाबी दृष्टि पिंगल रंगके परिवेषसे भयंकर लगती थी । जब वह वृद्धको देख रहा था तब उसका मालूम होता था मानो वह हमारी आयु पी रहा हो और तोतोंके कोटर में बसा हुआ हो । उसकी दृष्टिसे भयभीत होकर तोतोंके प्राण तो मानो उसी दम निकल गये । निर्दय मनुष्यको कुछ असाध्य नहीं है । वह वृद्ध अनेक ताड-वृद्धोंके समान ऊँचा था और उसकी चोटीकी डालियाँ आकाशसे टकराती थीं तो भी वह भील इस तरह आसानीसे उस पर चढ गया जैसे नसेनी पर चढता

हो । फिर वह तोतेके बच्चोंको, एक एक करके,—जैसे मानो उस वृक्षके फल तोड़ता हो इम भौंति—उलियासी सधिमसे और कोटरोके भीतरसे निकाल-निकाल कर आर प्राण ले लेकर भूमि पर पटकने लगा । उनमेंसे कितने ही बच्चोंको उड़नेकी ताकत नहीं थी, वे जोड़े ही दिन पहले जनमे थे, गर्भके समान लाल थे और सेमरके फूलाके समान लगते थे, कितने ही पर निकल आनेके कारण कमलके नरम पत्तोंके समान दीखते थे, कितने ही आकके फलके समान थे, कितने ही चौचकी नोक लाल होनेसे थोड़ी खिली हुई पलड़ियोंके लाल मुखवाली कमलकी कलियोंकी शोभा धारण करते थे, और कितने ही बार-बार होते शिर रूपके रहाने मानो उपाय करनेमें असमर्थ होकर नहीं-नहीं रहते थे ।

४१—ऐसा प्राणहारी और उपाय रहित महा उपद्रव अचानक आया देव पर मेरे पिताको दूना कप हो आया । मरणके डरसे ऊँची और चंचल पुतलीवाले, शोभसे निम्तेज और आँसुओंमें भरे नेत्रोंको उन्होंने दिशाओंमें दूर उतर फेंका । उनका तालु सूख गया । भयके कारण सन्धियाँ ढीली हो जानेसे पक्ष शिथिल हो गए । उनमें अपनी रक्षा करनेकी शक्ति न रही प्रायः कोई उपाय नहीं सूझ पड़ा । तो भी स्नेहके कारण मेरी रक्षाके लिये व्याकुल होकर उन्होंने अपने पंखोंसे मुझे ढक लिया । केवल इस उपाय को ही उचित जान कर व मुझे अपनी गोदमें लपेट कर बैठे रहे । इतनेमें प्रकृत मारी प्रायः दूर भीतने क्रमसे उलियाके बीच-बीचमें चट हमारे पासलेके छेदके पास आकर समदंडके समान अपना बायाँ हाथ लवा किया । उसका दाँव बूट्टे कुण्ड सर्पके शरीरके समान भयकर था, हथेलीमें जगली सूजभोभा चभा और मामकी दास ग्रा रही थी और कोटनीमें धनुषकी डोरी में रौंते निशान लगे रहे । फिर उसने बार-बार चौचका प्रहार करते और चला-चला कर मेरे दिशासे दूर खेच कर उनके प्राण ले लिये । पर मेरा शरीर नष्टा प्रेयस था । मेरे स्वप्न भयसे बुझ गये थे और उन्नत नहीं थी, इस उपायसे उनके शिर टूटने नही देगा ।

ही नीचे गिर पड़ा । मेरे कुछ पुण्य बाकी थे, इमसे मे हवासे इकट्ठे हुए सूखे पत्तोंके ढेर पर जा पड़ा । मेरे शरीरमें चोट नहीं लगी । सूखे पत्तोंके समान ही रग होनेसे मेरा शरीर साफ-साफ नहीं दीवता था । फिर वह भील वृक्षकी चोंटी परसे तब तक नीचे नहीं आया तब तक ही मने, जैसे कोई क्रूर मनुष्य छोड़ता हो उसी तरह, अपने मेरे हुए आपनो मृत्युके समय भी छोड़ दिया, क्योंकि आगे होनेवाले स्नेहका मुझे ज्ञान नहीं था । सहज भयसे अत्यंत व्याकुल होनेके कारण जरा निम्नले परोका कुछकुछ सझारा लेता, और इधर उधर लोटता, अपनेको मृत्युके मुखमेंसे निकला ममभ्र कर पासके एक बड़े तमाल वृक्षकी जड़में मे इस भाँति घुम गया मानो दूसरे पिताका उत्सग हो । वह जड़ इतनी गहन थी कि उममें सूर्यकी किरणें भी प्रवेश नहीं कर सकती थीं । उस वृक्षके पत्ते भीलनियोंके कर्णपूर बनाने के लायक थे, बलरामके वृक्षके समान नीली छायासे वह श्रीकृष्णके शरीरकी कान्तिकी, माना, हँसी करता था, निर्मल यमुना जलके टुकड़ेहीके, मानो, उमके पत्ते बनाए गए थे, उन पर जगली हाथियोंका मद छिड़का हुआ था, उस वृक्षने विद्याटवीके केशपाशकी शोभाको धारण किया था और दिनमें भी उसकी डालियोंके बीच-बीच में अँधेरा रहता था ।

४२—फिर वह भील वृक्ष से उतर कर, भूमि पर अलग-अलग पड़े तोतेके बच्चोंको जलदी इकट्ठा करके, अनेक लता-रूपी पाशोंमें लपेट, पत्तोंमें बाँध, जिस रास्ते सेनापति गया था उसी रास्ते, उसी तरफ फौरन चला गया । दुम्भे अथ जीनेकी आशा तो हुई, परन्तु पिताके उसी क्षण मरनेके मेरा हृदय सूख गया, बहुत ऊँचेसे गिरनेके कारण शरीरमें दर्द था, भयके कारण शरीर थर-थर काँपने लगा और सब अंगोंमें ताप करके प्यास मुझे सताने लगी । उस चाडालको बहुत दूर चला गया कर, गर्दन जरा ऊँची करके भय-चकित दृष्टिसे मैंने चारों तरफ देखा । अनेक आदृष्ट होने पर भी फिर उसके आनेकी शका करता और पद-पद उसी कसाई को देखता, तमाल-वृक्षकी जड़मेंसे निकल कर मैं तालावके पास जानेका यत्न करने लगा ।

४३—पूरे पंख न निकलनेके कारण मेरे पैर डिगमिगाते थे । मे क्षण क्षणमें